ज्ञानपीठ-लोकोदय-ग्रन्थमाला

हिन्दी ग्रन्थाङ्क—११४

माखनलाल चतुर्वेदी : जीवनी

भाग–१

[शैशव और कैशोर]

ऋषि जैमिनी कौशिक 'बरुआ'

भारतीय ज्ञानपीठ • काशी

विषय-क्रम

भूमिका

विकास-क्रम

विषय-क्रम

भूमिका

विकास-क्रम

परिशिष्ट

माखनलाल चतुर्वेदी : जीवनी

भूमिका
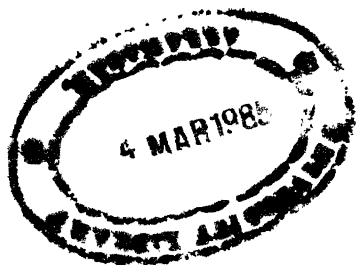
हिन्दी-यज्ञके अध्वर्यु और साहित्यकारकी नीलकंठताका इतिहास

इन पृष्ठोंमें 'साहित्य-देवता' नामसे हिन्दी जगत्‌में विख्यात श्रीमाखनलाल चतुर्वेदीकी जीवनगाथा दी गई है। वह अभी सम्पूर्ण नहीं है, केवल १९१९ तक ही लिपिबद्ध हुई है—जब अपने गोपनीय एकान्तसे निकलते ही वे मध्यप्रदेशकी राजनीतिमें सबसे पहले जन-नेता घोषित हुए थे और उन्होंने जबलपुरसे 'कर्मवीर' निकालकर, उसकी आधारभूत नीतिके रूपमें दक्षिण अफ्रीकासे विजयी बनकर लौटे हुए कर्मवीर मोहनदास कर्मचन्द गान्धीकी भावधाराका न केवल नेतृत्व स्वीकार किया था, बल्कि उनके 'कर्मवीर' विशेषणको ही अपने साप्ताहिकका शीर्षक घोषित करते हुए, मध्यप्रदेशकी राजनीतिमें गान्धीजीकी अहिंसाको लोकप्रिय और सफल बनानेका कठिन व्रत भी धारण किया था। सन् १९१९ के बादका उनका जीवन यदि लक्ष्यभेदकी दृष्टिसे छूटा हुआ वेगगामी तीर है, तो '१९ के पहलेका उनका जीवन उस तीरके अनुरूप बड़ी कठिनाईसे तैयार किया हुआ धनुष है। इस धनुषकी प्रत्यञ्चाका निर्माण उनके शैशवने किस तरह कर दिया था यही इस जीवनीमें सुस्पष्ट किया गया है।

माखनलाल चतुर्वेदी!

यह नाम हिन्दी जगत्‌में एक मीठी कसक पैदा करनेके लिए काफी है। इस नाममें एक उपासनीय श्रद्धा है। इस नाममें एक संयत विद्रोहका विकास-क्रम है। हिन्दी साहित्यमें इस नाममें उतना ही चमत्कार है, जितना भगवान् शिवके उस नाममें है जो 'नीलकण्ठ' बनकर व्यक्त हुआ

था। गत वर्ष (१ मार्च से १५ मई, १९५७ तक) उनके निकट रहकर और उनके जीवन-सूत्रोंको यथाक्रम लिपिबद्ध कर जब मैं कलकत्ता लौट आया तो सहसा ही एक प्रश्न सामने आकर खड़ा हो गया—शास्त्रोंमें और पुराणोंमें और प्राचीन साहित्यमें शिवजीकी नीलकण्ठताका इतिहास भला अपने पूरे व्यौरेके साथ क्यों न लिखा गया ? आखिर वह लिखा गया होता, तो क्या हमारे साहित्यका भरपूर कल्याण न हुआ होता ? इसी प्रश्नपर विचार करते हुए मुझे यह स्पष्ट हो गया कि श्री माखनलालजीकी जीवनी जिस रूपमें सूत्रबद्ध हुई है, वह जब तक उनकी नीलकण्ठताके इतिहासकी दृष्टिसे ग्रथित न की जायगी, उनकी जीवनी लिखनेका श्रम उपहासास्पद ही रह जायगा। इसलिए खण्डवासे लाई गई सामग्रीको मैंने यथा स्थान सुरक्षित रख दिया और नये सिरेसे उनकी जीवनीके उज्ज्वल पक्षोंपर अध्ययन-मनन करने लगा।

माखनलालजी २० वीं सदीके पूर्वार्धमें उस समय हिन्दी साहित्यमें आये, जब आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी 'सरस्वती'-आश्रममें बैठकर राष्ट्रभाषा हिन्दीका आन्दोलन प्रबलतम बना चुके थे। उस समय माखन-लालजी की आयु केवल मासूमियत वहन कर रही थी। वे बड़े ही सुन्दर, गोरे, यष्टि-तन युवक थे, अत्यन्त सुकुमार थे, और प्राइमरी स्कूलमें दूसरी कक्षाके अध्यापक मात्र थे। सहसा ही मध्यप्रदेशमें हिन्दी-स्वराज्यका भवितव्य मुसकरा उठा और माखनलालजीने अपने असमर्थ हाथों, बिना किसी उचित संरक्षणके 'प्रभा' नामक हिन्दी मासिक निकाला। महावीर-प्रसादजी द्विवेदीके पीछे इण्डियन प्रेसकी व्यय-साध्य, दृढ़ शक्ति लगी हुई थी, लेकिन माखनलालजीने 'प्रभा' क्या निकाली, उसे हर हालतमें जीवित रखनेके नाते, अपनी विवशताओंसे संघर्ष करते हुए, अपनी अबोधा प्रिया पत्नीकी आहुति भी उस पत्रिकाके चरणोंमें चढ़ा दी ! उसीके साथ, दो वर्षोंमें ही, वह पत्रिका भी बन्द हो गई।

'प्रभा' बन्द हुई या माखनलालजीकी पत्नी कालकवलित हो गई, ये

दोनों घटनाएँ विस्मृतिके गर्भमें समानेवाली न थीं। इनका निगूढ़ मर्म समझनेके लिए हमें मध्यप्रदेशके जनजीवनका मर्म समझना होगा। माखनलालजीका जीवन मध्यप्रदेशकी उन प्रशस्त परम्पराओंमें से नील कमलकी तरह ऊपर उठा है, जो बहुत प्राचीन हैं और जो सनातनकालसे अपनी गोपनीय सीपोंमें अपने पुत्रोंको मुक्ता-तुल्य गढ़ती रही हैं···

२

समग्र मध्यप्रदेश नीलकण्ठ बनकर दीर्घजीवी बना है

प्राचीन इतिहाससे पता चलता है कि पहली बार उत्तरखण्डके ऋषि अगस्त्यने मध्यखण्डमें अपने आश्रम स्थापित किये थे। इतिहास यह नहीं बताता कि वे आश्रम कितने वर्ष या कितने युग मध्यप्रदेशमें अपनी कल्याण-कामना सिद्ध करते रहे। यह अवश्य पता चल जाता है कि अगस्त्य ऋषिने विन्ध्यखण्डके डैनोंको काटकर दानव-योग्य जिस उष्ण रसेन्द्रियताको ही अपना कर्म-विपाक बनाया था, वह कालान्तरमें बराबर मध्यप्रदेशके लिए असह्य भार बना रहा। सच तो यह है कि अगस्त्यने विन्ध्यखण्डके डैने नहीं काटे थे, उन्होंने मध्यप्रदेशके गगन-विहारी मानस को ही अपनी कुण्ठासे जडभूत कर भूमिसात् करनेकी दुश्चेष्टा की थी। यही नहीं, अगस्त्य ऋषिने दण्डकारण्यमें अपने अनेक आश्रम भी इसी दृष्टि से स्थापित किये थे, ताकि उनके विचारोंके दोहन-मन्थनमें यहाँका लोक-जगत् कीटवत् पेटके बल भले ही रेंगे, पर मानवकी गति सिर ऊँचा उठा कर क्षितिजको न छू सके। फिर भी अगस्त्य ऋषिका मन्तव्य कभी पूर्ण न हुआ, विन्ध्यखण्डके डैने, कटकर भी, अपना दिव्य सन्देश अपने लोकजगत् को देते रहे; डैनोंका अङ्गच्छेदन कटुतम विष था, उसे विन्ध्यखण्डोंने तो पिया ही, समग्र मध्यप्रदेशने भी पिया और दोनों बलि-पथके राही हुए, नीलकण्ठ बन कर अजेय बन गये, अमर बन गये!

उत्तरखण्डका अतिरिक्त विवेक जब भी संकुचित और गलित हुआ

था। गत वर्ष (१ मार्च से १५ मई, १९५७ तक) उनके निकट रहकर और उनके जीवन-सूत्रोंको यथाक्रम लिपिबद्ध कर जब मैं कलकत्ता लौट आया तो सहसा ही एक प्रश्न सामने आकर खड़ा हो गया—शास्त्रोंमें और पुराणोंमें और प्राचीन साहित्यमें शिवजीकी नीलकण्ठताका इतिहास भला अपने पूरे ब्यौरेके साथ क्यों न लिखा गया? आखिर वह लिखा गया होता, तो क्या हमारे साहित्यका भरपूर कल्याण न हुआ होता? इसी प्रश्नपर विचार करते हुए मुझे यह स्पष्ट हो गया कि श्री माखनलालजीकी जीवनी जिस रूपमें सूत्रबद्ध हुई है, वह जब तक उनकी नीलकण्ठताके इतिहासकी दृष्टिसे ग्रथित न की जायगी, उनकी जीवनी लिखनेका श्रम उपहासास्पद ही रह जायगा। इसलिए खण्डवासे लाई गई सामग्रीको मैंने यथा स्थान सुरक्षित रख दिया और नये सिरेसे उनकी जीवनीके उज्ज्वल पक्षोंपर अध्ययन-मनन करने लगा।

माखनलालजी २० वीं सदीके पूर्वार्धमें उस समय हिन्दी साहित्यमें आये, जब आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी 'सरस्वती'-आश्रममें बैठकर राष्ट्रभाषा हिन्दीका आन्दोलन प्रबलतम बना चुके थे। उस समय माखन-लालजी की आयु केवल मासूमियत वहन कर रही थी। वे बड़े ही सुन्दर, गोरे, यष्टि-तन युवक थे, अत्यन्त सुकुमार थे, और प्राइमरी स्कूलमें दूसरी कक्षाके अध्यापक मात्र थे। सहसा ही मध्यप्रदेशमें हिन्दी-स्वराज्यका भवितव्य मुसकरा उठा और माखनलालजीने अपने असमर्थ हाथों, बिना किसी उचित संरक्षणके 'प्रभा' नामक हिन्दी मासिक निकाला। महावीर-प्रसादजी द्विवेदीके पीछे इण्डियन प्रेसकी व्यय-साध्य, दृढ़ शक्ति लगी हुई थी, लेकिन माखनलालजीने 'प्रभा' क्या निकाली, उसे हर हालतमें जीवित रखनेके नाते, अपनी विवशताओंसे संघर्ष करते हुए, अपनी अबोधा प्रिया पत्नीकी आहुति भी उस पत्रिकाके चरणोंमें चढ़ा दी! उसीके साथ, दो वर्षोंमें ही, वह पत्रिका भी बन्द हो गई।

'प्रभा' बन्द हुई या माखनलालजीकी पत्नी कालकवलित हो गई, ये

दोनों घटनाएँ विस्मृतिके गर्भमें समानेवाली न थीं। इनका निगूढ़ मर्म समझनेके लिए हमें मध्यप्रदेशके जनजीवनका मर्म समझना होगा। माखनलालजीका जीवन मध्यप्रदेशकी उन प्रशस्त परम्पराओंमें से नील कमलकी तरह ऊपर उठा है, जो बहुत प्राचीन हैं और जो सनातनकालसे अपनी गोपनीय सीपोंमें अपने पुत्रोंको मुक्ता-तुल्य गढ़ती रही हैं···

२

समग्र मध्यप्रदेश नीलकण्ठ बनकर दीर्घजीवी बना है

प्राचीन इतिहाससे पता चलता है कि पहली बार उत्तरखण्डके ऋषि अगस्त्यने मध्यखण्डमें अपने आश्रम स्थापित किये थे। इतिहास यह नहीं बताता कि वे आश्रम कितने वर्ष या कितने युग मध्यप्रदेशमें अपनी कल्याण-कामना सिद्ध करते रहे। यह अवश्य पता चल जाता है कि अगस्त्य ऋषिने विन्ध्यखण्डके डैनोंको काटकर दानव-योग्य जिस उष्ण रसेन्द्रियताको ही अपना कर्म-विपाक बनाया था, वह कालान्तरमें बराबर मध्यप्रदेशके लिए असह्य भार बना रहा। सच तो यह है कि अगस्त्यने विन्ध्यखण्डके डैने नहीं काटे थे, उन्होंने मध्यप्रदेशके गगन-विहारी मानस को ही अपनी कुण्ठासे जडभूत कर भूमिसात् करनेकी दुश्चेष्टा की थी। यही नहीं, अगस्त्य ऋषिने दण्डकारण्यमें अपने अनेक आश्रम भी इसी दृष्टि से स्थापित किये थे, ताकि उनके विचारोंके दोहन-मन्थनमें यहाँका लोक-जगत् कीटवत् पेटके बल भले ही रेंगे, पर मानवकी गति सिर ऊँचा उठा कर क्षितिजको न छू सके। फिर भी अगस्त्य ऋषिका मन्तव्य कभी पूर्ण न हुआ, विन्ध्यखण्डके डैने, कटकर भी, अपना दिव्य सन्देश अपने लोकजगत् को देते रहे; डैनोंका अङ्गच्छेदन कटुतम विष था, उसे विन्ध्यखण्डोंने तो पिया ही, समग्र मध्यप्रदेशने भी पिया और दोनों बलि-पथके राही हुए, नीलकण्ठ बन कर अजेय बन गये, अमर बन गये!

उत्तरखण्डका अतिरिक्त विवेक जब भी संकुचित और गलित हुआ

है, तो वह महान् भूमा बननेके लिए षड़यन्त्री बन उठा है। उत्तरखण्ड-की भागीरथी गङ्गा सद्बुद्धि बन कर पूरब दिशा बही; उसका महासिन्धु संयमकी विशाल धारा बनकर पश्चिमकी दिशा बहा। केवल उसका अनीति-अविवेक हिंस्र वृत्तियोंको लेकर, शस्त्रका इन्द्रजाल थामे हुए, साल के किसी भी दिन देशाचौथ खेलनेके लिए (!) विन्ध्यप्रदेश पर चढ़ आता रहा। न जाने उत्तरखण्डके किस-किस नरेश, महानरेश, शासक और सम्राट् और सुलतान और बादशाहने मध्यप्रदेशमें राजप्रासाद, गढ़, परकोटे और स्मारक नहीं बनवाये, लेकिन मध्यप्रदेशमें उनके नामलेवा इसीलिए नहीं बचे, क्योंकि उन राजप्रासादों, गढ़ों, स्मारकोंका जीवन अत्यधिक अल्पकालिक रहा, वे बरसाती नदीकी गन्दगीकी तरह बह ही तो गये। यहाँकी वसुमती दीप्तिवन्त किन्तु विनम्रवदना अपनी ही प्राण-श्वासोंसे हरियाती रही। यहाँका पृथ्वीपुत्र उसी हरियालीकी विरासत है। उसी हरियालीने यहाँ पीढ़ी-दर-पीढ़ी ऐसे मृत्युञ्जयी बन्दोंकी एक विशिष्ट नस्ल तैयार की, जो अपनी अजातशत्रु प्रवृत्तियोंके कारण राष्ट्रकी मध्यकटि-मेखला ही सिद्ध हुई !! उत्तरखण्डकी दिशासे यद्यपि अनेकानेक महाप्रकोप क्षुद्र-उच्च आशयों पर आरूढ़ होकर धूलबवण्डरकी शक्लमें उड़ते हुए इस दिशा आते रहे, पर मध्यप्रदेशमें विन्ध्याचलकी आत्मशक्ति और नर्मदाकी शाश्वत वाणीका ही स्वर प्रमुख रहा, उनके छन्दात्मक स्पन्दन आज भी जीवित हैं। जिन्होंने यहाँ उत्तरखण्डसे आकर मृत्युराग गाया, ऐसे आक्रमणकारियोंको भूलकर, जो मृत्युञ्जयी यहाँ हुए, उनकी ही जयजयकार यहाँके लोकहृदयने कण्ठस्थ की है। मध्यप्रदेशकी यही परम्परा सर्वतोमुखी है।

३

उत्तरखण्डका सङ्कटकाल और मध्यप्रदेशका आतिथ्य

लेकिन उत्तरखण्ड सदा ही शासक नहीं रहा, वह इतिहासके चिन्त-नीय क्षणोंमें शरणार्थी भी बना। जब उत्तरखण्डसे वैष्णवधर्म जीवनरक्षा-

के लिए दक्षिणकी ओर आश्रयकी खोजमें पहुँचा तब मध्यप्रदेश अपने आघातों और ताजा घावोंको भूला और उसने वैष्णवधर्मका स्वागत इस तरहसे किया मानो एक कमण्डलुमें सहस्रों मील दूरकी भागीरथीका जल अपने पैरों चलकर आया हो और मध्यप्रदेशमें स्वयं ही नई भागीरथीके उद्‌गम-सा बहने लगा हो। यहाँ व्यक्तिगत धर्म और सामाजिक धर्म पहलेसे ही अपने साधकोंकी अप्रमत्त ईमानदारीकी वजहसे घर-घरमें धर्म-बिन्दु (श्रमसीकर) बना हुआ था। मध्यप्रदेशमें धर्मजिज्ञासुओंकी हृदयतः प्रियता पानेके उपरान्त वैष्णवधर्म विन्ध्याचलके डैनोंके सन्देशोंमें और नर्मदाकी शाश्वत वाणीमें एकाकार हो गया। यद्यपि उसके उपरान्त अपनी रक्षा करनेके नाते उत्तर भारतमें वैष्णवधर्म सम्प्रदायोंमें विभक्त होता चला गया, पर मध्यप्रदेशका वैष्णवधर्म तो उसी तरह अखण्ड रहा, जिस तरह विन्ध्य खण्डोंपर उगे हुए पलाशवनका सुहास पतझड़के दाहक क्षणोंमें भी, अपने वासन्ती पुष्पोंमें अविभाज्य रहनेका आदी है। यही कारण है कि मध्यप्रदेशपर इतिहासके हर युगमें दैवी और राजनीतिक प्रकोप व महामारियाँ आईं, लेकिन यहाँका साधारण जन अविचलित भावसे अपने मन्दिर, बावड़ी, तालाब और [illegible] ही अपने जन-जीवनका घरेलू अङ्ग बनाये रहा। उसीमें उसके समग्र जीवन-विश्वास निहित रहे; माताके अञ्चलवत्, उन्हींमें वह सुखकी नींद भी सोया।

४

वैष्णवधर्म और सार्वजनिक ब्रह्मचर्य

मैं वैष्णवधर्मकी रूढ़िका कायल नहीं हूँ। रूढ़ि उसमें ऐसे ही है, जैसे गन्नेके बीच-बीचमें पोरुओंकी गाँठें। प्रकृतिने और संकट-क्षणोंमें आयोजित की गई यात्राओंने वैष्णवधर्मके विकासक्रमकी रूपदक्षताको ग्रथित ही गठीली कलासे किया है। जब मैं देशके मध्यकाल और मुगल-काल और अंग्रेजीकालको पढ़ता हूँ, तो मेरी दृष्टिसे सेनाओंकी पगध्वनिके

बीच और राजनीतिक षड़यन्त्रोंके रौरव कुहरामके बीच वैष्णवधर्मकी एक सृजनक्रियाका स्वर अश्रुत नहीं रह पाता। वैष्णवधर्मने हर भारतीयको निरन्तर शुचिता–पवित्रता दी है, लेकिन सामाजिक स्तरपर उसने सार्वजनिक ब्रह्मचर्यका पीयूष भी मुक्तहस्त वितरित किया है। भारतके अन्य प्राचीन धर्म स्वयंसिद्ध अवश्य रहे, लेकिन वे इतने उन्नत रूपमें देश-काल-समाजको प्रतिष्ठित न कर पाये। यह प्रतिष्ठा वास्तवमें सार्वजनिक ब्रह्मचर्य का वैसा ही स्वरूप है, जैसे तो हम चाँदी या सोनेकी मैली सिलको अन्दरसे काटते चले जायँ, और अन्दरकी चमक निखर-निखरकर बाहर बोलती चली आये। इसी सार्वजनिक ब्रह्मचर्यका दूसरा नाम कलात्मक तपस्या है; यही पुरुषार्थ-कामी साहित्यकी वह सहस्रधारा है, जो भारतीय राष्ट्रको अपने दैवी रूपमें सुलभ हो गई है। एक शब्द मैं बहुत सुनता हूँ : संस्कृति। लोकजीवनके विभिन्न रूपमें जब मैं संस्कृतिकी गन्ध लेनेके उद्देश्यसे उसे सूँघनेके लिए आगे बढ़ता हूँ, तो सचाई मुझे यही हाथ लगती है कि लोकजीवनकी जो भी संस्कृति है, वह कभी की सूख गई होती, यदि साहित्यकी यह सहस्रधारा अपनी ही तरलतासे उसे हरियाये हुए न रखती। संस्कृति सदैव गुप्त रजस्वला रही है, पर उसके अजर जीवनका मर्म तो यही साहित्यकी सहस्रधारा है।

यह साहित्यकी सहस्रधारा न तो सेनाओंसे नष्ट हो सकी, न शासकोंके विधि-विधान ही इसे बन्दी बना सके। हमारे स्वतन्त्र राष्ट्रमें भोग्या राजनीतिकी कदर्यता जितनी ही अधिक धुले-पुँछेगी, हम उतना ही अधिक साहित्यकी इसी सहस्रधाराको राष्ट्रीय जीवनमें वन्दनीय बनाना सीख पायेंगे। राष्ट्रका समग्र कर्म-विपाक बिना इस सहस्रधाराकी तरलताका स्पर्श पाये, अक्षयजीवी न हो सकेगा।

जब मैंने बिना किसी पूर्व तैयारीके मध्यप्रदेशकी प्रथम यात्रा की, खण्डवामें श्रीमाखनलाल चतुर्वेदीका स्नेहदान पाते हुए, उनके निकट आसन लगाया तो मैं सचमुच धन्य-धन्य हो गया। मैंने महसूस किया कि

मैं किसी एक व्यक्तिकी नीरस जीवनी लिपिबद्ध करने नहीं आ गया हूँ। माखनलाल चतुर्वेदीके व्यक्तिके रूपमें मुझे तो समूचे मध्यप्रदेशकी कलात्मक तपस्याकी [illegible] ही दिव्य दर्शन सुलभ हो गया है। वास्तवमें हिन्दी काव्यने माखनलालको नहीं गढ़ा, मध्यप्रदेशकी जो भी युग-पुरातन और शाश्वत सार्वजनिक ब्रह्मचर्यकी धारा है, उसीने माखनलालको पोसा है और उसीने उसे इतना बड़ा 'साधूक्त' बनाया है!

५

हिन्दीका स्वराज्य और माखनलाल चतुर्वेदी

राष्ट्रके इतिहासमें और उसके जनजीवनमें हमारे यहाँ सबसे अधिक लोकप्रिय शब्द 'रामराज्य' रहा है। लोकजगत्‌की वैष्णवी नैतिकताने इस सरस सुपाच्य शब्दका प्रसव किया था। जब देशने स्वतंत्रताकी रणभेरी बजाई, तो उसने अपने मोहक लक्ष्यके रूपमें इसी रामराज्य शब्दको, देवमन्दिर रूप, पहलेसे ही खड़ा कर लिया था। पर यह रामराज्य भी आखिर क्या है? व्यक्तिके निजी संयम, परिवारोंके निजी संयम और समाज-समाजके बीच निजी मर्यादाएँ तो हमारे यहाँ अबोले-अलिखित विधानके हिसाबसे जीवित चली आ रही हैं। लेकिन देशका जन-मानस विगत डेढ़ हजार वर्षोंमें इन मर्यादाओंकी [illegible] जीवनकी स्वस्थ साँसें इसलिए नहीं ले सका, क्योंकि क्रमशः जीवन राजनीतिक धरातल पर ऊपर भी उठा, पर उसकी कदर्य-दृष्टिके ऐसे कंगूरोंसे भी घिर गया जहाँ जोखिम अधिक थी व्यापक तबाहीकी, और अस्तित्वके प्रश्न धरती पर पैर रखनेकी जगह भी ढूँढ़े नहीं पा रहे थे। उन क्षणोंमें ऐसे द्रष्टा आगे आये, जो राजनीतिक लाभके पिपासु नहीं थे, लेकिन वे मनुष्यकी भावी सन्ततियोंके सुखकी कामना, प्रबलसे प्रबलतम रखते थे—उन्होंने अनेक रूपोंमें, अनेक अर्थोंमें सार्वजनिक ब्रह्मचर्यका विधान रचा, उसकी मङ्गल-कामना की और उसकी व्याख्याओंको स्पष्टसे स्पष्टतर किया। जब वैष्णवधर्मकी व्यापक

प्रतिष्ठा हुई, तो रामराज्य शब्द ही सार्वजनिक ब्रह्मचर्यका पर्यायवाची बन गया।

लेकिन जब राष्ट्रमें स्वतन्त्रताका आन्दोलन चल रहा था, तब वह किसी राज्य-आधारित सामन्तशाहीका स्वप्न नहीं देख रहा था। वह लोकतन्त्रके इरादेसे आगे बढ़ा था। लोकतन्त्रमें रामराज्यका अर्थ उसके मूल अर्थोंसे ही स्पष्ट हो सकता था और वह था सार्वजनिक ब्रह्मचर्य।

१९०१ से ही पहले 'साधुभाषा' हिन्दीका आन्दोलन भारतेन्दु हरिश्चन्द्र चला चुके थे, और वे अपने कर्तृत्वसे इसके प्रारम्भिक परिच्छेद भी लिख चुके थे। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदीने इस हिन्दीको राष्ट्रभाषाके रूपमें देखा। माखनलाल चतुर्वेदी और उनके सङ्गी-साथियोंने हिन्दीका स्वराज्य अपने मनोजगत्में निश्चित किया। गाँधीजी और कांग्रेसजन राजनीतिक स्वराज्यके कार्यव्यापारमें दत्तचित्त रहे। हिन्दुस्तानी नामक राजनीतिक समझौतेकी भाषा भी वे गढ़ना चाहते थे। लेकिन स्वराज्यके सन्दर्भमें हिन्दी कौन-सी राष्ट्रव्यापी नैतिकता और सार्वजनिक ब्रह्मचर्यकी कौन-सी शाश्वत सहस्रधारा प्रवाहित कर देगी, इस प्रश्न पर किसीने विचार करना अपना धर्म न जाना। जिन्होंने जाना, उनमें माखनलाल चतुर्वेदी एक रहे। जब देश आजाद हुआ और एकके बाद एक देशके साहित्यकार नईदिल्लीकी कृपाके याचक होनेके नाते उधर उन्मुख होने लगे, उस समय नईदिल्लीकी ओर जिस व्यक्तिने अपनी गर्दन नहीं घुमाई, उनमें सर्वप्रथम नाम माखनलाल चतुर्वेदीका है। वह आज भी हिन्दीके स्वराज्यकी पुञ्जीभूत अनुभूतियोंको अपनेमें समोये जीवनके अन्तिम क्षण बिता रहे हैं। देशकी भावी पीढ़ी इसी नाते उन्हें प्रणम्य जाने-मानेगी।

६

हिन्दीका स्वराज्य ही क्यों?

राष्ट्रकी सन्तत सरस्वतीकी वीणाके कल्याणकामी स्वरोंका इतिहास जिस दिन पूरा लिख लिया जायगा, उसी दिन देशकी चारों दिशाओंमें

हिन्दीके स्वराज्यका प्रभात होगा, उसी घड़ी कोटि-कोटि आश्रयहीना झोंपड़ियोंका सामूहिक सौभाग्य नया सूर्योदय देखेगा। उसी दिन राजसी लक्ष्मीकी क्षुब्ध हुई-हुई तामसिक शक्ति नगरियों-महानगरियोंके महाप्रासादों और अट्टालिकाओंसे चमगादड़की तरह निकलेगी और अपना नया कल्प करते हुए देशकी कोटि-कोटि आश्रयहीना झोंपड़ियोंकी दिशा उन्मुख होगी। ये अट्टालिकाएँ और महाप्रासाद नगरसभ्यताकी उन्नत वक्षके कमल-कोश उतने नहीं हैं, जितने मर्मान्तक वेदनाके महार्णव हैं। ये महाप्रासाद और अट्टालिकाएँ जब जन्मे तो लौकिक धरातल पर इन्होंने अपने पैर नहीं जमाये, झोंपड़ोंमें कोटि युगोंसे निवास करनेवाली समष्टि और उसके बहुमुखी सेवापरायण हितसे ये विमुख हो उठे। झोंपड़े-झोंपड़ियाँ सेवा-संयमके प्रतीक आदिकालमें भी थे, आज इनका आदर्श-चिन्तन इन्हींमें मुखर हुआ बैठा है, इसीलिए ये सार्वजनिक ब्रह्मचर्यके विनम्र प्रतीक सर्वश्रेष्ठ रूपमें आज भी हैं। आत्माका स्वराज्य झोंपड़ोंके मानसकी प्रतिष्ठासे ही हमें प्राप्त होगा। लेकिन सदियोंसे अट्टालिकाओंका मानस जीवनोपयोगी हर्ष व उल्लासके कण-कण दूसरोंसे छीना-झपटी करते हुए इस तरह बटोरता आ रहा है, ताकि दुबारा उसका जन-मनमें वितरण न किया जा सके। ऋषि अगस्त्यकी उष्ण रसेन्द्रियताकी तरह ही इन अट्टालिकाओंकी रसेन्द्रियता है। यह रसेन्द्रियता मधुमक्खीके ज़हरीले डङ्कों-सी है, जो दूसरोंके हर्ष-आमोदके अश्रुओं पर हावी होनेका अपना अधिकार मानती आ रही है। यह मुदितमना भी है कि इसने झोंपड़ों-झोंपड़ियोंको दरिद्र और अभावोंके नरक बनानेका श्रेय हासिल कर लिया है। यही कारण है कि इन अट्टालिकाओंने अतिरेकानन्दके अर्थ बदले और इन्होंने संक्रामक रूपसे आत्मनाशका वरण भी करना शुरू किया। लेकिन झोंपड़े-झोंपड़ियाँ अभावोंके नरक बनाये जाकर भी, पृथ्वी-उपयोगी कर्मयोगके ज्योतिर्मठ जहाँ पहले थे, वहाँ आज भी विनम्र भावसे सर्वाधिक बने हुए हैं। हिन्दीका स्वराज्य इन ज्योतिर्मठोंके बुझे हुए दीपकोंके

रतनारे लोचनोंकी मनोज्ञ पुतलियोंको फिरसे ऋति देगा···आञ्चलिक बोलियाँ और भाषाएँ राजनीतिक मतवादकी भूमिकाओंमें जन्मी हैं, यह दूसरी बात है कि लोकसंस्कृतिका स्पर्श पाकर वे रसवन्ती बनीं। लेकिन हिन्दीने कभी आंचलिक परकोटेके अन्दर अपनी दुनिया नहीं बसाई, वह सदा ही सारे राष्ट्रकी हर्ष-वाणी बनकर बढ़ी-फैली। राजनीति देशकी आजादीके बाद बड़े-बड़े बाँध बाँध रही है, लेकिन हिन्दीका स्वराज्य जिस दिन आ जायगा, उस दिन वह चहुँ दिशाओंमें सौमनस्यकी नीतिनिष्ठ मङ्गलकामनाकी उपासना घर-घर फैलानेका कार्य करेगा। उसीकी तैयारीमें आज हिन्दी भारती राष्ट्रके प्रत्येक अंचलमें तेजोद्दीप्तनयना, आलङ्कारिक नैपुण्यकी सुपर्णा वल्लरी, लक्ष्यबोधकी शङ्ख-ध्वनि और राष्ट्रके अंतर्गठनकी दृढ़ रज्जु बन चुकी है। युगों-युगोंका ऐसा जो स्वप्न था, वह अपनी सही दिशामें आगे बढ़ रहा है······

७

प्रस्तुत जीवनीकी पृष्ठभूमि

काशी नागरी प्रचारिणी सभाकी हीरक-जयन्तीके अवसर पर हम कुछ पत्रकार बनारसके एक होटलमें बैठे टैगोर और अन्य अग्रणी कवियोंपर बात कर रहे थे कि माखनलालजीकी स्मृति आते ही मैंने कहा था, "बंगाल देशके जिस कोनेमें है, उस स्थितिके साथ अपूर्व न्याय करते हुए विश्व-कविका काव्य अपने बंगालका उन्मादित मानस-चक्षु बन सका है। पर माखनलालका काव्य तो राष्ट्रकी नाभि (मध्यप्रदेश) से उल्लसित कमल-नालपर मुकुलित ऐसा पद्म है, जिसका कण-कण शृङ्गारित है अद्भुत रंगों के परिधानमें। और हाँ, मैं स्वयं माखनलालको मध्यप्रदेशकी सदियोंका फूटा हुआ ऐसा मौन मानता हूँ, जो सद्यः प्रस्फुटित किसलयोंके मौनको अपनी भाषाओंमें कहनेके लिए जैसे तो किसी अभिनव भावलहरी पर एक साँस यात्रा कर रहा है।"

इसी बातचीतके दौरानमें मैंने एक बात और कही थी कि गान्धीने गाँवोंकी झोंपड़ियोंकी सतहपर अपने व्यक्तित्वको भूमिनिष्ठ करनेके लिए यदि राजनीतिके प्रांगणमें लँगोटी धारण की, तो राष्ट्रभारतीके क्षेत्रमें केवल माखनलाल चतुर्वेदी ही ऐसा अकेला राष्ट्रीय सपूत है जो झोंपड़ियोंमें जन्मा, बढ़ा, पला और जिसने उन झोंपड़ियोंको ही राष्ट्रके क्षितिज पर पूजनीय बनानेकी दृष्टिसे उनके तृण-तृणको हिन्दीके मधुपूरित पद्म बनाते-रचाते, धन-बोझिल राजनीतिसे एक क्षण भी समझौता नहीं किया। झोंपड़ियोंमें ही जन्मने, पलने और कैशोर बितानेके कारण उनका अडिग विश्वास है और अकाट्य धारणा है कि भारतके गाँव-गाँवकी एक-एक झोंपड़ीका सौभाग्य तो उस दिन जागेगा, जिस दिन इस देशमें हिन्दीका स्वराज्य जन-मनका वैयक्तिक शृङ्गार बन जायगा। यह राजनीतिक स्वराज्य तो धनिकोंको अध्यूढा (प्रथम विवाहिता स्त्री) मानकर उन्हींका शृङ्गार-आभूषण जिस रूपमें बन गया है, वह तो राजधानी और महानगरोंमें स्पष्ट देखा जा सकता है। हिन्दीके स्वराज्यके मुँहबोले भविष्यत् आज कौन बन रहे हैं, इसीका अध्ययन आज अपेक्षित है।

तभी मुझे एक बात याद आ गई। एक बार माखनलालजी चतुर्वेदीने भविष्यवाणीके स्वरमें हिन्दी-यज्ञके अध्वर्युके रूपमें घोषणा की थी कि "जो राजनीतिका भोग करना चाहेगा, वह हिन्दुस्तानीको अपना मत देगा। लेकिन जो मेरे यानी हिन्दीके मरण-जीवनका हामी होगा और हिन्दीके लेखक—मैं जानता हूँ, मुझे ही अपना मत देंगे, वे मेरे यानी हिन्दीके साथ आयेंगे। इस देशकी राष्ट्रभाषा वही बनेगी, जो हिन्दीके लेखक लिखेंगे ; न कि वह जो राजनीतिके सन्दर्भमें आदेश देकर तैयार कराई जावेगी।"

इसी बातको बनारसके होटलमें सब मित्रोंको याद दिलाते हुए मैंने कहा था, "रवीन्द्रनाथ टैगोर भोग्या राजनीतिकी छलनामें कभी नहीं भरमे। गान्धी और नेहरूके द्वारे वह नहीं आये, ये ही उसके द्वारे अपनी वन्दना

देने गये। शक्तिमत्ता राजनीति जैसे साहित्यकी वेदीको साष्टांग प्रणाम करनेमें ही अपनी छलमत्ता आत्माका प्रकाश पा सकी थी। अन्य राजनीतिज्ञ भी उनके आँगनमें अपनी विनीत श्रद्धा लेकर इसीलिए गये कि अपनेको वे गौरवान्वित करते रहें। टैगोर इसीलिए साहित्य साधनाका दैवत्व लक्ष्यावधि लोगोंके लिए पुंजीभूत कर सके। किन्तु, हिन्दीके साहित्यकार ?" मेरे इस प्रश्न पर सभी मित्र हँस पड़े थे।

साहित्यकारकी उदरपूर्ति राष्ट्रका दायित्व है, पर साहित्यकारका दायित्व राष्ट्रके शासकवर्गको आत्मसमर्पण करना नहीं, राष्ट्रीय यज्ञमें अपना श्रम-स्वेद-तप दीप्त करते हुए कालपुरुष बन जाना है। राष्ट्रके शासकको किसी भी रूपमें अधिकार ही नहीं है कि वह अपने साहित्यकारोंका आत्मसमर्पण स्वीकार करे। जो शासक या राजनीतिज्ञ ऐसा करता है, वह राष्ट्रकी मिट्टी का अपमान करता है। शासक या लोकनायक जनशक्तिसे अभिमन्त्रित केवल ऐसा पुरुषत्व है, जिसे जनताके भविष्यपर आँधी और अँधेरेके आक्रमणोंसे रक्षा भर करनी है। जिस देशमें साहित्यकारोंका आत्मसमर्पण बलात् कराया जाता है या किये जानेकी प्रेरणा आयोजित की जाती है, वहाँ जीवन-श्रेयस् अपनी आत्माका ही खून पी-पीकर क्षयको प्राप्त होता है...

जब मैं कालपुरुषकी सदाशयता पर विचार करने लगता हूँ, तो सहसा ही मुझे १९५४ को नागरी प्रचारिणी सभाकी हीरक जयन्तीसे और भी १५ वर्ष पहलेकी नागरी प्रचारिणी सभाके प्रांगणमें हुए काशी साहित्य सम्मेलनकी स्मरणीय घटना याद हो आती है।

शायद दूसरे दिनका अधिवेशन। सायंकालीन कार्यवाही प्रारम्भ होनेके क्षणोंमें सहसा ही विद्युत्की व्यवस्था गड़बड़ा गई और पण्डालके अन्दर अन्धकार छा गया। लोग उठकर वापस लौटने लगे। लेकिन उस अँधियारेमें महाकवि निरालाने अपना गगनभेदी कविता-पाठ मंचसे शुरू किया और सर्वत्र श्रोतागण उस अँधियारेमें मंत्रमुग्ध बैठ गये और सभा

अद्भुत नियन्त्रणमें शान्त हो गई। निरालाजी जब तक कविता पाठ करते रहे, विद्युत् नहीं लौटी। जब प्रकाश पुनः पण्डालमें छाया, तो महाकवि संयत भावसे बैठ गये और उसके बाद उठे श्री माखनलाल चतुर्वेदी। तभी प्रेस-गैलरीमें किसीने स्फुट कहा, "अब बोलेंगे वैराग्य-श्रेष्ठी"।

मैं दिल्लीसे प्रतिनिधि बन कर आया था। प्रेस-गैलरीमें ही बैठा था। यह सुन कर चौंका। श्री माखनलाल चतुर्वेदी 'एक भारतीय आत्मा' नामसे विख्यात हैं। यह सुन चुका था कि व्यापक अर्थोंमें भारतीय आत्माका प्रतिनिधित्व उन्होंने किया है और आज भी करते हैं। जिनकी लेखनीने एक क्षण भी विश्राम नहीं लिया, वह वैरागी किस रूपमें? और किसलिए? लेकिन मेरी जिज्ञासाका समाधान निकले, ऐसा अवसर कहीं मिला नहीं। सम्मेलनकी समाप्तिके बाद हम दिल्ली लौट गये। बात कालक्रममें भूली-अधभूली रह गई।

भारतीय इतिहासमें कृच्छ्र वैराग्य-साधनाका अपना इतिहास है। दीप-स्तम्भ-सी वेदऋचाओंमें इसकी अन्तर्ध्वनि उस युगमें जैसे सर्वाधिक मनःपूत थी। किन्तु कालान्तरमें यह कृच्छ्र वैराग्य-साधना अनेक रूढ़ियोंसे ग्रस्त होती चली गई और पर्वतीय निर्झर-सी इसकी स्वाति बूँदें भारतीय जनजीवनमें व्यापक जनकल्याणका जो तूर्य बजाया करती थीं, वह रूढ़ि-ग्रस्त होकर ऐसी आकाशबेल बन गईं, जिसके विकासके लिए मानो और न अधिक स्थान था, न विधान था!

आधुनिक भारतीय जीवनमें इस कृच्छ्र वैराग्य-साधनाका रूप अनेक पुण्य स्थलोंमें आज भी सूक्ष्म रूपसे सक्रिय बना हुआ है। भारतीय स्वतन्त्रता-संग्राम निरन्तर नयेसे नये मोर्चोंपर आगे बढ़ा और पीछे भी हटा। ऐसे उथल-पुथल-जन्य संघर्षमें राजनीतिक विचारोंका विलोडन अधिक हुआ, विलोडनकी प्रतिक्रिया अधिक हुई और तपे ज्वालसे तपस्वी कार्यकर्ताओं और लोकनायकोंकी मन्त्रद्रष्टा शक्ति कोलाहलमय कर्मचक्रपर एक साँस आरूढ बनी हुई, राष्ट्रसंवर्धनाकी क़ीमत अदा करती हुई, कहीं

घुटकर रह गई, कहीं नये विद्रोहोंकी प्रेरक कालकूट तुल्य बन गई; आत्मनाश का वरण भी कम व्यक्तियोंने नहीं किया; लेकिन जो अन्तश्चेतनाके धनी थे, सर्वजनहितायके असिव्रतके प्रति ईमानदार थे, ज्योतिर्मय क्रान्तिके नेमिचक्र बने रहनेका प्रण लेकर मैदानमें उतरे थे, उन्होंने अपने रसनिष्ठ जीवनको स्वानुभूतियोंसे भी लब्ध रखा और देशव्यापी आन्दोलनकी कृच्छ्र साधना भी नहीं तजी। परन्तु इस जीवन-पद्धतिका अर्थ जिन्होंने समझनेका कष्ट नहीं उठाया, उन्होंने ऐसे आत्मसंस्कारके धनियोंके प्रति कृच्छ्र वैराग्य-साधनाकी रूढ़िको प्रचारित करनेका आरोप लगाया। इस आरोपमें एक तथ्यांश भी सत्य नहीं था। किन्तु, इसका खेद क्या किया जाये! भारतीय स्वतन्त्रताकी प्राप्तिके बाद तो भौतिक जीवनकी लघु सीमाएँ और भी प्रमुख बन गई हैं; राष्ट्रीय जनजीवनकी व्यापक सीमाएँ अगुरु धूप-सी कहीं ओझल हो गई हैं।

किन्तु माखनलालजी चतुर्वेदीके सम्पादकत्वमें विगत ३० वर्षोंसे निकलनेवाला 'कर्मवीर' उनकी आग्नेय पत्रकारिताका तपोवन है। रक्तस्नात दुनियाकी भयावह परिस्थितियाँ चाहे अपना अभिशाप फैलानेके लिए हावी हो रही हों, चाहे देशमें मदान्ध अविवेक भारतीयताकी हत्या करनेपर उतारू हो, इस साप्ताहिकने विगत २५ वर्षोंसे हमारे अन्तःकरणकी पवित्रताकी अत्यधिक सुरक्षा नियोजित की है। हिन्दी पत्रकारितामें जहाँ क्षीरोदधि भी विद्यमान रहा है, वहाँ भस्मावृत चिनगारियाँ भी जानबूझकर भड़काई गई हैं। लेकिन 'कर्मवीर' भारतीय आत्माको शीलवती कामधेनु बना हुआ विराटरूपिणी भारतमाँ के मानस-चक्षुओं—वह भी खुले हुए मानसचक्षु, के दायित्वका वहन करता रहा है। 'कर्मवीर' का मनोमन्थन क्षीण बल, क्षीणकोश कभी नहीं रहा। कुण्ठित आध्यात्मिकता या कुण्ठित राजनीतिक विलासिताका दौरा जब देशमें बार-बार फैलनेसे नहीं रुका, तब इसी साप्ताहिकने सबसे खरी बात कहकर दिशा-निर्देशन और बोधगम्य सत्य-दर्शन करानेका दुरूह कर्तव्य निभाया। और सबसे बड़ी बात,

कर्मवीर-सम्पादक माखनलालजीकी कृच्छ्र वैराग्य-साधना राष्ट्रके प्रौढ़ चैतन्यकी ऐसी स्फूर्जित भागवती स्थिति और क्षीरविवेचिनी लोकराशी है, जिसको पाकर सहस्र सहस्र व्यक्तियोंने अधिकार भावनाका ज्ञान पाया और ऐसी पगडण्डियोंका आभास पाया, जिसपर चलकर तरुणाईको भग्न अभिमान कमसे कम कभी न मिले। यह वह ज्योतिशिखा थी, जो पाठकों में हर्ष और उत्साह और अन्तर्गानकी जय-धाराओंकी महोर्मियाँ ही प्रवाहित करती रही···

ऐसे 'कर्मवीर' के सम्पादकके बारेमें, कुछ वर्ष बीतनेपर, सन् १९५४ में सुना कि वे अब बीमार अधिक रहने लगे हैं और उनकी साधना हठयोगकी सीमाओंको लांघने जा रही है। यह बात दूसरे संदर्भमें कही गई थी और उनके क्षीण स्वास्थ्यके प्रति चिन्ता प्रकट करनेके लिए ऐसी बात सामने आई थी।

कि १९५४ में ही कुछ मास बीतनेपर, मैं अपने नये उपन्यास 'कुतुबमीनार' से सम्बन्धित कुछ तथ्योंकी खोजखबर लेनेके लिए देहरादून गया। मार्गमें लौटती बार सहारनपुर ठहरा। उस दिन रक्षाबन्धनका दिन था। मेरी दृष्टिमें सहारनपुर एक अनुतीर्थ है, क्योंकि वहाँ आदरणीय अग्रज श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' रहते हैं। घर पर एक चिट लिखकर मैंने भिजवाई, "ब्राह्मण राखी बाँधने आया है!" प्रभाकरजी आये और उन्होंने राखी बँधवानेसे पहले मुझे ही स्नेहपाशमें बाँध लिया। न उन्होंने राखी बँधवाई, न मैं बाँधनेका साहस कर सका। असली बात यह कि राखीका एक लाल धागा भी मैं उन्हींसे माँगकर उन्हींको बाँधनेकी अनुकरणीय धृष्टता करना चाहता था। पुरोहित यजमानके घर जाय, तो पहले उसे धन-धान्य मिला करता था। अब वह युग है कि परिश्रम करनेकी विद्या सीखो। कृपा-दयाका खाना अब सुलभ कहाँ? मुझ जैसे पुरोहितको प्रभाकरजी जैसे यजमानने यह आज्ञा शाम होते न होते दी कि महाकवि निरालाजी की जीवनी आप लिख चुके, राष्ट्रकवि मैथिलीशरण

गुप्तकी जीवनीका बृहद् कार्य भी आप पूरा कर चुके। अब श्रीमाखनलाल चतुर्वेदीकी जीवनी लिख डालनी है। कलकत्ता पहुँचकर बिस्तर बाँध लो, तार मिलते ही खण्डवाके लिए रवाना हो जाना है।

हिन्दीके साहित्यिकका बिस्तरा भी कम उल्लेखनीय नहीं होता। वह इतना सूक्ष्म कि क्या बाँधे और उसे क्या खोले ? हाँ, तारकी प्रतीक्षा दिन प्रति दिन रही। और इसी आज-कलकी गिनतीमें तीन वर्ष चले गये। कि, सहसा ही इसी ६ जनवरीको प्रभाकरजी स्वयं कलकत्ता पधारे। शुभ भेंटसे अधिक, शुभ आज्ञा प्राप्त हुई कि तुरन्त खण्डवा चले जाना है और इसी प्रसंगमें आपने 'भारतीय ज्ञानपीठ'के मन्त्री श्री [illegible] गोयलीयसे इस आशयसे सरस परिचय करवा दिया कि माखनलालजीकी जीवनीके लेखन-यज्ञमें मुझ जैसे असहाय ब्राह्मणको पर्याप्त संरक्षण प्राप्त रहे। वास्तवमें इस जीवनीके लेखनका समस्त श्रेय श्री गोयलीयजी को जाता है।

८

जीवनीकी परिकल्पना और अध्ययन-यात्राका प्रारम्भ

चरण-कमलोंके अनुगामी होनेका युग यह नहीं है। पर, मैं शक्तिमानोंके क़दमोंकी असाधारण चालको नापनेका धुनी अवश्य रहा हूँ। किसीकी जीवनीमें उस मांगलिक सौन्दर्यका अनुगमन करना पड़े, जिसने उस शक्तिमानकी गतिको कल्याणी भी बनाया है, तो मैं उसे मनोभिलषित यात्रा मानता हूँ। 'तारुण्य पवन' किस कविकी तीव्र उक्ति है, नहीं जानता। पर जो व्यक्ति अपनी प्रौढ़ावस्थाको पार करनेके बाद भी 'तारुण्य पवन' है, सात्विक अनुभूतियोंके साथ जो अविराम रमण करनेका संबल प्रति दिन ही बाँटता है और जो हमारी भारतीका परम पूजनीय पुरुष है,और ज़िसका प्रखर व्यक्तित्व आज भी देशीय इतिहासमें एक उज्ज्वल आदर्श है, और जिसने अपने अक्षय स्नेहके कारण नई पीढीमें आदरणीय 'दादा' का

स्थान ग्रहण किया है, और जो आज भी अपने साधना-स्थल खण्डवाको परम आग्रहके साथ ग्रहण किये हुए हैं, ऐसे कर्मवीर-सम्पादककी लोकप्रियताके सूत्रोंका गणित फलानेका कार्य मुझे आवश्यक भी लगा और उसे मैंने तुरन्त शिरोधार्य भी किया। इससे बड़ा सत्य और कुछ नहीं है कि माखनलालजीके जीवनदुग्ध-मन्थनमें एक व्यक्तिविशेषका नहीं समग्र मध्यप्रदेशका समन्वयात्मक नवनीत सुलभ हो जायगा। इससे बड़ा असत्य और कुछ नहीं है कि माखनलालजीके जीवनमें आज भी राजनीतिकी रस-सृष्टि छलक रही है। माखनलालजी, इसका कारण सर्वोपरि यही है, मध्यप्रदेशकी राजनीतिके युगपुरुषसे अधिक, राष्ट्रभारतीकी चिद्विलासमय परिणतिके लोकनायक हैं और अब, इसी नाते, मध्यप्रदेशसे अधिक वे समग्र भारतके तपसे उज्ज्वल पौरुष-दीप हैं।

कलकत्तासे चले-चले, जब इलाहाबादसे खण्डवाकी दिशा बम्बई मेल मुड़ा, उसने माखनलालजीकी तरुणाईका रहस्योद्घाटन कर दिया। कटनीकी ओर आगे बढ़ते ही, विन्ध्याचल पर्वतका दक्षिणी पठार खण्डवाकी दिशा अपनी पवित्र भित्तियोंका आँचल फहराने लगता है। रेशमी आँचलों से अधिक इन पर्वतीय आँचलोंमें राष्ट्रके पुरुषत्वको असीम अन्तःस्पन्दन मिलता रहा है। पुराणकथा है कि अपने आदियुगोंनें पर्वतोंके इन आंचलोंमें डैने जुड़े हुए थे और ये सचमुच उड़ा करते थे। लेकिन बादमें इन्द्रने इन डैनोंका उच्छेदन कर दिया था। इस पुराणकथा पर कभी विश्वास जमा नहीं। राजस्थानकी अरावलि पर्वतमालाके संग-संग जब भी ट्रेनमें यात्रा की है, तो स्पष्ट देखा है कि इस पर्वतमालाके खण्ड जैसे आज भी व्योम-विहार करते हैं। विन्ध्याचलकी बात और ही है। उसका जन्म शुभ वेलामें हुआ था। द्विग्विजयिनी भुजाओंकी गोदमें उसका शैशव बीता था। सदा उस भूमिको पयस्विनी शक्तिका नवोल्लास ही उसने दिया, जिसपर उसने विश्राम ग्रहण किया था। आज भी साश्चर्य देखा जा सकता है कि उत्तरप्रदेशकी सीमाओंको लाँघते-न-लाँघते, इस मध्य-

कटि-करधनो तुल्य पर्वतमालाके दक्षिणी पठारपर पलाशका महाअरण्य फैला हुआ है। एक सप्ताह बाद ही होली आनेवाली है। पलाशका सुहास इस दिशासे उस दिशा तक गहरी सुर्खीके साथ मस्तीसे झूम रहा है। मध्य-प्रदेशीय महाभागोंके जीवनमें भी इसी पलाशकी यही सुर्खी प्राणश्वासकी तरह व्यापती रही है। सालके नौ महीने सूखे, नीरस और सौन्दर्यविहीन पलाशवृक्षोंमें इसी गहरी सुर्खीका विश्वास सोया रहता है। श्रीमाखनलाल चतुर्वेदी इसी मध्यप्रदेशीय विन्ध्याचलसे गौरवान्वित भूमिके ग्रामपुत्र हैं। उनकी योगक्षेम साधनामें अवश्य ही यहाँके विस्तृत पलाशवनके रोम-रोममें समाई हुई गहरी सुर्खीका विश्वास ज्योतिःकण बनकर निमज्जित हुआ है।

माखनलालजीके जीवनमें विन्ध्याचल पर्वतका मात्र दुरूह संरक्षण ही रहा है, उसके वरद-हस्तने उनको दीर्घायुष्य भी सौंपा है। पर्वतराजकी कुलयौवना तो चिरयौवना रही है, और पर्वतराजके जामाता पीयूषके अक्षयघट आज तक भी सचमुच बने हुए हैं। इस विन्ध्याटवीने न जाने भारतीय इतिहासके कितने महारथियों और महर्षियोंको अपनी पर्वतीय दीर्घ बाहें यथार्थ स्नेहार्द्रमें दी हैं। माखनलालजीको भी ये दीर्घ पर्वतीय बाहें संरक्षणके निमित्त मिलती रही हैं। आपने अपने किसी लेखमें एक स्थानपर कहा है, सच पूछिए, "तो मेरी धारणाओंके निर्माणमें विन्ध्या और सतपुड़ाके ऊँचे-नीचे पहाड़, आड़े-तिरछे घुमाव, उनके बीहड़ नदी-नालोंके कभी कलकल-स्वर और कभी चिंघाड़, उसमें मिलनेवाले हिंस्र जन्तु तथा मेरा पीछा करनेवाली पुलिस—इनके सम्मिश्रणसे ही मेरे जीवन और साहित्यका निर्माण हुआ है!"

खंडवा पहुँचकर सबसे पहला काम यह आवश्यक लगा कि माखन-लालजीके शैशव और कैशोरसे संबन्धित स्थानोंका अध्ययन कर लिया जाय। जिस मिट्टी और जिस प्रकृति-स्थलीमें उनके प्रारम्भिक व्यक्तित्वकी शिखि चुपकेसे ऊपर उठी है, उसे अपनी आँखों देख लिया जाय। परि-स्थितियाँ व्यक्तिका निर्माण करती हैं, इस अर्द्धसत्यके पीछे व्यक्तिके अमल

चरण जिन पगडंडियोंसे होकर आये हैं, उनके अन्तस्‌की निधि ही उसके भविष्यकी विधिकी रूपरेखाएँ तैयार करती है। व्यक्तिमें चिर-पवित्र और चिर-निर्मल श्वासें दीर्घ ज़िन्दगीमें चलते हुए उड़ी हुई धूलसे ढँक जाती हैं। इन्हीं चिर-पवित्र और चिर-निर्मल श्वासोंका आधिपत्य जब तक आनन्दविह्वल रहता है, तभी तक वह अपनी खुदीको भूले, कर्तव्यकी संचित परिधियोंको बृहदाकार करता रहता है। उसकी गति श्लाघ्य रहती है। बाह्य महिमा और लघिमा नहीं, अपनी ओर-पासकी प्रकृतिको किया हुआ उसका आत्मसमर्पण ही सारे जीवन भर अपनी लहरोंका विस्तार जिस दिशामें अतिरथ सेनानीकी तरह करता है, उसी गहन और प्रगाढ़ एकाग्रतामें उसके अन्तःका स्पात तैयार होता है। जीवनीमें मैं व्यक्तित्व-सूत्र या जीवन-सूत्रसे अधिक, इसी अन्तःके स्पातकी सम्बोधिप्राप्तिके अध्ययनको मुख्य मानता हूँ!!

माखनलालजी का सम्पूर्ण बाल्यकाल और अधिकांश जीवन होशंगाबाद जिलेकी रहस्यमयी निमग्नताकी गहराईमें डूबा रहा है। इसलिए सबसे पहला काम यही हुआ कि खंडवासे लौटकर उनके जन्मगाँव बाबई-को केन्द्र बनाया और निकटवर्ती गाँवोंकी परिधिमें यात्रा प्रारम्भ की। चलनेसे पूर्व माखनलालजीने केवल इतना कहा, "वहाँ टूटे-फूटे झोंपड़े और दैन्य-दारिद्र्यका ताण्डव ही तो नज़र आयगा। वहाँ है ही क्या, जो आप देखने जा रहे है?" तत्काल ही मनने प्रश्न किया, "किन्तु उस जन्मभूमिसे माखनलाल जैसा 'साहित्य-देवता' लेखक पैदा कैसे हुआ?" और तत्काल ही मुझे विश्वास बँध गया कि बाबई आदि समस्त गाँव निश्चय ही अनेक संस्कृतियों और पदचापोंके संगमकी सत्ताके श्रद्धा-विगलित गीत होंगे। संस्कृतियोंकी परागधूलिमें वह शक्ति है कि वह स्वयं उड़ती है, मधुमक्खीको उसके चयनके लिए उसके पास नहीं जाना पड़ता। और सदियोंके बाद जाकर, वह परागधूलि स्वयं ही किसी विशिष्ट व्यक्तिमें निमज्जित होकर एक अनोखा मधु बन जाती है। जहाँ माखन-

लालजीका बालपन बीता है, जहाँ उनकी अधकच्ची तरुणाई बौरके रूपमें लियाई है, और जहाँ उनकी तरुणाईकी श्वासें बलवती हुई हैं, वह भूधरा रूर-ज़रूर ऐसे ही पराग-कणोंसे गर्भवती रही होगी।

१

माखनलालजीके जन्मस्थान बाबईकी दिशा

खण्डवाकी दिशासे होशंगाबाद जाते हुए, पहले जंगलका भूभाग उदासीसे भरपूर ऐसे मणिजटित शिलाखण्डकी तरह है, जो अपने पारखी की राह देखते हुए अब निराश हो चला है। विन्ध्याचलके दूर चले जानेके कारण यह भूभाग जैसे अब लौकिक हो गया है। एक वह युग था, जब यह भूखण्ड आगतोंके धैर्य और औदार्यकी कसौटी सिद्ध होता था। उसके बाद वह युग आया, जब विन्ध्यका यह दक्षिणी पठार उत्तर-प्रदेशीय सैनिकोंकी दीर्घ श्वासोंका गज-फीता बन गया। फिर, एकके बाद एक युग ऐसे अंधड़की तरह यहाँसे निकलते चले गये, जिनकी स्मृति तक इस भूखण्डके मानसपर अंकित होनेमें असमर्थ रही। पहाड़ और उसके पठार केवल जलकी धाराकी मधुरिमाकी प्रत्याशामें ही ठिठके रहे हैं। मनुष्यके पदचिह्नोंको वे अपनी थाती उतने रसके साथ स्वीकार करनेके पक्षमें आज भी तो नहीं हैं!

किन्तु हरदा पहुँचते हुए पलाशवनकी विस्तृत सीमाएँ अपना जय-घोष करने लगती हैं, अपने अस्तित्वको पुष्पित पलाशवनोंकी सुर्ख़ ध्वजा उठाकर कहती हैं। यदि विन्ध्यके शिखरोंकी पंक्तियाँ यहाँकी शोभाश्रीकी नाभिकी त्रिवलीका प्रचुर सौन्दर्य बनकर बोलती हैं, तो उसका यह पलाश-वन इस शोभाश्रीकी कटिकी तरलता और रक्तिमाका प्रतीक है। इसी पलाशवनकी सुर्ख़ गहराईमें वह गहन अन्तराल स्थित है, जो इस भूखण्ड-की कोख बनकर अद्भुत सत्योंका प्रसव करता रहा है। माखनलालजी इन्हीं सत्योंकी असंख्य स्फुलिंग-शक्तियोंमेंसे एककी क्षितिजरेख हैं।

इस पलाशवनको देखते हुए एक अनुभूति मुझे यह भी हुई कि यदि इस उत्तर-दक्षिणकी गुम्फन-पीठिकामें जो भी प्राचीन सभ्यताएँ जीवित रहीं, वे अपना सुहास ही इस पलाशमें अन्तर्हित कर गई हैं, तो विन्ध्यकी इस खूबीको मैं अपनी वन्दना पहुँचाता हूँ कि वह इस सुहासका मुखर-स्पन्दन अपनी चट्टानोंमें कैसी अलौकिकताके साथ थामे बैठा है। देशके समस्त पर्वतोंमें केवल विन्ध्य ही वह तप-समाधिकी शाश्वत श्वास है, जिसने अपने इर्दगिर्दकी भूमिके सुहागकी रक्षा की है।

कहते हैं, हिमालयका वनखण्ड शरीर-रोमकी भाँति है। अरावलीके वनखण्ड उसके कवच तुल्य हैं। किन्तु मैं स्पष्ट देख रहा हूँ, विन्ध्यके ये वनखण्ड तो उसके अमर पौरुषके तप्त लहूके द्योतक हैं। माखनलालजी चतुर्वेदी इसी विन्ध्यके तप्त लहूकी वाणी हमारे साहित्यमें अंकित करते रहे हैं।

कहाँ है देशमें दूसरा ऐसा पुष्पवृक्ष, जो नियन्ताकी लिप्साओंपर अपने पुष्पोंसे कुठाराघात कर सके? वायुके तेज़ थपेड़े एक ओर तुले बैठे हैं कि इस पलाशका एक भी पत्ता उसकी एक भी डालपर नहीं छोड़ेंगे। लेकिन उसके बावजूद अपने अकेले ठूँठोंपर ही यदि वह पुष्पोंको पुष्पित करनेका दम भरता है, तो इस युगों-पराधीन ठूँठवत् राष्ट्रकी सनातन आत्माका प्रतीक बनकर ही वह बोलता है। न सही पत्र और डालकी सदा सुहागिन हरीतिमा! ठूँठको ही पुष्पोंके संभार-शृंगारसे झुमा देना ऐसे ही है, जैसे तो कोई तरुणी परिस्थितियोंके थपेड़े खाकर भी अपने थकित पतिकी शुष्क देहको अपनी भरी कुसुमित अँगड़ाईसे मदमस्त कर दे। यही पलाश माखनलालजीकी साहित्यश्री का गोपन फागुनी बयार से ओतप्रोत रखता रहा है।

इटारसीके जाते ही दाहिने हाथकी दिशासे विन्ध्याचलकी पर्वतमाला रेलकी लाइनोंके निकट आती जा रही थी। उसके दर्शनमात्रसे उसके सामनेका भूखण्ड भी अलौकिक होने लगा था। यह अग्रिम सूचना थी

कि नर्मदाकी धारा इस मालाके तरल सुहासके रूपमें दिखाई अब देने ही वाली है। लेकिन खंडवासे लेकर होशंगाबाद तक कितनी सूखी, अर्द्ध-आर्द्र, भीनी और स्वेद धारा अन्वक्ष आसक्ति-सी छोटी-पतली नदियाँ बीचमें न आईं, उनका हिसाब रखनेकी ज़रूरत ही कहाँ थी ? पगडंडियाँ नहीं, भूमिके सुहागका प्रकृति-श्रृंगार तो ये ही निर्द्वन्द्व जलधाराएँ हैं। ऋतुदर्शन ही जिनका प्रधान गुण है, वे स्वयं भोग्या नहीं हुआ करतीं, हुआ करती हैं मातृत्वकी शक्तिसे पूरित। नर्मदा इन छोटी-बड़ी सहेलियों की संचयित मातृत्वशक्तिके अक्षयकुण्डसे भला अधिक कैसे हो सकेगी ?

होशंगाबादसे गाड़ीसे उतरकर बसमें बैठना था। स्टेशनके सामने ही कुछ दूरीपर तपस्वी घाट है और उसीके नीचे नर्मदा। ग्रीष्मकी तपनसे भयभीत विन्ध्य अब नर्मदाके आक्रोशसे त्यक्त, दूर चला गया है। फिर भी इस भूमिखण्डकी प्रवहमान मातृत्वशक्तिके समक्ष वह आज भी साष्टांग प्रणामकी मुद्रामें विनीत लेटा हुआ है। आज वह सदियोंके काल क्रममें अपने पूज्य गुरुके आगमनकी प्रतीक्षाको जैसे भूल बैठा है। आज तो नर्मदाके प्रति उसका श्रद्धा-निवेदन ही जैसे सच हो उठा है। यही कारण है, नर्मदाको मैं किसी भी रूपमें विन्ध्यकी अंक-शायिनी न मान सका, न कहनेकी रुचि सँजो पाया···विधिकी ईमानदारी तो देखिए, माखनलालजीके जीवनमें भी तो उसने अंकशायिनी शक्तिका योग शीघ्र ही छीन लिया, अधिकतम श्रद्धा-निवेदन आलिंगन-पुँछे अंगराजकी मधुर स्मृति-सा बस शेष भर रहने दिया है !

अंग्रेज पर्यटकोंने ठीक ही लिखा है कि इस भूखण्डकी प्राकृतिक पीठिका कलात्मक नहीं है। फिर भी इस विन्ध्यकी श्रृङ्खला जिस तरह कलात्मक न होकर रसकी वक्रोक्ति ही बन गई है, उसी प्रकार यहाँके वनखण्ड कहीं-कहीं एकदम रस-विपर्यय होकर भी अपने ढंग-शऊर से रसपूरित हैं। लेकिन विस्तृत भूखण्डोंमें पलाश जहाँ परिचित साथीकी तरह अपना घर-बसेरा किये बैठा है, वहाँ प्रकृति-स्थली नितान्त बुन्देली हो गई है। रिक्त-

स्थानों पर जहाँ महुए और आम्रकुञ्ज छा गये हैं—वह मानो इस प्रदेश का मानवी शृङ्गार है, जिसे इस भूमिने उल्लसित होकर ग्रहण किया है। इसी भूमि-प्रदेशमें माखनलालका शैशव और कैशोर बीता है। शैशव यदि पारिवारिक विधि-निषेधोंसे मुक्त, पहाड़ी हरीतिमाका आस्वाद चख पाया है और चट्टानी पौरुषकी ज्योतिका प्रकाश पीनेमें समर्थ हुआ है, तो उसका रंग भी उसीके अनुरूप निखरता है। यही वह भूभाग है, जहाँ विपत्तिग्रस्त वैष्णव-परम्परा आकर आश्रय खोज पाई थी। माखनलाल इसी वैष्णव-परम्पराकी अजर श्वासोंसे लब्ध वह मध्यप्रदेशीय आत्मा है, जो आज भी उत्तरप्रदेश या धुर दक्षिण प्रदेशकी अन्य मिश्रित वैष्णव परम्पराओंसे समझौता नहीं कर पाई और इसीको अपना केन्द्र बनाकर रहनेमें दत्तचित्त रही।

होशंगाबादसे मोटरमें बैठकर यही सवा घण्टेमें बावई। गाँधीजी जब यहाँ आये तो भाषण शुरू करनेसे पहले बोले कि यह तो माखनलालजी की जन्मभूमि है। जयप्रकाशनारायण आये तो बोले कि यही है न वह बाबई, जो माखनलालजीको जन्म देनेकी अधिकारिणी बनती है। पुरानी जमींदाराना संस्कृतिका यह अवशेष आज भी शासकीय दृष्टिसे एक अच्छा केन्द्र है। यों, पहली दृष्टिमें एक पुराना जराजीर्ण गाँव-सा लगता है। जो मकान हैं, वे अपने-अपने गुणोंके परिचायक हैं। इन्हें देखकर स्पष्ट पता चल जाता है कि किस तरह मुग़ल और मुसलमानी आक्रमणोंके दिनोंमें, जबकि अन्य राज्यक्रान्तियाँ नगरों और क़सबोंको भूमिसात् कर रही थीं, बाबईका वैष्णववादी अंश एक निश्चित भविष्यकी राहमें अपनी पलक पसारे बैठा था।

आश्चर्य होता है कि इतिहासकी गति इस प्रदेशमें ब्राह्मणोंके कई बड़े सम्प्रदायोंको किस प्रकार जमींदाराना शक्तिसे संरक्षित और सामन्ती संस्कृतिसे पुष्ट रख पाई। माखनलालजीके जन्मसमय अकेले बाबईमें ही ब्राह्मणोंके लगभग ३५० परिवार थे, और जब कभी ब्राह्मणोंकी बिरादरीमें

कि नर्मदाकी धारा इस मालाके तरल सुहासके रूपमें दिखाई अब देने ही वाली है। लेकिन खंडवासे लेकर होशंगाबाद तक कितनी सूखी, अर्द्ध-आर्द्र, झीनी और स्वेद धारा अन्तस्थ आसक्ति-सी छोटी-पतली नदियाँ बीचमें न आईं, उनका हिसाब रखनेकी ज़रूरत ही कहाँ थी? पगडंडियाँ नहीं, भूमिके सुहागका प्रकृति-श्रृंगार तो ये ही निर्द्वन्द्व जलधाराएँ हैं। ऋतुदर्शन ही जिनका प्रधान गुण है, वे स्वयं भोग्या नहीं हुआ करतीं, हुआ करती हैं मातृत्वकी शक्तिसे पूरित। नर्मदा इन छोटी-बड़ी सहेलियों की संचयित मातृत्वशक्तिके अक्षयकुण्डसे भला अधिक कैसे हो सकेगी?

होशंगाबादसे गाड़ीसे उतरकर बसमें बैठना था। स्टेशनके सामने ही कुछ दूरीपर तपस्वी घाट है और उसीके नीचे नर्मदा। ग्रीष्मकी तपनसे भयभीत विन्ध्य अब नर्मदाके आक्रोशसे त्यक्त, दूर चला गया है। फिर भी इस भूमिखण्डकी प्रवहमान मातृत्वशक्तिके समक्ष वह आज भी साष्टांग प्रणामकी मुद्रामें विनीत लेटा हुआ है। आज वह सदियोंके काल क्रममें अपने पूज्य गुरुके आगमनकी प्रतीक्षाको जैसे भूल बैठा है। आज तो नर्मदाके प्रति उसका श्रद्धा-निवेदन ही जैसे सच हो उठा है। यही कारण है, नर्मदाको मैं किसी भी रूपमें विन्ध्यकी अंक-शायिनी न मान सका, न कहनेकी रुचि सँजो पाया...विधिकी ईमानदारी तो देखिए, माखनलालजीके जीवनमें भी तो उसने अंकशायिनी शक्तिका योग शीघ्र ही छीन लिया, अधिकतम श्रद्धा-निवेदन आलिंगन-पुँछे अंगराजकी मधुर स्मृति-सा बस शेष भर रहने दिया है!

अंग्रेज पर्यटकोंने ठीक ही लिखा है कि इस भूखण्डकी प्राकृतिक पीठिका कलात्मक नहीं है। फिर भी इस विन्ध्यकी श्रृङ्खला जिस तरह कलात्मक न होकर रसकी वक्रोक्ति ही बन गई है, उसी प्रकार यहाँके वनखण्ड कहीं-कहीं एकदम रस-विपर्यय होकर भी अपने ढंग-शऊर से रसपूरित हैं। लेकिन विस्तृत भूखण्डोंमें पलाश जहाँ परिचित साथीकी तरह अपना घर-बसेरा किये बैठा है, वहाँ प्रकृति-स्थली नितान्त बुन्देली हो गई है। रिक्त-

स्थानों पर जहाँ महुए और आम्रकुञ्ज छा गये हैं—वह मानो इस प्रदेश का मानवी शृङ्गार है, जिसे इस भूमिने उल्लसित होकर ग्रहण किया है। इसी भूमि-प्रदेशमें माखनलालका शैशव और कैशोर बीता है। शैशव यदि पारिवारिक विधि-निषेधोंसे मुक्त, पहाड़ी हरीतिमाका आस्वाद चख पाया है और चट्टानी पौरुषकी ज्योतिका प्रकाश पीनेमें समर्थ हुआ है, तो उसका रंग भी उसीके अनुरूप निखरता है। यही वह भूभाग है, जहाँ विपत्तिग्रस्त वैष्णव-परम्परा आकर आश्रय खोज पाई थी। माखनलाल इसी वैष्णव-परम्पराकी अजर श्वासोंसे लब्ध वह मध्यप्रदेशीय आत्मा है, जो आज भी उत्तरप्रदेश या धुर दक्षिण प्रदेशकी अन्य मिश्रित वैष्णव परम्पराओंसे समझौता नहीं कर पाई और इसीको अपना केन्द्र बनाकर रहनेमें दत्तचित्त रही।

होशंगाबादसे मोटरमें बैठकर यही सवा घण्टेमें बाबई। गाँधीजी जब यहाँ आये तो भाषण शुरू करनेसे पहले बोले कि यह तो माखनलालजी की जन्मभूमि है। जयप्रकाशनारायण आये तो बोले कि यही है न वह बाबई, जो माखनलालजीको जन्म देनेकी अधिकारिणी बनती है। पुरानी जमींदाराना संस्कृतिका यह अवशेष आज भी शासकीय दृष्टिसे एक अच्छा केन्द्र है। यों, पहली दृष्टिमें एक पुराना जराजीर्ण गाँव-सा लगता है। जो मकान हैं, वे अपने-अपने गुणोंके परिचायक हैं। इन्हें देखकर स्पष्ट पता चल जाता है कि किस तरह मुग़ल और मुसलमानी आक्रमणोंके दिनोंमें, जबकि अन्य राज्यक्रान्तियाँ नगरों और क़सबोंको भूमिसात् कर रही थीं, बाबईका वैष्णववादी अंश एक निश्चित भविष्यकी राहमें अपनी पलक पसारे बैठा था।

आश्चर्य होता है कि इतिहासकी गति इस प्रदेशमें ब्राह्मणोंके कई बड़े सम्प्रदायोंको किस प्रकार जमींदाराना शक्तिसे संरक्षित और सामन्ती संस्कृतिसे पुष्ट रख पाई। माखनलालजीके जन्मसमय अकेले बाबईमें ही ब्राह्मणोंके लगभग ३५० परिवार थे, और जब कभी ब्राह्मणोंकी बिरादरीमें

कोई बड़ी दावत होती थी तो ३०:३० सेर बूराके १८:२० बोरे खर्चमें आ जाते थे। मध्यप्रदेशके प्रामाणिक इतिहासमें इस बातके प्रचुर प्रमाण हैं कि यहाँके शासकवर्ग उत्तर और दक्षिणके ऐसे ब्राह्मणोंको अपने राज्यमें निमंत्रितकर सादर स्थान देते थे, जिनके पास किसी न किसी प्रकारका विद्या-चमत्कार सिद्ध होता था ? गढ़ाका गोंडी राज्य ब्राह्मणशक्तिके सहारे ही स्थापित हुआ था। इसी प्रकार यहाँकी ब्राह्मणशक्ति मठों द्वारा भी फलित हुई है। अनु-चाणक्योंके रूपमें यहाँ अनेक ऐसे ब्राह्मण हुए जिन्होंने यहाँके अनेक राज्यवंशोंको समूल नष्ट करनेमें ही अपने जीवनकी सार्थकता जानी थी। कलचुरियोंकी शक्ति इसी प्रकार नष्ट हुई थी। राजकवि और दीवानके रूपमें भी अनेक ब्राह्मण पाये जाते हैं। जो ब्राह्मण राजवंशकी वंशावली निर्मित करते थे, उन्हें अनेक ग्राम दानमें प्राप्त होते थे। दुर्गावतीके शासनकी सुव्यवस्था उसके एक प्रधानमंत्री मान ब्राह्मणके कारण हुई थी। अनेक अवसरोंपर ब्राह्मणशक्तिने राज्यव्यवस्थाके निमित्त अपनी वीरगति भी सहर्ष पाई थी। मध्यप्रदेशमें चारों ओर संस्कृत और प्राचीन साहित्यका बोलबाला ब्राह्मणोंकी ही साधनाके कारण अखण्ड बना रहा है। इन्हींका एक दायित्व विद्यार्थियोंको पढ़ाना भी होता था। ब्राह्मण जीवित रहे, तो यहाँका वैष्णवधर्म विदेशी शासनमें भी जन-मानसमें गहरी जड़ें रोपे रहा। यही कारण है, मध्यप्रदेशमें गढ़ और राजप्रासादोंसे अधिक मन्दिर और देवालयोंकी संख्या बढ़-चढ़कर देखनेमें आती है।

बाबईमें पुराने ब्राह्मण दीवानोंके एक परिवारका पुराना ताल्लुका था और पिछले दिनों तक वे इसके और आस-पासके गाँवोंके मालिक थे। यही नहीं, बाबईके इर्द-गिर्द अनेक गावोंकी बहुसंख्यक आबादी ब्राह्मणोंकी ही थी। इसी ब्राह्मणवर्गके एक साधारणतम परिवारमें माखनलालजीका जन्म हुआ।

माखनलालजीने मुझसे बातें करते हुए तीन-चार बार अपने जीवनके वैष्णववादकी चर्चा की। वैष्णवी व्यक्ति अपने आपमें व्यावहारिक तो होता

है, लेकिन माखनलालजीके जीवनमें यह वैष्णवी तत्त्व जन्मसे ही दोमुखी रहा है। एक ओर जीवनमें जितना भी व्यवहार दायित्वके रूपमें मिला, उसे हृदयकी पवित्रतासे शोधते हुए उन्होंने पूरा कर दिया। लेकिन दूसरी ओर (हर वैष्णवी अपने व्यक्तित्वमें जैसे तो एक द्वैतता लेकर आगे बढ़ता है।) उन्होंने लौकिक जगत्के व्यवहारमें शुद्धिका आंदोलन भी निरन्तर छेड़े रक्खा।

उनके जीवनमें और लौकिक जगत्के व्यवहारमें शुद्धिका आन्दोलन सबसे प्रबल है। यही प्रबलता हर भारतीय सन्तकी श्वास-प्रश्वासको वासन्ती बयार बनानेकी क्षमता प्रदान करती रही है। माखनलालजी होश सम्हालते ही अपने आपको एक स्कूलका अध्यापक बना हुआ देखते हैं। वह तो पैतृक विरासतमें उन्हें मिला था। लेकिन मारवाड़से लब्ध मातृत्व की विरासत उनकी नसोंमें बहुत कुछ मीराके गान लिये प्रकट होने आ गई थी। अध्यापकीके व्यवहारमें जो नीरसता थी, उसका शोधन नसोंमें उमगी-पगी भावुकता करने लगी। लेकिन अकेला काव्य उत्तर भारतमें पनप सकता है, मध्यप्रदेशकी पथरीली भूमिमें उसका इतिहास दूसरा ही रहा है। उसने असिव्रत धारण कर ही इस पथरीली भूमिपर सबल जीवन-धारा बहाई है। सो इस कवित्वशक्तिकी लाज बचानेके लिए माखनलालजी-ने अपने जीवनमें तनिक उग्रता भी धारी और तरुणाईकी उग्रताने सबल भाषाको जन्म दिया। यह सबल भाषा जब क्रिया बनी तो वे अनजाने ही सशस्त्र क्रान्तिके कवचधारी सिपाही बन चुके थे। सशस्त्र क्रान्ति भारतीय जनजीवनकी समष्टिगत शुद्धिके सिवा रही भी क्या? वह केवल यही रही।

यद्यपि इतिहास इस तक़ाज़ेका स्पष्टीकरण कभी नहीं करता कि क्यों सामन्ती तत्त्वोंका एक छोर वैभवमें पलता है और उसका दूसरा छोर नितान्त दीन दरिद्रतामें श्वासें लेता है, फिर भी जहाँ माखनलालजीका जन्म हुआ था, वहाँपर स्मृतिरूप केवल झोंपड़ोंकी खंडित-भग्न अस्थियाँ भर पड़ी हैं, उसे देखकर एक बड़ा सत्य ज़रूर हाथ लग गया। माखन-

लालजी इस प्रदेशीय सामन्ती वैभवके वही दूसरे छोर हैं, जिन्होंने अपना शैशव असह्य दीन-दरिद्रता लेकिन अथाह उत्साह-उमंगमें बिताया है। सामंती वैभव शनैः शनैः कल्मषसे धूलधूसरित होता रहा है, और खुले आकाशके नीचे आश्रयहीनतासे ही दैन-दारिद्रय सुहासका सिंचन पाता रहा है।

उनकी शैशव-गाथासे सम्बन्धित चित्र उतारनेके बाद, दूसरे दिन हम बाबईसे सात-आठ मील दूर बाबईके रेलवे स्टेशन बागराके पास तवा नदीके पुलपर गये। इसी पुलके पास पहाड़को काटकर सुरंगके अन्दर-से रेल गई है। उसे बोगदा कहा जाता है। यहाँपर भयंकर जंगल है और यदि यहाँ पलाश फूला न होता तो इसकी कटखनी एकान्त नीरवता और भी भयावह हुई रहती। तवाके दोनों तटोंपर विशाल भुजाकार पहाड़ोंके खण्ड दैत्याकार बने हुए अपने निष्प्राणोंकी विकट किटकिटाहट करते रहते हैं। इसी पुल और इसी बोगदेके निकट बालक माखनलाल मौज़में खेलनेके लिए आया करता था। इन सजीव किन्तु विकराल जबड़े खोले पहाड़ी शृङ्खलाओंने उसका दिल कितना निडर बना दिया होगा। अपने युवाकालमें यही निडरता उसके राजनीतिक जीवनमें बटी हुई रेशमी डोरीकी तरह अटूट रही, बँटी हुई रही!

बाबईके बाद बालक माखनलाल अपने पिताके साथ छिदगाँव चला गया। हरदा स्टेशनसे १८ मील दूर, होशंगाबादकी दिशामें, यह एक गाँव है और इस नामसे रेलवेस्टेशन भी है। हमारी यात्रा हरदासे जीपमें हुई। और दुपहरमें हम इस गाँवको देखकर स्तम्भित रह गये। जहाँ माखन-लालका घरनुमा झोंपड़ा था, उनके प्रिय पड़ोसी थे, जिन झोंपड़ोंमें उनके शैशवके बहुत-से मधुर संस्मरण घटित हुए थे, वे सभी ऊजाड़ पड़े हैं। हाय, उनके उन दिनोंकी स्मृति कितने दीन रूपमें अनढँकी, अनाश्रित पड़ी हुई है।

छिदगाँव एक बहुत ही छोटा गाँव है। यहाँ नये-पुराने झोंपड़े

अपनी कहानी बिना शर्मके सुनाने लगते हैं कि यहाँ ग़रीबी और निस्स-हायावस्था और भुखमरी और बीमारीके दौरोंका अभियान बिना चुनौतीके कितना-कितना स्वीकार न किया जाता रहा है।

छिदगाँवके निकट ही, बाबईके निकटस्थ तवा नदीकी तरह, गंजाल नदी बहती है और तवाके पुलकी तरह ही, यहाँ भी गंजाल नदीका पुल है, जो बालक माखनलालका क्रीड़ास्थल रहा है। नदियाँ राष्ट्रको अपनी प्रवहमान परम्पराएँ देती रही हैं। ये परम्पराएँ अदम्य जिजीविषाकी हैं और अन्तःकरणकी गरिमाकी द्योतिका हैं और अहर्निश दायित्वका आत्म-निवेदन लेकर ही ये चलती हैं। किन्तु नदियोंका सबसे बड़ा परिचय मेरे लिए यह है कि उनका प्रवाह उनके क़दमोंसे भी कहीं मीलों आगे रहता है। जापानी लेखक कागवाने लिखा है कि जो अनुभूति जीवनकी सचाई के भीतरसे नहीं मिली है, उसे कल्पनाके रंगमें रंगते हुए मेरी अन्तरात्मा काँपती है। नदियोंकी धारा चाहे बाढ़का रूप धारण करे, या ग्रीष्ममें वियोग-दग्ध कृश नायिका बन जाये, उसका शिवत्व तो यही है कि वह अपने आन्तरिक मनोबलके बलपर ही आगे बढ़ती है और उसी मनोबल-पर अपने भविष्यको अपने पीछे घसीटती है। एक यह दयनीय इंसान है जो भविष्यके पीछे—ऐसे भविष्यके पीछे जो अभी दृष्टिगोचर तक नहीं है, उसके पीछे घिसटते हुए चलनेमें विश्वास करता है। इसीलिए नदियोंकी परम्पराएँ अविच्छेद्य रही हैं। इन्हें खण्ड करनेकी जिसने दक्षता अपनाई थी, वह तो कालकवलित हुए बिना नहीं रहा। लेकिन जिसने इन पर-म्पराओंसे अपना तादात्म्य कर लिया, वही जनजीवनकी आत्मशक्ति बन गया। माखनलालजी ऐसे ही एक तथ्य बने और दिव्य अनुरक्तिका नायक बहुत शीघ्र उन्हें मान्य कर लिया गया। आज वे राजनीतिसे संन्यास धारण किये बैठे हैं, लेकिन राष्ट्रभारतीके बीहड़-पथ-नायक तो वे आज तक हैं।

इसी गंजाल नदीके तटपर माखनलालजीके पिताजीका अग्नि-संस्कार सम्पन्न हुआ था।

और अब हम वापस बाबई लौटे, जहाँसे ११:१३ मील दूर पुरानी भोपाल रियासतके इस दक्षिणी कोनेमें ठीक नर्मदाके तटपर नांदनेर गाँव है। बालक माखनलालकी प्राप्त विद्यासे जब उसके पिताजी संतुष्ट नहीं हुए, तो उसे नांदनेर संस्कृत पढ़नेके लिए भेजा गया। बाबईसे घोड़ा-गाड़ीमें इस गाँव तककी यात्रा सम्पन्न हुई। मौसम सुहावना था। पग-डंडियाँ स्थान-स्थानपर बरसाती नालोंसे उतरकर जिस नखरेके साथ, फिर ऊपर चढ़ती थीं तो मुझे उमड़ते-घुमड़ते बादलोंपर बलैयाँ खाती हुई नटखट बदलियोंके नखरे भी व्यर्थ मालूम पड़े। घोड़े और दूसरी साथकी गाड़ीके बैल द्रुत गतिसे आगे बढ़े जा रहे थे। चारों ओर खेत काटे जा रहे थे। कहीं-कहीं कट चुके थे। मार्गके गाँवोंके खलिहानोंमें कटा हुआ अनाज खुले धनकी तरह रखा था—वही ऐसा पीताभ स्वर्ण है जो छान-पकाकर खाया जा सकता है। लेकिन बन्द तिजोरियोंका स्वर्ण तो मनुष्यकी बुभुक्षाको शान्त नहीं करता, वह मानसकी अतृप्तिको ही अपनी लिप्साका वाहन बनाता है। हाय! मानवका मानस किसीकी लिप्साका वाहन आजीवन बना रहे और उसकी मुक्ति चहुँ दिशाओंमें कहीं खोजे न मिले?

पर नहीं, माखनलालजी आजीवन स्वर्णकी लिप्साको अपनी मुट्ठियोंमें जकड़े नहीं रहे। उनके मानसकी अनुभूतियाँ इसी खलिहानमें कटी पके बालोंकी तरह बिना चौकसीके पड़ी हैं। फिर, मैं जिस बातको कहनेके लिए शब्द कई वर्षोंसे नहीं पा रहा था, आज कह लेना चाहता हूँ—हर साहित्यिकका मानस राष्ट्रका ऐसा ही तो भरापूरा खलिहान है, जो जन-जीवनमें स्वस्थ खाद्यान्न बनकर वितरण करता है!

रास्तेमें बरसाती नदियोंकी लीक और बैलगाड़ियोंकी राहें और पगडण्डियाँ परस्पर इस तरह लाँघ रही थीं, मानो इस भूधराकी

विशिष्ट मेंहदीरचित हथेलीपर मेंहदीकी लीकें आपसमें गुँथती हुई रचना-कौशलका पराक्रम उन्मुख कर रही हों। किन्तु इसी पृष्ठभूमिमें गाँवोंका दारिद्रय और क्लिष्ट जीवन मेरी आँखोंको बार-बार कुरेद रहा है। यहाँके जन्मकी मीठी पीड़ा और मृत्युकी कठोरतम वेदना मुँहबोली लग रही है। लेकिन माखनलालजी जैसे इसी दारिद्रयके स्वप्नद्रष्टा बनकर पैदा हुए थे, उन्होंने इसी कारण इन तीनोंको ही सुगन्धित इत्रकी तरह अपने मानसमें समो लिया है। और इस विशाल भूभागका केवल मेंहदी-रचनाकौशल ऐसी टकसाल बन गया है, जिसमें आज भी माखनलालजी अपने काव्य, अपने भाषण और अपने गद्यके शब्द लिखनेसे पहले ढाल लेनेमें पूरा विश्वास रखते हैं।

बाबई, छिदगाँव और मार्गके सभी गाँव किस प्रकार मध्ययुगकी राज्यक्रातियोंमें अपना अस्तित्व सुरक्षित रख पाये, इसपर मुझे विस्मय नहीं होता। विन्ध्यके बाहुबन्धनमें राजक्रान्तियाँ केवल निष्प्राण हो सकती थीं। वे राज्यक्रान्तियाँ जनजीवनके ऊपरी स्तरकी मैलजनित कीट जैसी फफूँदी थीं, वे अपनी ही श्मसानी राखमें स्याह पड़कर भूतके अँधियारीमें जा छिपीं थीं। और इन्हीं झोपड़े-झोपड़ियोंसे पूरमपूर गाँवोंने पहले अपनी रक्तवाहिनियोंसे उनकी पदछाप तकको सोख लिया था, फिर उन राज्य क्रांतियोंकी अवशिष्ट मुर्दा धूलकी रंगोंमें नई रवानी भरी थी। राष्ट्रमें प्राणोंके बीहड़ पथपर आज भी इन ग्रामोंका जीवन अन्तिम ज्ञान और अन्तिम दानको सँजोये है। वही शाश्वत सत्य राष्ट्रकी रीढ़को आज भी किन्हीं दूसरे सत्योंसे स्थानान्तरित करनेका साहस नहीं कर सका है।

यही तीन-साढ़ेतीन घण्टेमें हम ढीमर गाँवसे नीचे उतरकर, नर्मदाके तटपर पहुँच गये। उस तटके ऊपर पचास हाथ ऊँचे नांदनेर गाँव बसा है। वहाँ बालक माखनलाल दो वर्ष तक संस्कृतका अध्ययन करता रहा था। नर्मदाके इसी कछारमें उसकी चुहल और अल्हड़ताने नये पाठ सीखे थे। यहाँ तक नर्मदा संगमरमरी चट्टानोंकी शीतलताको अपने गोपनमें

धारे चली आई है। इसमें बालसुलभ जलक्रीड़ा जिस बालकने निरन्तर ७००, ८०० दिनों तककी है, वह भी आखिर अपनी काया पर संगमरमरी धवलता और संगमरमरी शीतलता भरी चिकनाई क्यों न धारता? माखनलालका नखशिख इसी नर्मदाकी धारामें, तरल धाराओंकी पैनी दृष्टिने काँटीके रूपमें गढ़ते हुए पोलिश्ड बनाया है।

नर्मदाके प्रवाहकी तीव्रता चरम साधनाकी तीव्र श्वासोंका आभास देती है। विन्ध्य यदि कठोर संयम थामे बैठा है, और विन्ध्यका अर्थ मुझे केवल आत्मशक्ति ही लगा, तो उसके वरद हस्तके नीचे यह नर्मदा उल्लसित उच्छ्वासका उद्दाम वेग बनकर ललकती है। माखनलालने अपने शैशवमें ही इन दोनों थातियोंको अपनी अँजुलियोंमें जो भर लिया था, तो वह रिक्त होनेको न आई। आज विन्ध्यकी उपत्यकाओं और नर्मदाकी धारासे बहुत दूर, वे खंडवामें रोगशैया पर आसीन हैं। उन्हें देखकर विन्ध्य और नर्मदा दो सक्रिय शिल्पीके रूपमें प्रकट हो उठते हैं।

नांदनेर देखा। भोपाल रियासतकी मनहूस छाया आज भी जनजीवनपर विद्यमान है। आश्चर्य है, माखनलालजीपर कोई भी सामन्ती संस्कार अपना रंग क्यों न दाग़ दे सका?

नांदनेरके बाद बालक माखनलालका शिक्षण टिमरनीमें चलता है। छिदगाँव जानेसे पहले, हरदासे चलनेके बाद यह एक बड़ा गाँव है और इसपर भुसकुट्टोंके शासनकी छाप उभक-उभककर आज भी गर्दन उठाती है। यह एक रेलवे स्टेशन भी है। यहाँ झोंपड़े कम, शासनकेन्द्रका अहंदंभ पक्के मकानोंमें सिमटकर कुण्ठित हुआ है, और बौनेके रूपमें खुले आकाशमें अपना सिर भी उठानेमें असमर्थ रहा है।

१६०७ में खंडवा जानेसे पहले माखनलालजीका जीवन मसनगाँव, भादौगाँव और नयागाँवमें भी थोड़े-थोड़े समयके लिए सम्बन्धित रहा है। ये तीनों गाँव एक ही बातके तीन रूप हैं—मटमैले रंगों और मैलकी

तहपर तह जमी सुप्त चेतनाके आलस्य। भादौ गाँव और नयागाँवको गंजालने अपनी गलबहियोंसे 'दूधो नहाओ और पूतों फलो' चरितार्थ किया है। किन्तु भादौगाँव और नयागाँवने गंजालके उद्धत और अनियंत्रित स्वरूपको मानवी बना दिया है। अन्यथा, विकराल जंगलों और गहरी खाइयोंमें गंजालका जो एकान्त रूप है, वह अपनी तुलनामें मुझे उस दृश्यकी याद दिला गया, जब किसी आर्य नरेशको किसी गहनतम बन-की केन्द्रबिन्दु रूप क्रूर-हृदया ललनाने बलात् अपनी भुजाओंसे आहतकर ज़मीनपर लिटा दिया होगा।

इसके बाद खंडवा माखनलालजीके जीवनकी पूर्ण अर्द्धशतीकी यज्ञ-श्री बन गया। खंडवाकी मोहिनी शक्तिने उनको पुष्पसम्पुट-बन्दी भ्रमरकी भाँति अपनी अंजलिमें सुरक्षित रखा है।

साधना-सरिता शब्द काव्यमें खूब पढ़ा था। पर उसका मर्म तो इस यात्रामें पल्ले पड़ा। वह कितनी मृत्तिकाओं और चट्टानोंके बीरान-बंजर वक्षको दूधिये उरोजोंसे सजानेका अनवरत कष्ट उठाती है और बराबर अपनी दीर्घ यात्रामें उठाती ही रहती है। कितने हैं देशके साहित्यकार, जिन्होंने शैशवसे ही जनजीवनमें गहरे उतरकर साधना-सरिताका यह दुष्कर कर्तव्य समझा है और पूरा है?

१०

माखनलालजीके निकट ढाई मासका निवास

६ मार्चकी रातको मैं खंडवा स्टेशन उतरा। सुबह ही माखनलालजी-के गृहद्वारे खड़े होकर मैंने उन्हें नमस्कार किया। एक तपोज्ज्वल मानवी मूर्ति शान्त भावसे अपनी शैयापर रजाईमें लिपटी बैठी है। जिस उद्दाम शक्तिपुंजको जयपुर साहित्य-सम्मेलनमें देखा, उससे कुछ वर्ष पहले पौरुषकी जिस चिन्तामणिका दर्शन बनारस साहित्य-सम्मेलनमें किया था और उसके उपरान्त मेरठ साहित्य-सम्मेलनके कविसम्मेलनमें गम्भीर श्वासें

लेते हुए पाया था, वही तो आज अपने वयभारकी समवेत व्यंजनाके तुल्य रोगशैयाका बन्दी है। सुनता आया ही था कि आप इधर रुग्ण हैं; पर जिसके खूनकी हरकत अपनी ही धड़कनसे आदर्श जीवनवृत्तकी रचना करती रहती है, जिसका चिन्तन धारावाहिक सदाबहार पुष्पोंकी भाँति पुष्पित होता रहता है, वे रोग और उपचारके अंकुश मानकर भी नहीं मानते।

मौन सिर हिलाकर माखनलालजीने मेरी वन्दना स्वीकार की और मुझे पास रखी कुर्सीपर बैठनेका आदेश दिया। उसके सामने रेडियोपर एक भजन चल रहा था और वे उसी लयधुनमें पगे गम्भीर बैठे थे। माखनलालजीका चिन्तन निठल्लोंका मानसखाद्य कभी नहीं बना। वे शौर्यपराक्रमको भाषामें चिन्तन करते रहे हैं। और, मैंने देखा, इस समय उनके संघर्षशील चेतनाके पौरुषदृप्त तेजसे युक्त आर्यमुख पर बस दो ही सत्य अवशेष रह गये हैं: जीवनकदर्य भेदी दृष्टि और उसके नीचे श्वेत श्मश्रु। मूँछोंकी सफ़ेदी स्पष्टतया श्रमगर्वकी स्वेदबूँदों-सी स्निग्ध है। अब तो माखनलालजीकी गहन गम्भीर दृष्टिसे अधिक उनकी सफ़ेद मूँछें ही उनके मुखपर प्रधान रह गई हैं। जिन अपराजित शैलश्रृंगोंने बस उड़ती हुई सफ़ेद बदलियोंकी सफ़ेदी ही संजोई है, उन्हींकी मानिन्द ये मूँछें अपनी जावकजयकी कथा खुलकर बोलती हुई लगीं। लेकिन यह कथा कितनी दीर्घ नहीं है। इस कथाको हृदयंगम करनेके लिए एक लम्बा समय चाहिए—यह मुझे स्पष्ट हो गया।

सन् ३० के आस-पाससे जो राजनीतिज्ञ और साहित्यिक जन-जीवनके क्षेत्रमें उतरकर आये, उनके अपने मकान हैं, वैभव और आनन्दप्रद जीवनकी अधिकतम सुविधाएँ और साधन हैं और अपने परिवारके भविष्यकी सुखद अर्थपूरित प्राचीरें हैं। लेकिन जो सन् १९०६ से ही खुले क्षेत्रमें घरसे निकल आया था और दूसरोंके सुखोंको ही अपनी पूँजी मानता रहा था, उसके इस कमरेमें और इस संक्षिप्त निवासस्थानमें

कहीं भी तो कुछ ऐसा नहीं है जो नितान्त कोरी आवश्यकतासे अधिक कुछ ौर हो। सामने दीवारपर आदमक़द गाँधीजीका एक पुराना फटा कैन्वासचित्र है। दो आरामकुर्सियाँ हैं, जिनका उपयोग वे स्वयं नहीं करते। पलंगपर और टेबलपर फाइलोंको क़रीनेसे बाँधकर रखा गया है। पलंगपर बिस्तरसे अधिक पुस्तकोंका अम्बार ही जैसे उनके निकटकी सबसे बड़ी सच्चाई है। आलमारी और फर्नीचर नामसे जो पूँजी है, वह बरसों पहले ख़रीदी गई होगी और अब पुरानी पड़ चुकी है। सबसे बड़ी कडुवाहट यह है कि यह प्राणोंको घोटकर रखनेवाला मकान किरायेका है। जिसके हाथोंसे कई सहस्र पूँजी मूर्छित समष्टिके उपचारमें व्यय हुई है, वह अपनी कोरी वैराग्य-साधनामें केवल अपनी श्वासोंको ही ऐसा हवन बनाये रखनेकी ज़िद्द थामे रहा, जिसमें उनका व्यक्ति गौण ही रहा, और उनकी भौतिक अतृप्तियोंको निस्पृहतासे कसकर जकड़े बैठा रहा। और, अब? आपके ब्रह्मचर्यका कठोर प्रहरी दिन जागता है और रात जागता है। कृच्छ्र वैराग्यसाधना ही एक व्यक्तिको अन्तर्मुखी बनाती है और उसकी दृष्टिको प्रतिक्षण जागते रहनेका निगूढ़ भेद सौंपती रहती है। परिव्राजक और परिव्रज्याकी परम्परा जिन्होंने शुरू की थी, वे वैराग्यपथपर देशको कुछ अधिक नहीं दे गये। माखनलालजी अनेक अर्थोंमें गाँधीजीकी और बहुत अर्थोंमें शुद्ध वैष्णवी कृच्छ्र साधनाके पथका अनुसरण करते हैं। लेकिन कोरा अनुसरण करनेवाले वे नहीं हैं। उनका अपना विवेक सत्याचरणका प्रयोग करता रहता है। विपुल मन्थन रचता रहता है। कर्तव्याकर्तव्य-निश्चयको नई मानसिकता प्रदान करता रहा है।

खंडवामें स्थायी रूपसे बसनेके बादसे माखनलालजीका जीवन उस सूक्ष्म स्रोतसे निकली धाराके समान है, जो सहसा ही प्रबल धारा बनकर चट्टानी वेगसे बहने लगती है। फिर भी १९१९ तक उसका प्रवाह केवल अपनी दिशा ढूँढ़ता है और प्रवाह-क्रमको दीर्घ बनाता है। उसमें घटनाएँ कम, भावदिशाएँ अधिक हैं। प्राइमरी स्कूलसे सहसा ही ऊपर उठकर उनके

क्षितिजपर एक नये उद्‌बुद्ध मनुष्यका रूप प्रकट होता है। मध्यप्रदेशके और समकालीन अन्य प्रदेशोंके लोकप्रिय लोकनेताओंसे उनका परिचय शीघ्र-शीघ्र होने लगता है और देखते-देखते, वे घरके कम, बाहरके व्यक्ति अधिक हो जाते हैं। १९१९ के बाद उनका अपना इतिहास विवरणात्मक कमसे कम हो जाता है, मध्यप्रदेश और बाहरके इतिहासमें वे घुलमिल जाते हैं। यही कारण है कि उनकी जीवनीका यह पहला खंड १९१९ तक की ही कहानी कहता है। किन्तु इस कहानीमें हिंदीके इतिहासका सबसे बड़ा अभाव अपनी पूर्णाहुति पा गया है। यह पहला प्रामाणिक गाथाक्रम है, जो किसी वयोवृद्ध हिन्दी साहित्यिकके जीवनमें ही प्रकाशित होने जा रहा है।

और भी एक आवश्यक बात मैं कहूँ। राजनीति और साहित्यके जितने तपस्वी थे, वे अब राजकीय विलासिताके हामी होते जा रहे हैं। दरिद्र भारतमें इतने लम्बे वेतन साधनाकी आग नहीं दहकाते, उसे ठंडा करते हैं, उसे बुझाते हैं !!! और ऐसी ठंडी आगके क्षणोंमें, जो आश्चर्य अविचारा नहीं रह सकेगा, वह यह है कि इन पद–मद–दीवाने बड़े-बूढ़ोंको नई तरुणाईको अपने निकट बैठाना प्रिय नहीं है। आगामी कलकी प्रियताका आयोजन जैसे उन्हें अभीष्ट नहीं रह गया है। जैसे वे अपनी ही इस वर्तमान लब्धप्रियताके अर्जनके लिए आज तक जीवित रहे थे। किन्तु माखनलाल जी मुझे पहले व्यक्ति मिले हैं, जो केवल तरुणाईके कल्याणका स्वप्न आज भी देखते हैं। रेलमें यात्री स्वयं सोयें, आनन्दसे यात्रा करें—इसकी पहली शर्त है कि इञ्जनका ड्राइवर गहरा जागरण करे और सतर्क प्रहरी बना उन यात्रियोंके जीवनकी पयस्विताका बोझ इंगित दिशाकी ओर बढ़ाये ले चले। माखनलाल जी आज भी शरीरके तक़ाजोंको न भूलते हुए आशुतोष नहीं बने, संगम-भोग्या-नगरियोंके नागरिक नहीं बने, प्रमदा-वृत्ति-कुण्ठिता राजधानियोंके तथाकथित राजछत्र-भूषित महान् नेता नहीं बने, मात्र हैं भारतीय जीवनके वही

महर्षि जिनके पास मन्त्र हैं, कलाके संदर्भ हैं और तरुणाईकी आकाश-गंगा अपनी मुट्ठीमें थामे बैठे हैं। यह तरुणाई जहाँ एक ओर प्रतिक्षण तीव्र कुशाग्रताका रूप सँवारे उनके जीवनपर अपना फन फैलाये रहा करती रही है, दूसरी ओर उनकी पल्लवित आयुके अपने तक़ाज़े जब जवानीके सुखोंको भूलकर विशुद्ध कर्तव्योंका आग्रह पूरा करनेमें जुटे हुए थे—तब उनकी तरुणाई उनमें हर युगकी मृदु स्मिति और चुहलभरी मस्तीकी नक्काशी करती रही है। यही कारण है कि, यद्यपि संन्यास-निष्ठा पलायनमुखी होकर व्यक्तिका पतन करती है, और वह पतन ऐसा नहीं है जो सम्यक्-ज्ञानका उपदेष्टा हो सके, माखनलालजीने अपने जीवनके ऐसे पतन अर्थात् वैराग्यको स्वीकार किया जो जन-मनमें गंगा-अवतरण लानेकी सामर्थ्य उत्पन्न करनेमें जुट-सा गया था। उनके व्यक्तिगत दायरेमें स्नेहकी गरिमाका सिन्धु तो प्रतिपल प्रपातरूप आज भी झरता ही है। इस कृतिमें अधिकांश कहानी उनके मुखसे ही वर्णित है। इस सारी कहानीमें आपके यौवनका जाग्रत प्रहरी ही जैसे बोल उठा है। आपने स्वयं ही एक दिन कहा, "कहानीमें ईश्वरत्वसे भी बढ़कर बल होता है।" पर यह ईश्वरत्वसे बढ़कर आख़िर किसका बल है? विशुद्ध रूपमें तपस्वी, संघर्षरत, मृत्युञ्जय और चिर-तरुणाईके साधक मानव का।

६९ वर्षोंकी धूप-शीत-ग्रीष्मका सेवन करते हुए, माखनलालजीके चेहरेपर एक दृढ़ भंगिमा-सी जम गई है; प्रायः ही संगीन मामलोंपर सोचते रहनेसे उनका चेहरा साधारण शिल्पकी अनुकृति-सा हो गया है, फिर भी इस पत्थरवत् चेहरेपर अब भी भावनाओंका उद्रेक स्पष्ट देखा जा सकता है। और जब वे अतीतकी ओर उन्मुख होते हैं तो एक प्रतीति यह मुझे हुई कि उनके पास शब्दोंका भंडार नहीं है, उनके पास तो स्मृतियोंका रश्मिदल विद्यमान है, उनकी उन किरणोंके तीव्र प्रकाशमें शब्द केवल धूलिकणकी तरह उड़ते हुए दीखने लगते हैं। केवल अबोध

ही यह समझता है कि वह किरण नहीं है, धूलिकणोंकी पुंजरेखा है। पर सर्वोपरि सत्य तो वही किरणरेखा है।

माखनलालजीने एक दिन अपने समस्त जीवनपर विहंगम दृष्टिपात करते हुए मुझसे कहा—"मुझे तो तेहरी ज़िन्दगी बितानी पड़ी है। उसमें एक तरफ़ मैं स्कूल-मास्टर था, और दूसरी बार सम्पादक था। दूसरी तरफ़ कविता और साहित्यका लेखक था और तीसरी तरफ़ पिस्तौलधारी था। और ये तीनों बदनसीब साथ-साथ चल नहीं पाते थे। इसलिए इन्हें साथ-साथ चलानेकी घोर विषमताओंमें मेरे जीवनके समस्त आनन्द खर्च हो गये। इस त्रिकोणमें मैं सदा ही घिरा रहा। और इस समस्याके साथ मेरे साथ यह भी समस्या रही कि नित्य ही मैं समस्याओंका सामना करता रहा हूँ। समस्याओंके सामने आनेके कारण, सामने पड़नेके कारण समस्याओंको कुरेदनेकी ही आदत पड़ गई। पहले तो समस्याएँ मुझपर संकटकी तरह टूटीं, फिर समस्याएँ परिस्थितियोंको लेकर सामने आईं और उन्होंने समाधान चाहा और फिर मैं स्वयं समस्याएँ कुरेदने लगा। ग़रज कि समस्याओंसे मेरा पिण्ड नहीं छूटा।"

लेकिन माखनलालजीके समस्या-प्रधान क्लिष्ट जीवनके त्रिकोण भी मेरे लेखे उनके जीवनकी ऐसी तीन खिड़कियोंके ही तुल्य रहे हैं, जिनमें-से उन्हें निरन्तर एक ही साथ तीन मोहिनी शक्ति-पूरित क्षितिज अपनी ओर बलात् खींचते रहे हैं और वे खिंचते भी रहे हैं।

इसीलिए और सिर्फ़ इसीलिए कवि, पत्रकार, उग्र चिंतक, क्रान्तिका प्रबल समर्थक, हिन्दी साहित्यका ही नहीं हिन्दीके स्वराज्यका स्वप्नद्रष्टा, अमर भारतीय परम्पराओंका वहन करते हुए कठोर ब्रह्मचर्यका पालनकर्ता, राजनीतिके क्षेत्रमें ज़बरदस्त भाषणकर्ता और जीवन श्रेयसके क्षेत्रमें मर्यादाओंकी धधकती हुई वेदी बना हुआ यह तपस्वी अपने मौन, शान्त, वैरागी रूपमें कितना अशान्त बना बैठा है, इसका सबसे पहला अर्थ यही है कि माखनलालजीकी जीवनी हिन्दी साहित्यमें भावी पीढ़ीका पथ

प्रशस्त करती रहेगी। भारतीय स्वतन्त्रता देशीय इतिहासमें आज सबसे अधिक [illegible] विचारधाराकी अपेक्षा रखती है। उसके लिए वह तरस रही है। उसी अपेक्षामें यह कृति विनीत भावसे प्रस्तुत की जा रही है। किन्तु इस बृहद् कृतिका यह पहला खंड माखनलालजीके सक्रिय पूर्वार्द्ध जीवनकी भूमिका क्षितिज-दिग्दर्शन मात्र ही है।

इस कृतिको अपने तीसरे तीर्थवास (खंडवा-यात्रा) के श्रद्धा-निवेदनके रूपमें तैयार करते हुए एक निगूढ़ भाव, प्रेरणाकी सधी हुई अँगुली-सा, मुझे एक साँस काम करानेमें समर्थ हुआ है। वह यही, कि जो व्यक्ति मृत्युसे निरन्तर खेलता रहा है, जिसने मध्यप्रदेशकी राजनीतिमें स्वस्थ तत्त्वोंको संरक्षण दिया है और १९२० के आसपास यहाँका जो अघोषित एकमात्र लोकनेता था, १९२४ में बिहार-रत्न राजेन्द्र बाबू नागपुर झण्डा सत्याग्रहमें जिनके सेक्रेटरी थे और सरदार पटेलके साथ जिनके संयुक्त हस्ताक्षरोंसे वह आन्दोलन सफल पूर्णाहुतिको प्राप्त हुआ था, जिसने उन्हींके शब्दोंमें 'एक क़दम देशको आगे बढ़ानेके लिए बार-बार सौ क़दम पीछे हटकर लोगोंको साथ लेना पड़ता है', की कष्टसाधना की है, जिसने राष्ट्रभारतीको उचित पद दिलानेके क्षणोंमें कठोरतम परिश्रम किया है, जिनके लिए १९२६ में नैनी जेलसे निकलकर गणेशशंकरजी विद्यार्थी ने कहा था कि भविष्यकी भाषा तो माखनलालजी ही देंगे, अमरनाथ झाने प्रयाग विश्वविद्यालयमें कहा था, "वह समस्त भारतमें हिन्दीका वक्ता है और उसकी जोड़का दूसरा वक्ता मैंने नहीं देखा।" जिनके लिए इन्दौर सम्मेलनमें गाँधीजीने कहा था कि हम सब तो मंचपर केवल बात करते हैं—भाषण तो केवल माखनलाल ही देता है, १९२५ से ही जिन्होंने सर्वप्रथम अपने 'कर्मवीर'में आचार्य विनोबाके मराठीमें दिये गये प्रवचनोंको हिन्दीमें अनूदितकर उनका राष्ट्रव्यापी परिचय कराया था और जो इस क्षण श्वेत-केश रोगशय्यापर गत डेढ़ वर्षोंसे बन्दीसे बैठे हैं—उन्हें देखकर मेरे मनमें एक बात सहसा ही, पहले ही दिन उनके

निकट बैठकर, आई थी। भरी जेठकी दुपहरिया बीतनेके बाद जब शामको क्षितिजपर दूधिया बादल वयभार तुल्य गतिसे यों ही एक दिशासे दूसरी दिशा जाते हुए कभी ठहर जाते हैं, तो उनके मनोयोगका अध्ययन अद्भुत प्रेरणाशील होता है। उनमें जलभरे कलशोंकी तरल श्री नहीं रहती, न स्फुट गर्जन ही, फिर भी वे उसी दिशासे बहुत शीघ्र क्या लेकर लौटेंगे, इसका मूक संकेत अवश्य दे देते हैं। माखनलाल जी आज परम पाथेयका आधिपत्य थामे बैठे हैं। उनके जीवनकी दीर्घ श्री सौम्य दयावत् होकर अपनी चिर मुसकानको तरुण पीढ़ीके लिए एक स्मरणीय पाथेय बना सकेगी। उन्हें देखकर भ्रान्ति होती है कि वे जैसे उसी जेठकी साँझके बादल-से हैं। पर नहीं, वे तो उस अमर मानवकी साक्षात् प्रतिकृति हैं जो बीते हुए भूतकालपर गर्व करते हैं, आनेवाले भविष्यके प्रति भी एक गहरा विश्वास व्यक्त करते हैं, विन्ध्याचलके प्रचण्ड नेत्रोंका और नर्मदाकी शाश्वत वाणीका यही एकाकार रूप मुझे उनके व्यक्तिमें प्रत्यक्ष मिला है।

यह मेरा सौभाग्य है कि मैं माखनलालजीके परिवारमें अब उन्हें दादाजी कहनेका अधिकारी मान लिया गया हूँ।

इस जीवनीमें अधिक अंश माखनलालजीके शब्दोंमें हैं। वे अंश उन्होंने मुझे पास बैठाकर सुनाये हैं। प्रामाणिकताके नाते बादमें ये अंश उन्हें पढ़कर सुना दिये गये हैं।

११

आभार और कृतज्ञता

एक अंतिम बात। केवल दो मास के संक्षिप्त समयमें यह कृति जिस मनोयोगसे तैयार हुई है, उसका सारा श्रेय श्री ब्रजभूषण जी चतुर्वेदीके स्नेह-संरक्षणको है। आज अपनी इस वयोवृद्धावस्थामें दादाजी जिस आरामप्रद विश्राम और लेखनकी सहज सुविधाएँ और श्रेष्ठ

उपचारकी व्यवस्थाके अन्तर्गत अपने रोग-शमनका सुखद संयोग पा रहे हैं, उन सबके पीछे उनके सबसे छोटे भाई श्री ब्रजभूषणजीका सबल हाथ है। परिवारमें वे 'भैया जी'के नामसे आदरास्पद हैं। आप राजनीति शास्त्रमें एम. ए. हैं, इतिहासमें एम. ए. हैं और ला-ग्रेजुएट हैं। पिछले दिनों आप फर्स्ट क्लास दर्जेके ऑनरेरी मजिस्ट्रेट भी खंडवा-में रह चुके हैं। भैयाजी जिस रूपमें अनेकानेक त्यागकर केवल दादाजीकी सेवामें एकसाँस रत हैं, उसीने मुझे सबसे अधिक, दादाजीके निकट जाने-से भी अधिक, प्रभावित किया है। उनमें भरत और लक्ष्मण एकात्म हो उठे हैं और जब मैंने भैयाजीसे यह इच्छा प्रकट की कि दादाजीकी जीवनीके आवश्यक अंश दादाजीके ही शब्दोंमें लिपिबद्ध करूँ, उससे पहले दादाजीके जन्म, शैशव, कैशोर्य, शिक्षण आदिसे संबंधित स्थानोंको देख लिया जाय तो आपने अपने बहुत ही आवश्यक कार्योंको गौण मानकर, पूरे एक सप्ताहकी क्लेशदायक, कष्टदायक और श्रमसाध्य यात्रामें जो मार्ग-प्रदर्शन किया, वह जीवनकी सबसे अनिर्वचनीय प्रिय यात्रा सिद्ध हुई। आपका सरस विनोद मानव-जटिलताओंके चमत्कारी अनुवादकसे कम नहीं है और दादाजीके मानवी जीवनकी पृष्ठभूमिको समझानेमें मुझे गहरे विश्वासके साथ आपने जिस प्रकार सरलतम तथ्यात्मक दृष्टिकोण दिया, उसीसे विशाल कैन्वासपर दादाजीका सचित्र जीवन एक उपन्यासकी तरह सूत्रबद्ध हो गया।

इस कृतिकी शुभ समाप्तिपर मुझे केवल एक ही बंदना देनी है और वह देनी है भैयाजीको।

बस, एक वाक्य और। यह कृति ज्येष्ठकी लूमें तपते हुए खण्डवा-की श्री सौ० से० पार्वतीबाई धर्मशालामें बैठकर लिखी गयी है। इसके मैनेजर साहबने जितना आतिथ्य हमें दिया है, उसके प्रति हम ऋणी हैं।

—ऋषि जैमिनी कौशिक 'बरुआ'

प्रथम परिच्छेद

वंश-गाथा और जन्म

आजसे एक शती पूर्व स्थानीय सैटलमेण्ट आफ़िसरने लिखा था कि होशंगाबाद घाटीकी मिट्टी विश्वमें ऐसी है कि वह बिना खाद आदिकी सहायताके निरन्तर ४० वर्ष तक गेहूँकी उत्तम खेती कर सकती है। यह दूसरी बात है कि अन्य अधिक उत्पादक देशोंके संतुलनमें यहाँ खेतीकी उपजकी मात्रा कम हो सकती है, लेकिन भारतमें अन्य ऐसे स्थान एक प्रकारसे नहीं हैं, जहाँ प्रति किसानके पीछे इतना अधिक अन्न उत्पन्न होता हो, और जहाँपर इतने कम खेतिहरोंसे इतना अधिक अन्न उत्पन्न किया जाता हो।

होशंगाबाद मुख्यतः नदियों और जलधाराओंका ही जिला है। सतपुड़ा पहाड़से अनेक जलधाराएँ उत्तर-पश्चिमकी दिशा बहती हुई नर्मदा-में जाकर अन्तर्धान हो जाती हैं। नर्मदा स्वयं एक मनोरम नदी है। औसतन इसका पाट आधा मील चौड़ा है।

यहाँकी मौसम स्वास्थ्यप्रद है। काली मिट्टीका गुण यह है कि गरमियोंमें भी अपनी अन्तर्हित नमीसे वह सारे प्रदेशकी रात्रियोंको शीतल रखनेका सुख बाँटती है। दो पहाड़ोंके बीचमें स्थित होनेके कारण स्वाभाविकतया पहाड़ी अन्धड़ोंका दौरा नियमित रूपसे रहता है, लेकिन

वे रेतीले अंधड़ नहीं होते। यहाँ वर्षा खूब होती है। संभवतः इसीलिए यहाँ हिंस्र-पशुओंकी संख्या भी पर्याप्त है। आजसे ५० वर्ष पूर्व यहाँ जंगली हाथियोंकी संख्या भी सन्तोषप्रद थी।

होशंगाबाद विन्ध्य और सतपुड़ा पहाड़ोंके बीच नर्मदाके बायें तटपर फैला हुआ है। भोपाल, इन्दौर, नृसिंहपुर, नीमाड़—इन चार भूभागोंके बीचमें यह प्रकृतिकी रंगस्थलीके रूपमें बसा हुआ है। जिलेमें पूरबका भाग पश्चिमकी अपेक्षया दरिद्र है और यहाँकी भूमि उपजाऊ भी अधिक नहीं है, जिसके कारण इधरका इलाक़ा अधिक समुन्नत नहीं हो पाया। फिर भी महुआ वृक्षोंने इसके प्राकृतिक सौन्दर्यकी रक्षा की है।

यहीं वह प्राचीन शान्तिपुर रहा, जहाँके राजाकी कन्याने भगवान् श्रीकृष्णके पौत्र अनिरुद्धसे विवाह किया था। लोक-विश्वास है कि पाण्डवोंने अपने १२ वर्षका वनवास यहींपर पूर्ण किया था। कहा जाता है कि नर्मदाके संध्याघाटपर उन्होंने भोजन आदि पकाये और पंचमढ़ी गुफाओंमें उन्होंने निवास किया था।

यदि उत्तर भारतमें कैलास शिवजीके अस्तित्वका द्योतक है, तो यहाँकी महादेव पहाड़ी शैव धर्मकी उज्ज्वल केन्द्रीय गढ़ी रही है। सातवीं सदी तक राष्ट्रकूट वंश-परम्पराका धार्मिक पूजा-स्थल भी यही रहा।

डा० फ्लीटके कथनानुसार प्रारम्भिक युगोंमें आर्योंने उत्तर भारतसे आकर यहाँ अपनी धर्मपताका फहराई थी। १२ वीं सदी तक यह परमार नरेशोंके राज्यमें रहा। १० वीं सदीमें राजा मुंज जो स्वयं भी एक कवि था और उसने अपने राज्यमें अनेकानेक कवियोंको आश्रय दिया। उसके बाद उसके भतीजे राजा भोजने यहाँपर शासन किया और अपनी सांस्कृतिक परम्पराओंकी पीठिका स्थायी रूपसे निर्मित की। १५ वीं सदी तक चौहानों और तोमरोंके आधीन रहनेके बाद यह भूभाग मुसलमानोंके हाथोंमें चला गया।

आइने-अकबरीके कथनानुसार यह मालवा सूबाका एक अंग था और यहाँपर जंगली हाथी बहुतायतसे पाये जाते थे। बाबई, औरंगज़ेबके बाद, हवेली बागड़के नामसे प्रख्यात था, जहाँ उसके गढ़का राजा शासन करता था।

१७७७ में माधवराव पेशवाने टिमरनीका क़िला भुसकुट्टे बन्धुओंको स्थायी रूपसे सौंप दिया था। जब १८०३ से १८१८ तक इस प्रदेशको बार-बार जलाया गया तो लोगोंने सोहागपुर, सिऊनी और टिमरनीके गढ़ोंमें एकत्र होकर अपनी प्राणरक्षा की थी। यही वह समय है, जब कृषकों-ने एक हाथमें शस्त्र लेकर, दूसरे हाथसे हल चलाया था। इसके सिवाय, अस्तित्वकी रक्षाका कोई दूसरा उपाय शेष नहीं बचा था। आक्रामक सेनाओंसे असहयोगके रूपमें वे अपने गाँवोंको बेचिराग़ रखा करते, ताकि कोई सशस्त्र सेना अपने अभियान-पथपर कमसे कम रात्रिमें उनका दुरुपयोग न कर सके। किन्तु पूरी दो सदियों तक यह भूभाग आक्रमण-कारी और परस्पर विग्रहकारी राजाओंकी रणस्थली ही बना रहा और यहाँकी जनताको न दिन चैन था, रातका भी चैन सुलभ न था। तभी आ गया पिंडारी लुटेरोंका युग। छिदगाँवके पास गंजाल नदीकी गहरी खाइयोंमें उनके आश्रयस्थल थे।

जैसा कि ऊपर एक सर्वे रिपोर्टका तथ्यांश दिया गया है, इस ज़िलेके पूर्वी भाग दरिद्र और असमुन्नत रहे हैं। इसी होशंगाबाद तहसीलमें बाबई एक बड़ा गाँव है और होशंगाबादसे १४ मील पूर्वमें पुरानी बम्बई सड़कपर बसा हुआ है। १९०८ में इसकी कुल जन-संख्या ४१०० थी। दक्षिण-पूर्वमें ६ मीलकी दूरीपर इसका रेलवे स्टेशन बागरा है और वहाँ तक गाँवसे पक्की सड़क जाती है। पहले यहाँकी अनाजकी मंडी बहुत प्रसिद्ध थी, लेकिन रेलमार्ग खुल जानेसे उसका महत्त्व शनैः-शनैः कम होता गया। शनिवारको जो मवेशियोंका बाज़ार लगता है, वह अब भी ज़िलेभरमें सबसे बड़ा होता है। गाँवके स्वास्थ्यका प्रबन्ध एक

स्थानीय संस्था करती है। यहाँपर वर्नाक्यूलर मिडिल स्कूल, एक पुलिस स्टेशन तथा एक पोस्टआफ़िस भी है।

यहाँके प्रमुख जमींदार ब्राह्मण ही थे। यहाँके दीवान आदिगौड़ ब्राह्मण थे। इस ग्रामका आदि निर्माता गिरधारीलाल था, जो वर्तमान दीवान दौलतराम गुरुका पितामह था। भौंसलेने गिरधारीलालको, जो अलवर राज्यसे आये थे, इसे मुआफ़ीके रूपमें दिया था। लेकिन ऋणके कारण १८७७ से १६०२ तक यह कोर्ट आफ़ वार्डसके अन्तर्गत रहा। अच्छे सम्पन्न परिवारोंमें यहाँका मासिक रसोई-व्यय मात्र २०रु० मासिक था और बढ़िया राजसी वस्त्रोंसे यहाँ कोई भी व्यक्ति ४० से ८० रुपयों तकमें अपनेको सुसज्जित कर सकता था।

इसी ग्राममें राजस्थानकी जयपुर रियासतके राणीला नामक स्थानसे पं० डोंगरसिंह शास्त्री आकर बस गये थे। उनके एक पुत्र हुआ, जिनका नाम पं० रामनारायण शास्त्री था। वे अपने समयके तेजस्वी पुरुष थे। उन दिनों इलाक़ेके इन्साफ़ करनेवाले खानदानोंमें, जहाँ लगभग ७२ मारवाड़ी परिवार रहा करते, तीन खानदान विशेष थे, उनके मुख्याध्यक्ष क्रमशः थे : पं० दौलतराम, श्रीजगन्नाथ पटवारी और पं० हरदेव पुजारी। इन्हीं पुजारीजीने पं० रामनारायणजी शास्त्रीकी तेजस्वितासे प्रभावित होकर उनके साथ अपनी कन्याका विवाह सम्पन्न किया था। इन दो कुलीन वंशोंका ऐसा प्रगाढ़ सामाजिक बन्धन बाबईमें एक स्मरणीय घटना बन गया। पं० रामनारायणजी शास्त्री सात पुत्रोंके महाभाग पिता बने।

परिवारके सबसे बड़े पुत्र थे पं० मुकुन्दराम। दूसरे थे पं० छोटेलाल। उसके बाद थीं पार्वतीबाई और उनके शेष पाँच छोटे भाई इस प्रकार थे—पं० वंशीधर, श्रीतुलसीरामजी, पं० बिहारीलाल, श्रीनन्दलाल और श्री हीरालाल चतुर्वेदी।

पं० मुकुन्दरामजीका स्वर्गवास अल्पावस्थामें ही हो गया। कहते हैं,

वे नर्मदामें समाधि लगाये हुए थे कि बाढ़ आ गई और उनकी मृत्यु हो गई। वे अपने पीछे केवल एक कन्या लक्ष्मीबाई, जिन्हें परिवारमें लच्छो जीजी कहा जाता था, छोड़कर गये। पं० छोटेलालजी संस्कृतके विद्वान् थे और बड़े भाईकी मृत्युके पश्चात् सारे परिवारका संचालन और संगोपन उनपर ही रहा। पं० वंशीधरजी बाबईसे आठ मीलकी दूरीपर, उस समयकी भोपाल रियासतमें, नर्मदाके तटपर स्थित नाँदनेर गाँवमें ज्येष्ठ भ्राता पं० मुकुन्दरामजीने जो जायदाद बनाई थी, उसीकी व्यवस्थामें वहाँके मन्दिरका संरक्षण करते हुए रहने लगे थे। वे संस्कृतके लोकप्रिय विद्वान् थे और उनके पास निकटवर्ती गाँवोंके विद्यार्थी विद्याध्ययनके हेतु आया करते थे। ये, छः भाइयोंके संयुक्त परिवारसे अलग, नाँदनेर में ही स्थायी तौरपर रहते थे और इसीलिए इनके अलग रहनेसे पूरे परिवारके दो हिस्से हो चुके थे।

संयुक्त परिवारमें अब पं० छोटेलालजी और बहन पार्वती बाईके साथ थे श्रीतुलसीरामजी, जिन्होंने विद्याध्ययन नहीं किया था और वे बाबई ही में दुकान करते थे। कुछ कारणोंसे, कुछ वर्षों बाद, वे भी बाबई छोड़कर चले गये, और उनका स्वर्गवास सन् १९१६ में हुआ।

शेष तीन भाइयोंमें पं० बिहारीलालजी अपने ज़मानेके विशेष पढ़े-लिखोंमें थे और मालगुज़ारोंके यहाँ मुख्तार थे। उनका स्वर्गवास सन् १९०० में हुआ। पं० बिहारीलालजीसे छोटे थे श्रीनन्दलाल चतुर्वेदी और श्री हीरालाल चतुर्वेदी। आप दोनोंने ही अध्यापकी की। बादमें अपने अग्रज पं० मुकुन्दराम, पं० वंशीधर और पं० छोटेलालजीकी तरह अध्यापकीसे अवकाश ग्रहण करनेके बाद, पं० हीरालालजी चतुर्वेदीने भी पं० छोटेलालजीकी गजपुर गाँव स्थित मन्दिर और उसकी जायदादका भार सम्हाला और पुरोहिती की। आपकी धर्मपत्नी श्रीमती चम्पावती देवी अभी जीवित हैं और जायदादका काम सम्हालती हैं।

जहाँ अन्य भाइयोंने विधिवत् संस्कृतका ही विशेष अध्ययन अपने

कुलगौरवके अनुरूप किया, वहाँ श्रीनन्दलालजी चतुर्वेदी बाबईके स्कूलमें शिक्षा-अध्ययन करते रहे। उनके अध्यापक बाबई स्कूलके हेडमास्टर पं० विष्णुप्रसाद थे। घरमें नन्दलालजीको जहाँ संस्कृतसे पारंगत बनाया गया, वहाँ पं० विष्णुप्रसादने अपने परम शिष्यके नाते नन्दलालजीको उर्दू और फ़ारसीसे खूब पारंगत कर दिया। बाबई मिडिल स्कूल था, अतः विद्यार्थीको वहाँ सात कक्षाएँ यों ही पढ़नी पड़ती थीं। किन्तु पं०छोटेलाल-ने अपने छोटे भाई नन्दलालजीको ग्यारह वर्ष तक पं० विष्णुप्रसादकी शिक्षण-परम्परासे हटने नहीं दिया। पं० विष्णुप्रसाद कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे और ज़िला रायबरेलीके रहनेवाले थे। बाबईके शिक्षणसे निपटनेके बाद नन्दलालजी नार्मल स्कूल पढ़ने भेज दिये गये थे और परीक्षामें उत्तीर्ण होते ही वे किसी शालामें, सम्भवतः सोना साँवरी नामक गाँवकी शालामें अध्यापक बनाकर बैठा दिये गये थे।

पं० मुकुन्दरामजीका निधन तो पहले ही हो चुका था और पं० वंशीधरजी संयुक्त परिवारसे अलग होकर नाँदनेर चले गये थे। जिस समय पं० छोटेलालजी, श्रीतुलसीरामजी और पं० बिहारीलालजी के साथ श्रीनन्दलालजी भी विवाह-योग्य अवस्थाको पहुँचे, तो बाबईके सबसे नामी खानदानके सर्वेसर्वा श्रीजगन्नाथजी पटवारीने अपनी लाड़ली कन्या सुन्दरबाईके लिए स्पष्ट कह दिया कि मैं इसका विवाह केवल नन्दलालजीसे ही कर सकता हूँ। वे इस होनहार और प्रतिभावान् युवक के प्रति अत्यधिक आकर्षित हुए थे। उसका एक कारण था। काकाओं-बाबाओंके परिवारमें नन्दलालजी अपनी अत्यन्त गौर-धवल मातापर जानेके कारण बहुत ही रूपवान् थे। पं० बिहारीलालजीने इस विवशताको भी अपने परिवारका गौरव समझा और यह सम्बन्ध स्वीकार कर लिया। इसमें हानि थी भी क्या कि बड़े भाई अविवाहित ही रहें। उनका विवाह तो बादमें हो सकता है। योग्य क्षणोंमें योग्य सम्बन्ध खुद ही दरवाज़े खोलकर आया करता है!

कहते हैं, जिस समय बाबईके चतुर्वेदियोंके यहाँसे नन्दलालजीकी लग्न-पत्रिका लेकर नाई और ब्राह्मण उनकी भावी ससुराल मालनवाड़ा गाँव गये, और उस गाँवके बाहर पहुँचे, तब सुन्दरबाई अपने घोड़ेपर बैठी अपने खेतोंको देखने गई हुई थी। जिस समय लग्न-पत्रिका लानेवाले गाँवके निकट पहुँचे, तो सुन्दरबाई घोड़ेपर बैठी हुई इन दोनों दूतोंके आगे-आगे चली आ रही थी। जब उनके पीछे-पीछे ही उनके घरके द्वारे नाई और ब्राह्मण भी जाकर ठहरे और घरमें पता चला कि ये तो सुन्दरबाईकी ससुरालके पाहुने हैं, तो तुरन्त उनकी माताजीने उनको शुभ वस्त्रोंसे ढँका और उन्हें तत्काल ही वधूके रूपमें सँवारा गया।

श्री जगन्नाथ जी पटवारीके वंशका निकास मारवाड़से हुआ था और उनके घरमें मारवाड़ी ही बोली जाती थी। सुन्दरबाई जहाँ अपने घरकी लाडली थीं, वहाँ वे ग्रामीण सौष्ठवसे पोषित, विनयी, शीलकी उपत्यका सी बाबईमें परम रूपवती वधू बनकर उपस्थित हुईं। श्री नन्दलालजी चतुर्वेदीका सद्‌मानस और उनकी मेधाका अर्थगौरव इस सत्वर गौरवाभा को प्राप्त कर जैसे उज्ज्वल भविष्यका वरणाभिषेक ही पा गया था। यद्यपि पुरोहिती-प्रधान परिवारमें एक धनाढ्यकी लाड़ली कन्या बहूके रूपमें आई थी और अँग्रेज़ी शासनमें पुरोहितीका अर्थ अत्यधिक अर्थदीनता ही रह गया था, फिर भी चतुर्वेदियोंके भरे-पूरे परिवारमें सुन्दरबाई एक आदर्श गृहिणीकी शोभाका ही प्रकाश फैलाने लगीं।

बाबईकी घरेलू सीमामें उन दिनों चतुर्वेदियोंके तीन मकान थे। एक मकान सबसे पीछे था। उसके बाद एक मकान था, जिसमें पुरुष रहते थे। उसके पश्चात् एक मकान सड़कसे लगकर सामने था, जिसमें आधेमें भोजन बनता था और आधेमें स्त्रियाँ रहती थीं। ये तीनों मकान नहीं थे, छोटे-छोटेसे खपरैल-टप्पर थे। उन दिनों मकान या तो जमींदार साहबके थे, या स्कूलका मकान था या मवेशियोंको सजा देनेका काइनहाउस (कांजी हाऊस) था या पोस्टआफ़िस था या जैनियोंका चैत्यालय था या

वैष्णवोंके बड़े-बड़े मन्दिर थे, अथवा व्यापारियोंके मकान थे। साधारण जीवनका कोई आदमी ईंटसे बने मकानोंमें नहीं रहता था।

इसी सबसे पीछेके खपरैल-टप्परमें श्रीमती सुन्दरबाईने चैत्र शुक्ल एकादशी, संवत् १९४५, (४ अप्रैल १८८९) को दिनके ग्यारह बजे जिस प्रथम पुत्ररत्नको जन्म दिया, उसका नाम माखनलाल रखा गया।

माखनलाल अपने छः भाइयोंके परिवारमें पहला शिशु था, इस कारण अपने बाबाओं और भूआकी गोदमें ही उसका लालन-पालन हुआ। सारे घरका सारा चाव और लाड़ इस बालकको मिलने लगा। छः सात व्यक्तियोंकी गोदियाँ ही इसका झूलना बन गईं। माताने जो लाड़ अपने परिवारमें पाया था, उसका ही प्रतिरूप यह सुन्दर बालक जैसे जन्मा था। माता और पितासे भी अधिक सुन्दर-सलोना रूप इस बालकको प्राप्त हुआ। माँसे अधिक, भूआने अपनी सम्पूर्ण सत्ताका अधिकार इस बालक-को अपनी ही गोदमें खिलाने-सुलाने और प्रतिपल अपनी ही आँखोंके आगे रखनेमें समेट लिया।

बच्चेका जन्म एकादशीके दिन हुआ था। लोकविश्वास है कि एकादशीके दिन जन्मा हुआ पीड़ाओंको अपने पेटमें भरे आता है। आखिर उसकी होनी भी जल्दी ही आई। जब यह शिशु यही डेढ़ सालका था, तो इतना बीमार हुआ, कि एक दिन तो सारा घरभर, पिताजी और उनके छओं भाई इस चिन्तासे भर उठे कि अब इस बच्चेको बचाना कठिन है। सभी आशा छोड़ चुके थे। कहते हैं, गाँवके बूढ़े मारवाड़ी सुनार हुलासीने कोई दवा दी और शिशुने फिर संज्ञा पाई। नये सिरे सबकी आँखोंके तारेने अपने नेत्रोंमें ज्योति पाई।

माखनलालपर पिताके संस्कार और गुण तो बहुत वर्षों बाद जाकर, युवावस्थामें, द्विगुणित होकर नये रूपोंमें पल्लवित हुए, किन्तु घुटणिया रेंगनेके बाद, पैरोंकी चलनेकी स्थितिमें आते-न-आते, माताके अधिकाधिक बलशाली संस्कार उसमें विकसित होने लगे। वे तो साक्षात् सौभाग्य और

आयुष्यमतीकी प्रतिमा बनकर आई थीं। चाहे एकादशीका जन्मा बालक ही क्यों न था, माताकी कोखसे ही आयुष्यके दीर्घसूत्र वह अपने साथ लाया। अपने प्रथम क्षणोंसे ही उसकी एक हथेलीपर रोगावस्था खुलकर खेली, तो उसकी दूसरी हथेलीपर दीर्घ आयु अपना रंग खिलाती रही।

दैन्य और दारिद्रयकी जो भी काली परछाई चतुर्वेदियोंके परिवारपर जिस रूपमें भी रही हो, माखनलाल पौरुषवान् सौभाग्यका लाक्षणिक शकुन ही बनता गया। जिसने अपनी प्रथम श्वासका सुयोग अत्यन्त कृशकाय बंगलियोंमें (बुन्देलीमें बैठकनुमा झोंपड़ी बंगलिया ही कहलाती है) पाया हो, कच्ची मिट्टी और उसकी धूलमें जो घुटरुए चला हो, गँवई पास-पड़ोस और गरमी-शीत और शऊर-ढब, अजान व जड़ संस्कार, अविद्या व अविवेक, लट्ठबुद्धि व लठैत-चेतना, सीमित-सकुचित शील, तंगदस्ती-तंगपस्ती, सैकड़ों वर्षों पुराने अलिखित विधि-निषेध, खूँटेसे बँधे और रँभातेसे जीवनके हर्ष, खुले आकाश व खुली ज़मीनकी अनाथावस्था, भूत-प्रेत व अनुदेवताओंका अंकुश, केवल जड़ मिट्टीकी छाती विदीर्ण करनेवाला कुश, बदरङ्ग और क्रमभङ्ग, नखशिख व एँड़ी-चोटी जहाँ शृङ्गारके अर्थोंमें ही न हो—हाँ अर्द्धनग्न, जहाँ रातका अर्थ रात ही है और रातकी विभीषिकाएँ भी हैं, जहाँ खेतकी मिट्टीका रूठना और खुले आकाशका आक्रोशमना रहना कड़ोसे-कड़ी छातीको भी विचलित कर दे सकता है, जहाँ काँटोंकी बाढ़ किसी भी क्षण असंख्य काँटे जीवन-मगपर बिखेर दे सकती है—ऐसे पैने बाणोंसे छिद्रित भीष्मकी श्वासोसे आवृत गँवई-गाँवमें जिसने उद्ग्रीव होकर होश सम्हाला हो, वह आयुष्मान् कसौटियोंपर ही बढ़ा-चढ़ा और नटखटपनके मिस पुरानी बाड़ और दरो-दीवार और भग्न-प्राचीर और अज्ञान-सम्भार और धराशायी गढ़कुरढार और गहन अँधियारको या तो लाँघने लगा या उन मार्गोंको उसने अस्वीकार ही कर दिया। घोषित पगडण्डियाँ ही गाँवोंकी मानसिक दिशाएँ

हैं। बड़े-बूढ़ोंकी उठी हुई उँगली ही वहाँ भूत-भविष्यके अग्रिम अर्थ लिखा करती है। पर माखनलाल ग्रामीण विवशताओंकी झीनी चदरियाओंको ओढ़े, नई श्वासोंका सम्बल लिये नये युगकी सुनिश्चित दिशाओंको थामे बालपनकी मस्तीमें खोया-डूबा रहा।

जिसकी माता अपने बालपनको खेतोंकी मेड़ोंपर बिता कर आई थी और घोड़ीपर चढ़नेमें जिसे कम उल्लास नहीं मिलता था और जो लाड़लीसे अधिक लाड़-चावकी प्रियतासे उमगी-पगी रहती थी, उसके इस सपूतके शैशवमें ही उसी उल्लसित चपलता और नटखटपनके कोंपल आड़े-तिरछे कलियाने शुरू हो गये।

बच्चोंपर माता-पिताका अंकुश-अधिकार अपनी ही आन्तरिक आशाओंको आगे धकेलनेकी ज़िम्मेदारियोंसे लदा हुआ रहता है। पर भूआ और बाबाओंका अंकुश-अधिकार परिवारमें एकमात्र शिशुकी बाल-सुलभ क्रीड़ाओंसे अपने मोद और आनन्द और तरङ्गायित हृदयके व्यर्थाभिमानका प्रदर्शक बनकर बोलता है। किन्तु अपने भाइयोंपर भूआ जीका हाथ ऊँचा रहता था, इसलिए माखनलाल हर प्रकारसे भूआजीकी कुशलाई और क्षेम-बिन्दु बनकर आगे-पीछे क्रीड़ा करता था। भूआजी परिवार और मुहल्लेमें अंगारेकी तरह तपतीं और अपनी ध्यान-धारणा और पूजामें लोगोंकी श्रद्धाको अपने ऊपर रखती थीं। बड़े-बूढ़ोंकी तो बात क्या, बच्चे भी जब तक पाँच वैष्णवी पद न बोल लेते—भगवान्‌के आगे उन्हें कलेवा या भोजन न नसीब होता। हाँ, माँ अवश्य कभी-कभी छुप कर बच्चेको कलेवा दे दिया करती थी, पर उसकी नौबत भूआकी पहरेदारी में कमसे कम ही आ पाती।

चतुर्वेदी-परिवार राधावल्लभी सम्प्रदायका अनुयायी था। किन्तु माखनलालकी माताजी तो अपना इष्ट हनुमान्‌जीको लेकर आई थीं, और बावईके नृसिंह मन्दिरके ही पीछे जो हनुमान्‌जीका मन्दिर था, अपनी पूजा वहीं करने जातीं। यों वे अपने श्वसुर-गृहके इष्टकी भी पूजा

किया करतीं। यह माखनलालकी ही माताजीके संस्कार थे, कि उनके पिताजीने अपने सम्प्रदायकी समस्त रीति-नीतियोंका वैचारिक पालन करते हुए, रामायणका दैनिक पाठ अपने जीवनका एक अंग बना लिया। नियमसे वे शामको दस-बीस आदमियोंकी उपस्थितिमें रामायणका पाठ करनेमें अपने जीवनकी परम शान्ति अर्जित करते रहे। और इसी राहसे माखनलालके बाल-मानसपर वल्लभी सम्प्रदायसे अधिक, राम-परक वैष्णववादिताके अधिक चित्र अंकित हुए। किन्तु वल्लभी संस्कारोंने आपके प्राथमिक अटपटे बेतुके काव्य कौशलको अपनी राह भी दिखाई थी।

श्रीमती पार्वतीबाई पं० छोटेलालजीसे छोटी बहिन थीं, और वे अत्यधिक धर्मपरायणा थीं। उनका शासन घर भरमें सारे परिवारपर ही नहीं छओं भाइयोंपर भी चलता था। उनकी उपस्थितिमें या उनके ससुराल चले जानेपर उनकी अनुपस्थितिमें भी, यह कठोर नियम बड़ों और बच्चोंके लिए बराबर बना रहता कि जब तक भगवान्‌के सामने पाँच वैष्णवपद नहीं गा लिये जाते, तब तक किसीको भोजन नहीं मिलता था। भूआने अपनी ही गोदीमें शिशु माखनलालको वैष्णवपद धीरे-धीरे कंठस्थ कराने शुरू किये।

एक पद इस प्रकार था—

सखि कैसे करूँ मैं हाय कछु न बस मेरो।
बिन देखे साँवरो चन्द्र दृगनमें अँधेरो॥

दूसरा पद इस प्रकार था—

जोई जोई मोहे भावै सोई सोई प्यारो करै।
जोई जोई प्यारे करे सोई सोई मोहें भावै॥

तीसरा पद इस प्रकार था—

ऊधो कारे कारे सबहिं बुरै,
कारेनकी परतीत न कीजै, कारे बिससे भरे।

चौथा था—

म्हानें चाकर राखी जो।

एक 'हठी'की कविता भी पढ़ी जाती थी:—

अतर पुतायो, चौक चन्दन लिपायो,
बिछि गिलम गलीचनकी पंगति प्रमान की।
नीली हरी पीली लाल झालरें झलक रहीं
ऐसी छबि छाई आज मोतिन वितान की॥
आलै हठी नाह नेह नद्दीकर रमा रूप रद्दीकर
बैठी आज गद्दी पर, बेटी वृषभान की॥

"चूँकि मैं घरका लाड़ला बहुत था, इसलिए भूआको तंग करनेमें मुझे बहुत सुख मिलता था। इन पार्वतीबाई जीको मारवाड़ीमें पारीबाई कहा करते। रोज प्रातःकाल उठकर प्रभाती कहतीं और बच्चोंसे भी कहलवातीं। उनके छः भाइयोंमें सबसे बड़ा बच्चा मैं ही था, अतः मुझसे वे प्रभातियाँ कहलवाया करतीं। एक दिन वे **'जागिए रघुनाथ कुँवर भोर भयो प्यारे'** यह प्रभाती गवा रही थीं। भूआकी प्रभाती खतम हुई कि रजाई ओढ़े-ओढ़े दूर एक चारपाईपर मैंने एक प्रभाती छेड़ दी। भूआजी ने समझा कि मैं कोई कंठस्थ दूसरी प्रभाती गाने लगा हूँ। बहुत प्रसन्न हुईं। उन दिनों भूआजीकी प्रसन्नता और अप्रसन्नता ही हम लोगोंके परिवारका जीवन-मरण हुआ करती थी। मेरी प्रभाती थी—

उठो मेरे दोनों बैल भोर भयो प्यारे
उठो मेरे दोनों बैल करो तुम जंगल की सैल
भोर भयो प्यारे……
जंगल तुम चरो घास, अब तो छोड़ो घर की आस
भोर भयो प्यारे……

"भूआ चुपचाप अपने बिस्तरेसे दबे पाँव आईं और मेरे बिस्तरेके

पास आकर खड़ी हो गयीं कि प्रभाती सुनें। लेकिन प्रभातीमें 'बैल-वन्दना' सुनकर उन्होंने मेरी पीठमें एक लात जड़ी। मैं तो लिहाफ़ ओढ़े हुए था। लात लगती ही कैसे ? फिर बूढ़े आदमीकी लातमें ताक़त ही कितनी होती। मैं बिस्तरेसे उठकर भाग गया। और, भूआको चिढ़ाते हुए इमलीके दरख्तपर चढ़ गया। भूआ बेचारीं घबड़ाईं कि मैं दरख्तसे गिर न पड़ूँ। उन्होंने मुझे मनाकर नीचे उतार लिया। उस समय तक वे सज़ा देना भूल चुकीं थीं !

"जब मैं नन्हा-सा उन्हें तंग करता तो समस्त पारिवारिक जन और मुहल्लेवाले उससे आनन्द उठाते। जब भूआ भोजन करने बैठतीं और थालीके सामने ही भोजनसे पहले भगवान्को प्रणाम करनेके लिए दोनों नेत्र मूँदतीं, तो थालीमें से सारी पूरियाँ ही ग़ायब हो जातीं !

"हमारे गाँव बाबईमें और उसके आस-पास तरबूज और खरबूजे बहुत होते। तवा नदीकी रेतीमें हम लोगोंके भी एक दो खेत प्रायः होते और मारवाड़ीकी कोर जातिके लोग उन खेतोंको आधी बँटाईपर जोतते-बोते। एक बार भूआने बड़े प्यारसे तरबूजकी फाँकें कीं। मैंने शरारतन कह दिया, 'कैसा लाल लाल गोश्त जैसा।'

"भूआने सात सेरका फल टुकड़े-टुकड़ेकर मिट्टीमें फेंक दिया।"

"भूआ सदा लाठी लेकर चलतीं। अपने गाँव जानेके समय वे किसीके मनाये न मानतीं। फूफाजी एक सेठके यहाँ काम करते थे। उन्हीं सेठकी बैलगाड़ी जब उन्हें लेने आती और बाहर खड़ी रहती, तब चलनेसे पहले भूआ अपनी लाठी मँगवातीं। मैं अपने बाबईके दोस्तोंके साथ खेलना चाहता। सिलारी या जमनिया (जहाँ भूआ रहतीं) नहीं जाना चाहता। मुझे भी साथ चलनेका संकेत देते हुए भूआ कहतीं, 'जा, लाठी ले आ, जल्दीसे मेरी।'

"मैं लाठी ढूँढ़नेके वास्ते, उसे ऐसी जगह छिपाकर आता कि अन्तमें दोपहर हो जाता उसे ढूँढ़ने ही ढूँढ़नेमें और भूआका जाना रुक जाता।

"भूआके साथ बैलगाड़ीमें भी बैठनेमें मुझे चिढ़ थी। यदि हाँकने वाला बैलको लाठी लगा दे तो भूआ रो देती थीं। और मेरा चाव यह रहता था कि खूब बैल दौड़ाये जाँय। जब बैल खूब धीमे चलने लगते तो भूआ गाड़ीसे उतरतीं। दोनों बैलोंकी पीठपर हाथ फेरतीं और उनसे इस तरह बात करतीं कि मानो वे सब कुछ समझते हैं। किन्तु भूआकी गाड़ी तो नरसी मेहताकी गाड़ी रहती। बैल क्यों चलकर देते?

"इसीलिए जब मेरे फूफा कहीं जाते तो उनके हाईकोर्ट (!) में यह निश्चय था कि भूआ हरगिज उनके साथ नहीं जायगी। फूफाजीके साथ मुझे जानेमें बहुत आनन्द आता।

"यों गाय-बैल तो गोबर किया ही करते हैं, किन्तु आपसमें भूआ और फूफाजीको लड़ानेके लिए, अथवा जो भी भूआकी बैलगाड़ी ले जाय, उसको और भूआको लड़ा देनेके लिए मैं कहता हूँ, 'भूआ, तेरे कामला बच्छेको इतने ज़ोरसे डंडा मारा कि उसने गोबर कर दिया!' बस, ढाई-तीन घंटे तकके लिए भूआका रेकार्ड बजने लग जाता...

"जब भूआसे आकर पड़ोसिन यह कह देती कि जब तक इस लड़केको नहीं टाल दोगी, तब तक तुम्हारे घरमें शान्ति नहीं होगी, तब भूआ कहतीं, 'यशोदाके घरसे एक बार कन्हैया चला गया तो वह बेचारी ज़िन्दगी भर तड़प-तड़प कर रोई। मैं तो ऐसी भूल नहीं करूँगी।' किन्तु भूआकी शान्ति और मेरी शरारतमें सदैव युद्ध होता रहता।

"भूआने एक कुतिया पाल रखी थी। उसका नाम रखा था रमिया। पशु-पक्षी तकके नामसे उनको रामका ही बोध होना चाहिए। एक दिन भूआकी गोशालामें जाकर खूब दूरीपर मैं रमियाके पीछेके पैर खूँटेसे बाँध आया। और वो चिल्लाये नहीं, इसलिए दो बासी, काफी सूखी बाटियाँ उसके खाने लिए रख आया। जब तक बाटियाँ चुक नहीं गईं, रमिया नहीं चिल्लाई। अब भूआ हैं कि गाँव भरमें लाठी लिये ढूँढ़ रही हैं कि रमिया कहाँ गई। और मैं तो भूआके साथ हूँ ही जो रमियाके ढूँढ़नेमें

मदद कर रहा हूँ। इतनेमें गोशालामेंसे रमियाने अपना सिर ऊँचा किया। मैंने भूआकी लाठी छिपा दी। भूआ उसके पास गई और मेरे नामपर गालियोंका सर्व स्तोत्र पाठ शुरू किया। उसे छुड़ाया और उस दिन रमियाको और दिनसे डबल मट्ठा पीनेके लिए दिया गया। गरज़ यह कि टोटेमें कोई नहीं रहा!"

दूसरा परिच्छेद

विद्याध्ययन और शैशवकी क्रीडाएँ

जिस कुलमें पुरोहिती पैतृक व्यवसाय था, वहाँ पण्डिताऊ ढंग-ढबका गऊपन, दब्बू स्वभाव, विनीत शील, विद्या-बोझिल मौन, स्वार्थ-लब्ध दैन्य और 'पीपल का करिहै प्रीत नीम सूँ' वाली उदासीनता वंशके आभूषण बनकर घरसे बाहर चमकते हैं। जो पैतृक निकासी पारिवारिकताकी रक्षा के निमित्त प्रतिक्षण सशंक रहती है, उसकी गति अपने पैर स्वयं बाँधनेमें हर्षित होती है। पर जिसे यशकी गुदगुदी घरकी छतपर चढ़कर दूसरोंके घरमें झाँकनेका आनन्द देती है और गाँवसे बाहरकी चौहद्दीको नापनेकी हविश भरती है वही हर प्रश्नपर पैर आगे बढ़ानेका विवेक पके फल-सा तोड़कर लाया करती है। यह शिशु जिस खानदानमें कुलरत्न बनकर पैदा हुआ था, वहाँ दो हाथ बढ़कर स्थिति थी। विवेकको एक पलड़ेपर रख-कर चतुर्वेदियोंके दूसरे पलड़ेके बटखरे प्रचण्ड ब्राह्मणत्वके हुआ करते। चतुर्वेदी-खानदान बाबईमें जितना ही अपनी विद्याके लिए प्रसिद्ध रहा, उतना ही अपनी दृढ़ता और लड़ाई-झगड़ेके लिए भी प्रसिद्ध रहा। इस परिवारके लोगोंसे जमींदार भी पनाह माँगते और पुलिसके प्रजा-दलन कार्यमें रुकावट होती रहती। पुराने ढङ्गसे श्राप देनेमें तो नहीं, सबको सीख सिखानेमें ही उनका पहला आनन्द निहित रहता था।

उदाहरणार्थ, एक बार किसी पड़ोसीके मकानके एक दरख्तपर हरियल पक्षी बैठा था। पुलिसके सब-इन्सपेक्टरने उसे मार लिया। यह

एक अनहोनी घटना थी। किसी ब्राह्मणके घरके निकट जीवकी हत्या की गई थी। धार्मिक भावनाओंको जैसे यह जानबूझकर चुनौती दी गई थी। चतुर्वेदी-परिवारके पड़ोसकी यह घटना तो किसी भी हालतमें मौन चुप्पी पी ही नहीं सकती थी। इस घटनाको लेकर मुक़दमा चला और उस पुलिस सब-इन्सपेक्टरको नुक़सान पहुँचा।

"दूसरी घटनामें, पिताजी और जमींदार-पुत्र गाँवके बाहर झाड़ोंपर खेल रहे थे कि दोनोंमें ठन गई और लड़ाई हो गई। उसका नतीजा यह हुआ कि ज़मींदार-पुत्रकी टाँगे पकड़कर घसीटते हुए गाँवकी तरफ़ पिताजी लाने लगे। चूँकि बाबई कुछ रेतीली बस्ती है, इसलिए जमींदार-पुत्रको अधिक चोट न आ पाई। पर स्थिति बिगड़ती, इससे पहले लोगोंने दौड़ कर जमींदार-पुत्रको बचा तो लिया, किन्तु दोनों घरोंमें लड़ाई ऐसी रही कि दोनों परिवार एक-दूसरेको बहुत सालोंतक शत्रुकी तरह देखते रहे।

"पर, जमींदार-घरसे शत्रुता ठन जानेपर भी, जब श्रीमद्भागवत या कोई और कथा होती, तो गाँवके और अन्यान्य इलाक़ोंके इतने अधिक लोग उन कथाओंमें शामिल होते कि जैसे गाँवमें सर्वाधिक लोकप्रिय केवल चतुर्वेदी ही थे। और इन्हीं कथाओंके कारण पं० छोटेलाल और पं० वंशीधरका दूरके इलाक़ों तकमें श्रद्धा और प्रभावका खूब बोलबाला रहता और गाँवके छोटे-मोटे मामलों-फ़ैसलोंमें तथा मन्दिरोंके निर्माण और उनकी जायदादकी व्यवस्थामें पं० छोटेलाल और पं० वंशीधर अत्यधिक पूछे जाते।"

ऐसे परिवारमें बालक माखनलाल जिस निर्भय सूझ-बूझ और उद्दंडी नटखटपनकी करतूतें करने लगा था, उससे उसके पिताको चाहे अधिक हर्ष न हुआ हो, पर उसके बाबाओं (ताऊओं) को अवश्य बालक की इन करतूतोंपर दूसरे तौरसे सोचनेके लिए कभी बाध्य न होना पड़ा।

जिस प्राइमरी स्कूलमें पिताने प्राथमिक शिक्षा पाई थी, वहीं माखन-लालको प्राइमरीमें बैठा दिया गया। अब तक श्रीनन्दलाल चतुर्वेदी सर-

कारी नौकरी पा गये थे और इस नौकरीमें मेधावी अध्यापकका अर्थ यही था कि वह स्थान-स्थान भेजा जाय और गाँव-गाँवके अनुभव दूसरे गाँव-गाँव बाँटता फिरे। जिस समय माखनलाल होशकी पहली किरणें पा रहा था, उस समय उसके पिता छिदगाँवकी शालामें प्रधानाध्यापक थे। उनके मन की चाह अवश्य थी कि बालकको अपनी आँखोंके आगे रखकर शिक्षित किया जाय, पर बालकके बाबा और भूआ उसे बावईमें ही रखनेके पक्षमें थे। अधिक फजीहत उसकी शरारतोंसे न हो, इसीलिए शिक्षा देनेके उद्देश्यसे तो इतना अधिक नहीं, बल्कि कुछ बन्धनमें पड़ जानेके खयालसे उसे स्कूल भेजा गया था। लेकिन भूआ और बाबाओंके लाड़से सराबोर बालक भला प्राइमरी शालाका बन्धन पहले ही क्षण कैसे स्वीकार कर लेता?

उन दिनों बावई ही नहीं, समस्त प्रदेशोंमें विद्याका पठन-पाठन विद्यार्थियोंके लिए और अध्यापकोंके लिए एक अवर्णनीय सरदर्द था। पाठ शाला तब चल पाती थी, जब वे घर-घर जाकर विद्यार्थियोंको पकड़कर ला पाते थे। इसलिए गुरुको पहले शालामें जानेकी आवश्यकता नहीं थी, विद्यार्थियोंको डरा-धमकाकर, कान पकड़कर, कठोर दण्डसे भयभीतकर घरसे लाते थे। और उन्हें ऐसे सख्त नियंत्रणमें बाँधकर रखते थे कि वे चाहें तो भी पाठशाला जानेके लिए हर हालतमें विवश तो रहें ही। माखनलाल और उसका साथी प्यारेलाल गुरु पढ़ें कम, स्कूलमेंसे ग़ैर-हाज़िर अधिक रहें। आखिर स्कूलके चपरासी शेख़जीने एक दिन यह काम अपने जिम्मे लिया कि वह इन दो बालकोंको जहाँ भी हों, ढूँढ़कर लाये। उस शेखज़ीसे बच्चे थर-थर काँपते थे। यही बात नहीं, हेडमास्टर-को छोड़कर, अन्य अध्यापक व मानीटर भी भयभीत रहते थे। न जाने वह कब, किसीको भी ठीकसे पढ़ानेमें असावधानी बरतनेके कारण डरा-धमका या अपमानित कर दे। शेखजीको पता चला कि माखनलाल और उसका साथी तो गाँवके बाहर जो तालाब है, उसमें नहा रहे हैं। वे

उसमें दिनके सबसे अधिक घण्टे नहाया करते हैं, यह दूसरी सूचना मिली। शेख़जीने शायद यही सोचा कि इन बच्चोंका, दूसरे बच्चोंकी तरह आख़िरी इलाज करके ही दम लेना है। तालाबपर जो पहुँचे तो मन्दभागी और मन्दबुद्धि पेड़े-पेड़िये (भैंसके बच्चे) वे जल-बिहार तो क्या कर रहे हैं, समय नष्ट कर रहे हैं। शेख़जीने तुरन्त ही यह तय किया कि बिना पानीमें उतरे इन बालकोंको चंगुलमें नहीं किया जा सकता। और आज इनका इलाज कर ही डालना है। आपने लम्बा कुरता पहन रखा था, इसलिए पाजामा उतार तालाबके ऊपर ही रख देनेमें आपको कोई एतराज नहीं लगा। पाजामा भींगनेसे बच जायगा, कुर्ता इतना लम्बा है ही कि उससे लाज ढँकी रहेगी। आपने पाजामा उतार पानीमें प्रवेश किया। उधर शेख़जीने जिन्हें कुन्दबुद्धि समझा था, वे तीक्ष्णबुद्धि बालक निकले। शेख़जीने बायेंसे जो प्रवेश किया तो बालकोंने दायें वह डुबकी लगाई कि पलक झपकते पानीके अन्दर होसे सीधे तालाबके तटपर पहुँचे, तालाबपर चढ़े और पलक झपकते ही . . . . . . अपने छोटे-छोटे पैरोंमें शेख़जीकी पजम्मी भी चढ़ा ली और पार बोले !

अब तालाब ख़ाली है और शेख़जी ज़हाजके पंछीकी तरह चारों-ओर नज़र दौड़ा रहे हैं कि हरामख़ोर बालक कहाँ गायब हो गये हैं ? जब ढूँढ़-ढूँढ़कर थक गये तो हारे-पिटे-से बाहर निकले कि आख़िर भागकर जायेंगे कहाँ ? अभी शेख़जीका लम्बा हाथ उन्हें आसमानकी बाँहोंसे भी पकड़ लायेगा। हाय, तालाबपर जो पहुँचे तो पजम्मी गायब। अब तो शेख़जी भुनभुनाकर जो जड़वत्-से हुए तो रो-से आये। क्या करें। इस नंगी हालतमें कहाँ जायँ ? मजबूर, आहत, वहीं अपने कुर्तेसे अपनी टाँगोंको ढँकते हुए बैठ गये। जब गाँवकी औरतें तालाबपर आईं तो आपने उनसे हाथ जोड़कर अर्ज की कि वह नन्दलालका छोकरा मेरा पजम्मी ले भागा है, ज़रा उसके घरपर कह कर भिजवइयो।

गाँवभरमें ख़बर फैली। एक विनोद–हास्यसे सभी भर उठे। शेख़जी

का पजम्मा तालाबपर भिजवाया गया। शेख़जीने तब जाकर उसे पहना···

दूसरे या तीसरे दिन माखनलालकी पिटाई हुई या क्या हुआ, यह यहाँपर ख़ास अहमियत नहीं रखता। पिटाई स्कूलमें जहाँ तवेसे उतरी रोटीकी तरह चूल्हेकी आगमें सेंकनेकी मानिन्द ज़रूरी समझी गई हो, वहाँ पिटाईका पुरअसर जोश सोडावाटरके खुलने-सा नहीं रह जाता, वह बस हो जाता है मजबूरीमें धूपमें रखे मटकेका गरम पानी पीकर जीवित रहनेका दयार्द्र, पर अर्थहीन एक एकांकीभर।

गाँवके बालकोंकी पिटाईका एक दूसरा अर्थपूर्ण अर्थ भी होता ही है। गाँव सीमित और गिनी-चुनी श्वासोंका जैसे एक छोटा खलिहान है। हर ग्रामीणकी कोशिश यही रहती है कि उसका बालक पिटकुट कर भी आख़िर यह सीख जाय कि उसे अपनी टाँगोंमें पंख बाँधकर गाँवके दायरेसे बाहर उड़नेकी हविश मनमें न लानी चाहिए और इसी गाँवमें जीवन बसर करनेका शऊर सीखना चाहिए। पढ़ाया-लिखाया तो इसलिए जा रहा है कि वक्तपर हाकिमके सामने ज़रा दो बात कर सके। वरना तो इस झोंपड़ेमें पढ़ाई क्या खाकर सिर ऊँचा उठा सकेगी। इस छोटेसे झोंपड़ेमें तो घुसते ही और बाहर निकलते ही अगर सिर न झुकाया जाय, तो सिरपर लगी बल्लीसे सिर फूटनेकी नौबत हर घड़ी हाज़िर रहती है!

पर माखनलाल पिटाईमें पक्के। घरपर पिटाई हो और स्कूलमें पिटाई हो, तो उससे चमड़ीकी पक्काई और रँगाई होती चली गई, पर नटखटपनमें फ़र्क न आया। जब और काम न हो, तो तालाबके नीचे गाँवकी हद्दीपर ही ऊँचा पीपलका पेड़। उसके नीचे अपने साथियोंकी टोली जमाये गोलियों और गिट्टियोंका खेल चलता ही रहता था। सिर झुकाकर जीवित रहनेकी नौबत क्या है और किस तरह सीखनी है, ये सब बातें उसके ज़हनमें समा न पाई थी।

बाबई भोपालसे आठ मील दूरीपर बड़ा मार्केट था। वहाँ सभी चीज़ें

बिकने आती थीं। और रुईका तो इतना बड़ा बाज़ार था कि रुईके तगड़ों (बोरों) का ढेर इस बाज़ारसे उस बाज़ार तकके खुले स्थानोंको पाट किये रहता था। बालक माखनलाल और उसके साथी उन तगड़ों-पर ही खेलते हुए एक बाज़ारसे दूसरे बाज़ारमें पहुँच जाया करते थे।

बाबई गाँवसे सात मील दूर, मध्य रेलवेका बागड़ा स्टेशन था, जिसका नाम अब बागड़ा-तवा हो गया है। वहाँ स्टेशनको सामने और दायें सतपुड़ाकी एक सबल पर्वतमालाने आवृत कर रखा है। उस पर्वतकी घाटियोंके बीचसे निकली हुई नदी तवा है, जिसका पाट बहुत चौड़ा है। और कुछ स्थानोंपर तो उसका पाट छः फर्लांगसे भी अधिक है। जब तक तवा घाटियोंके बीचसे बहती है, उसका अन्तराल निरवलम्ब नहीं रहता। पहाड़ोंकी कराल काल-सी जिह्वाएँ इस नदीको जैसे अपनी रक्तवाहिनी मानती हुई, उसकी रक्षाके निमित्त जबड़े खोले सतर्क रहती हैं। रेलकी बात तो ख़ैर दूसरी है, उसने पहाड़ोंकी और पर्वतमालाओं की और उसकी कन्दराओंकी और पातालदर्शिनी घाटियोंकी अलंघ्यता तकको अपनी एकमेव, एक स्तर गतिसे निरस्त्र बना दिया है—और उसकी भयावहताको रेलकी खिड़कियोंसे अभयप्रदायिनी दृश्य-प्रियताका रूप दे दिया है। पर गगनचुम्बी नग्न वक्षको आकाशकी नीलिमासे स्नान कराते हुए पर्वतमालाओंकी चट्टानें, जब हिंस्र पशुओंसे रक्षित, अपनी शुचिताकी उच्च प्राचीरोंमें किसी उद्धत-स्वभाव, उच्छृङ्खल अनुरक्त बालकको मौज़में देख लें तो क्या उसे अपनी नीरव भयंकरता तकसे भाग जानेके लिए विचलित न करें। जब दो बित्तेके गाँव बाबईके एक बालिश्तभर बाज़ार और अन्य संकुचित स्थानोंपर किसी नई घटनाके मूल अभिनयका अवसर हाथ न लग पाता तो बालक माखनलाल अपने एक-दो साथियोंको लेकर वहाँ रेल-पुल और बोगदाके आस-पास भाग जाता। मौज़की-मौज़ और शामको घरके लोग ढूँढ़ते हुए आयें, उसका एक आन्तरिक मीठा सुख!

माखनलाल मात्र व्योमचारी काग़ज़का खिलौनाभर कैसे रह सकता था। उसके जीवनमें भी प्रकरण आ रहे थे, और उन प्रकरणोंको घटनाओंका स्थूल रूप देनेकी धुन उसमें अजीब रूपसे आकुल बनी रहती थी। नटखट स्वभाव उस समय तक उसपर भारग्रस्त बना रहता, जब तक कि वह किसी-न-किसी घटनाको एक अनगढ़ी कहानी न बना लेता। शिक्षाक्रमके इस दौरमें बाल-सुलभ चपलता ही झोंपड़ों और टप्परैलोंकी उस दुनियामें होशके नये मार्ग खोजा करती।

"जब मैं बाबईमें पढ़ता था, उन दिनों हरदौलका चरित्र गाकर सुनानेवाले लोग बाबईमें भी थे। हरदौलका चरित्र बुन्देलखण्डके घर-घरमें एक पवित्र कथाके रूपमें आबाल-वृद्ध-नारीको कण्ठस्थ है, और उसे बार-बार सुनना सबको प्रिय लगता है। आल्हा-ऊदलके छन्दोंमें जब हरदौलका चरित्र गाकर सुनाया जाता, तो मैं बड़े चावसे सुनता।

"हरदौलके नामपर जिस तरह बुन्देलखण्ड भरमें दो बड़े-बड़े बहुत ऊँचे और काफ़ी मोटे खम्भे भिन्न-भिन्न गाँवों और क़स्बोंमें गड़े होते, उसी तरह बीच बाज़ारमें बाबईमें भी गड़े थे। उस स्थानको गाँवके लोग 'वीरबब्बू' कहा करते।

"जबसे हरदौल-चरित्र मैंने सुना, मुझे और मेरे साथी कुछ विद्यार्थियोंको लत लग गई थी कि हम वीरबब्बूके खम्भोंपर ऊँचे-से-ऊँचे चढ़नेका यत्न करें। पर पूरी ऊँचाई तक हममेंसे कोई चढ़ नहीं पाते थे। थोड़े बहुत चढ़कर नीचे फिसल आते थे।

"किन्तु, आख़िर मैं एक दिन ऊपर तक चढ़ता ही तो गया और सबसे ऊपर जा पहुँचा। पहुँच गया तो जाकर जमकर बैठ भी गया। सफलताकी घोषणा उसी तरहसे हो सकती थी! इसी बीच मेरी भूआको ज्योंही यह पता चला, वे दौड़ी हुई आईं और मुझे नीचे आनेके लिए उन्होंने कितना नहीं मनुहारा। मेरे दादाजी भी इस समय तक स्थलपर आ चुके थे। जब मैं नीचे उतरा, और घर पहुँचा तो माँने देखा कि वीर-

की सीमापर बसा है। यहाँकी जनसंख्या ११०० से ऊपर है। यहींपर गंजाल और मोराँ नदीका संगम है। पहले यहाँकी प्रकृतिस्थलीमें फैली हुई पहाड़ीधाराओंकी गहन घाटियाँ प्रसिद्ध ठगोंकी क्रीड़ास्थली थीं। वे तीर्थयात्रियोंका रूप धारणकर राहगीरोंको लूट लिया करते थे। यहाँपर ही वह प्रसिद्ध पत्थर शाहजूरी मिलता है, जिसपर चाँद और वृक्ष आदिकी छवि अंकित हुई झिलमिलाती है। यहाँपर प्राइमरी स्कूल और पोस्टआफ़िस है।

जब तक भूआका स्नेह-दुलार प्रबल रहा, माखनलाल बाबई ही में रहा। लेकिन अब उसकी उम्र व्यवस्थित रूपसे पढ़नेकी हो गई थी। पिताजी और माताजीने कुछ दिन उसे अपनी आँखोंके आगे पढ़ानेकी छूट ली और वह छिदगाँव बुला लिया गया। यहाँपर श्री नन्दलालजी स्वयं [illegible] थे। उन्होंने अपनी आँखोंके नीचे, शैतानीसे भरे पुत्रको आखिर गम्भीरतासे शिक्षित करनेके लिए भर्ती कर लिया।

लेकिन बाबई यदि माखनलालके शैशवका बिना होशका प्रकरण है, तो छिदगाँव उसके होशका जानबूझकर रचा गया परिच्छेद है। शिक्षा-क्रम उसका अवश्य एक दिशामें जड़ें पकड़ने लगा था। अध्यापक पिताकी प्रतिभा अपने संस्कार लेकर प्रकट हुई। माताका जो भी संक्षित संरक्षण मिला, उसने दुलारसे अधिक कर्तव्यकी परिधि उसके चारों तरफ़ खींच दी।

पर पिटाईका क्रम अनबूझे, अनजाने नियमित न रहा, तो अनियमित भी हुए बिना उससे न रहा गया....

तृतीय परिच्छेद

माता और पिताके प्रज्ञा-चक्षुओंका दृष्टि-दान

"पिताजी मेरी स्मरणशक्तिसे बहुत नाराज़ रहते थे। कारण यह था कि मुझे कोई भी पाठ बहुत जल्दी याद हो जाता था। यहाँ तक कि हिन्दीकी पहली क्लासकी पाठ्यपुस्तकके पाठ आज मुझे ६९ वर्षकी उम्रमें भी याद हैं। परन्तु बड़े पाठोंमें, स्कूल जानेके पहले यदि पुस्तक मुझे मिल जाती तो, मैं चीज़ोंको तुरन्त याद कर लेता। पिताजी ही हमारी शालाके प्रधानाध्यापक थे, अतः वे जब प्रश्न करते कक्षामें, मैं उनके प्रश्नोंके बराबर उत्तर दे देता। किन्तु उन्हीं प्रश्नको महीने डेढ़ महीने बाद जब वह अचानक पूछ बैठते, तो वे ही सीधे-सादे प्रश्न मुझसे न बनते, मैं उनके उत्तर नहीं दे सकता था।

"पिताजी मेरे खिलाड़ीपनसे नाराज़ होकर मुझे नियमित पाठ याद करनेमें लगाना चाहते और मैं समयपर याद करके प्रश्नोंके उत्तर दे देता। किन्तु विषयका ज्ञान मेरे पास कुछ न रह जाता। तब मुझे लगातार पढ़नेमें लगानेके लिए पिताजीने यह उपाय किया कि जो तिथि वे विद्यार्थियोंकी परीक्षा लेनेके लिए नियत करते और वह तिथि दो ढाई महीने पहिले बता देते, किन्तु जब परीक्षाके १५ रोज़ रह जाते, तब वे मेरी सब किताबें छुपाकर रख देते। इसकी सूचना भी वे मुझे दे देते कि अभी पढ़ना है तो पढ़ लो, परीक्षा तिथिके १५ रोज़ पहले तुम्हारी किताबें छिपा ली जायँगी। किन्तु मैं तो न पढ़ता, सो न पढ़ता!

"मैंने पिताजीके इस उपायका प्रति-उपाय ढूँढ़ लिया था। मैं दूसरे लड़कोंकी पुस्तकें उनके घर जाकर पढ़ लेता और पिताजीकी परीक्षाके दिन सर्वश्रेष्ठ होकर पास हो जाता। पिताजी इसे अपनी सफलता मानते, और सोचते कि पुस्तक छुपानेका उनका नुस्खा कारगर हुआ।

"पाठ्यपुस्तकोंके सिवाय अन्य पुस्तकें पढ़नेका मुझे सदा चाव रहा। भूआको पुस्तकें पढ़कर सुनानेके लिए मैं बहुत देरतक बैठ जाता और वे सब कथा-कहानियाँ मुझे याद रहतीं। यदि गाँवमें कहीं कोई कथा-वार्ता होती, तो मैं पहुँच जाता। इस तरह बाहरकी पुस्तकें पढ़नेका चाव मुझमें बचपनसे ही पैदा हो गया था। अपनी पाठ्यपुस्तकोंमें तो मुझे पंचतंत्रकी कहानियाँ भली लगीं, जिन कहानियोंसे कठिन और लम्बे-लम्बे पाठ बनाकर उन [illegible] दिये गये थे जो चौथी कक्षा (प्राइमरी) में पढ़ाई जाती थीं। और जिन्हें पण्डित विनायकराव (सुपरिण्टेण्डेण्ट, नार्मल स्कूल, जबलपुर) ने बनाया था।

"छिदगाँवमें हमारा घर बाज़ारमें था। मकानके सामने इमलीका झाड़ था। मकानके बायीं ओर मालगुज़ारकी गोशाला थी। और उसके पिछले सिरेपर वह पाठशाला, जहाँ मैं पढ़ता था। छिदगाँवके मालगुज़ार भास्करराव जीके छोटे पुत्र केशवराव मेरे साथ पढ़ते थे। एक बार उनकी गोशालाके सामनेके मैदानमें मकई बोई गई। केशव मेरे पास आये और हम दोनोंने तय किया कि मकईके भुट्टोंकी चोरी की जाय। वहाँ जानेका एकमात्र मार्ग या तो उस स्कूलकी दीवारपर चढ़कर था, जो हम लोगोंके लिए बहुत ऊँची थी। या फिर हमारे मकानकी बागड़ लाइनपर था। मैं और केशव मेरे पिताजीके बाहर चले जानेके बाद मकईके बाड़ेमें घुस गये, किन्तु जब मेरी तलाश घरमें हुई तब हम लोग गोशालाकी ओरसे स्कूलकी दीवारपर ज्योंही चढ़े, उस समय हम दोनोंके पास मकईके भुट्टे थे और उधर स्कूलमें अखाड़ेके डबल बारका मुआयना करते हुए पिताजी खड़े थे—जिन्होंने हमें दीवालपर देख लिया, और हम लोग

चुपचाप, शिथिल होकर खड़े हो गये और मकईके भुट्टे हम लोगोंके पाससे गिर पड़े।

"हम दोनोंको लेकर पिताजी मालगुज़ार भास्कररावजीके पास पहुँचे और वहाँ कहा, 'आपके मकईके भुट्टोंको चुराते हुए मैं दो चोरोंको पकड़कर लाया हूँ।'

"मालगुजार क्रोधित होनेके बजाय, प्रसन्न होकर मुझसे बोले, 'एक भुट्टा छीलो और गिन कर बताओ कि उसमें कितने दाने हैं।

"पिताजी बीचमें कहे जा रहे थे कि ये स्नेह और कृपाके हक़दार नहीं हैं, इन्हें सजा मिलनी चाहिए।

"भास्कररावजीने कहा, 'जरा ठहरिये।'

"मैंने भुट्टा छीला तो पता चला कि हम लोगोंने जल्दी तोड़ लिये, उनमें दाने पड़े ही नहीं थे। हम अपने कार्यसे बहुत दुःखी हुए। क्योंकि जब हम लोग छोड़ दिये गये तो हमने इस बातका दुःख नहीं मनाया कि हमने चोरी क्यों की, किन्तु इस बातका दुःख हुआ कि विना दाना पड़े हुए भुट्टे चुरानेके लिए हम लोगोंने इतनी जहमत क्यों उठाई ?

"मेरा और केशवरावका साथ कक्षामें बराबर बना रहा। कभी वे प्रथम आते और कभी मैं। किन्तु हम दोनों पिताजीकी अदालतमें सदा दण्डके पात्र बने रहते। क्योंकि उनका इलजाम रहता कि तुम लोगोंको क्षणिक रूपसे पाठ जल्दी याद हो जाता है, किन्तु तुम लोग मेहनत नहीं करते। बस, यही कारण उनकी नाराज़ीका रहता...

"हमारे मकानके सामने बाज़ार था। सामने ही कुछ शिकारी कही जानेवाली जातियोंकी झोपड़ियाँ थीं। बीचमें बाज़ार लगता था। और उसके दूसरे सिरे पर एक कुम्हारका मकान था, जिसकी गाँवमें बहुत प्रतिष्ठा थी। उस मकानसे लग कर मालगुज़ारके जमादार विलायत खाँका मकान था। उनका लड़का नजरअली मेरे साथ पड़ता था। वह कदा-

चित् मुझसे एक साल आगे था। नजरअलीको गतकाफरी सिखानेके लिए रेलवेके एक चौकीदार आया करते थे। वे भी मुसलमान थे। सारे गाँवमें वे उस्ताद कहे जाते थे। त्योहारोंपर वे कभी-कभी शराब पीते थे और उसके बाद भुने हुए चने खाया करते थे। मेरी भूआ नजरअलीके साथ मेरा खेलना पसन्द नहीं करती थीं। किन्तु पिताजी गतकाफरी सीखनेके लिए मुझे नित्य नज़रअली और उनके उस्तादके पास भेजते थे। गतकाफरी सीखनेके लिए मालगुज़ारके यहाँके अर्थात् केकड़े परिवारके कुछ लड़के भी नित्य उस्तादके पास आया करते थे। आज भी जब रेल-गाड़ीसे मैं टिमरनीसे आगे बढ़ता हूँ तो उस्तादकी चौकी, गाँव तथा गंजाल नदी रेलकी खिड़कीमेंसे देख लिया करता हूँ।

"नज़रअलीके पड़ोसमें कलारकी दुकान थी। कलारकी मृत्यु हो चुकी थी। उसकी पत्नी गिलसिया कलारिन ठेका लिया करती थी। उसका छोटा लड़का द्वारका मेरे साथ पढ़ा करता था। गिलसियाकी दुकानमें नमक, गुड़, शक्कर आदि काफ़ी वस्तुएँ भी मिलती थीं। कभी-कभी द्वारका अपनी दुकानसे नारियल चुरा लाता। मैं अपने घरसे गुड़ निकाल ले जाता और गाँवके कुछ लड़के अपने-अपने यहाँसे चीज़ें निकालते। हमलोग विमान सजाते, उसमें कृष्णकी मूर्ति बैठाते। बाजे बजाते हुए नालेपर जाते और फिर प्रसाद बँटता!

"कितनी ही बार तो घरकी चीज़ें इतनी तादादमें हमलोगोंका महा-प्रसाद बन जातीं कि मेरी माँ खीज उठतीं और बहुत कोसतीं। जब पिताजी संध्याके समय अपने परम मित्र नारायण बढ़ईके आँगनकी मुँडेरपर बैठकर रामायणका अर्थ बताते जाते, तथा उनके पुत्र और शालामें छोटी क्लासोंको पढ़ानेवाले मानीटर शिवचरण रामायण पढ़ते जाते, तब लोग बड़े चावसे और श्रद्धासे रामायण सुननेके लिए आते।

"चुटकुले, उपमा, छोटी कहानियाँ, मुहावरे और उक्तियाँ मेरे पास अधिकांशमें अपने पिताजीकी ही दी हुई हैं। वे जब गाँवमें अपने किसी

परिचितसे बात करते, तब इन चीज़ोंका उपयोग किया करते और कुतूहल वश लगातार सुननेके कारण वे मुझे याद रह जातीं।

"कस्तूराबाई मुझसे लगभग छः वर्ष छोटी है। मेरे जन्मके बाद एक लड़का जिसका नाम मिश्रीलाल था और एक लड़की और हुई थी। कस्तूराबाई यद्यपि माँकी चौथी सन्तान थी, किन्तु यों हम घरमें पीठपाँव कहलाते थे। कस्तूरा छोटेपनसे ही मेरी छोटी-मोटी बातोंकी शिकायत माँ और पिताजीसे कर देती थी। परिणामस्वरूप मैं घरमें झाड़ें खाता, गालियाँ खाता और कभी-कभी पीटा भी जाता। किन्तु मेरी अदालतमें विवेक क्यों होने चला। मैं कस्तूराकी हर हरक़तपर पिताजी और माँकी ग़ैरहाजिरीमें खूब पीटता। वह अपना सप्तम स्वर छेड़ते हुए जब माँ या पिताजीके पास जाती तब मैं घर ही नहीं जाता। किन्तु जब माँ या भूआ लाठी लेकर बैठे होते कि मैंने उनकी बिटियाको पीट दिया है और वे मुझे सज़ा दें, तब मैं उन्हें किसी झाड़पर चढ़ा हुआ मिलता। और बजाय लाठी मारनेके वे हाथ जोड़कर मुझे नीचे उतर आनेको कहतीं।

"एकबारकी बात है, मेरी यही बहन कस्तूराबाई कोई डेढ़ वर्षकी होगी, मैं कोई आठ वर्षका। माँ मुझसे कह गईं कि मैं नदीपर जा रही हूँ, लड़कीको बुखार है। तेरे पिता स्कूल गये हैं। तू खटियापर ही बैठे रहना, कहीं जाना मत।"

"मेरे लिए तो यह सजा थी। आखिर मैं खटियापर बैठा रहा। खटियाके नीचेसे निकली एक बिल्ली। मैंने उसकी दुम पकड़ ली और बहनके ऊपर लटका दिया। बहन बहुत रोई-चिल्लाई उस बिल्लीको अपने ऊपर लटके देखकर। पर वहाँ उसका रक्षक कौन था?

"माँ जब आईं, तब बहन ने अपनी तोतली बोली में मेरी सारी कार-गुजारी कह सुनाई। माँ ने काफ़ी अच्छी मरम्मत की।

"थोड़ी देर बाद बहनको देखने वैद्यजी आये। उन्होंने कहा, 'इसके तो बुख़ार है ही नहीं!

"बात यह थी, बिल्लीके भयसे बहनको खूब पसीना आया था और उससे उसका बुखार उतर गया था।"

माखनलालने होली जलाई

किन्तु घरमें ही नहीं, गाँवमें भी कुछ ऐसी घटनाएँ माखनलाल और उसके गिरोहने रचीं कि अपने आपमें वे एक इतिहास ही हो गईं। महाराष्ट्रमें एक विशेष संप्रदाय हरिदास नामसे रहा है। वह केवल कथा ही एक विशेष लहजेमें, खड़े होकर कहा करते हैं। उनके साथ सदा मृदंग और तानपूरा भी रहता है। वे गा-गाकर कथा सुनाते हैं। उनकी आधी कथामें कथाका तत्त्वदर्शन निरूपित होता है और आधी कथाको वे गाकर सुनाते हैं। महाराष्ट्रमें यह सम्प्रदाय बहुत ही बलवान रहा है। धार्मिक ग्रन्थोंके ज्ञान तथा भक्तिके प्रसादको पौराणिक कथाओंमें मिलाकर इस संस्था ने महाराष्ट्र देशके ग्रामीणों तक पहुँचाया है। लोक जीवनने अपने बीच इनको प्रिय स्थान भी दिया और अपनी श्रद्धा भी उनके कार्योंके लिए अत्यधिक मात्रामें सुरक्षित रखी है। छिदगाँवमें भी एक हरिदास परिवार था। वह सहसा ही माखनलाल और उसके ततइएनुमा छत्तेके गिरोहको हाथ लगा बैठा। और बस...

"एक बार होलीके बहुत दिनों पहले, हमने होलीका डंडा भी गाड़ दिया और उसके इर्द-गिर्द होलीकी लकड़ियाँ भी इकट्ठी करनी शुरू कर दीं। ये लकड़ियाँ जंगलसे तोड़कर कम लाई जातीं; होलीकी रसममें जिसकी छूट है, रातको घर-घरसे चुराई हुई लकड़ियाँ ही अधिक एकत्र की जातीं।

"उसी सिलसिलेमें हम पं० हरिदासजीके यहाँ पिछवाड़े उनके बाड़ेमें रखी कुछ लकड़ियाँ भी एक रात उठा लाये और उनको भी तरतीबसे होलीके डंडेके इर्द-गिर्द सजा दिया। जब हरिदासजीको पता चला तो उन्होंने दूसरे ही दिन अपनी बैलगाड़ी जोती और होलीके डंडेके पास पहुँच गये। वहाँ उन्होंने न सिर्फ़ अपनी लकड़ियाँ ही बटोरीं और अपनी

गाड़ीपर लाद लीं, बल्कि हम जो दूसरे-दूसरे स्थानोंसे बड़ी परेशानियोंके बाद लकड़ियाँ उठा कर लाये थे, उन्हें भी अपनी गाड़ीमें लाद ले गये। हमने यह देखा, पर चुप्पी लगा गये। हरिदासजीने सोचा कि इस तरह उनकी विजय हुई।

"इधर होली पास आती जा रही थी। अब सिर्फ़ उसके दो दिन रह गये थे। लेकिन होलीका डंडा निपट अकेला, बिन लकड़ियोंके सूना पड़ा हुआ जैसे हमें हमारे कर्तव्यकी याद पुकार-पुकार कर करा रहा था। इसी रात हम सबने मिल कर एक योजना बनाई। इस स्कीममें मालगुज़ारके लड़के बाबूराव और मेरी छोटी सेना शामिल थी।

"फाल्गुनमें गरमियाँ शुरू होते ही लोग अपने घरोंसे बाहर सोने लगते हैं। हरिदासजीके घरके बग़लसे सड़क निकलती थी और सड़कके इधर मालगुज़ारोंकी गोशाला थी। और इसी गोशालाके सामने एक रिसली या गोंदीका पेड़ था। इधर हरिदासजीके बाड़ेमें सड़कसे लगा ऐसा बाड़का फाटक था, जिसको आड़े-तिरछे बाँसोंको बाँधकर तैयार किया गया था और जिसमें खोलनेके लिए तो एक तारका खाँचा था और दूसरी तरफ़ रस्सीसे जिसे एक खूँटेसे बाँधकर रखा गया था।

"पहले तो हमने गाँवभरके गधे इकट्ठे किये। अपने मकानके सामने हरिदासजी और उनके परिवार-जन अलग-अलग चारपाइयोंपर सो रहे थे। उन चारपाइयोंके बीचमें इतनी जगह अवश्य थी कि उनमें एक-एक गधा खड़ा किया जा सके। पहले तो चुपकेसे हमने उनके बाड़ेके दरवाज़ेका वह तार वाला खाँचा उठाकर खोला और चुपके-चुपके ऐक-एक गधेको उन चारपाइयोंके बीचमें लेजाकर खड़ा करना शुरू किया! मुश्किलसे पाँच ही गधे वहाँ ले जाकर करीनेसे खड़े किये जा सके। क्योंकि एक तो और जगह न थी और दूसरे यह डर भी था कि कहीं वे कम्बख्त गधे चीखना-चिल्लाना शुरू न करें, अन्यथा सारी स्कीमके ठप्प

होनेका डर था। इसलिए बाक़ीके गधोंको भगा देनेके अलावा दूसरा चारा न था।

"अब हम गोंदीके पेड़पर बैठ कर प्रतीक्षा करने लगे कि वे पाँचों गधे चिल्लाना शुरू करें तो हमारा काम बने।...आखिर उनमेंसे एक गधा ढेंचू-ढेंचू चिल्लाया और उसके साथ दूसरे गधे भी चिल्ला उठे। लेकिन गधा जब चिल्लाता है तो उसके साथ नाककी दिशा भागता भी है! पर उनको भागनेका रास्ता था ही कहाँ? वे चारपाइयोंको ही अपने पैरोंकी दुलत्तियोंसे अस्तव्यस्त कर सकते थे। पर इससे पहले ही हरिदासजी और उनका घर भर जाग गया। हाबड़ ताबड़में जो उन्होंने बाड़ेका फाटक खोला तो वह खड़ाकसे नीचे गिर पड़ा। उसके खुलते ही हम लोग पेड़से कूद-कूद कर मालगुज़ारकी गोशालामें फाँद कर भागने लगे। हमें भागते देखकर हरिदासजी भी सपरिवार डंडा लेकर पीछा करते हुए भागने लगे।

"हमने यह किया कि पहले तो छिंदगाँवसे टिमरनी जाने वाली सड़कपर भागना शुरू किया और उसके बाद रेलकी लाइनोंको लाँघ कर तूहरके खेतोंमें घुस गये।

"अब माजरा यह था कि हरिदासजीके साथ उनकी पत्नी और उनके बच्चे भी हम सबके पीछे भागे चले आ रहे थे। किन्तु हम तो उस खेतमें घुसकर छोटेसे रास्तेसे तुरन्त वापस लौट आये। खेतोंकी तूहर तब तक कटी न थी। और, वापस आकर हरिदासजीकी गाड़ी जोती और उसमें उनकी सारी खाटें, खेती वाला लकड़ीका सामान और जो भी लकड़ीका सामान हाथ लगा, फ़ौरन लादकर होलीके डंडेके पास जाकर सजा दिया। यद्यपि होलीमें अभी एक दिन बाक़ी था, पर हमने तो एक दिन पहले ही वह होली मनाई और उस सारे सामानमें आग लगा दी!

"जब हरिदासजी अपने परिवारके साथ हारे-माँदे लौटे और उन्होंने अपने घर पर काफ़ी सामान ग़ायब पाया और साथमें ही ग़ायब पाई

बैलगाड़ी और उसके बैल, तो वे सभी दुबारा दौड़े हुए होलीके डंडेके पास पहुँच चुके थे। उस समय तक होलिका-दहनमें उनका तीन चौथाई सामान फुँक चुका था। अब, दौड़े हुए हरिदासजी मेरे पिताजीके पास पहुँचे। इस तरहकी बदमाशी माखनके सिवा और कोई कर ही नहीं सकता था।

"बस, पिताजीने बेंत उठाई और मेरी कसकर मरम्मत की।

"पर, मरम्मतसे अधिक आनन्द तो, हम उस होलीके जलानेमें और हरिदासजीपर पाई गई विजयमें पा चुके थे। और जैसे तबलेपर हर संगीतका सम आना ज़रूरी है, वैसे ही इस तरहकी दैनन्दिन पिटाई हमारे जीवनका उन दिनोंका सम थी।

उदीयमान कविकी जीवन-गाथा

"ऐसे ही जीवनमें अनायास मेरे प्रारम्भिक, अटपटे लघु कविता-पुराणकी एक घटना भूआके घर घटी। उन दिनों मेरी भूआ होशंगाबाद ज़िलेके सिलारी गाँव रहा करती थी।

"एक बार मेरा स्वास्थ्य ख़राब हुआ। तो हमारी भूआ जब आईं तो पिताजीसे बहुत नाराज़ हुईं। माँसे भी बहुत नाराज़ हुईं कि यहाँ लोग कितने लापरवाह हैं कि बच्चेकी कोई परवाह नहीं की गई। और भूआका यह हाल कि अपने भाई और भाभीपर जैसे उन्हें डाँटपूर्ण अधिकारके प्रदर्शनका अवसर मिलना चाहिए। और, इस तरह एक बहाना जब उन्हें काफ़ी दिन बाद हाथ लगा, तो वे मुझे अपने गाँव ले गईं। पहले भी ले जाती ही रही थीं। मेरी भूआके कोई सन्तान जो नहीं थी।

"सिलारी छिंदगाँवसे ४३ मीलकी दूरीपर है। भूआके घरकी रचना इस तरहकी है कि वह खपरैल था और उसके बीच एक आँगन था। उसके आस-पास काँटेकी बाढ़ लगी हुई थी। अन्दर जानेके लिए काँटेका ही एक फाटक था। भूआके घर खेती थी। छः बैल थे। मेरे फूफाजी

खेतीका काम देखा करते थे। उनका नाम था गणेशराम। बड़े सीधे, देवतुल्य व्यक्ति थे वह।

"गाँवके सड़क-बीच जाकर, उस तरफ़ गाँवका मन्दिर था। उस मन्दिरके पुजारी थे पण्डित धनीराम। उनके कोई लड़का न था, केवल एक लड़की ही थी द्रौपदी बाई। वे रिश्तेमें गणेशजीके बड़े भाई होते थे। गणेशरामजी कुछ पढ़े-लिखे थे, लिखा-पढ़ी कर लेते थे। किन्तु धनीरामजी निरक्षर।

"मन्दिरके सामने एक पीपल था। उसके नीचे हनुमानजीकी एक विशालकाय मूर्ति थी। पीपलके वृक्षपर कुछ काग़ज़ काँटीसे टँके रहते थे, जो उस गाँवके हाज़िर न मिलने वाले लोगोंके लिए अदालतके हुक्म या सम्मन हुआ करते। सिलारी गाँवकी यह ख़ूबी थी कि गाँवभरमें यदि कोई चिट्ठी आवे तो लोग पढ़वानेके लिए काशीराम भाटके पास जाया करते थे। गाँवमें और कोई पढ़ा-लिखा नहीं था।

"उन दिनों मेरी उमर कोई ८ वर्षकी होगी। एक दिन मेरी और पुजारीजीकी लड़की द्रौपदीकी लड़ाई हो गई। रातको मैंने चुपचाप एक कविता लिखी और हनुमानजीकी मूर्तिपर चढ़कर एक काँटीसे पीपलमें लगा दी। कविता यह थी, जिसका अर्थ कुछ नहीं था, केवल तुकबन्दी थी—

धनीराम की पोली पाई, उसमें निकली द्रौपदी बाई।
द्रौपदी बाई ने बिछाई खाट, उसमें निकला काशीभाट।
काशीभाट की लम्बी दाढ़ी, उसमें निकला मुल्ला बाढ़ी।

"बस, इतना ही लिखकर पीपलपर काँटीसे टाँग दिया गया। दूसरे दिन, दोपहरको घासका गट्ठा सिरपर लादे जब धनीराम पुजारी खेतसे लौटे तो उन्होंने एक नया काग़ज़ पीपलमें लगा हुआ पाया। उन्हें चिन्ता हुई और उन्होंने काशीभाटको तलब किया। मैं टुकुर-टुकुर अपनी भूआके घरसे काँटोंकी बाड़से झाँक रहा था। काग़ज़ पढ़ते ही उन्होंने धनीराम

पण्डितको भड़का दिया, उनसे बोले, "काका, थारी तूँ तो जड़ सूं काट दीनी रे।"

"धनीरामजी का जो लठ्ठ जमीनमें पड़ा था, उसे उठाकर वो खड़े हो गये। इसी बीच रास्तेसे निकलते हुए गाँवके बहुत नर-नारी एकत्र हो गये। मेरी भूआ और फूफाजी खेतमें गये हुए थे और मैं गायके बछड़ोंके साथ खेल रहा था। काशीभाटको अपराधीका पता लगाते देर न लगी। उसने कहा, "ईशा खोटा करम तो ओ पारीबाईको भतीजो ही कर सके है।"

"धनीरामजीने ललकारा, 'कठै है माखन, सालाको माथा फोड़ नास्यूँ।"

"ज्योंही आवाज़ सुनी, मैं मकानके दूसरे फाटकसे, मकानसे लगे हुए ज्वारके बढ़े हुए खेतमें पलायन कर गया। पं० धनीराम लठ्ठ लिये मेरे पीछे दौड़ रहे थे। अब कविराज आगे आगे थे और पं० धनीराम पीछे-पीछे! पास ही रेलसड़क जा रही थी। ज़रा कबड्डी लगाकर मैं आगे बढ़-कर बायें रास्तेसे निकल भागा और मुझे ऐसा करते कदाचित् पं० धनीराम देख न सके। पं० धनीराम आगे भागते ही चले गये। और, वे किस गाँव तक भागे होंगे, उसकी वे ही जानें!!

"मैंने तो रेल-सड़क पकड़ी और लौटकर सिलारी आ गया। जब मैं लौटकर आया, तो भूआ और फूफाजी आ चुके थे और शाम हो चली थी।

"फूफाजी यह घटना सुन चुके थे। मुझे देखकर उन्होंने बस इतना ही कहा, 'ऊँह, होता ही है। बच्चा ही है।'

"भूआने भी थोड़ा-बहुत डाँटा।

"किन्तु, इस घटनाको लेकर पं० गणेशरामजी और धनीरामजीमें बोलचाल बन्द हो गई। और क्या-क्या हुआ, सो मुझे नहीं मालूम। क्योंकि भूआ मुझे लेकर छिदगाँव चली आई थीं।

"लोग कहते हैं, काव्यसे कीर्ति मिलती है। मिलती होगी! मेरे प्रारम्भिक काव्योंने तो मेरी पिटाई ही कराई।

ममत्वभरे आकर्षणकी पहली घटना

"श्रावणके महीनेमें छिदगाँवके मन्दिरमें 'नाम-सप्ताह' होता था। और छोटी उम्रका होते हुए भी मैं वैष्णवपदोंको नाम सप्ताहमें गाया करता था। मैं जिस दलके साथ पद गाता था, वे वहाँके मालगुज़ारके मुख्तार थे, मेरे पिताजीसे बड़े थे और पिताजी उन्हें छोटे भाईकी तरह मानते थे। यहाँ तक कि जब मैं खण्डवामें टीचर होकर चला आया तब उसी घरौवेके कारण वे कभी-कभी मुझे देखने खण्डवा चले आते। नाम-सप्ताह दक्षिण भारतकी एक विशेष संस्था है—जहाँ वर्षा प्रारम्भ होनेके पश्चात् आषाढ़ शुक्ल नवमीको सप्ताह प्रारम्भ होता है और पूर्णिमाको समाप्त हो जाता है। इस नाम-सप्ताहमें न मन्दिरमें जलाया गया दीपक चौबीस घंटे बुझता है, न चौबीस घंटेमें भजन एक क्षणके लिए भी बन्द होता है। उस समय भजनका क्रम नित्यके हिसाबसे लोगोंमें बाँट दिया जाता है। भजनके बँटे हुए क्रमको पहरा कहते हैं। इसी प्रकारके एक पहरेमें नौ बजेसे बारह बजे दिन तथा नौ बजेसे बारह बजे रात्रिको मैं भी नाम-सप्ताहमें भजन गाने जाने लगा। जैसा कि मैंने ऊपर कहा, पहरा नारायणराव मुख्तारका था, जो दीवानजी कहलाते थे। वे पहरेमें भजन गानेपर मुझे नित्य उत्साहित करते। गाँवके नर-नारी रात भर बड़ी तादादमें बैठकर पहरेके भजन सुना करते। हमारे पड़ोसमें थोड़ी ही दूर नारायण नाई रहता था। हम अपने गाँवकी भाषामें उसे नरान नाई कहते थे। और ग्रामीण पारिवारिकतामें मैं और हमारे घरके सब छोटे बालक उन्हें नरान काका कहा करते। एक दिन बारह बजेका पहरा करके मैं मन्दिरसे लौट रहा था। मेरे आगे कुछ दूरपर, दो लड़कियाँ नर्मदी और उसकी छोटी बहन जा रही थीं कि एक साँपने छोटीको काट लिया।

संक्षेपमें समाचार मालूम किया। छोटीको कन्धेपर उठाकर मैं उसके घर ले गया। नर्मदी पीछे-पीछे रोती चली आ रही थी। लोगोंकी बड़ी संख्या एकत्रित हो गई। मैंने जब छोटीको उतारा, उसके परिवारके लोग उपचारमें लग गये। वे ऐसे दिन थे—किसी एकके यहाँ संकट आनेपर गाँवके लोग किसी व्यक्तिको संकटमुक्त करनेमें सहारा देते थे और उसके लिए दौड़-धूप करते थे। इस विषयमें पटेल, पटवारी, स्कूलमास्टर तथा गाँवके किसान सब साथ देते थे।

"उस लड़कीको बचानेमें भी इसी तरह गाँव भरने साथ दिया, किन्तु उसी दिन रातमें लड़कीकी मृत्यु हो गई।

"अब नर्मदीकी विधवा माँ तथा नर्मदीके प्रति मेरे माता-पिताकी स्वाभाविक सहानुभूति बढ़ गई।

"एक बारकी बात है कि मेरे पिताजी मुझे साथ लेकर कुछ पाठ्य-पुस्तकें तथा अन्य सामान ख़रीदनेके लिए छिदगाँवसे हरदा गये। यों कुछ सामान तो टिमरनीमें मिल जाया करता था, टिमरनी छिदगाँवसे चार-पाँच मील ही थी। किन्तु जब अधिक बड़ा बाज़ार करना होता था, तब गाँवके निवासी हरदा जाया करते थे। तिसपर पाठ्यपुस्तकें तो केवल हरदामें ही मिलती थीं। यद्यपि हरदा टिमरनी गाँवके बहुत नज़दीकसे जाना होता है, किन्तु जिन्हें हरदा जाना आवश्यक होता है, वे हरदा जाते हैं।

"सो पिताजी, गाड़ी-बैल लेकर हरदा गये। मैं साथ था। जिस किसानके बैल थे, वह गाड़ियाँ हाँक रहा था। हरदा पहुँचकर दुर्घटना यह हो गई कि खूँटेपर बँधा हुआ एक बैल छूटकर भाग गया। जहाँ तहाँ ढूँढ़ा, उसका पता ही न चला। तब किसानको पिताजीने छुट्टी दे दी कि जहाँ मिले, वहाँसे उस बैलको ढूँढ़े। पिताजीका विश्वास था कि दो-चार घण्टोंमें किसान लौट आयगा। इधर शहरका ख़र्च गाँवके ख़र्चसे इतना अधिक होता है कि गाँवका साधारण व्यक्ति शहरमें दिन बितानेकी अधिक हिम्मत नहीं कर सकता। अतः जब आधी रात गुज़र गई, तब उसके बाद,

एक तरफ़ बैल जोतकर तथा दूसरी तरफ़ हम बाप-बेटे गाड़ीमें जुतकर छिदगाँवकी तरफ़ चले ।

"यद्यपि छिदगाँव हरदासे १२-१३ मील था, याने गाँवकी भाषामें छः कोस, जिसका अर्थ कभी-कभी १८ मील तक भी होता है ! किन्तु हरदाकी लज्जासे बचकर हम लोग चोरी-चोरी गाड़ी लेकर चले । रास्तेमें पुलिस-वालोंने टोका और कारण मालूम होनेपर अत्यन्त सहानुभूति दिखाते हुए हम लोगोंको आगे जाने दिया । मैं यह सदैव देखता था कि पिताजीकी भाषाका प्रत्येक व्यक्तिपर बहुत प्रभाव पड़ता था । गाड़ी घसीटते-घसीटते हम लोग ३ मीलके लगभग निकल आये । और एक गाँवके निकट आकर सड़कपर लगे हुए झाड़ोंके निकट गाड़ी खड़ी कर दी । पिताजीने कहा कि उस गाँवमें नर्मदी व्याही है । यह वही नर्मदी थी, जिसकी बहनको साँपने काट खाया था । पिताजी नर्मदीके परिवारमें दूसरा बैल लानेके लिए चले गये । मैं गाड़ीकी रक्षामें खड़ा रहा । जब पिताजी बहुत देर तक नहीं आये, तब मैं चिन्ता करने लगा । किन्तु इतने हीमें पिताजी आ गये और उन्होंने बताया कि नर्मदीका पति स्वयं बैल लेकर आ रहा है ।

"किन्तु नर्मदीके पति खाली हाथ आये और उन्होंने मेरे पिताजीसे आज्ञा मांगी कि वे मुझे दूध पीनेके लिए भेज दें । पिताजीने कहा कि यह सबेरे दूध तो नहीं पीता । तब नर्मदीके पतिने अनुनय-विनय करके मुझे साथ ले लिया । मैं जब घर पहुँचा तब नर्मदी सिसक-कर खूब रोई और वह इतनी अधिक बातें करने लगी कि वे बातें ख़त्म ही नहीं होती थीं । मुझे लगा, कि साँपवाली घटनाका नर्मदीपर बहुत गहरा असर पड़ा है । यद्यपि उस घटनाको दो-तीन वर्ष हो चुके थे ।

"मेरा भी उसके घरसे उठनेको मन नहीं कर रहा था । मैं यह भूल ही गया कि हमारी गाड़ी तो महज एक बैलके लिए इस गाँवमें ठहरी है ।

"जब मैं चलने लगा तब नर्मदीने नेत्रोंमें अत्यन्त करुणाके आँसू भर लिये और उसने दुबारा फिर और कभी गाँव आनेके लिए विचित्र आकर्षणसे आग्रह किया—जो आग्रह मुझे लगता था कि, कभी पूरा नहीं हो सकता था। मैंने नर्मदीके यहाँ जब दूध पिया, उसीके घरकी लगी हुई गायका, तब नर्मदीने अत्यन्त ममतासे कहा, 'कितना अच्छा होता, यदि हम लोग ऊँची जातिमें पैदा हुए होते और आज गुरुजीको (पिताजीको) और तुम्हें भोजन करा पाती।' नर्मदीकी सासने इस समझपर डाँटा कि ऐसी अशुभ बात नर्मदीको नहीं बोलनी चाहिए, ऊँची जातिके लोग भला कहीं कमीनोंके यहाँ आते-जाते हैं और भोजन करते हैं ? उस समयतक मैं इस बातसे सर्वथा खाली था कि देशमें कभी ऐसा भी दिन आयेगा, जब जातियोंकी ऊँच-नीच भावनाको अच्छी दृष्टिसे नहीं देखा जायगा। जी हाँ, नर्मदीको मेरा आकर अचानक जाना पसन्द नहीं था। और मैं भी स्वीकार करूँ कि नर्मदीको छोड़ते समय मुझे बहुत दुःख हुआ!"

कुल-विद्याकी अवतारणा यों हुई

माखनलालने अपने पिताकी आज्ञाके अनुरूप बहुत शीघ्र प्राइमरी परीक्षा पास कर ली। इतना तो वे भी समझते थे कि चपल बुद्धिके साथ उनका होनहार पुत्र कक्षाभरमें, कलदार रुपयेकी तरह, पाठ याद करने या पाठको समझनेमें भी सबसे खरा है। उनकी चिन्ता फिर भी इतनी अवश्य बढ़ रही थी कि ब्राह्मण कुलमें जन्म लेकर और एक शालाके प्रधाना-ध्यापकके पुत्र होनेके नाते, जिस बालकको गम्भीर प्रकृतिका होना चाहिए वह बारम्बारकी पिटाईके बावजूद उलटी ही दिशा भाग रहा है। प्राइमरी पास करनेके बाद यही उचित समझा गया कि कुल-विद्या संस्कृत ही इस बालकको दी जाये। युग-विश्वासके अनुरूप, समाजकी आवश्यकताके अनुरूप, प्रचलित लोक-नीतिके अनुरूप, गाँव-गाँवमें व्याप्त लोक-परम्पराके अनुरूप और पिताकी अपनी भविष्य-कल्पनाके अनुरूप माखनलालको,

बलवन्त रावजी गाँवके विद्यार्थियोंको संस्कृत पढ़ानेका कार्य करते थे, उन्हींके पास संस्कृत पढ़ने के लिए भेजे जाने लगे।

इन दिनों गाँवोंमें प्लेग फैली थी और लोग अपने-अपने टप्पर खाली कर गाँवसे यही दो फर्लांग दूर नये टप्पर खड़े कर रहने लगे थे। श्री नन्दलालजीका परिवार भी ऐसे ही एक नये टप्परमें जंगलमें पड़ा था। पर इतनी अव्यवस्थाके बावजूद गाँवके सारे कार्य पूर्ववत् चल रहे थे। माखनलालका संस्कृत-अध्ययन इन्हीं क्षणोंमें प्रारम्भ हुआ।

गाँव तो गाँव, शहरमें भी नटखट बालकका स्वभाव पहले छछूंदरकी तरह यह तलाश करता है कि उसके अध्यापकका बिगड़ू नाम क्या है? पं० बलवन्त रावजी गाँवकी भाषामें बालभट्ट (!) कहलाते थे। जैसे तो संस्कृत पढ़नेका सबसे पहला मज़ा इसी नाममें निहित हुआ।

"बालभट्टजी मृदंग बहुत अच्छा बजाते थे। उनका नित्यका क्रम यह था कि वे मुझे तथा अन्य शिष्योंको लेकर जंगलमें निकल जाते। साथमें होती देवदारुकी बनी हुई तीन पहियोंकी एक ठेलागाड़ी। जबतक वह सड़कसे जाती, तबतक वह गाड़ी ग़नीमत थी। विद्यार्थी किसी तरह भरी गाड़ी धका-धकाकर सारे चढ़ावों और उतारोंमें उसे घरतक ले आते। जंगलमें जड़ें खोदी जातीं और वे ईंधन-स्वरूप इस गाड़ीमें लादी जातीं। वहीं जंगलोंमें झाड़ोंके नीचे बैठकर संस्कृतकी संध्या (पाठ) पढ़ी जाती। मैं झाड़ोंके ही नीचे अमरकोष याद करता!

"एक दिन गाँवसे पाँच-छः फर्लांग दूर भट्टजीकी गाड़ीके साथ हम लोग गंजाल नदीपर पहुँचे। यह नदी छिदगांवसे १०-१२ मील दूर नर्मदासे मिली है। नदीके किनारे पहुँचकर भट्टजीकी इच्छा हुई कि वहीं भोजन बनाया जाये। मेरा जनेऊ उस समयतक नहीं हुआ था। अतः यह तय हुआ कि सब बच्चे भट्टजीके साथ भोजन करें। गाड़ीमें सब सामान तो चला गया था, किन्तु सामान खोलकर देखा तो पाया कि उसमें नमक नहीं आया था। भट्टजीने अपने बड़े लड़के अमृतको गवाँ

भेज दिया। फिर वे मिट्टीका घड़ा लेकर पानी लेनेके लिए गंजाल नदीमें गये। और मुझे हुक्म दिया कि कंडियाँ (उपले) एकत्रकर उनका जगरा बाटियाँ सेंकनेके वास्ते बनाऊँ।

"मैंने जगरा बनाया और सुलगा भी दिया। जब गुरुदेव (भट्टजी) पानी लेनेके लिए गये तो मुझे एक कविता सूझी। जब मैं कविता मस्त होकर पढ़ रहा था, तब पीछे खड़े होकर भट्टजी सुन रहे हैं, इसका मुझे पता भी न था। कविता यों थी :

बालभट्टके तीन छोकड़े
दो बाज़ारमें जा सटके
नमकके बिना अटके बालभट्ट...

"बालभट्टजीने मुझे एक लात लगाई और अपने घड़ेका सारा पानी मुझपर डाल दिया। मैं भागने लगा तो पकड़कर मुझे दो चपत लगाई।

"यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि भट्टजीकी शिकायतके कारण पिताजीने जो मेरी मरम्मत की, वह अलग रही!

"भट्टजीके यहाँ गाड़ी हाँकनेका काम नित्यका था। एक दिन यह हुआ कि खेतोंकी ऊबड़-खाबड़ ज़मीनमें उस गाड़ीका चलना कठिन हो गया। वह हम विद्यार्थियोंके धकाये धकती न थी। परिणामतः भट्टजीके विद्यार्थी, जिनमें मैं भी एक था, भट्टजीके यहाँ जानेसे जी चुराने लगे।

"उन दिनों अध्यापकोंके पास दो ही शस्त्र बलवान् रहते थे। या तो वह विद्यार्थीको बहुत पीटें या अपने शिक्षणसे उसे निकाल दें। मेरे लिए भट्टजीने एक शस्त्र और निकाला। चूँकि मेरे पिताजी अध्यापक थे और वे यह भी चाहते थे कि उनका पुत्र विद्वान् हो, अतः वे विद्यार्थीकी कुछ न सुनते, और भट्टजी जो कहते, वह पूर्ण रूपसे मान लिया जाता। बस, भट्टजीने पिताजीसे मेरी शिकायतोंका ताँता बाँध दिया।

"एक दिन पाठ याद होनेपर भी, गाड़ी घसीटनेसे जी चुरानेके कारण भट्टजीने उसी दिन पिताजीसे कह दिया कि आपका लड़का तो पाठ ही याद नहीं करता। पिताजी न जाने किस मनोदशामें बैठे थे, उन्होंने अपने पुत्रको खूब पीटा।

"मेरा और परिवारके लोगोंका आना-जाना छिदगाँवसे बाबई और बाबईसे छिदगाँव होता ही रहता था। वहाँ मेरे तीसरे बड़े दादा रहते थे श्री तुलसीरामजी और मेरी यह बालसुलभ धारणा थी कि यदि पिताजीको कोई डाँट सकता है और मुझे कोई प्यार कर सकता है तो बाबईवाले दादा श्री तुलसीरामजी ही!

"इस बीच भट्टजीकी गाड़ी तो हम लोगोंके चलाये भी न ही चलती और भट्टजीने पाठ याद होते हुए भी पिताजीसे नित्य शिकायत करना प्रारम्भ कर दिया। अतः मैं एक दिन पिताजीकी पेटीमेंसे दस रुपये लेकर टिमरनी स्टेशनको भाग गया, क्योंकि छिदगाँवका स्टेशन बननेके पहले, जो कि उस समय तक नहीं बना था, लोग टिमरनी स्टेशनसे अथवा पन्धार स्टेशनसे बाबई आया-जाया करते थे। पिताजीकी पेटीसे रुपया निकालनेकी मेरी चोरीकी ओर किसीका ध्यान नहीं गया। यों मैं और मेरे बड़े भाई—मामाके, बाबाके, भूआके रिश्तेमें जो भी बालक पिताजीके पास पढ़नेके लिए रहे, जब खानेकी चीज़ोंकी चोरियाँ करते और माँकी रखी हुई चीज़ोंपर छापा मारते तब उन चोरियोंमें मैं उनके साथ शामिल रहता ही था। किन्तु पैसेकी चोरी पहली बार हो रही थी।

"मैं चुपचाप टिमरनी स्टेशनके वेटिंगरूममें गया और एक कोनेमें जाकर चादर ओढ़कर सो गया। इधर ज्योंही पिताजी बाहरसे लौटे, उन्होंने मेरे विषयमें पूछा होगा। तत्काल उन्होंने मालगुज़ारका बड़ा घोड़ा देकर बालभट्टजीको ही मुझे ढूँढ़नेके लिए भेजा। बालभट्टजी टिमरनी स्टेशनपर इस तरह आ गये, जैसे कोई रखी हुई चीज़ उठाने आया हो। उनसे पिताजीने कह दिया था कि वह उसके दादाजीके पास बाबई भागेगा

और कहीं नहीं जायगा। फिर रेलवेके एक चौकीदारने भी बता दिया था कि मैं टिमरनीकी तरफ़ गया हूँ।

"बालभट्टजी जब स्टेशन पहुँचे तो मैंने चादरमेंसे देख लिया कि वे आये हैं। उन्होंने आते ही ज़ोरसे मेरा नाम पुकारा—माखनलाल, माखनलाल। किन्तु मैं चुप्पी दाबकर पड़ा रहा। मैं यह आशा तो किये हुए ही था कि कोई न कोई आयगा। इसलिए चादरसे मुँह ढाँककर चुपचाप पड़ गया था। भट्टजीने जब वहाँ वेटिंगरूममें अपनी आवाज़का कोई उत्तर न पाया, तो इधर-उधर ढूँढ़ने लगे। किन्तु न जाने उन्हें कैसे सन्देह हो गया कि हो-न-हो, चादर ओढ़े मैं ही सोया हूँ। पास ही वेटिंग-रूमका एक छोटा-सा घासलेटका लैम्प था, जो वेटिंगरूममें थोड़ा-सा उजाला किये हुए था। मैंने मन-ही-मन उस लैम्पको बहुत कोसा और चाहा कि काश, वह वहाँ न होता। मुझे पकड़े जानेपर इतना क्रोध आया और इतना दुःख हुआ कि चलती गाड़ीके नीचे कट जाता तो अच्छा रहता...

"भट्टजीने मेरी चादर उठाई और मैं झटसे खड़ा हो गया और उनको प्रणाम किया। उन्होंने फौज़ी हुक्म दिया, 'चलो।'

"बालभट्टजीने वेटिंगरूममें और बाहर बैठे हुए लोगोंको सारा क़िस्सा सुनाया कि मैं कैसे भले घरका लड़का हूँ, किस तरह रुपया लेकर भाग आया हूँ, किस तरह माता-पिता बिना अन्न-जल ग्रहण किये घरमें बैठे हैं और किस गाँवके मालगुज़ार बहुत चिन्तित हैं।

"मुझे माता-पिताके भूखे रहने आदि उनकी किसी बातपर विश्वास नहीं हो रहा था। मैं सिर्फ़ एक बात जानता था। भट्टजी अब मुझे फिर घर ले जायेंगे, और पिताजी मुझे फिर कठोर दण्ड देंगे।

"लौटते समय भट्टजी घोड़ेपर आगे-आगे थे, जो घुड़सवारके नाते घोड़ेकी खूबियोंका और उसकी दौड़ तथा चालका आनन्द उठाते हुए चल रहे थे और मैं जाड़ेमें चादर ओढ़े धीरे-धीरे पैदल चल रहा था! टिमरनी

गाँवसे पाँच मील दूर है। और, मैं घण्टे डेढ़ घण्टे पहिले ही छिदगाँवसे टिमरनी आया था। अतः बहुत थक गया था। मुझसे चलते नहीं बनता था। किन्तु पीटे जानेके भयसे मैं चुपचाप चला जा रहा था।

"ज्यों ही मैं घर पहुँचा, पिताजीने गरम पानीसे हाथ-मुँह धोनेके लिए कहा। किन्तु जब माँने यह सुना कि मैं पैदल लाया गया हूँ, तब उनके क्रोधकी कोई सीमा न थी। पिताजी भी मेरे पैदल लौटनेकी आशा नहीं कर रहे थे। क्योंकि, घोड़ा भेजनेका तो तात्पर्य यही था कि मैं घोड़ेपर बैठाकर लाया जाऊँ। पिताजीने बहुत प्यारसे मुझसे पूछा, "तू घोड़ेपर बैठकर क्यों नहीं आया?'

"मुझे भय हुआ कि अब भयंकर लड़ाई पिताजी और बालभट्टमें हुआ चाहती है और कदाचित् मुझे भी दण्डित होना पड़े, मैंने कह दिया, 'घोड़ेपर बैठनेसे मुझे डर लगता था, इसलिए मैं पैदल आया।'

"यद्यपि यह बात सच न थी। क्योंकि, छुटपनसे ही छुट्टीके दिनों गाँव-घरके चरते हुए विना लगाम रस्सीके घोड़े-घोड़ियोंमेंसे, उनका जबड़ा बाँधकर, विना काठीके उन घोड़े-घोड़ियोंको लिये दौड़ना यह तो मेरी जानी-पहचानी आदत थी।

"उस दिन, जिस दिन भरपूर मारपीटकी आशंका थी, वह बिलकुल कुछ नहीं हुई।

"पिताजी तो कुछ उदासीन थे, किन्तु माँने मुझे बहुत प्यार किया। मैं मन ही मन सोचता था कि मैंने ऐसा कौन-सा अच्छा काम किया है कि माँ मुझे इतना प्यार कर रही हैं। किन्तु मेरा मन कोई जवाब नहीं दे पा रहा था। उसके पश्चात् ही जंगलमें फैले हुए गाँवके लोग खबर लेने आये कि क्या मैं सकुशल लौट आया हूँ। उस दिन हम लोग इतनी रात गये सोये कि सुबह जल्दी हो गई।

"दूसरे दिन पुस्तक लेकर मैं भट्टजीके यहाँ गया, तो वे बोले, 'अब हम लोग गाड़ीमें ठूँठ ढोकर नहीं लायेंगे। तुम निश्चिन्ततासे पढ़ाई करो।'

"भट्टजीकी इस बातको सुनकर मुझे तो हर्ष हुआ ही, अन्य विद्यार्थियोंको भी अत्यन्त हर्ष हुआ। किन्तु जब मैं घर लौटकर आया और घरके पिछवाड़े एक बबूलके नीचे अमरकोष याद करने लगा, तभी मेरी आवाज़ सुनकर पिताजीने मुझे पुकारा और पूछा 'क्या कर रहे हो?'

'जी, अमरकोष पढ़ रहा हूँ।'

'कौनसे स्थानकी पढ़ाई चल रही है?'

'जी, आजकल वनौषधि वर्ग चल रहा है।'

'तुम्हारा मन पढ़ाईमें लगता है?'

'जी, हाँ', कहकर मैं चुप हो रहा। मेरी आँखोंसे आँसू आ गये।

"पिताजीने अमरकोषकी पुस्तक लेकर जहाँ-तहाँसे भिन्न-भिन्न स्थलोंपर भिन्न-भिन्न नामोंके विषयमें मुझसे कुछ पूछा। सूर्य, इन्द्र, शिव, समुद्र, नदी, पहाड़ आदि न जाने कितने नामोंको, अमरकोषके आधारपर, मुझसे पूछा गया। मैं सबका उत्तर श्लोकोंमें देता चला गया। कहीं श्लोककी एकाध पंक्ति छोड़ देता और कहीं विना ज़रूरतके कभी पंक्तियाँ ऊपरसे अधिक पढ़ता जाता और कभी नीचेके श्लोकोंको पंक्तियाँ विना ज़रूरत बढ़ा देता। व्याकरण मैं पढ़ा नहीं था इसलिए यह तो जानता ही नहीं था कि पंक्तियाँ कहाँसे शुरू करूँ और कहाँ समाप्त करूँ? केवल गुरुजीके बताये हुए स्थानोंपर ठहरनेकी और श्लोकोंके उच्चारणकी कोशिश कर रहा था। पिताजी मेरे अनुस्वारोंको कभी-कभी शुद्ध कर देते थे। उस जाँचके बाद उन्होंने मुझसे कहा, 'कलसे भट्टजीके यहाँ नहीं जाना। तुम्हें नाँदनेर जाकर पढ़ना है।'

"अन्धा क्या माँगे दो आँखें। इस नई सूचनाको सुन कर मैं अत्यन्त प्रसन्न हुआ। एक तो पिताजीका नियंत्रण नहीं रहेगा, दूसरे बाबई वाले दादा और बाबईके मित्रोंसे दुबारा मिलनेका मौक़ा मिलेगा। मेरी अत्यन्त प्रसन्नता उस दिनकी प्रतीक्षा करने लगी, जिस दिन मैं छिदगाँवसे बिदा होऊँगा।"

शैशव दिवान्ध नहीं होता। दिनका प्रकाश उसे स्वेच्छासे क्रीड़ाशील बनाता है। शैशवका सत्त्वगुण इतना द्युतिमान् और इतना ज्योतिर्मय बनकर किलकता है कि वह अपनी किसी भी इच्छाको व्याहत होते नहीं देखना चाहता। वह प्रतिक्षण हंसधर्मा ही रहे, ऐसी ही उसकी प्रबल इच्छा अपना इप्सित मार्ग ढूँढ़ती है। प्रतिबन्धक शक्तियोंको वह मूषक-धर्मी मानता है, क्योंकि उसकी सभी इच्छाओंके सूत्रोंको वह कुतरता है। कतर-ब्योंत करता रहता है। माखनलालका शैशव अभीतक बाबईमें अपना कोई उचित वाहन न पा सका था। जो शैशव अपना वाहन अपने माता-पिताओंको बनाता है, उसकी गति घरकी चौखटें ही तय करती हैं। छिदगाँवमें उस वाहनकी एक हल्की धुँधली कल्पना माखनलाल के भोले मनमें जाग उठी थी, पर वह क्या थी,इसका भान उसे स्वयं नहीं था। बाबईमें पिताकी अनुपस्थितिके कारण उसे खेलनेकी जो पूरी छुट्टी थी, वह अधिक कारगर न हो सकी। वहाँ झोपड़ोंका जो पहला धर्म उलूकधर्म है, उसने उसे किसी भी क्षण अपनी सख्त गोदीमें नहीं बैठाया था, यही बड़ी बात थी। पर छिदगाँवमें आते ही पिताके कठिन दुलार और माताकी सुबह-शामकी झिड़कियोंने जहाँ माखनलालको परिवारकी काँटोंवाली बाड़में बैठनेका प्राथमिक ज्ञान दिया, वहीं उसे टेढ़े-मेढ़े तौर-तरीक़ेसे गाँव और उसकी नीरसतासे ऊपर उठकर जीवटकी चुहलको खोज करनेका और उसी दिशा आगे बढ़नेका आग्रह भी दिया। किन्तु भूआका और बाबाओंका नियन्त्रणहीन दुलार ही जैसे इस बालक को माता-पिताके सत्यसे ऊँचा दीखता था। उसी दिशा वह भागनेका आग्रह रखता भी, और हर चौथे महीने जब भी उसका बुलावा भूआकी ओरसे बाबईके लिए आता, उसकी ख़ुशी छिदगाँवसे बाहर जाते समय देखते ही बनती थी। आने-जानेमें रेलकी गति और बैलगाड़ियों-की सवारी उसे अपना भुजबंधन जो देने लगी थीं!

लेकिन···इस घटनाप्रिय बालकके माता-पिता भी कठोर मौन धारे,

उचित क्षणोंमें कम घटनाप्रिय नहीं थे। चाहे उस माँने, उस पिताने अपने बालककी उड़नखटोले पर उड़ कर भागनेकी नीयतका अर्थ स्वयं न समझा हो, पर घटनाप्रियताके संस्कार और सूत्र और बँटे डोरे तो वे ही अनजानेमें उसे घरमें दिये जा रहे थे। घटनाओंको रहस्य बनाये, पिताका मौन उनके सुभावकी प्रखर स्पष्टताका दिशा-पथ बना रहा। यही घटनाओंको रहस्य बनाने वाला मौन माखनलालके उत्तरवर्षोंमें आया।

कठोर शासन और दृढ़ स्वाभिमानकी मूर्ति नन्दलालजी

"जब मेरा बचपन था और मैं हिन्दीकी छोटी प्राइमरी कक्षामें पढ़ता था, तबकी एक घटना मुझे याद आती है। छिदगाँवकी ही यह घटना है। छिदगाँव बम्बई-आगरा रोडपर है। वहाँसे कोई सेना निकलने वाली थी। प्रातःकाल हीसे लोगोंकी भीड़ सड़कके किनारे-किनारे खड़ी थी और स्कूलके विद्यार्थियोंको लेकर स्कूलके मास्टर साहब खड़े थे। विद्यार्थियोंकी एक कतार बनी हुई थी, जो प्रातःकाल सूर्योदयसे लगाकर दोपहरके उस समय तक खड़े रहे, जब तक सेनाका बड़ा अफ़सर वहाँसे निकल न गया। जब वह अफ़सर और उसकी पत्नी घोड़ेपर चढ़े हुए वहाँसे गुज़रे, जहाँ विद्यार्थी खड़े थे, तब उन्होंने अपने घोड़े खड़े कर लिये और विद्यार्थियोंका गीत सुनने लगे। बड़ी कक्षाके विद्यार्थी गा रहे थे और छोटी कक्षाके विद्यार्थी जड़वत् बड़ी कक्षाके विद्यार्थियोंके पीछे लाइन लगाये खड़े थे। अफ़सरके आते ही मास्टर साहबने और उनकी देखा-देखी विद्यार्थियोंने आधे झुककर अफ़सरको फ़र्शी सलाम किया और फिर विद्यार्थियोंने गीत गाया। गीतकी कोई डेढ़ ही पंक्ति मुझे याद है। गीत था—

विलायत बीच सब सुख धाम,
राजधानी बसत अनुपम नगर लंदन नाम।

"जब तक बच्चे गीत गाते रहे, आधे गीत तक अफ़सर-दम्पति लड़कों-की तरफ़ देखकर हँसते रहे। उसके बाद उन्होंने घोड़ोंको एँड़ लगाई।

"शालाके प्रधान अध्यापक पिताजी थे। वे उस दिन नहीं गये। केवल अपने सहायक भागचन्दको भेज दिया। अब इतने वर्षोंके बाद मैं सोचता हूँ कि पिताजी क्यों नहीं गये!

"पिताजीका स्वभाव बहुत प्रिय था। वे हँसमुख, दयालु और ग्रामीणोंके बहुत काम आनेवाले व्यक्ति थे। मुसलमान, बलाई (हरिजन), शिकारी—सब जातियोंके व्यक्ति उनके पास सहायतार्थ आते थे और वे सबकी सहायता करते थे। वे कसरती भी बहुत थे। गणेशचतुर्थीके उत्सवमें जब चतुर्दशीके रोज़ गणेशकी प्रतिमा गंजाल नदीमें विसर्जित की जाती थी, तब बाढ़मयी गंजालको पार कर जाना पिताजीके लिए बायें हाथका खेल था। नन्हा सा, मैं जिस तरह उनकी बात-बातमें चमत्कार-पूर्ण उक्तियोंको सुनकर प्रसन्न होता था, उसी तरह बाढ़मयी गंजालको आर-पार करते हुए जब मैं पिताजीको देखता था, तो स्वभावतः मुझे हर्ष होता।

"जब कोई अफ़सर शालाके निरीक्षणके लिए आता, तब पिताजी सरपर सूतका अमामा बाँधते, शेरवानी पहनते और चूड़ीदार पैजामा पहनते। शेरवानीमें बटन नहीं होते थे। उसमें तनियाँ होती थीं। किन्तु घरमें साधारणतः वे धोती और कुर्ता पहनते थे। हाँ, बाँधते अमामा ही थे। उनके गलेपर एक लम्बा अंगोछा होता था, जो उनके गम्भीर दीखनेके गौरवको बढ़ा दिया करता था।

"पिताजी नज़रअलीको उर्दू पढ़ाते थे। खालिकबारी सीखनेमें नज़र-अलीको जब बहुत देर लगी, तब नजरअलीके पिता दाऊदख़ांसे शिकायत करनेके बजाय उन्होंने नजरअलीको सजा दी और जब दाऊदख़ांने आकर इस बातपर पिताजीका अहसान माना, तब पिताजीके शब्द ऐसे थे, जिन्हें जीवन भरके लिए मैंने सहेजकर रख लिया—वे बोले, 'भाईजान, नजर-अलीके गालपर जो चाँटा पड़ता है, उससे नजरअलीकी काकी (मेरी माँ) को तो बहुत तकलीफ़ होती ही है, मगर मुझे भी बहुत तकलीफ़ होती है।

मुझे रह-रहकर यह ख्याल होता है कि लड़के बड़े होंगे, तब न जाने क्या अपने उस्तादके बारेमें सोचेंगे। इसलिए मैं तुमसे तारीफ़ पाता हूँ, मगर अगली पीढ़ीसे बुरा होनेका खतरा खरीदता हूँ! दुनिया तो ऐसी बनी है कि उसकी मर्जीसे चलो और भले ही उन्हें नुक़सान पहुँचे, तभी वे ख़ुश होते हैं। मगर एक उस्तादकी तक़दीरमें हरवक्त उसका तालिबेइल्म बड़ा होकर घूमता रहता है। उसके कल और परसोंको सँवारनेमें उसका उस्ताद अपनी ज़िन्दगी और अपनी मुहब्बत दोनों बरबाद कर दिया करता है।'

"पिताजी जब रामायण पढ़ने बैठते तो बूढ़े दाऊद ख़ाँ बड़ी मुहब्बतसे पिताजीकी बातें सुनते हुए वहाँ बैठे रहते। और दाऊद ख़ाँके यहाँ मोलूद शरीफ़ (मुसलमानोंकी एक धर्म-पुस्तक जो सत्यनारायण कथाकी तरह पढ़ी जाती है) होती या और कोई काम आ पड़ता, तो न केवल पिताजी ही दाऊद ख़ाँके यहाँ जाते, किन्तु उनकी देखा-देखी कितने ही किसान और अन्य भले आदमी दाऊद ख़ाँके यहाँ जाते। जब सावनके महीनेमें हमारे मकानके सामने इमलीके दरख्तोंमें झूले बाँधे जाते, तब लड़कियाँ और लड़के बड़ी-से-बड़ी उमरमें भी इस तरह झूलते रहते जिसकी कल्पना भी आजके ज़मानेके अत्यन्त सुधरे हुए पनमें उतनी निर्मलतासे नहीं की जा सकती। किन्तु बूढ़े दाऊद ख़ाँ मानो बाज़ारमें पड़े हुए उन दोनों झूलोंके पहरेदार होते और बाज़ारके दिन रविवारको उनकी आज्ञासे कोई झूला न झूलता तथा दूसरे दिन पुलिस कान्स्टेबल तककी यह हिम्मत न होती कि झूला झूलनेवाली लड़कियोंसे कोई बात कर सके!

"पिताजीका एक सुझाव इस घटनासे मुझे मिला—किसी एक शंकर नामके आदमीको पुलिसने इस बातके लिए राज़ी किया कि वह थानेमें रिपोर्ट करे कि उसकी चोरी हुई है। यद्यपि शंकर मालगुज़ारके यहाँ सिपाही मात्र था। लोगोंसे गुनाह क़बूल करवानेके लिए, गाँवके धनवान् राजपूत किसानोंके लड़के पकड़कर लाये जाते, उनको ख़ूब पीटा जाता।

गोपाल कहारसे देवता बुलवाकर चोरोंसे उन लोगोंका नाम लिवाना चाहा, जिन्हें पुलिसने पकड़ रक्खा था। गाँवके महाराष्ट्र मालगुज़ार यद्यपि बहुत विद्वान् और तेजस्वी थे, किन्तु पुलिसकी ज़्यादतीका मुक़ाबला नहीं कर सकते थे। यह बात उन दिनों सम्भव ही नहीं थी।

"जब गोपाल कहारने पुलिस द्वारा बताये लोगोंके नाम नहीं लिये, तब उसे भी जूतोंसे पीटा गया। पुलिसकी इस ज़्यादतीसे स्वयं शंकर, जिसकी चोरीकी रिपोर्ट लिखवाई गई थी, रोता और कहता कि ये लोग मेरे चोर कभी नहीं हो सकते। तब पुलिसने शंकरको भी पीटा। पुलिस-की मारसे एक राजपूत लड़केकी मृत्यु हो गई।

"नौबत यहाँतक पहुँच गई तो पुलिसपर मुक़दमा चला और पिताजीने [illegible] पुलिसके ख़िलाफ़ गवाही दी, जिससे अलीमुल्ला कान्स्टेबल, बेनीप्रसाद कान्स्टेबल और एक पुलिस इन्स्पेक्टरको सज़ा हुई। पुलिस इन्स्पेक्टरको पाँच वर्षकी सख्त सज़ा तथा दो कान्स्टेबलोंको कालेपानीकी सज़ा। इस घटनाके पश्चात् पिताजी देवताकी तरह पूजे जाने लगे।

"जब पिताजीको तिजारी आई, उस समय मैं बहुत छोटा था। जब उनको जाड़ा लगता था, तो रजाई ओढ़नेके बाद छोटे बच्चोंको अपने ऊपर रजाईपर चढ़ा लिया करते थे। यह तिजारी उनको लगभग दो वर्ष आती रही। कोई इलाज न हो सका। अथवा, कोई इलाज लग न सका। गाँवमें इसी तरहका इलाज हुआ करता था। इलाजका एक दूसरा प्रकरण भी याद है।

"मेरा छोटा भाई रामदयाल कोई तीन चार सालका रहा होगा। बीमार हुआ। उसे जाड़ा देकर बुख़ार आता था। रोज़ ही बुख़ार उतर जाता था। उन दिनों गाँव-गँवइयोंमें बुख़ारका अर्थ बुख़ार ही होता था, उसके भेदोंकी अधिक जानकारी लोगोंको नहीं थी। छिदगाँवके मालगुज़ार चार भाई थे। उनमेंसे एक भाई गनपतराव केकड़ेको राम-

दयालको देखनेके लिए बुला लाये, क्योंकि वे गाँवमें कुछ वैद्यक भी किया करते थे। उन्होंने आकर रामदयालको देखा, जो प्रातःकाल ही रोटी-मक्खन और उसपर रखा हुआ गुड़ पुंगी बना कर खा रहा था। पटेल साहबने पूछा कि ऐसी कितनी पुंगियाँ यह खा जाता था ?

"पिताजीने मेरी माँका इशारा पाकर यह बताया कि तीन-चार पुंगियाँ।

"पटेल साहब बोले कि बुखार इसका क्या बिगाड़ेगा ? रोटी खाते हुए बच्चोंको दवा देनेकी मेरी आदत नहीं है।

"सो, छिदगाँवके ये वैद्यजी अपनी आदतके हिसाबसे दवाकी पुड़िया देते थे। और पिताजीने उनके इस अभिमतको अवश्य स्वीकार भी कर लिया होगा।

"किन्तु कुछ ऐसा भी था, जो पिताजी स्वीकार नहीं कर सकते थे।

"एक दिनकी बात है कि एक गाँवमें एक पुलिस इंसपेक्टर साहब कुछ कांस्टेबलोंको लेकर आये। गाँवके मालगुज़ारने, जो स्कूल-कमिटीके सरपंच भी थे, इंसपेक्टर साहबके ठहरनेका इन्तजाम स्कूल हीमें कर दिया। पानीके लिए मिट्टीके घड़े भरवाये गये। भोजन बनानेके लिए आदमी पकड़कर बुलाये गये। बेग़ारमें सारा सामान इकट्ठा किया गया। इंसपेक्टर साहबने आते ही पिताजीपर नाराज़ होना और उल्टी-सीधी बातें कहना प्रारम्भ कर दिया।

"पिताजीने कहा कि आप मेरा क़सूर बताइए और तब कुछ कहिए।

"इंसपेक्टर साहब बोले कि क़सूर क्या, अभी हथकड़ी ही डाल देता हूँ। थोड़ी देर ठहरो और तब तक ईश्वरका नाम लेलो।

"पिताजी इस बातसे कुछ भयभीत हुए, किन्तु साथ ही उन्होंने इंस्पेक्टर साहबसे कहा कि मैंनें तो कोई अपराध नहीं किया।

"इंस्पेक्टर साहबने पूछा कि तुम्हारा ही नाम हीरापुरी है न ?

"पिताजी हँस दिये। उनकी समझमें अब सब मामला आ गया। उनके पहले जो शालाके अध्यापक थे, वे इसी गाँवके पोस्टमास्टर भी थे, और उनके कार्यकालमें एक दस रुपयेका मनीआर्डर चोरी चला गया था, उसीकी यह जाँच आई है। उन्होंने इंस्पेक्टर साहबसे कहा कि पहले आप सब बातें मालगुज़ार साहबसे पूछ लीजिए और वहाँसे जाँच करनेके बाद, जो आपकी मर्जीमें आये, सो कीजिए।

"इंस्पेक्टर अपने सिपाहियोंको लेकर मालगुज़ारके यहाँ चले गये। इसी बीच पिताजीने पुलिसका सब सामान उठाकर यह कहते हुए सड़क पर फिंकवा दिया कि जब हम गुनाह करेंगे तब तुम छोड़ोगे नहीं। और शालाभवन तो विद्यार्थियोंके पढ़नेके लिए है। और स्कूलका घंटा बजाकर, विद्यार्थियोंको बुलाया और पढ़ाने लगे।

"दुपहरको पुलिसने शालागृहसे पिताजीको बुलवाया, किन्तु उन्होंने कहलवा भेजा कि इंस्पेक्टर साहबसे हुक्म लिखवाकर लाइए कि मैं शाला-गृह बन्द कर चला आऊँ!

"पिताजीकी निडरताकी यह कहानी मुझे अन्यतम प्रेरणाओंका दिशा-ज्ञान कराती रही है।"

चतुर्थ परिच्छेद

वैष्णवी संस्कारोंका यज्ञ प्रारम्भ

दम्पतिके विश्वास ऐसी घास नहीं होते, जो हर वर्षा हरियाएँ और हर गरमी सुखें। गिरिस्तीकी छावँ में वे जमते हैं और मुहल्लोंकी शंकालु आँखोंमें वे तपते-पकते हैं। चन्द्रातप और सूर्यकी शीतलता जिस क्षितिज पर संग-साथ आत्मविभोर हो उठते हैं, वहीं दम्पतिके विश्वास घरकी चौखटपर आत्मप्रहरी बने, मुतियनकी मालसे, द्वारे बंदनवारका भ्रम उत्पन्न करते रहते हैं। श्री नन्दलाल चतुर्वेदी अपने वर्चस्वी व्यक्तित्वको अकेले ही प्रस्तुत नहीं कर रहे थे। उसकी तहोंमें उनकी गृहस्थीके अन्तर्गत एक विशिष्ट लोहसार था, जो बँधा तो पुड़ियोंमें था, लेकिन उसकी उद्घोष-शक्ति ग़ज़बकी थी। जहाँ बालक माखनलालके पिता अपने इर्द-गिर्द एक सूक्ष्म तेजस्विता प्रतिक्षण साथ लिये चलने लगे थे, वहाँ उनकी माता केवल चौके-बरतनकी मृदु क्रिया ही नहीं थीं, उन्होंने भी अपने परिवारके कुछ उल्लेखनीय घटनाक्रमोंको जन्म दिया था। और, वे उस रूपमें कमसे कम माखनलालके निर्विघ्न भविष्यकी भावलहरियोंमें विस्तार करनेके लिए अमृत-मन्थनका रूप ले बैठे थे।

"मैं बचपनमें माँको भाभी कहा करता था। उन दिनों हमारे चाचाजी पिताजीके पास रहा करते और वे माँको भाभी कहा करते थे। इसीलिए

शायद मैं भी माँको भाभी कहने लगा हूँ। उसके पश्चात् जब मैं सात-आठ वर्षका हुआ, तब छिदगाँवसे १८ मील दूर साँगवानी नामक ज़मींदारीमें छोटे मामा श्री रामचरण पटवारी कारिंदा होकर आये। वे माँसे बाई कहते थे। उस दिनसे हम भाई-बहन भी उन्हें 'बाई' ही कहने लगे।

चट्टानसे उद्गमित रसधाराकी प्रतिमूर्ति माता

"माँका स्वभाव बहुत भोला और पूजा-भावनासे भरा हुआ था। वे जंगलोंमें रहना और गायकी सेवा करना अधिक पसन्द करती थीं। मेरी माँ तीन बहनें थीं और उनके तीन भाई थे। माँ धनवान् बापके यहाँसे आई थी, जहाँ उसका बेटेकी तरह लाड किया गया था। इसलिए जब वे हमारे भरे-पूरे घरमें आईं, तो जैसे इतने बड़े परिवारकी सेवाका व्रत उन्होंने अपने पिताजीके ही यहाँ ग्रहण कर लिया था। सुबह और शाम दोनों समय पन्द्रह-बीस व्यक्तियोंके लिए आटा गूँधना और रसोई तैयार करना जैसे उनकी नयी अवस्थामें ही उन्हें शुद्ध दायित्वके रूपमें क्या अर्थ लेकर मिले थे, यह हम बहुत बादमें जाकर समझ सके। बचपनमें ही मैंने माँ के घर नानाजीका और मामाओंका वैभव देखा था।

"माँ सोनेके समय सदा डंडा साथ लेकर सोया करती थीं। एक दिन पिताजी गाँवमें ताश खेलने बैठ गये। वे अक्सर खेलने बैठ जाते थे। माँका यह हिसाब था कि वे मुझे और मेरी छोटी बहनको अपने साथ ही लेकर सोती थीं, लेकिन उस समय भी साथमें डंडा रखना न भूलती थीं। एक दिन पिताजीको यह सूझा कि हमारी माँको वे डरायें। हमारे दरवाज़ेपर दो छोटे-छोटे डपरे (फूसके झोंपड़े) थे और सामने एक आँगन था खुला हुआ, जो कि एक तरहसे खुला हुआ मैदान-सा ही था, जिसमें गायें और बैल बँधे रहते थे। कम्पाउंडको काँटोंकी बाड़से घेरा गया था। सामने एक इमलीका दरख्त था जो शायद मकानके नष्ट हो जानेके बावजूद, आज भी वहाँ होगा। इस इमलीके दरख्तसे लगाकर

बाँसका एक ऐसा मर्यादित फाटक था जिसमें अन्दरको ज़ंजीर थी और उसमेंसे कुछ भी उस पारसे इस पार दिखाई न देता था। पिताजी उस दिन जब ताश खेलकर देर रातमें आये तब उन्होंने माँको बिना पुकारे, बाँसके फाटककी ज़ंजीर खोलनेकी कोशिश की। माँने झूठमूठ ही अन्दरसे कहा,. 'माखनके दादा, उठो, यह कौन दरवाज़ेपर ज़ंजीर हिला रहा है।' पर दरवाज़ेपर तो माखनके ही दादा थे, वे इस धमकीसे कैसे डरते? रात खूब ही अँधेरी थी। ज्यों ही बाँसके फाटककी ज़ंजीर खुली, उस ओर अँधेरेमें माँने लाठी उठाई और ज़ोरसे चला दी। चोट लगते ही पिताजी ज़मीनपर बैठ गये और माँ पिताजीके पैरोंसे लिपट गई। लगभग एक सप्ताह पिताजीका इलाज चलता रहा। किन्तु पिताजी थे कि माँके इस वीरत्व और चरित्रकी प्रशंसा करते थकते नहीं थे। पर माँ अपनी ओरसे प्रायश्चित्त स्वरूप स्तोत्र-पाठ कर रही थीं। मरते दम तक वे इस घटनाको न भूलीं और यही मनाती रहीं कि अपने पतिको कष्ट देनेके कारण उन्हें नरक मिले। वे ऐसी ही थीं!

"पर छिदगाँवमें तो माँ मेरे प्रति बड़ी क्रूर रहती थीं। उसका एक ही कारण था। माँके विवाहित होकर छिदगाँव जानेसे लेकर पिताजीकी मृत्युतक जिस परिवारने हमारा सबसे अधिक साथ दिया है, वह शिवचरणजी बढ़ईका है। हमारा परिवार कट्टर वैष्णव था, इसलिए हमारे यहाँ टमाटर, गाजर, प्याज, लहसुन, चुकन्दर आदि चीज़ें नहीं खाई जाती थीं। शिवचरणके पुत्र रामकरण हमारे घनिष्ठ मित्र थे। और हम उनके यहाँ छिपकर काँदा (हरी प्याज) खाकर आया करते थे। और माँ उसी कारण हमें खूब पीटती थीं। पर उस पीटनेका एक ही असर हमपर हुआ करता। यदि वे शामको पीटतीं तो हम सुबह जाकर खा आते, और यदि सुबह पीटतीं तो शामको फिर खा आते। पिताजीने हमें प्याज खानेपर कभी सज़ा नहीं दी। बस उनकी एक यही सज़ा थी कि उन्होंने अपने साथ जो खानेका अधिकार दे रखा था, वह बन्द कर दिया था, और

जिस दिन हम प्याज खा आते, उस दिन हम उनके साथ भोजन नहीं कर सकते थे।"

जड़ोंका क्रम-विकास कहीं भी सीधा नहीं है, वह सीधा रह ही नहीं सकता था। (दुग्ध) धात्रीकी विवशताएँ जहाँ उसकी सरल सीमाएँ होती हैं, बुद्धिधात्रीकी वक्रगति ही उसकी क्लिष्ट सीमाएँ हैं। व्योमगता वल्लरी की पृथ्वीगता जड़ें बुद्धिधात्रीकी वक्रता तकका भक्षण करनेकी सामर्थ्य रखती हैं। जड़ें जब दिशाहीन हो उठती हैं, तभी रसनिष्ट योगसाधना शुभ्र बनती है, उनकी व्युत्पत्ति पार्थिव सुखोंकी प्रचुरताको जन्म देती है।

अपने परिवारकी ग्रामीण सर्वसम्पदापर माखनलाल केवल आकाश-बेलकी तरह ही छा सका, अधिक हरिया न सका। उसके पिताजीने यही सोचा था कि बाबईसे उसे बुलाकर ठीक क्रमसे शिक्षित किया जा सकेगा। वह हुआ भी। प्राइमरी शिक्षा पूर्ण की जा सकी। पर वे उसे जिस स्तरकी शिक्षा दिलाना चाहते थे, उस महत्त्वाकांक्षाने अपने इस वयस्क बालकको अपने संरक्षणसे दूर करनेमें ही भला देखा। माताने इसी भलाई-को सिर-माथे लिया। प्राइमरीकी शिक्षा पूर्ण करनेपर उन्होंने अपने इस बालकको अंग्रेज़ीकी शिक्षा प्राप्त करनेके लिए सीवनी-मालवा भी भेजा, पर वहाँसे उसे जल्दी ही वापस बुला लिया, क्योंकि उसकी पूरी फ़ीस देनेमें वे असमर्थ थे। वहाँसे लौटनेपर असमर्थताका सन्तोष इस तरह लेना चाहा कि गाँवमें ही वह शिक्षा पा ले। पर वह इच्छा भी पूर्ण न हुई। वह नाँदनेर-की यात्रापर रवाना कर दिया गया। रवाना करनेपर भी बहुत-कुछ उसके पिता और कुछ-कुछ उसकी माता इसी शंकामें घुले जा रहे थे कि यह महा शैतान बालक उस नये घरमें और उस नये गाँवमें कहीं फितूरोंका पिटारा खोलकर न बैठ जाय। इसलिए इस बालकका 'हिस्ट्री-टिकट' (!) भी तैयार करनेकी शीघ्रता की।

"नांदनेरकी यात्रापर रवाना होनेके क्षणोंमें मैं अत्यन्त प्रसन्न हुआ।

किन्तु मेरी प्रसन्नता बहुत कम हो गई, जब मैंने देखा कि बाबई होकर नाँदनेर तक पिताजीने स्वयं जानेका निश्चय किया है। किन्तु पिताजी बाबई जाकर लौट आये और मुझे घरकी ही बैलगाड़ीमें मेरी भूआने मुझे नाँदनेर पहुँचा दिया।

संस्कृत-पाठशालामें प्रवेश

"जब मैं नाँदनेर पहुँचा, तब पिताजीने मेरी शरारतोंका 'हिस्ट्री-टिकट' भी नाँदनेरके गुरुदेवके पास भिजवा दिया। ये मेरे गुरुदेव मेरे संस्कृतके गुरु ही नहीं थे, मेरे पिताजीके बड़े भाई भी थे, मेरे दादाजी। उनका नाम था पं० वंशीधरजी चतुर्वेदी। दादाजी यों तो स्वभावतः ही सख्त थे, किन्तु पिताजीकी चिट्ठीपर वे मेरे प्रति भी बहुत सख्त रहने लगे। यद्यपि जब मेरी शिकायतें होतीं, तब मेरी ओरसे ही वे सबसे लड़ते।

"उन दिनों उनके पास संस्कृत पढ़नेवाले विद्यार्थियोंका एक बड़ा समूह रहा करता था। नाँदनेर भोपाल रियासतमें था और उन दिनों रियासतोंमें स्कूलोंकी कमी होनेके कारण जो भी कुछ पढ़ा-लिखा होना चाहता, पण्डितजीकी चटशालामें पहुँचा दिया जाता। इसलिए मेरे साथ पढ़नेवाले विद्यार्थियोंमें केवल ब्राह्मण और क्षत्रिय बालक ही नहीं थे।

"दादाजीने मुझे यह काम सौंपा था कि प्रातःकाल अँधेरेमें उठकर कोई चार फर्लांग दूर बहनेवाली नर्मदासे घड़ा भर लाऊँ। फिर आरती-पूजा करूँ और उसके पश्चात् भण्डारमें भोजन बनानेमें सहायक होऊँ। विद्यार्थियोंकी एक बड़ी तादाद वहीं भोजन करती थी। हम लोग मन्दिरमें ही रहते थे। मन्दिरकी गोशालाके पासके कमरेमें अन्य सब छात्रोंके साथ मेरा भी निवास था। यद्यपि घरका बालक होनेके कारण, मेरी पहुँच घरकी सारी दिशाओंमें थी।

"हमारी बड़ी माँ, वंशीधरजीकी पत्नी, क्योंकि नाँदनेरमें नहीं रहती थीं, वे वहाँसे नौ मील दूर अपने मैकेके क़स्बे बाबईमें रहा करती थीं।

उनके इस सख्त स्वभावके कारण दादाजीका यह नाँदनेरका मन्दिर घर न होकर एक अखाड़ेका ही रूप धारण किये रहता।

"यह जायदाद और यह मन्दिर हमारे सबसे बड़ेसे दादा (स्वर्गीय) मुकुन्दरामजीका बनवाया हुआ था और ये दादाजी उनके स्वर्गवासके बाद यहाँका प्रबन्ध करने आ गये थे। यों ये ही वे दादाजी थे जो प्रारम्भमें ही पूरे परिवारसे अलग होकर रहने लगे थे। इस मन्दिरमें गाँवके किसान आते, सब जातियोंके लोग आते, हरिजन कभी न आते। किन्तु जो अन्य जातियोंके लोग आते, वे कोई न कोई स्तोत्र तो जानते ही होते। वे बड़े भक्तिभावसे आते, और दर्शन करनेके बाद गोशालामें जाकर गायोंकी पीठपर हाथ फेरते, उनके बच्चोंको दुलराते तथा यदि उन्हें खिलानेके लिए कुछ साथ लाये होते तो खिलाते। प्रायः सभी उबाहने पैर आते और वैसे ही लौट जाते।

लौह-शासनकी दीवारोंमें

"उत्सवों और त्यौहारोंके दिन यद्यपि मन्दिरमें झाँकियाँ सजाई जातीं, किन्तु अधिकांश समय विविध ग्रन्थोंके अवतरण-पाठमें ही व्यतीत होता। ऐसे दिन बाहरके सीखे हुए कुछ विद्यार्थी भी उस दिनके लिए मन्दिरमें आ जाते और पठन-पाठनमें स्पर्धासे भाग लेते। दादाजी संस्कृतके बड़े विद्वान् थे और उनकी ख्याति सर्वश्रुत थी। उनके पास बाहरके विद्यार्थियोंका ही नहीं, उनके इलाक़ेमें आनेवाले सभी विद्वानोंका आगमन होता रहता। ऐसे उत्सवोंपर मुझे एक ही कमी खटकती। बेचारे वैष्णव पदोंतकका बोलना इसलिए मना होता, क्योंकि वे संस्कृतमें लिखे हुए नहीं थे। तब यदि मन्दिरमें मैं कोई पद पढ़ना भी चाहता तो मन ही मन पढ़ता, जिससे बहाना किया जा सके कि संस्कृत ही पढ़ रहा था। मेरे इस शिक्षा-क्रममें संस्कृतके प्रति ऐसी ही कड़ाई बरती जा रही थी।

"ठीकसे देखता हूँ तो जीवनकी यह अवधि ही कड़ाईसे भरी हुई थी। प्रतिदिन सुबह उठते ही नर्मदामें जाकर स्नान करके पूजाके लिए

जो ताँबेका घड़ा भरकर लाता था, वह भी मेरे ऊपर कम कड़ाई नहीं थी। वर्षामें तो नर्मदा नजदीक रहती थी, किन्तु शीत और ग्रीष्ममें वह बहुत दूर चली जाती थी। अतः दूरसे घड़ा भरकर लानेमें इतना बोझ लग उठता था कि घाट चढ़नेके समय मैं घड़ेको घाटके शिवमन्दिर और परिक्रमावासियोंकी धर्मशालामें सिरसे उतार लिया करता था। और थोड़ी देर ठहरकर फिर घड़ा ले, मन्दिरमें आया करता था। यह तो अलगसे कहना ही नहीं चाहिए कि ताँबेका घड़ा खूब चमकीला रहना चाहिए और मन्दिरकी पूजाके समयमें भी विलम्ब नहीं होना चाहिए! दूसरे जाड़ेके दिनोंमें नर्मदाका स्नान और घड़ा भरकर लाना कुछ कम कष्ट-दायक न होता।

"दूसरा काम मुझे सौंपा गया भोजन बनानेका। मन्दिरकी भाषामें हमारे मन्दिर और पाठशालामें नित्य ही दस-बारह 'मूर्तियाँ' प्रसाद पाया करती थीं। मन्दिरकी जो बरौनी थी, उसकी लड़की मुलिया मेरी बड़ी रक्षिका थी। जब मैं अकेला होता और मुझसे बड़े-बड़े बर्तन न उठते, तब मुलिया बर्तन उठानेमें सहारा देती। जब मैं फटी हुई लकड़ियोंके बोझे चौकेमें न रख सकता, तब मुलिया मेरा हाथ बँटाती। कहीं ख़ून निकल आता तब मुलिया और मुलियाकी माँ मेरे हाथ या अंगोंमें पट्टियाँ बाँधती। और जब मैं पढ़ने बैठता तो संस्कृत या कोई भी भाषाको नाम-मात्र न समझनेवाली मुलिया मेरी श्रोता हो जाती! यदि मैं आमकी डालीपर बैठकर अमरकोष पढ़ता तो दूसरी झुकी डालीपर मुलिया विराज-मान रहती। किन्तु इस बीच यदि मेरे साथीसे लड़ाई हो जाती तो उस साथीसे लड़नेके लिए हम दो होते। मैं और मेरी मुलिया!!

"पं० मुकुन्दरामजी चतुर्वेदीका पहले ही स्वर्गवास हो चुका था। उनके बाद अब सबसे बड़े रह गये थे पं० छोटेलाल चतुर्वेदी और वे गजपुर नामक गाँवमें रहते थे। उनके यहाँ एक मन्दिर था, ज़मीन-जायदाद थी और बावन गाँवोंमें उनकी पुरोहिती चलती थी। अतः

नाँदनेर वाले दादाजीने, जो सबसे बड़े किन्तु छोटेलालजी चतुर्वेदीसे छोटे थे, मुझे यह सोचकर तैयार करना शुरू किया कि मैं अपने गजपुर वाले दादाजीके मन्दिरमें जाकर उनका सहायक हो सकूँ, क्योंकि उनके कोई सन्तान नहीं थी। अतः उन्होंने नाँदनेर जाते ही मुझे पाठपूजा और ज्योतिषकी ही शिक्षा देनी प्रारम्भ की, उधर ही विशेष ध्यान दिलाया। उन्होंने कौमुदी, अमरकोष, श्रीमद्भागवतका नवम और दशम स्कन्ध, शीघ्रबोध, [illegible] तथा कुछ अन्य पुस्तकें ही पढ़ानी शुरू कीं।

"नाँदनेरमें पढ़ाईका क्रम इस प्रकार था—प्रातःकाल अँधेरेमें उठकर विद्यार्थी भिन्न-भिन्न कार्योंके लिए चले जाते। मैं पूजाके लिए नर्मदासे जल लेने और स्नान करने चलता। वहाँसे लौटकर मन्दिरकी आरती हो चुकने पर पढ़ाई प्रारम्भ की जाती। कोई-कोई विद्यार्थी बहुत अँधेरे उठकर अपने पढ़े हुए पाठोंको दुहराते रहते, विशेषतः सिद्धान्तकौमुदीके सूत्र तथा अमरकोषके श्लोक अक्सर दुहराये जाते थे। कोई डेढ़ पहर दिन चढ़ने-पर कुछ विद्यार्थी अपने-अपने भोजनमें जुट जाते और जो गाँवमें रहते वे भोजन करनेके लिए चले जाते। दोपहरके समय, चूँकि आचार्य भोज-नोपरान्त सो जाते, विद्यार्थियोंमें पढ़नेकी स्वतन्त्र होड़ाहोड़ पैदा हो जाती। उस समय सभी पढ़नेवालोंका रूप बन्दरोंका-सा होता। कोई इस आमकी टहनीपर बैठा है और कोई उस आमकी टहनीपर। कोई सूत्रोंको विकृत संगीतकी भाषामें दुहरा रहा है, तो कोई मुहूर्तचिन्तामणिके ज्योतिष-ग्रन्थ के श्लोकोंको याद कर रहा है। कोई यजुर्वेदके मन्त्रोंको, विशेषतः रुद्र-मन्त्रोंको ध्यान और धुनसे उसके स्वरो समेत झाड़पर बैठे हुए दोनों पाँव आस-पास लटकाकर पढ़ रहा है।

"यह बात अवश्य देखनेमें आती कि सारी हलचलों, उपद्रवों और शरारतोंके बीच अध्ययन बिलकुल नियमित चलता रहता। उसके प्रति विद्यार्थियों हीमें आस्था थी। आचार्यका कुछ सिखाना तो केवल संके

जो ताँबेका घड़ा भरकर लाता था, वह भी मेरे ऊपर कम कड़ाई नहीं थी। वर्षामें तो नर्मदा नजदीक रहती थी, किन्तु शीत और ग्रीष्ममें वह बहुत दूर चली जाती थी। अतः दूरसे घड़ा भरकर लानेमें इतना बोझ लग उठता था कि घाट चढ़नेके समय मैं घड़ेको घाटके शिवमन्दिर और परिक्रमावासियोंकी धर्मशालामें सिरसे उतार लिया करता था। और थोड़ी देर ठहरकर फिर घड़ा ले, मन्दिरमें आया करता था। यह तो अलगसे कहना ही नहीं चाहिए कि ताँबेका घड़ा खूब चमकीला रहना चाहिए और मन्दिरकी पूजाके समयमें भी विलम्ब नहीं होना चाहिए! दूसरे जाड़ेके दिनोंमें नर्मदाका स्नान और घड़ा भरकर लाना कुछ कम कष्ट-दायक न होता।

"दूसरा काम मुझे सौंपा गया भोजन बनानेका। मन्दिरकी भाषामें हमारे मन्दिर और पाठशालामें नित्य ही दस-बारह 'मूर्तियाँ' प्रसाद पाया करती थीं। मन्दिरकी जो बरौनी थी, उसकी लड़की मुलिया मेरी बड़ी रक्षिका थी। जब मैं अकेला होता और मुझसे बड़े-बड़े बर्तन न उठते, तब मुलिया बर्तन उठानेमें सहारा देती। जब मैं फटी हुई लकड़ियोंके बोझे चौकेमें न रख सकता, तब मुलिया मेरा हाथ बँटाती। कहीं ख़ून निकल आता तब मुलिया और मुलियाकी माँ मेरे हाथ या अंगोंमें पट्टियाँ बाँधती। और जब मैं पढ़ने बैठता तो संस्कृत या कोई भी भाषाको नाम-मात्र न समझनेवाली मुलिया मेरी श्रोता हो जाती! यदि मैं आमकी डालीपर बैठकर अमरकोष पढ़ता तो दूसरी झुकी डालीपर मुलिया विराज-मान रहती। किन्तु इस बीच यदि मेरे साथीसे लड़ाई हो जाती तो उस साथीसे लड़नेके लिए हम दो होते। मैं और मेरी मुलिया!!

"पं० मुकुन्दरामजी चतुर्वेदीका पहले ही स्वर्गवास हो चुका था। उनके बाद अब सबसे बड़े रह गये थे पं० छोटेलाल चतुर्वेदी और वे गजपुर नामक गाँवमें रहते थे। उनके यहाँ एक मन्दिर था, ज़मीन-जायदाद थी और बावन गाँवोंमें उनकी पुरोहिती चलती थी। अतः

नाँदनेर वाले दादाजीने, जो सबसे बड़े किन्तु छोटेलालजी चतुर्वेदीसे छोटे थे, मुझे यह सोचकर तैयार करना शुरू किया कि मैं अपने गजपुर वाले दादाजीके मन्दिरमें जाकर उनका सहायक हो सकूँ, क्योंकि उनके कोई सन्तान नहीं थी। अतः उन्होंने नाँदनेर जाते ही मुझे पाठपूजा और ज्योतिषकी ही शिक्षा देनी प्रारम्भ की, उधर ही विशेष ध्यान दिलाया। उन्होंने कौमुदी, अमरकोष, श्रीमद्भागवतका नवम और दशम स्कन्ध, शीघ्रबोध, मुहूर्तचिन्तामणि तथा कुछ अन्य पुस्तकें ही पढ़ानी शुरू कीं।

"नाँदनेरमें पढ़ाईका क्रम इस प्रकार था—प्रातःकाल अँधेरेमें उठकर विद्यार्थी भिन्न-भिन्न कार्योंके लिए चले जाते। मैं पूजाके लिए नर्मदासे जल लेने और स्नान करने चलता। वहाँसे लौटकर मन्दिरकी आरती हो चुकने पर पढ़ाई प्रारम्भ की जाती। कोई-कोई विद्यार्थी बहुत अँधेरे उठकर अपने पढ़े हुए पाठोंको दुहराते रहते, विशेषतः सिद्धान्तकौमुदीके सूत्र तथा अमरकोषके श्लोक अक्सर दुहराये जाते थे। कोई डेढ़ पहर दिन चढ़ने-पर कुछ विद्यार्थी अपने-अपने भोजनमें जुट जाते और जो गाँवमें रहते वे भोजन करनेके लिए चले जाते। दोपहरके समय, चूँकि आचार्य भोज-नोपरान्त सो जाते, विद्यार्थियोंमें पढ़नेकी स्वतन्त्र होड़ाहोड़ पैदा हो जाती। उस समय सभी पढ़नेवालोंका रूप बन्दरोंका-सा होता। कोई इस आमकी टहनीपर बैठा है और कोई उस आमकी टहनीपर। कोई सूत्रोंको विकृत संगीतकी भाषामें दुहरा रहा है, तो कोई मुहूर्तचिन्तामणिके ज्योतिष-ग्रन्थ के श्लोकोंको याद कर रहा है। कोई यजुर्वेदके मन्त्रोंको, विशेषतः रुद्र-मन्त्रोंको ध्यान और धुनसे उसके स्वरों समेत झाड़पर बैठे हुए दोनों पाँव आस-पास लटकाकर पढ़ रहा है।

"यह बात अवश्य देखनेमें आती कि सारी हलचलों, उपद्रवों और शरारतोंके बीच अध्ययन बिलकुल नियमित चलता रहता। उसके प्रति विद्यार्थियों हीमें आस्था थी। आचार्यका कुछ सिखाना तो केवल संकेत-

मात्र था। जब दो साथियोंमें झगड़ा हो जाता और एक दूसरेको अपने कार्योंसे पराङ्मुख करना चाहता तो झगड़ा करते हुए भी अमरकोष वाला अमरकोषके स्तोत्र पढ़ता रहता औद व्याकरणवाला सूत्र उच्चारण करता रहता। उन क्षणोंमें मन्दिरकी सीमावाला आमका बगीचा बड़ा सुहावना मालूम होता। उन वृक्षोंपर यदि बन्दर भी होते तो, इन विद्यार्थी–बन्दरोंको देखकर वे भाग निकलते…

"जब इस मन्दिरमें किसी विद्वान्‌का आगमन होता तब हम विद्यार्थियोको चुने हुए श्लोकोंको उस समय सुनानेके लिए कहा जाता। यों भी नर्मदा-स्नानके पश्चात् विद्यार्थी रुद्रका पाठ करते। लोगोंको स्तोत्रोंके प्रति ज्ञानकी कोई आस्था न थी, तो भी कितने ही स्तोत्र विद्यार्थियोंको मुखाग्र रहते। और स्तोत्र सुनानेपर विद्या पढ़नेका कोई सम्बन्ध न माना जाता। उन दिनों यदि कोई ऐसा व्यक्ति आ जाता जो विना स्नान या प्रार्थना किये भोजन करता हो तो उसे मन्दिरमें तो स्थान ही नहीं मिलता, बाहर भी ऐसे व्यक्तिका नाम सुनते ही विद्यार्थी नाक-भौं सिकोड़ते और उससे मन ही मन घृणा करते।

"जब फ़सल कटनेके बाद मन्दिरमें खलिहान बनता, और मन्दिरके अपने खेत बराबर ही रहे, तब विद्यार्थियोंके पढ़नेका अड्डा खलिहानमें जमता। उस समय यदि मटर (जिसे नाँदनेरमें बटरा कहा जाता है), तेवड़ा अथवा चना खलिहानमें उखड़कर आता तो उसमें जितना भाग हरा होता, विद्यार्थी उसे खाते जाते और पाठ करते जाते। अतः मन्दिरकी उपज कम होवे तो आश्चर्यकी कोई बात नहीं।

"कुछ विद्यार्थी गायें दुहनेका भी काम किया करते थे। उस समय गायोंका वह दुहना और गायोंका आदमियोंके पीछे-पीछे शान्त भावसे घूमते रहना बड़ा ही मनोहारी मालूम होता। जब गायोंको पानी पिलाने ले जाना होता तब नर्मदासे लौटते समय गायें अपनी गतिसे घाटी चढ़ी जा रही हैं, किन्तु विद्यार्थी सबसे आगे है, वह किनारेके वृक्षोंकी डालियोंको

पकड़ कर लटक पड़ता है और कूद जाता है और फिर गायोंके आगे हो जाता है किन्तु गायें हैं कि शान्त भावसे भिन्न-भिन्न स्थानोंको पगडंडियाँ बनातीं, घाटीपर चढ़ी चली जातीं। और यदि विद्यार्थी शिव-मन्दिरपर आकर बैठ जाता तो गायें भी घेरा डालकर उसके आसपास खड़ी हो जातीं। कोई विद्यार्थीकी ओर ऊँचा मुँह करके, और कोई अपने सींग और कान नीचे करके। उस समय श्रीमद्भागवतकी गायों और कृष्णका सम्बन्ध विद्यार्थियोंकी समझमें सहज ही आ जाता और जो गायें उद्दण्ड होतीं वे भी मानो नर्मदाके घाटपर तो शायद दूसरी गायोंकी देखा-देखी सीधी हो जातीं! उनकी उद्दण्डता और उनका भयभीत करनेवाला स्वभाव केवल उनके खड़े हुए कान और उनकी ऊँची हुई पूँछसे व्यक्त हुआ करता। दूसरी ओर गाँवोंके हरवाहे-चरवाहे भी गुठान (दोपहरके समय विश्रामके लिए पशुओंको बैठानेकी जगह) से जब गाय-बैलोंको उठाते, तो उनके गाली-गलौज और लाठी-प्रहारके कारण वह दृश्य देखनेको न मिलता, जो मन्दिरकी गायोंकी निर्मलतामें दिखाई देता। जब गायोंको नर्मदामें नहलाया जाता और जब उन्हें गहरेमें उतार दिया जाता तो उनकी पूँछ पकड़कर विद्यार्थी तैरनेमें विना हाथ-पैर हिलाये नर्मदाके उस पार या इस पार हुआ करते।

"नाँदनेरसे पार उतरनेके बाद, ढाना गाँव, जिसकी सीमामें गायें पार उतरतीं, अंग्रेज़ी इलाक़ेमें था, अतः नाकेदार दौड़ पड़ता कि आदमी और गायका किराया लाओ, इस पार क्यों उतार लाये? आदमीका एक पैसा और गायका चार पैसा।

"किन्तु शरारती विद्यार्थी अपनी गायको लेकर फिर नर्मदामें कूद पड़ता और वह इस पार नाँदनेरकी तरफ़ आ जाता। तब इस पारका नाकेदार कहता, लाओ पैसे, तुम पार उतर कर आये हो। सो भवसागरसे उतरनेके पाठ पढ़ते-पढ़ते विद्यार्थियोंको यह अनुभव होता रहता कि भवसागरके पार उतरना चाहे सरल हो, किन्तु गायों समेत नर्मदा पार

करनेके लिए तो टेंटमें पैसे चाहिए। या फिर नाकेदार खुश होना चाहिए !

"उस समय जब विद्यार्थी पार उतरनेके बाद अंग्रेज़ी इलाक़ेमें पहुँचता और किसी संस्कृत स्तोत्रका पाठ करता होता तो उसे भीजे कपड़ों स्तोत्र पाठ करते देखकर नाकेदार अथवा कोई भी कुछ न बोलता। मन्दिरमें रहते हुए गायों और ग्रन्थोंका विद्यार्थियोंके साथ ऐसा सम्बन्ध रहता कि उसकी अभिन्नता आज भी जब याद आ जाती है तो मन एक विचित्र प्रकारसे सोचने लगता है।

"यद्यपि आचार्यके साथ जो विद्यार्थी श्रीमद्भागवत अथवा किसी कथा-पुराणके लिए नर्मदासे दूर गाँवमें साथ जाते तब विशेषतः भोजनकी रुचिवाले विद्यार्थी जाते। किन्तु नर्मदाके तटके किसी गाँवमें इस पार या उस पार जानेका काम पड़ता, तब ऐसे विद्यार्थी विशेषरूपसे जाते, जिनके लिए नर्मदाका एक ही अर्थ होता—तैरना, फिर तैरना और फिर खूब तैरना।

"गर्मियोंके दिनोंमें तो मन्दिरके विद्यार्थियोंकी समता भैंसोंसे ही की जा सकती है। वे विद्याभ्यासके लिए भी नर्मदामें तैरते हुए ही पाठ याद करते। उस समय विद्यार्थियोंकी शरारतसे नर्मदाके विशालकाय कछुए, जो किनारेकी रेतीमें दुबककर बैठे रहते, प्राण बचा कर पानीमें भाग जाते। गर्मीके दिनोंमें तो विद्यार्थियोंमें प्रायः रोज़ ही होली रहती। उस समय नर्मदा मानो सच्चे रूपमें विद्यार्थियोंकी प्राणरक्षिका होती। अमरकोष के श्लोक और अन्य ग्रन्थोंके ज्ञानको विद्यार्थी एक दूसरेसे ऐसे बताते मानो गालियाँ दे रहे हों अथवा एक दूसरेपर ढेले फेंक रहे हों !

"हाँ, केवल संथा-प्राप्ति (पाठ-ग्रहण) के समय ही वे मन्दिरमें आचार्यके पास अधिक समय ठहरते। किन्तु जिन दिनों आचार्य मन्दिरमें न होते, विद्यार्थियोंको ढूँढ़ निकालना कुछ सहज काम न था। और उन दिनों गाँवोंके नर्मदा तटकी हरी घासमें चरने वाले घोड़े-घोड़ियोंकी भी

ख़ैर न रहती। किस घोड़े-घोड़ीको कहाँसे पकड़ा और उसे कहाँ छोड़ आये, यह विद्यार्थियोंकी बलाय जाने!

"इसी लिए गाँवके कुछ विद्यार्थी तो गाँवके किसानोंके द्वारा पीटे भी जाते। जो हो, किन्तु विना लगामके और विना खोगीर (साज) के घोड़े-घोड़ियोंपर बैठने और उनकी अयालसे लगामका काम लेनेमें विद्यार्थी इतने निष्णात हो जाते कि देवमन्दिरमें निवास करते हुए यह सैनिकशिक्षा अलगसे पूरी हो जाती। तेरह-चौदह सालके विद्यार्थीका घोड़े-घोड़ियोंको भरपूर दौड़ाना एक अद्भुत तालीम थी। तिसपर मजा यह कि विद्यार्थी महाशय दौड़ते हुए घोड़ेपर वाल्मीकि रामायणके छन्दोंका पारायण करते हैं और अनुष्टुप् छन्दके उतारपर घोड़े-घोड़ीको एड़ भी लगाते हैं। इस बीच यदि घोड़े-घोड़ीका मालिक किसी विद्यार्थीको रंगे हाथों पकड़ पाता, तो सच्चे अर्थोंमें वह मालिकको गो-ब्राह्मण प्रतिपालक समझता, सारी अकड़ और शेख़ी भूल जाता और अकेलेमें सौ-सौ शपथें खाकर कहता कि वह अब घोड़े-घोड़ीको पकड़नेका ऐसा अपराध न करेगा। किन्तु ऐसी प्रतिज्ञाएँ प्रायः तोड़नेके लिए ही की जाती थीं!

"हाँ जिन दिनों मन्दिरमें कहींसे कोई विद्वान् आये होते और ग्रन्थोंके आधारपर उनका प्रवचन हिन्दीमें होता; तो कोई विद्यार्थी उन दिनों प्रवचन छोड़कर खेलने, घोड़ेपर चढ़ने, बार-बार नर्मदा नहाने, यहाँ तक कि वृक्षोंकी डालियोंपर झूले झूलने भी न जाता। और जो कार्यवश गाँव हीमें अपने घर जानेकी बात उस दिन कहता, वह विद्यार्थी अपनी श्रेणीका अच्छा विद्यार्थी न माना जाता।

"मेरे विचारसे पढ़ने, खेलने-कूदने और शरारत करने और सौंपे हुए काम पूरा करनेसे विद्यार्थियोंको अवकाश भी नहीं मिलता था।

"नाँदनेरमें रहते हुए मैंने उर्दू और फ़ारसीके अच्छे जानकारोंको मन्दिरमें आते देखा था। शायद इसका कारण यह था कि वह भोपाल रियासतमें था, जहाँ नवाबी शासन था। उन दिनों बेगम साहिबाका

राज्य था और उर्दू तथा फ़ारसीके विद्वान् वहाँ सम्मान पाते थे। गाँवके लोगोंमें भी उर्दू और संस्कृत एक साथ जानने वाले लोगोंकी संख्या ब्राह्मणों, कायस्थों और राजपूतों आदिमें थी।

"नाँदनेरमें जब हमलोग पढ़ते, तो खेतोंकी रखवाली भी किया करते। वर्षामें वहाँ काँगनी, बाजरा, मकई, भूले-भटके ज्वार और मूँग तथा उर्द आदि बोये जाते। किन्तु फ़सलोंमें वहाँ अधिकतर गेहूँ, चना अधिक बोये जाते। उन दिनों वहाँ सौ रुपये भरका पक्का सेर चलता। वहाँकी मनी बीस पसेरीकी होती। और वहाँका माप पाँच सेरका होता, जिसे वहाँकी भाषामें कुड़ो कहा जाता था। खेतोंकी फसल रखाते हुए पशु-पक्षियोंसे इतना प्रेम हो जाता कि मैं कितनी ही बार पक्षियोंके नन्हें बच्चोंको देखनेके लिए, और रोज़ देखनेके लिए विशाल वृक्षोंकी ऊँची डालियों तक चढ़ा करता। मुझे उनकी चहक, उनकी फुदक, उनकी माँका उनके मुँहमें मुँह देकर, चोंचमें चोंच भरकर खाद्य देना मुझे बहुत अच्छा लगता था। मन्दिरमें भी जब मैं तोतोंकी हरी पाँतको अहातेके आमके झाड़पर किलबिल करते देखता और उन्हें देखता ही रह जाता, तो मैं डाँटा जाता था कि मैं नशा करनेवालेकी तरह होश भूलकर झाड़ोंकी तरफ़ पागल जैसा क्यों देखा करता हूँ। इस विषयमें मेरे साथी विशेषतः हीरा-मोती मुझे बहुत चिढ़ाते।

"जब कोई गिलहरी बेरके झाड़पर बेरके कच्चे फल कुतर-कुतरकर आधे नीचे गिरा जाती, और आधा हिस्सा खाती जाती तो मेरे साथी उस गिलहरीको देखने और व्यंग्यमें देखते रहनेके लिए मेरे पढ़ते समय भी मन्दिरके बगीचेमें मुझे पकड़ ले जाते। मैं भी चला जाता और जब चला जाता तब मेरी शिकायत कर दी जाती!

"मन्दिरकी गायोंको और कुछ बाछोंको मैं कभी-कभी चरानेके लिए नर्मदा-तटपर भेजा जाता। मेरे एक-दो विद्यार्थी साथी और होते। लाठी काँधेपर रखकर उसपर दोनों हाथ लटकाकर गायोंके पीछे-पीछे घूमना

मुझे बहुत प्यारा मालूम देता। उस समय मैं 'मैया मैं नहिं माखन खायो'...इस पदको बड़े चावसे दुलराते हुए दुहराता। क्योंकि इसी पदमें यह पंक्ति भी है : 'यह ले अपनी लकुटी कमरिया बहुतै नाच नचायो।'

"किन्तु गीतकी जब अन्तिम पंक्ति याद आती, तब मुझे अपनी माँकी याद आती। मैं सोचता कि यहाँ मुझे कंठसे लगानेवाला और पीठपर हाथ फेरनेवाला कौन है ? उस समय नर्मदाकी कछारोंका वह सारा रसमय दृश्य विषमय हो जाता !

"नाँदनेरके जीवनमें मुझे हरवाहों और चरवाहोंके गीत बहुत प्यारे लगते थे। वे ऐसी बुन्देलखण्डीमें कहे जाते कि अपनी रसपूर्णता, रुचि-मादकता और परिस्थितिजन्य विषमताके कारण भाषाके सौष्ठव, शृंगार और शुद्धताकी ओर बच्चोंका ध्यान ही न जाने देते।

"गाँवमें हमलोग कभी-कभी और प्रायः महीनेमें एक आध बार ही जा पाते। हमारा अधिकतर परिचय उन्हीं लोगोंसे होता जो या तो मन्दिर-में दर्शन करने आते, या मन्दिरके रास्ते अपनी मज़दूरीपर कहीं आते-जाते होते। या मन्दिरमें ही कहीं मेहनत-मज़दूरी करने आते। आठ-पन्द्रह दिनमें जब भरकच्छसे पोस्टमैन आता तो मुझे अपने पिताजीसे पत्र पानेकी बड़ी आशा रहती। यद्यपि मर्यादावश पिताजीका पत्र दादाजीके ही नाम आता और उसमें मेरा कहीं भी उल्लेख न होता, तब भी उन पत्रोंका शब्द-शब्द लगता, जैसे मेरे लिए ममताका ख़जाना ले आया हो। उन अक्षरों ही पर आँखें गड़ी रहतीं। दादाजीके पढ़ लेनेके बाद मैं उन पत्रोंको छुपा देता। पत्र क्या, वे पोस्टकार्ड होते। पोस्टकार्ड उन दिनों एक पैसेका होता। लिफ़ाफ़ा आध आनेमें। तार चार आनेमें जाया करता। किन्तु जिसके घर तार आता, वह घबड़ा जाता था। तार मानों मृत्यु-संवाद ले जाने या संकटपूर्ण अवस्थाकी सूचना देनेके लिए ही हुआ करते !

"मेरे पिताजीको, जैसा कि मैंने कहा है, छिदगाँवमें तुलसीकृत रामायण-

का शौक़ था। उनके संरक्षणमें रहते मुझे 'रामचरित मानस'से प्रारम्भसे ही बहुत प्रेम रहा। वैष्णव परिवार होनेके कारण अष्टछाप-के कवियोंके पाँच पद भगवान्‌के सामने बैठकर पढ़े विना छिदगाँवमें भोजन नहीं मिलता था। नाँदनेरमें इन पदोंसे छुट्टी मिल गई थी। किन्तु यहाँ रामस्तवराज महीम, रामरक्षा, विष्णुसहस्रनाम, गोपाल सहस्र-नाम आदि श्लोक पढ़ने पड़ते थे। दादाजीकी स्पष्ट आज्ञा थी कि ख़बर-दार, जो किसीको हिन्दी पढ़ते हुए देखा! जो हिन्दी पढ़ता, उसकी ख़ैर नहीं थी। कितने ही विद्यार्थी हिन्दीमें नासिकेतोपाख्यान पढ़नेके कारण सजा पा चुके थे।

"मेरा मन तो हिन्दी पढ़ने हीमें बना हुआ था। अतः बार-बार तबीयत चाहे कि कुछ हिन्दीमें पढ़ूँ। परन्तु नाँदनेरमें कहाँ हिन्दी! परिणामतः छिदगाँवमें जो वैष्णव पद बोझ लगते, वे अब बहुत प्यारे लगने लगे। मैं जब स्नान करने नर्मदाकी रेतमें जाता अर्थात् पानी भरने, तब कुछ देर तो नर्मदामें कुलाचें भरता, हरवाहों-चरवाहोंसे झगड़ता, उनके गाय-बैल इधर-उधर कर देता और उन वैष्णव पदोंको मस्त होकर दुहराता। यदि कोई साथी मेरे साथ किसी दिन नर्मदा आ जाता तो वह दादाजीसे शिकायत कर देता कि मैं आज हिन्दीके पद गा रहा था। इसपर वे किसी दिन तो ग़ुस्सा ही करते, और किसी दिन पिटाई भी उड़ जाती। लेकिन शरारतोंके एवज़में यह पहली पिटाई तो थी नहीं!"

पञ्चम परिच्छेद

मुक्त-स्वच्छन्द तरुणाईके सरस पाठ

"एक दिन दादाजी खेतपर गये। सारे शिष्यगण भी उनके साथ थे। तब मुझसे कहा गया कि मैं हरवाहे-चरवाहेका काम देखूँ और मन्दिरकी रखवाली भी करूँ। स्वभावतः मेरा मन खेतकी ओर भागनेका था, किन्तु मैं रखवालीमें जो लगा दिया गया था। तब मुझे सूझा कि क्यों न मैं ताँबेकी बड़ी-बड़ी परातोंमें रखी हुई मन्दिरके भीतरकी पुस्तकोंको खोल-खोलकर देख डालूँ। और उन्हें फिर ज्योंका-त्यों बाँध दूँ। लालच यही था कि कोई हिन्दी-पुस्तक पढ़नेको मिले—हिन्दीके प्रति रहनेवाली ललकके कारण नहीं, कदाचित् केवल नटखट आदतके कारण।

"ताँबेकी दोनों बड़ी परातोंमें नन्हें हाथोंसे गिने कि कोई सौसे अधिक बस्ते थे। मन्दिरके दरवाज़े बन्द करके केवल खिड़कीके सहारे आनेवाले मन्दिरके उजालदानके थोड़ेसे उजारेमें जल्दी-जल्दी बस्तोंकी तलाशी मैंने शुरू की। एकके बाद दूसरा बस्ता खोलूँ, पर हाय-हाय! जो कहीं कोई हिन्दी पुस्तक मुझे मिल तो जाय। संस्कृत पुस्तकोंके अनुवाद भी संस्कृत ही में मिलते। तंग आकर सोचा कि छोड़ूँ इस धन्धेको। बहुत देरके बाद मैंने देखा कि लल्लूलालजीका प्रेमसागर एक बस्तेमें बँधा है। बस्ता कत्थई रंगका था। वह पुस्तक बगलबाड़ेके किन्हीं पृथ्वीसिंहजी द्वारा नाँद-

नेरके मन्दिरको भेंट दी गई थी संवत् १९४९ में। ललचाई हुई आँखोंसे मैंने पुस्तक देखी ··इतनेमें दादाजीके आनेकी खबर पाकर मैं जल्दी-जल्दी पुस्तकें जमाकर बाहर भागा। मन्दिरके बर्तन मलनेवाली कहारिनकी बड़ी लड़की ७,८ वर्षकी मुलियाको मैंने पहरेपर बैठा दिया था। उसीने दौड़कर मुझे खबर दी कि पुजारी दद्दा आ रहे हैं।

"जब दादाजी रातको भगवान्की आरती करने लगे तब मेरी चोरी उनकी पकड़में आ गयी। मुझे डाँटा कि मैंने बस्तोंको हाथ क्यों लगाया?

'प्रेमसागर'की संगति हाथ लगी

"स्यारीकी फसल कट रही थी और उन्हें तो रोज़-रोज़ खेतपर जाना था। अतः इस डाँटके बावजूद मैं मन ही मन प्रसन्न था। किन्तु दूसरे दिन उन्होंने खेतपर जाते समय उस युगका एक ताला मन्दिरमें लगवा दिया और चाभी लेकर खेत चल दिये।

"मन्दिरकी रचनामें एक थोड़ी सी जगह ऊपरकी मंजिलपर ऐसे रखी गई थी जिसमें से दूसरी मंजिलपर रहनेवालोंको भगवान्के दर्शन हो सकें। ऊपर चढ़नेके लिए जो ज़ीना था, उसमें कोई दरवाज़ा न होनेके कारण वहाँ ताला लग ही नहीं सकता था। अतः मैंने खेतीकी रस्सियोंको मकान-की मीयालमें बाँधकर रस्सीमें गाँठें लगाई और प्रेमसागर उड़ा लानेके लिए उस छोटी जगहमेंसे मैं लटककर रस्सीके सहारे मन्दिरमें उतर गया। प्रेम-सागरके बस्तेको गलेमें बाँधकर रस्सीके सहारे ही कई बार पटकनी खानेके बाद मैं फिर किसी तरह ऊपर आ गया। किन्तु इस पूरे प्रयासमें इतनी देर लग गयी कि मैं प्रेमसागरका पढ़ना उस दिन प्रारम्भ नहीं कर सका।

"मुलिया ढीमर मेरी नित्यकी पहरेदार थी। उसने खबर दी कि दादाजी आ रहे हैं। मैंने ज्वारके टटेरों भरी गाड़ीमें, जो मन्दिरके दर-वाज़ेपर थी और जिसे वहीं पड़े रहना था, प्रेमसागरकी प्रति छुपा दी।

"दादाजीको उन दिनों नित्य ही खेत जाना था। अतः मैंने टटहरेकी उसी गाड़ीमें, टटहरेके पूले आसपास जमाकर, नित्य उस बोझा-गाड़ीमें चित्त लेटकर प्रेमसागर पढ़ना प्रारम्भ किया। जब कृष्णके वृन्दावनसे गोकुल-गमनका प्रसंग आया, मुझे याद है, वह मुझसे नहीं सहा गया। मै अक्रूरको कोसने लगा और मेरी आँखोंसे आँसू बह चले। यों आँसू तो मेरे जीवनमें कई बार आये हैं, किन्तु पढ़नेके कारण और कृष्णकी विदाके कारण आनेवाले वे आँसू बार बरदारीकी उस गाड़ीमें, ज्वारके टटेहरोंके बीच, जो आये थे, शायद मेरी समझके पहले साहित्य-रससे भीने आँसू थे और उसके लिए मैं मुलिया पहरेदारसे इतना प्रसन्न था कि भगवान्की आरतीमें मिले प्रसादके चिरौंजीदानोंका एक विशेष अश मैं मुलियाके लिए बचाकर रख लेता था। किन्तु एक दिन मन्दिरके बगीचेमें बन्दर आ जानेके कारण मुलिया कम्बख्त उन्हें भगाने चली गई और मेरे दादाजी सदल बल आ पहुँचे। आते ही मुझे आधे नामसे पुकारा। घबराहटमें मैं प्रेमसागर छुपा ही रहा था कि पकड़ लिया गया और पुस्तक समेत अपने साथियों द्वारा दादाजीके सामने खड़ा कर दिया गया।

"उस दिन जो पिटाई हुई, उसका स्वाद आज भी जब याद आता है तब क्या कहूँ। उन दिनों वे मुझे ज्योतिषका प्रारम्भिक ग्रन्थ 'शीघ्रबोध' पढ़ा रहे थे जिससे मैं दो रोटी कमाने लायक़ बन सकूँ। किन्तु जो विद्या मुझे सिखानी चाही वह मेरे जीवनमें रही नहीं और जिसे मुझे पढ़ना चाहिए था, वह मेरे मन-प्राणमें भर गई।

"नाँदनेरका जीवनकाल विशुद्ध संस्कृतकी पढ़ाईका जीवनक्रम था, किन्तु मेरी माँ मेरे वहाँ रहनेसे सन्तुष्ट नहीं थीं। फिर भी वे अक्सर कहला दिया करतीं कि मैं पढ़नेके सिवा अन्य काम न करूँ। किन्तु प्राचीन चटशाला-पद्धतिमें यह संभव ही नहीं था। एक बारह-तेरह वर्षका बच्चा इतना सबल होता ही कैसे कि वह अपने गुरुजनों और नियन्त्रकोंकी

आज्ञाका उल्लंघन कर सके। प्रारम्भमें मेरी माँ और पिताजीके नियंत्रणसे छूटनेके कारण मैं अत्यधिक सुखी था। हाँ, रह-रहकर मुझे माँका प्यार याद आता था और मैं नाँदनेर छोड़कर भाग जाऊँ, ऐसी तबीयत चाहती थी। छोटे भाइयोंकी तो इतनी याद आती थी कि गाँवके दीखनेवाले बच्चे मुझे अपने भाइयोंकी शकलके दीखते और मेरा मन अध्ययनसे विचलित हो जाता। जब नाँदनेरका अनुशासन छिदगाँवसे भी सख्त दिखाई दिया और बड़ी बात यह कि वहाँ हिन्दीका पठन-पाठन सर्वथा बन्द हो गया, माँकी जगहपर कोई प्यार करनेवाला न दीखता तब मेरा मन बार-बार कहता कि छिदगाँव बहुत अच्छा, बालभट्टजी सर्वश्रेष्ठ और पिताजीका ही नियंत्रण भला!

"यहाँ नाँदनेरमें दादाजीके बड़े लड़के अयोध्याप्रसाद भी पढ़ते थे। रह-रहवाकर वे ही भाइयोंमें थे, पर उनसे अक्सर लड़ाई ही छिड़ी रहती। दादाजीके प्यारपर वे अपना हक़ जमाते और दादाजी अपना प्यार मुझे देते ही रहते। जब अयोध्याप्रसादका अन्याय मुझपर बढ़ जाता तो मैं गाँवमें सेठ कन्हैयालालजीके पास जाता और उनसे ही शिकायत करता कि वे अयोध्याको समझा देवें। सेठ कन्हैयालाल छिदगाँव-के सेठ रामनारायणकी तीसरी पुत्री जानकीबाईसे ब्याहे थे। जानकीबाईसे भी मिलकर मैं बहुत कुछ अपनी माँकी पूर्ति कर लिया करता। कन्हैया-लालजी अयोध्याप्रसादको समझाते रहे; पर जैसा कि लगभग समान उम्रके बच्चोंमें होता है, मेरी और अयोध्याप्रसादकी बात-बातपर लड़ाई होती ही थी। स्वभावतः ऐसी लड़ाइयोंमें दादाजी कभी मेरा पक्ष लेते और कभी अयोध्याका। लड़ाईके विषय खाना, पहनना, खेतमें जाना तथा भिन्न-भिन्न प्रकारके हुआ करते। वे मुझे अपना शत्रु समझते और हर काम करते समय वे मुझसे भयभीत रहते कि मैं दादाजीसे कहूँगा। मैं उनके द्वारा पीटे जानेसे भयभीत रहता।

माताके आग्रहोंकी उपेक्षा

"एक दिन नर्मदा घाटसे लौटते समय एक छोटे बालकको देखा। मैंने उससे उसका नाम पूछा। उसने अपना नाम सिम्मा बताया। उसकी शकल मेरे छोटे भाई रामदयालसे खूब मिलती थी। मुझे घरकी याद आई और मेरा मन पढ़नेमें नहीं लगा। यह बात मैंने अपने आचार्य तथा दादाजीसे कहलवाई और उन्होंने मुझे तुरन्त छिदगाँव भिजवा दिया। जब मैं अचानक घर पहुँचा तब माँ बहुत प्रसन्न हुईं और पिताजी बहुत नाराज़। किन्तु मैंने रामदयालको खूब हृदय भरकर देख लिया। तीसरे ही दिन किसी आते-जाते सज्जनके साथ मुझे तुरन्त नाँदनेर लौटा दिया गया और नाँदनेर जानेका विरोध करनेके कारण माँको पिताजीकी बहुत झिड़कियाँ सहनी पड़ीं। माँने जो कष्ट पाये, उनकी याद जब मैं करता हूँ तो मुझे बहुत कष्ट होता है। दुबारा जब घर लौटकर आया तब मेरी माँ नहीं चाहती थीं कि मुझपर सख्तियाँ की जायँ, अतः उन्होंने पिताजीसे प्रार्थना की कि अब मुझे न भेजा जाय। साथ ही मेरी संस्कृतकी पुस्तकें भी माताजीने कहीं छुपाकर रख दीं। किन्तु पिताजीने बिलकुल नहीं माना, वे स्वयं मुझे संस्कृत पढ़ाते तथा समय निकालकर वे मालगुज़ारके घर भेजते जहाँ छुट्टियोंमें आये हुए उनके विद्वान् लड़के, जो कालेजोंकी छुट्टीके कारण आते थे, मालगुज़ारके अन्य बच्चोंके साथ मुझे गणित तथा अन्य विषयोंकी शिक्षा दिया करते। एक बार मैंने रामस्तवराजके एक श्लोकका ग़लत उच्चारण कर दिया था। पिताजीने उस दिन मुझे भोजन देनेसे मना कर दिया।

"इन्हीं अयोध्याप्रसादजीके विवाहकी बारातमें मैं भी शामिल हुआ था। तबकी बात है। बारात पहले नर्मदाके घाटचर घाटपर जाकर ठहरी। जहाँ बारात जानेवाली थी, वह बमहारे गाँव था जो लगभग ४५ मील दूर था। नर्मदापर पड़ाव डालकर पहले सब बच्चोंको नहलाया गया और

उन्हें दो-दो पूरी, दो-दो बाटी और एक-एक लड्डू नाश्तेके लिए दे दिया गया। पर जब तक मैं नहाकर आया, एक लड़केने, जो रिश्तेमें मेरा ही भाई होता था, चुपकेसे मेरी एक बाटी उठा ली। जब मैं नाश्तेके लिए आकर बैठा और पता चला कि किसने मेरी एक बाटी उठा ली है तो अपनी दूसरी बाटी मैंने उसके सिरमें दे मारी और कहा, 'ले, तू तीन बाटी खा!' तीन बाटीसे मतलब यह कि एक बाटी तो वह, जो पहले ही उठा चुका था, दूसरी वह जो मैंने उसके सिरमें दे मारी थी, और तीसरी वह जो उसके सिरमें मेरी मारी गई बाटीसे चोटके कारण सूजन बनकर सिरमें उठ आई थी!

"ख़ैर, बारात लड़कीवालेके गाँव पहुँची। वहाँ यह हुआ कि लड़की-वालेकी नाइनने मुझे बहुत गोरा देखकर मेरी आँखोंमें काजल लगानेके बहाने मेरा सारा मुँह काला कर दिया। मेरी यह आदत रही है कि मैं शिकायत करने कभी घर नहीं गया। स्वयं ही बाहर निपट लेता था। वह कालोस तो मैंने कपड़ेसे पोंछ ली, पर वह पुँछनेवाली कहाँ थी? मुँहपर कालोस बनी रही। पर अब मैं मौक़ेकी ताकमें रहा। जब दूल्हा-दुल्हिन जुआ खेलने बैठे तो वहाँपर सिर्फ़ औरतोंका ही जमाव लगा हुआ था। मैं भी वहीं पहुँच गया और बच्चोंके बीचमें इस तरह बैठा कि उस नाइनके पास बैठ सकूँ। वहाँ जानेसे पहले एक सुई-धागा ख़रीदकर ले गया था। मैंने उस नाइनका घाघरा नीचे बिछी हुई जाजमसे सी दिया। और चुपकेसे मंडपके ऊपर जा चढ़ा। वहाँसे सारा नज़ारा देखने लगा। घाघरा सीनेका जो परिणाम था, वह जब प्रकट हो गया तो सारे लड़कीवाले क्रोधसे उबल पड़े और उन्होंने लाठियाँ सँभाल लीं। इस शोरको जब पिताजीने ध्यानसे सुना तो बोले कि यह और कोई नहीं, मेरे सुपुत्रने ही किया है। लेकिन सुपुत्रका पता कैसे चले। बाबाजीने कहा कि देखो, वह आ जायगा, लेकिन तुम उसे पीट नहीं सकते। पिताजीने अनिच्छापूर्वक यह मान लिया। तब बन्दरकी

तरह मैं उस मण्डपके नीचे उतरा। बाबाजीने मुझसे पूछा कि यह काम तुमने किया है? मैंने स्वीकार कर लिया कि हाँ, मैंने किया है। तब उन्होंने पूछा कि क्यों किया है? मैंने अब नाइनकी करतूतका सारा क़िस्सा सुनाकर अपना मुँह दिखा दिया। बस, बाबाजीने लड़कीवालोंको आड़े हाथों लिया और बोले कि देखिए, क्या हम लोग यहाँ इसलिए आये हैं कि आप लोग हमारा मुँह काला करें? बड़ी मुश्किलसे मामला शान्त हुआ।

"कुछ वर्ष पहले अयोध्याप्रसादके भाईका विवाह भोपाल राज्यके बमहोरी क़स्बेमें, नाँदनेरसे लगभग ४०–४५ मील दूर हुआ था।

"एक बार दादाजीकी आज्ञा हुई कि अब बहूको ले आना चाहिए। उस समयकी प्रथाके अनुसार जब अयोध्याप्रसादके भाईको यह ख़बर दी गई कि उन्हें भौजीको लिवानेके लिए बमहोरी जाना है तो परम्पराका पालन करते हुए उन्होंने पहले इन्कार किया और अड़ गये कि वे हरगिज बमहोरी नहीं जायँगे। यद्यपि कपड़े धुलानेसे लेकर चीज़ें सम्हालकर रखनेकी सारी तैयारियाँ जारी थीं!

"तीसरे दिन हमारी ज़मीनकी किसानीके बटाईदार खुमना उर्फ़ खुमानुसिंह गूजरके कहनेपर बड़े भैया राजी हो गये। सारे परिवारके छोटे बच्चे तथा बड़े-बूढ़े भी उनको 'बड़े भैया' ही कहा करते थे। आज भी हमारे परिवारमें इस पीढ़ीके लोगोंतक यही पद्धति है कि घरमें जो बड़ा बच्चा होता है, उसे बड़े भैया ही कहते हैं। इस तरह, जैसा कि मैंने बताया, हमारे परिवारके दो हिस्से होनेके कारण परिवार भरमें मैं भी बड़ा भैया ही कहा जाता था। क्योंकि पिताजीके शेष बड़े भाई और छोटे भाई सबके यहाँ मेरे जन्मके पश्चात् ही सन्तानें हुईं। मुझसे बड़े भैया तीन थे। एक बड़े भैया अयोध्याप्रसाद थे। दूसरे बड़े भैया मेरी छोटी भूआके सबसे बड़े पुत्र अर्थात् श्यामलाल। प्यारेलाल गुरुसे बड़े श्री कन्हैयालाल गुरु थे, कि जिनकी मैट्रिक होनेके पश्चात् सन् १९०६ में या १९०७ में

मृत्यु हो गई थी। मेरे मामाके परिवारकी दिशामें भी मेरे एक बड़े भैया थे। वे थे मेरे बड़े मामा चिन्तामणि पुरोहितके पुत्र देवबक्स प्रसाद।

शरारती देवर भौजी लिवाने चले !

"हाँ, तो नाँदनेरसे बड़े भैयाका भौजीको लेने जाना तय हुआ। उस समय दादाजीने मुझे आज्ञा दी कि मैं बड़े भैयाके जानेकी सब तैयारियाँ कर दूँ, किन्तु बड़े भैयाने स्पष्ट कह दिया कि माखन जायगा तो मैं जाऊँगा, वरना मैं अकेला नहीं जाऊँगा। दादाजी प्रसन्न हुए कि चलो, किसी शर्तपर तो राज़ी हुआ। किन्तु मैं जानता था कि वे पहलेसे ही राज़ी थे! यह स्वाँग तो उस समय सभी घरोंमें हुआ ही करता।

"अब दादाजीके सामने चिन्ता थी, अपने दो बच्चोंको घने जंगलोंके बीचसे बहूको लिवानेके लिए भेजना। दादाजीको दूसरी चिन्ता यह भी थी, जो उन्होंने बड़े भैयाको कह कर बताई कि तेरी शादीमें माखन बारातमें गया था, तब वहाँ उन्होंने इतनी शरारतें की थीं कि हम लोगोंने परिस्थितिको बमुश्किल सम्हाला था। ख़ासकर वहाँके पुलिस इन्सपेक्टरके लड़केको जब चावलके माँड़के गड्ढेमें गिरा दिया था, तब तो पूरी बारातको उस अब्दुल अजीज़से माफ़ी माँगनी पड़ी थी। 'उस उपद्रवकी पुड़िया'को तू अपने साथ क्यों ले जाता है। किन्तु मेरी नन्हीं उम्मीदोंसे ठीक विपरीत बड़े भैयाने अपने पिताजीसे कहा कि तुम बुड्ढे लोग तो उसकी बुराई ही देखते हो। उसकी अच्छाई मैं जानता हूँ। उस समय मुझे लगा कि बड़े मियाँ डर रहे हैं, रास्तेमें साथके लिए मेरी तलबी हो रही है।

"किन्तु इसी बीच दादाजी बोले, 'गाड़ी लेकर खुमानसिंह जायगा, तुम दोनों उसी गाड़ीमें बैठ जाओ।'

"नाँदनेरसे हमलोग लगभग तीसरे पहर चले और दिग्वाड़ नामकी ज़मींदारीमें, जहाँके ज़मींदार रामसिंहजी नाँदनेर हीके रहने वाले थे और हमारे मन्दिरके शिष्योंमें प्रसिद्ध थे, हम लोगोंने पहली रात बिताई।

रामसिंहजीके यहाँ हमारा पहुँचना मानो घर हीमें पहुँचना था। स्वयं ज़मीदार रामसिंह हम बच्चोंके आनेका उत्सव मना रहे थे। दूसरे दिन प्रभातमें हम लोग जब आगे चले तो दो मील तक पटेल रामसिंहजीका आदमी हमारे साथ आया। दुपहरको किसी नदी-नालेके तटपर हम लोगोंने भोजन किया। शाम होती आ रही थी। तीसरा पहर ढल रहा था कि एक नालेमें ज्योंही गाड़ी उतरी, एक आदमीने दूरसे चिल्लाकर कहा, 'खबरदार, गाड़ी खड़ी रखो। आगे बढ़े तो जान ले लूँगा।'

"खुमानदादाने कहा कि यह तो डाकू है।

"बड़े भैया एकदम गाड़ीसे कूद पड़े। दोनोंकी कुश्तियाँ होने लगीं। कुश्ती होते-होते ही विचित्र ढंगसे मैंने देखा कि वह डाकू कह रहा था, 'अरे, पुजारी भैया, तुम ?'

"बड़े भैयाने उसकी छातीपर बैठे-ही-बैठे कहा, 'अरे मंगला, तू ?'

"और मंगलासे छीना हुआ उसका लाठी आदि सामान बड़े भैयाने मंगलाको लौटा दिया और उसकी चोटी पकड़ कर धक्का देते हुए कहा, 'पहले क्यों नहीं कह दिया, मैं न मारता।'

"मंगला अपनी भोपाली अकड़से तनकर बोला, 'अरे भइया, तुम्हें पहचान लिया, इसीलिए तो छातीपर चढ़ा लिया! अपना तो पेशा ठहरा। नहीं तो किसीकी क्या बिसात, जो मेरे चंगुलमेंसे निकल जाय।'

"खुमानदादा सब रहस्य समझ गये। मंगला ढीमरको दस-बीस गालियाँ देकर बोले, 'डाकूका पेशा ही कौन कम पाप है, जो तू इन बच्चोंपर हाथ उठाकर पाप कमाता था।'

मंगलाने बहुत-बहुत माफ़ी माँगी और खुमान दद्दाके पैर पड़े। खुमान दद्दाने हुकुम दिया कि मैं छोटे-छोटे मोड़ोंको लेकर बमहोरी जा रहा हूँ। तू वहाँ तक हमारी रक्षा करता हुआ चल। मंगला बोला, 'यों तो मैं दो-चार मील चलूँगा, किन्तु बरेलीके बाद जामगढ़ भघदेहीमें ही

तुम्हें पहाड़ी डाकुओंका डर है। वहाँ यदि कोई छेड़े तो कह देना कि हम मंगल ढीमरके आदमी हैं।'

"बड़े भइयाने तुनककर कहा, 'मंगल, शेखी मत बघार। सीधा गाड़ीके साथ चला-चल।'

"मंगलने बड़ी नम्रतासे कहा, 'मेरे चलनेकी बिलकुल ज़रूरत नहीं है पुजारी-भइया। हाँ, तुम रात बरेली रहना और कल बमहोरीके लिए निकलना।'

हमारी गाड़ीके साथ चलता हुआ मंगल कब ग़ायब हो गया, हम लोगोंको पता नहीं चला। शामको हम लोग बरेली पहुँचे। एक स्वजातीय सज्जन राजा गोकुलदास जबलपुर वालेकी दूकानपर मुनीम थे, सो हम उन्हींके यहाँ ठहरे। और दूसरे दिन हम बमहोरीके लिए चल दिये। रास्तेमें वह जामगढ़ भघदेही गाँव मिला। वहाँ विन्ध्या पहाड़ कुछ ऐसा सुन्दर है कि जब मैं उसे देखता हुआ नहीं थकता था, तब बड़े भइयाने मेरा काँधा हिलाकर कहा, कि भंग तो बड़े-बूढ़े पीते हैं, क्या उनका नशा तुझे चढ़ता है?

"यहाँ एक बात अवश्य कहना चाहता हूँ कि रास्तेमें बड़े भइया मुझे इतनी अच्छी तरह रख रहे थे कि मेरा यह भ्रम सर्वदा दूर हो चुका था कि मुझमें और उनमें सदा खटपट हुआ करती है।

"जब हम लोग जामगढ़ भघदेहीके जंगलोंको पार करने लगे तो वहींके विन्ध्याके पत्थरोंसे बनी हुई कुंडियाँ लेकर कुछ लोग बेचनेके लिए आये। खुमान दादाने हम लोगोंको आगाह कर दिया कि यहाँके लोग डाके डालनेका पेशा करते हैं; अतः इनसे बातचीत न की जाय। हम लोगोंने कुंडी लेनेसे इनकार कर दिया और हमारी बैलगाड़ी आगे बढ़ गई। कोई ढाई तीन घण्टेके बाद हम लोग बमहोरी पहुँचे। वहाँ उस समय भींगे हुए मूँगोंको टाटपर डालकर उनके छिलके निकाले जा रहे थे और पुरुष मिलकर किसी विषयका कुछ सलाह-मशविरा कर रहे थे।

जँवाईके आगमनकी बात सुनकर सब लोग बहुत प्रसन्न हुए, किन्तु इस बातसे पुरुष और स्त्री सब मिलकर दुखी हुए कि उनके भले जँवाईके साथ शरारती मैं भी हूँ।

"हम लोगोंको घरमें न ठहरा कर पड़ोसके एक मन्दिरमें ठहरा दिया गया। खुमान दद्दाने कहा, 'यह कैसी नई बात आप कर रहे हैं। छोटे बच्चोंको घरमें ही ठहराइए।'

"तो बड़े भइयाके ससुर पं० कनीरामजी तिवारीके भतीजे मेरी ही नामराशिके माखनलाल तिवारीने कहा, 'यह आफ़तकी पुड़िया जो आप साथ ले आये हैं। इसलिए हमारी और आपकी तकदीर अच्छी होगी तो सहीसलामत लड़कीकी विदाई हो जायगी। नहीं तो आज और कलके बीच न जाने कितने झगड़े पैदा होंगे।'

"अपने जीवनका यह रूप देखकर मुझे स्वयं भी बहुत अचम्भा हुआ। किन्तु बड़े भइयाने स्पष्ट कहा कि यदि आप लोगोंको मेरे बड़े भाईकी ज़रूरत नहीं है और उसकी बुराई की जाती है तो मैं यहाँ नहीं ठहरूँगा और तुरन्त नाँदनेर वापस लौट जाऊँगा। इस धमकीके बाद शान्ति तो हो गई और उन्होंने बड़े भइयासे क्षमा भी माँगी। किन्तु भौजीकी विदा होने तक अर्थात् दूसरे दिन तक सबके मुँह सूजे रहे। और नाँदनेरसे जो यह सोचकर चले थे कि बमहोरीमें जँवाईको चार-पाँच दिन रोका जायगा, सो दूसरे ही दिन बिदाकी तैयारियाँ हो गईं। बड़े भइया मन ही मन इस बातसे बड़े खुश थे।

"किन्तु एक बातसे दुखी भी थे कि दुलहनकी बिदा करनेवालोंने एक अलग बहलगाड़ी भेजी, जिसमें दुलहन तथा रिश्तेदारोंमें जानेवाले उनके परिवारके एक-दो आदमी और थे। इस घटनासे बड़े भइयाकी खुशी पर पहरा बैठ गया!

"और हमलोग इस तरह लौटने लगे कि मानो कोई मातम मनाकर लौट रहे हैं!!

"रास्तेमें दुःख इस बातका हो रहा था बड़े भइयाको कि कोई उनसे दुलहनवाली गाड़ीपर बैठ जानेके लिए नहीं कहता। लौटते समय जब जानगढ़भग्रदेही आया तो वहाँके लोगोंने बमहोरी वाली गाड़ीके लोगोंको तो पानी पिलाया, किन्तु हमारी बैलगाड़ीकी तरफ़ किसीने देखा भी नहीं। बड़े भइया खुमानदादासे बोले, 'क्यों दद्दा, एक ही दिनमें ये सबके सब डाकू भले आदमी कैसे हो गये ?'

"खुनानदद्दाने कहा, 'ये लोग यहींके रहनेवाले हैं। सब एक दूसरेको पहचानते हैं।'

"जब हमारी बैलगाड़ी बरेली पहुँची तो उन लोगोंने कहा, 'बहू नाँदनेर नहीं जायगी, सीधी बाबई जायगी, क्योंकि बड़े भइयासे यह मालूम हो गया था कि हमारी बड़ी माँ अर्थात् बड़े भइयाकी माताजी यानी दुलहनकी सास नाँदनेरमें न होकर बाबईमें हैं। उस समय हम-लोगोंने जामगढ़ भग्रदेही निवासियोंसे कुछ पत्थरके बर्तन भी ख़रीदे।

"बमहोरी वाली गाड़ीके साथ रहनेके कारण दीख पड़ा कि बुन्देलखण्डके नर-नारी गाड़ीमें स्त्री होनेके कारण कितनी इज़्ज़त करते हैं। जब भी हम किसी गाँवसे निकलते, गाड़ियोंकी तरफ़ तमाशेकी तरह देखनेवाली औरतें दौड़कर, जिस गाड़ीमें वधू बैठी हुई थी, उस गाड़ीके लोगोंसे पूछते 'कुछ कलेऊ लावें ? दूध पियोगे ? खोआ खाओगे ? रोटी बना-खा लो, तब जाना।' और हमारी गाड़ीकी तरफ़ ज़रा भी नहीं देखते थे। बड़े भइया बालोंके पट्ठे रखाये हुए थे। उनके मस्तकपर केसरका चन्दन सारे कपालपर फैलकर लगा हुआ था और कानके पास उनकी भोपाली जुल्फें घूमी हुई थीं। उस वक्त भी इन चीज़ोंसे नर-नारियोंका आकृष्ट न होना ऐसी बात थी कि जिसपर आज भी सोचता हूँ तो मुझे बुन्देलखण्डके गम्भीर स्वभावपर आश्चर्य हुए विना नहीं रहता।

"दुलहनकी गाड़ीवाले मर्द मुझसे ऐसे डरते थे कि जब मैं उनसे कोई प्रश्न करूँ या पूछूँ तो वे उत्तर बड़े भइया या खुमानदादाकी तरफ़ मुँह करके दें। केवल भोजनके समय भौजीने मुझे अपने पास बुलाकर पूड़ी, कचौड़ियाँ, पकौड़ियाँ और लड्डू अपने हाथसे दिये। किस गाँवके कुएँपर पाकर और फँफरके दरख्तके नीचे बैठकर हमलोगोंने खाना खाया, यह तो मैं भूल गया, किन्तु कुएँपर पानी खींचनेवालियोंने बड़े भइयासे कहा, 'हम ब्राह्मण हैं, लाओ हम तुम्हारा लोटा माँज दें और पानी भर दें।' उस समय उनकी जनेऊ कुर्तेके बाहर लटक रही थी। पनिहारीने पूछा, 'कौन ब्राह्मण हो?' बड़े भइयाने अपने ब्राह्मणत्वकी सारी जन्त्री उन्हें सुनाई, तो वो पनिहारिन और उसके परिवारके लोग दादाजीके जाननेवाले निकले। और जब गाँवमें-से गाड़ियाँ निकलने लगीं तो उन्होंने बहुत जिद्द की कि हमलोग भोजन करके जायँ। तब उन्हें बताया गया कि घने जंगलोंके रास्ते है और देरी होना ठीक नहीं। तब उस घरकी सुहागन वधूने भौजी और बड़े भइयाको तिलक लगाया। एक-एक रुपया नारियल दोनोंको दिया। वधूको कुछ कपड़े दिये और वधूकी गाड़ीके चक्केपर लगे लोहेके पट्टेपर एक नारियल फोड़कर वह गाड़ीके यात्रियोंमें बाँट दिया गया! एक बूढ़े सज्जन आगे आये और एक रामनामी दुपट्टा मेरे हाथमें रखते हुए बोले, 'यह दुपट्टा नाँदनेरमें नारदजीको दे देना। कहना, मोहनलाल भागौर प्रयागराज गया था, वहाँसे आपके लिए लाया है। मैं भी सावनपर नाँदनेर आऊँगा।'

"दर कूच दर मंज़िल हमारी गाड़ियाँ फिर आगे बढ़ने लगीं।

"विन्ध्याकी घनी झाड़ियाँ, नालोंके उतार, पहाड़ोंके चढ़ाव, बस्तियों और शिखरोंके घुमाव, सड़कोंपर आती-जाती बैलगाड़ियों और नर-नारियोंका बोझ लेकर आना-जाना और मर्दोंका कानोंमें बुन्दे पहने, बन्द लगी हुई लाठियाँ हाथोंमें लिये, तथा उनके ऊपर रेशमी फुन्दे लगे हुए, बालोंमें तेल, बढ़े हुए बाल, गलेमें मूँगेकी कण्ठियाँ और सिर

पर बोझा होते हुए भी अकड़कर चलना, किसी राहगीरके पास हाथमें अलगोझा, सिरपर बोझा, पाँवमें जूते नहीं, धूलका उड़ना और तिसपर हँसी मज़ाक। क्या कहना है बुन्देलखण्डकी उस ज़िन्दगीके!

"उस समय नवाबी शासन था, इसलिए गाँवों और क़स्बोंमें हर मुसलमान नवाबी बोली बोलता, किन्तु कुछ मुसलमान इतने शरीफ़ होते कि हिन्दू-मुसलमान बैठकर सलाह-मशविरा करते, चिलम-तमाखू पीते, लड़के-लड़कीकी ब्याह-शादीकी चर्चा करते, खेत-खलिहानमें ज़रूरतोंमें एक दूसरेका साथ देते और शादियोंमें एक दूसरेके यहाँ दहेज-टीका पहुँचाते। ऐसी घुली-मिली ज़िन्दगी थी बुन्देलखण्डमें आजसे पचपन-साठ वर्ष पहले।

जब हमारी बैलगाड़ियाँ एक बड़के झाड़के नीचे सुस्ता रही थीं, तब गोंड यात्रियोंका एक दल वहाँसे निकला। उसमें मर्द भी थे, स्त्रियाँ भी थीं। थोड़ी देरके लिए वे बड़के झाड़के पास दूबपर बैठ गये। उस समय वे गा रहे थे। उसकी तुक थी—**अंग्रेज़ी अमलदारी गम्मखाना, गम्म खाना राजा धीर धरना, अंग्रेज़ी अमरदारी गम्म खाना···**

"उस ससय तो मैं उसका मतलब खाक-धूल भी नहीं समझा था, केवल नाँदनेर लौटकर दादाजीको सब हाल-चाल सुनाये, तब मैंने यह गीत भी सुनाया। तो वे नाराज़ होकर बोले कि तुझे लघुकौमुदी क्यों याद हो? तुझे तो ये गँवारोंकी बातें पसन्द हैं!

"किन्तु मैं और मेरा मोती मिलकर किसी भी अवसरपर और किसीके भी सामने यह गीत गाते और नाचने लगते। हाँ, मुलिया पहरेदारके इशारेपर सजग रहते कि हमें कोई देख न रहा हो। अब तो आमोंके बन्दर भगाना है तो यही गीत, खेतके जानवर भगाना है तो यही गीत और बाजरेकी फसलके पखेरू उड़ाना है तो यही गीत। हाँ, नाँदनेरमें आकर इस बातका भान फिरसे जाग्रत हो गया कि यहाँ हिन्दीमें कुछ पढ़ना व हिन्दीमें गाना माना है; यहाँ सिर्फ़ संस्कृत पढ़ी जाती है!

बालक माखनलाल बीड़ीका शौक करने लगा !

'सन् १९०१में मेरे विवाहसे एक वर्ष पूर्व हमारे बाबाजी (चाचाजी) पं० हीरालाल चतुर्वेदीका दूसरा विवाह हुआ। उनकी बारात होशंगाबाद ज़िलेकी होशंगाबाद तहसीलके गजपुर गाँवसे, जहाँ पं० छोटेलाल मेरे बाबा रहते थे, होशंगाबाद गई। उनके ससुर श्री हीरालालजी मुनीम उन दिनों होशंगाबादके प्रसिद्ध धनिक श्री नन्हेंलाल सेठके मुनीम थे। इस विवाहके लग्नोंमें मेरे मँझले बाबा पं० वंशीधरजीके पुत्र अयोध्याप्रसाद मुझसे दो वर्ष बड़े थे। उनका विवाह १८९९ में हो ही चुका था। पुरोहितीके कारण मन्दिर और जायदाद रखनेवाले हमारे बाबा अफ़ीम और भाँग सभी चीज़ोंका सेवन करते थे। उस समय नाँदनेरके शिक्षा-क्रममें मैं भी चोरी-छिपे बीड़ी पीने लगा था।

"बारात रात गजपुर गाँवसे चली और दूसरे दिन दोपहरको होशंगाबाद पहुँची। सात गाड़ी-बैलोंपर बारात गई थी। परिवारके लोगोंसे घिरे रहनेके कारण, मुझे लगातार बारह-चौदह घण्टोंतक बीड़ी पीनेका अवसर नहीं मिला। इसलिए ज्योंही बारात जनवासे ठहराई गई, मैं वहाँसे चुपचाप भागा। बीड़ी खरीदी, एक दियासलाई ली और तपस्वी घाटके एक कोनेके ऊपर, नर्मदा तटके उस विशाल प्रांगणमें, मौलश्रीके फूले हुए वृक्षसे पीठ लगाकर अर्थात् सारे शहरको अपनी पीठकी तरफ़ लेकर, सामने नर्मदा और उसके उत्तरके पर्वत-शिखरोंको देखते हुए, मैं बीड़ीके कश खींचने लगा। नर्मदा और पर्वतमालाके सौन्दर्यसे, अपनी तेरह वर्षकी अवस्थामें, मैं जाने कैसे अभिभूत होगया कि मुझे यह पता ही नहीं चला कि पीछे पिताजी चुपचाप आकर खड़े हुए हैं। मैं तो बीड़ीके कशपर कश खींच रहा था कि धीरेसे पिताजी बोले, 'कुलभूषण, यदि अपने कामसे निपट गये हो तो चलो, स्नान कर लो।'

"मैं घबड़ाकर खड़ा हो गया। देखा तो पिताजीके साथ परिवारके

कुछ और लोग भी कुछ दूरी पर साथमें हैं। पिताजीने वह बीड़ीका कट्टा और माचिस उठा ली, किन्तु मेरी बीड़ी जो उस दिन छूटी, सो आजके ७० वर्षों तक छूटी ही रही है !

"इसी यात्रामें मैंने पहली बार सायकल चलती हुई देखी !

चटशाला जीवनकी उग्र उद्दण्डता

उस समय दो विद्यार्थी नाँदनेरमें जुझोतिया ब्राह्मण समाजके मेरे साथ पढ़ते थे। एकका नाम था कन्हैयालाल और दूसरेका मोतीलाल। किन्तु विद्यार्थी जीवनमें मैं उनका माखन होता और वे हमलोगोंके कन्हैया-मोती होते। कन्हैया-मोती मुझे इसलिए बहुत प्रिय थे, कि काफ़ी ऊँचे कन्हैया और काफ़ी ठिगने मोती मेरी शरारतों और हलचलोंमें खूब साथ दिया करते। एक दिन हमारे मन्दिरके छतका कूड़ा साफ़ करनेके लिए सेवा नामक ढीमर, अर्थात् मुलियाका काका मन्दिरकी छतपर चढ़ा। उसे केवल एक घण्टेका काम दिया गया था। नसेनीसे नसेनी बाँधी गई और वह ऊपर चढ़ गया। जब वह काममें लग गया, तब एक नसेनी कन्हैयाने उठाई और एक मोतीने और चार फलाङ्ग दूर गाँवमें, जिनके यहाँसे यह नसेनी माँगकर लाई गई थी, उनके यहाँ बाक़ायदा लौटा दी गई तथा कन्हैया और मोती अपने-अपने घर चले गये। पण्डितजी उस दिन कहीं गये हुए थे ! अतः मैं नर्मदा चला गया। ग़रीब सेवा ढीमर, जो छत साफ़ करने ऊपर चढ़ा था, मेरे लौट-कर आते ही मुझसे अपनी बुन्देलखण्डीमें बोला, 'अरे लाला, मोए कहाँ कौंड दअ।' उसने ऐसी मजदूरीको माँ-बहनकी दस-बीस गालियाँ देते हुए कहा, 'अब मैं...ऐसी मज़दूरी करूँ ! लाओ, निसन्नी तो जल्दी लाओ, मैं उतर आऊँ।' परन्तु अब निसन्नियाँ कहाँ रखी हुई थीं ? इतने ही में गुरुदेव उर्फ़ दादाजी आ गये। सेवाको तीसरी मंजिलपर अटका हुआ पाकर वे शरारतका सारा नक्शा समझ गये और एक

आदमी मेरे साथ करके दस-बीस झिड़कियाँ देकर बोले कि जल्दी निसेनियाँ लाओ, नहीं तो तुम बहुत पीटे जाओगे। मैं दूसरे घरोंकी निसेनियाँ उठवाकर लाया, फिरसे उन्हें बाँधा गया, किन्तु वे मन्दिरकी छत तक न पहुँचीं।

''अतः छतकी मुँडेरपर चढ़कर सेवा लटक गया। और पैरके बल निसन्नीको छूकर बड़े धीरे-धीरे वह नीचे उतरा। वह ग़ुस्सेमें भरा हुआ था। उसने दादाजीसे कहा, 'रामधेई जो तुम्हारो मोड़ा न होतो तो काटके चार टूका कर देतौ। अरे हाँ, जाकी बिसात तो देखौ और जाके काम देखौ।'

''इधर दादाजी अलग ही झिड़कियाँ दिये जा रहे थे। मेरे आश्चर्यकी सीमा न रही, जब मैंने देखा, कि पढ़नेकी कुठरियामेंसे मोती और कन्हैया खिड़कीमेंसे देखते जाते, हँसते जाते और दादाजीको सुना-सुनाकर 'रामेण रामाभ्यां रामैः' की आवाज़ लगाते जाते। मैं अत्यन्त भला आदमी बनकर मोतीसे पूछने लगा, 'क्यों, ये निसन्नी किसने हटा दी?'

''अपनी चिलम हाथमें लिये गुरुदेवने कहा, 'बस कृपा कीजिए। मैं समझ गया हूँ। जाइए।'

''किन्तु इस 'जाइए' से विश्राम तो मिलना न था, क्योंकि यह तो हम लोगोंका नित्य धर्म था।

रामायणका पाठ और मेंढककी योनि

''एक दिन नाँदनेरमें कुसुमखेड़ासे एक पण्डितजी आये। वे काशीसे संस्कृत पढ़कर आये थे किसी युगमें। दिन भरकी संस्कृत-चर्चाके पश्चात् जब सन्ध्याको उन्होंने तुलसीकृत रामायण पढ़नेकी बात कही तो हम लोगोंको बहुत अच्छा लगा। एक तो छिदगाँव छोड़नेके बाद तुलसीकृत रामायण सुननेको नहीं मिली थी, दूसरे हमारी पाठशालामें हिन्दी पढ़ना तथा हिन्दीके गीत गाना तक मना होनेके कारण हमें नये पण्डितजीकी तुलसी-

कृत रामायण पढ़नेकी सूचना अपनी शालाके संस्कृत-प्रचुर वातावरण और अपने आचार्यपर एक व्यंग्य-सी मालूम हुई, जिससे हम लोग अत्यन्त प्रसन्न हुए। और पण्डितजीके विना कहे अन्दरके बस्तोंमेंसे 'रामचरित मानस'का बस्ता उठा लाये।

"यह तो अब याद नहीं रहा कि पण्डितजीने कौन-सा प्रसंग पढ़वाया था। किन्तु एक बात मुझे याद है।

"पण्डितजीने किसी कथाके सिलसिलेमें कहा था और यह शायद उन्होंने अपनी सूझकी मौलिकताके रूपमें कहा था कि जो आदमी हरि-स्मरण नहीं करता, उसकी मुक्ति नहीं होती और जिसको कभी मुक्त न होनेका दण्ड दिया जाता है, उसे मेंढककी योनि प्राप्त होती है। तब मोतीने पूछा, 'मेंढककी योनि प्राप्त करनेसे मुक्ति कैसे रुक जाती है?'

"कुसुमखेड़ाके पण्डितजीने कहा, 'मेंढक पानीमें तो रहते ही हैं। किन्तु ग्रीष्मकालमें जब वे सूख जाते हैं, और उनके प्राण निकल जाते हैं, तब नया पानी बरसते ही वे पुनः जी उठते हैं और इस तरह मेंढककी योनिसे उनकी मुक्ति नहीं होती।'

"मैंने डरते-डरते पूछा, 'इस बातका क्या भरोसा है कि एक बार मर जानेके बाद उन मेंढकोंमें जो प्राण लौटते हैं, वे वही प्राण होते हैं जो पहले थे?'

"बस अनर्थ हो गया! पण्डितजीने हमारे दादाजीकी ओर लक्ष्यकर कहा, 'इस छोकड़ेको मन्दिरमें नहीं रखना चाहिए। ऐसे नास्तिक लड़के कलंक हैं।' और जो रामायण-पाठ थोड़ी देर और चलनेवाला था, वह शीघ्रतासे बन्द कर दिया गया।

खेतोंका स्वर्ग और प्रकृति-सुषमाका विराट क्षितिज

"मोती, कन्हैया और मैं कभी-कभी खेतोंपर भी भेजे जाते थे। एक बार मटर बोया जा रहा था। अनाजसे भरी हुई 'ढुली' गलेमें डालकर

बोनेवाले, हल की अनाज डालनेवाली 'चाड़ी' के पास खड़े होकर 'चाड़ी' में अनाज डालनेवाले मज़दूर कम मिल पाये थे। इससे हम तीनों जोत दिये गये। मज़दूरोंके पाँवोंमें जूते थे। मोतीके पाँवमें भी जूता था, लेकिन मेरे और कन्हैयाके पाँवमें जूते नहीं थे। किन्तु चाड़ी गलेमें डालनेके बाद जब हल चलने लगे, तब मुझे बहुत ही अच्छा मालूम हुआ। और कुछ सप्ताहोंके बाद मैंने देखा कि मटरका खेत खूब उग आया है और ढहिया (छोटा खेत) जो गाँवके पास ही है, मटरके उगनेसे लहलहा उठा है, तब मुझे उसे देखकर जो प्रसन्नता हुई, उसका वर्णन करना कठिन है।

"चूँकि चाड़ीपर मटर बोनेका समय रातका था, इसलिए मैं यह तो न जान सका कि अन्य हलोंपर कौन-कौन आदमी हल चला रहे हैं, किन्तु जब वे हल चलाते हुए दीख जाते और हल घूमनेके समय गीतोंके स्वर बाँधकर हिलकोरे लेते, तो मुझे बहुत अच्छा लगता। यद्यपि रातको जब हल चलाकर लौटे, तब मैं इतना थक गया था कि सोनेके बाद मुझे होश ही नहीं रहा कि कब सबेरा हो गया। किन्तु उस दिन दादाजी स्वयं नर्मदा चले गये थे और घड़ा भरकर ले आये थे तथा भगवान्‌की पूजा कर रहे थे!

"मैंने उस दिन बहुत दिनोंके बाद विश्रामकी साँस ली।

अध्यापकजी और उनके गुरुकुलकी छटा

"अमरकोषका स्वर्ग हम लोग पढ़ रहे थे; शंकरके नामोंके श्लोकों-को मोती मुँह मटका-मटकाकर पढ़ रहा था। और ज्योंही वह मुँह मटकाता, मैं एक थालीसे ताल देता। इस तरह **'ईश्वरः शर्व ईशानः शङ्करः चन्द्र-शेखरः'** श्लोकको वह पढ़ रहा था। तब हम लोग उसे कितना नहीं बिगाड़ रहे थे। कन्हैया दूरसे नाकके पास उँगली लगाकर हमें सावधान कर रहा था, किन्तु हम लोगोंने उसके इशारेको नहीं समझा। मुँह मटकता रहा,

थाली बजती रही। पीछेकी सहनमें खड़े थे दादाजी। खिड़कीमेंसे शायद कन्हैयाने उन्हें देख लिया था। वे झट पाठशालामें आ गये और हम दोनोंके कान पकड़ लिये। मोतीके हाथसे अमरकोष गिर पड़ी, मेरे हाथसे थाली और फिर हमारे विद्यार्थी-समूहके हास्यका तो क्या कहना। वे कनखियाँ मारते जाते और मुसकराते जाते।

"एक विद्यार्थी बोला, 'पण्डितजी, भण्डारके चावल बीननेके लिए माखन थाली लाया था। परन्तु इसको चावल बीननेकी फ़ुर्सत ही नहीं मिली। थाली ही बजाता रहा।'

"दूसरे शरीफ़ने मोतीकी शिकायत की, 'मोती अमरकोषके ग्रन्थको किस लापरवाहीसे उठाता है कि वह फट गया है।'

"मोतीका अमरकोष तुरन्त छीन लिया गया।

आखिर सफल प्रशंसाका सर्टिफिकेट मिला

"जब हम लोगोंकी पढ़ाईके दो वर्ष समाप्त हो गये, तब बगलवाड़ाके ब्रह्मचारीजी एक बार मन्दिरमें पधारे। गाँवके बड़े-से-बड़े व्यक्ति पूजा और दर्शनके लिए आये। दादाजीने अपने तेरह विद्यार्थियोंकी योग्यताके विषयमें जाँच करनेके लिए ब्रह्मचारीजीसे निवेदन किया और कहा कि आप बताइये कि इन तेरह विद्यार्थियोंमें श्रीमद्भागवतका शिक्षण किसे दिया जाये?

"ब्रह्मचारीजीने बहुत मुसकराते हुए अनेक प्रश्न किये। प्रश्नोंमें भागवत पढ़नेकी योग्यता-क्षमताकी जाँचके लिए 'शीघ्रबोध' और 'मुहूर्त चिन्तामणि' के श्लोक भी पूछे गये। सन्ध्याके समय 'कौमुदी'के प्रश्न भी पूछे गये। तब 'अमरकोष'की बारी आई। मुझसे और मोतीसे पूछे गये सब प्रश्न 'वनौषधिवर्ग'के थे। दूसरे दिन जब ब्रह्मचारीजी जाने लगे तब उन्होंने अपना सर्टिफिकेट पहला मोतीको और दूसरा मुझे दिया।

"और हम लोगोंको बगलवाड़ामें पढ़ानेकी भी इच्छा प्रदर्शित की।

"ब्रह्मचारीजीके जानेके बाद अब जहाँ कहीं भी दादा कथा पढ़ने जाते, या संस्कृतके किसी कामसे, वहाँ दो मकार या मक्कार अवश्य साथ जाते—मोती और माखन !

माँसे बिछुड़े लालका करुण जीवन

"एक बार हम लोग सब विद्यार्थियों समेत नाँदनेरसे कोई छः-सात मील दूर नर्मदाके खेड़िया घाट गये। वहाँ एक साधु बाबा साँवलपुरी रहते थे। वहाँ नर्मदाकी धाराका घुमाव मुझे बहुत ही पसन्द आया। तैरनेका अभ्यासी होनेके कारण हमारे हाथ-पाँव नर्मदामें तैरनेके लिए सरसराने लगे। मोतीकी दोनों आँखें बराबर नहीं थीं। एक आँख छोटी, एक बड़ी। उसने अपनी बड़ी आँखको बिचकाकर और छोटीको सर्वथा मूँदकर अपने बदनपर इस तरह हाथ फिराया कि जैसे वह स्नान करनेके लिए बेचैन है। फिर उसने आगे-आगे चलते हुए दादाजीकी पीठकी ओर हाथ जोड़कर इशारा किया कि मैं दादाजीसे स्नान करनेकी इज़ाजत माँग लूँ। मैंने प्रस्ताव किया, 'दादाजी, यहींसे नहाते न चलें, घाट अच्छा है।'

"बस, क्या था। पका फोड़ा छू गया। वे बरस पड़े। क्रोधित मुँहसे बोले, 'घाट अच्छा है! कुछ शऊर भी है! यहाँ तो हाथियोंकी भी थाह नहीं मिलेगी। तुम्हारी क्या बिसात है!' इसके पश्चात् जाने क्या समझ-कर उन्होंने हमें आगे कर लिया और कहा कि हम कौमुदीके सूत्रोंका उच्चारण करते हुए चलें। गाँव एक मील रह गया है। जल्दी आ जायगा।

"कृष्णार्जुन-युद्ध" नाटक लिखते समय शंख और शशीके विनोदी कथोपकथनमें जो अमरकोष तथा कौमुदीके सूत्रोंका विडंबन किया गया है, उस समय शंख और शशीके रूपमें मैं और मोती मुझे याद आ रहे थे और [illegible] तट। खेड़िया घाट पहुँचकर जब वहाँकी भीड़

देखी तब हमारे आश्चर्यका ठिकाना न रहा। भागवतके कुछ श्लोकोंपर शास्त्रार्थ चल रहा था और गोस्वामी साँवलपुरी सिरसे जटा-जूट बाँधे हुए उस संस्कृत शास्त्रार्थका आनन्द ले रहे थे। हम लोगोंकी समझमें तो खाकधूल भी नहीं आ रहा था। किन्तु नर्मदा तटका वह वातावरण इतना अच्छा था कि हम लोग भी बहुत प्रसन्न हुए। दादाजीने ज्योंही मन्दिरमें प्रवेश किया, गुसाईं साँवलपुरी और अन्य पण्डितगण उठकर खड़े हो गये। दादाजी पण्डितोंमें बैठकर शास्त्रार्थमें भाग लेने लगे। मैंने और मोतीने गुसाँईजीके चरणोंपर सिर रखा और जब दादाजीसे उन्हें मालूम हुआ कि मैं उनके छोटे भाई नन्दलालका पुत्र हूँ तो साँवलपुरीजीने अपने विशाल हाथोंसे मुझे गोदमें उठा लिया और सिर तथा पीठपर हाथ फेरने लगे। माँको छोड़नेके पश्चात् नौ महीनेके बाद सिर और पीठपर हाथ ऐसा फिरा कि मेरी आँखोंमें आँसू आ गये!

खेड़ियाघाटका स्मरणीय विचरण

"इसके पश्चात् हम लोगोंको छुट्टी मिली तो हम खेड़ियाघाटकी नर्मदा में तैरते रहे और पण्डित लोग शास्त्रार्थ करते रहे। मोती बोला, 'यदि शास्त्रार्थ बीचमें खतम हो गया तो बच्चू, पण्डितजी ढूँढ़ेंगे और तब खूब पिटाई होगी।'

"इसी भयसे हम लोग खेड़ियाघाटके आश्रममें लौट आये।

"यहाँ एक बात मैं कह दूँ कि जब खेड़ियाघाटके आश्रममें दादाजीने प्रवेश किया था, तब गोस्वामी साँवलपुरी और पण्डितोंने दादाजीसे कहा था, 'आइए नारदजी।' और इस सम्बोधनसे दादाजीने गर्वका अनुभव किया था। मेरे लिए यह बिलकुल नई बात थी। किन्तु नाँदनेर लौटनेके पश्चात् दादाजीके सहपाठी, जिन्हें हम लोग दादाजी ही कहते थे, श्रीजगन्नाथ पण्डितजीसे मालूम हुआ कि दादाजीके समस्त सहपाठी उन्हें 'नारदजी' ही कहा करते हैं और वह अत्यन्त सम्मानबोधक सम्बोधन है।

नारद और नारदीय लीला आदि शब्दोंका गुणधर्म और स्वभाव घरोंमें, विशेषतः हिन्दू वैष्णव घरोंमें, कुछ विचित्र अर्थोंमें व्यक्त किया गया है। अतः आश्चर्य होना स्वाभाविक था। किन्तु धीरे-धीरे मालूम हुआ कि वह 'नारदजी' सम्बोधन नाँदनेर और आसपासके लोगोंके लिए उनके प्रति चरम श्रद्धाका प्रतीक है।

"खेड़ियाघाटमें दूसरे दिन जब हम स्नान करके शिव-मन्दिरमें पहुँचे, तब महिम्नस्तोत्रके पारायणकी बारी आई। अनुस्वार और विसर्ग, विभक्ति और प्रत्यय, सब पर साँवलपुरीजीका इतना कड़ा पहरा था कि स्तोत्र पढ़ते समय अपनी भूलोंके कारण हमारे स्वर आधे भी नहीं रह गये। इसके सिवा गोशालाकी जो बछिया शिवमन्दिरमें आकर हमारे पास बैठ गई थी, चादर ओढ़े हुए मोतीने उसकी टाँग पकड़ रखी थी। जब वह ज़ोरसे बिललाई, तब हम मन्दिरसे बाहर भगा दिये गये! मोती तो यही चाहता था। किन्तु मुझे अच्छा नहीं लगा। थोड़ी देर बाद मैंने फिर मन्दिरमें प्रवेश किया, किन्तु पं० लीलाधर शास्त्री द्वारा मैं फिर मन्दिरके बाहर हाँक दिया गया और इस तरह पण्डितोंके पाठोंको सुननेसे मैं वंचित रह गया। वहाँ पण्डित इकट्ठे थे, और यों कहिए कि उनकी सेवामें तीन भकार उपस्थित थे—भोजन, भजन, भंग।

"भोजन मालपुएका था, भजन नर्मदा तटका, भंगके गोले भी थे। और वह भी दूधिया बनी हुई थी।

"जब खेड़ियाघाटसे चलने लगे तब अच्छा नहीं लगा। बार-बार खेड़ियाघाट जानेकी तबीयत होती है। किन्तु ७२ वर्षके जीवनमें खेड़ियाघाट दूसरी बार देखनेको नहीं मिला। हाँ, हमारे परिवारके मंगल-प्रसंगों तथा शोक-प्रसंगोंमें गोस्वामी साँवलपुरीके दर्शन कभी-कभी होते रहे।"

षष्ठ परिच्छेद

१४ वर्षकी अबोधावस्थामें विवाह

"एक दिन, मेरी पढ़ाईके दो वर्ष बीत जानेके बाद, मेरी बड़ी माँ (दादाजीकी धर्मपत्नी) नाँदनेर आईं और दादाजीसे कुछ सलाह कीं। उसके दूसरे ही दिन मेरे पिताजी तथा पण्डित वंशीधरजीसे बड़े दादा छोटेलालजी और मेरी बड़ी भूआ भी वहाँ आईं। सलाह-मशविरा हुआ। जब ये लोग वहाँ बैठकर चर्चा करते, तब मुझे वहाँसे हटा देते। उस समय गुसाईं साँवलपुरी भी नाँदनेरमें ही थे। नाँदनेरके पटेल श्री लक्ष्मणसिंह-जी तथा हमारे परिवारके अन्य लोग भी गाड़ी-बैलोंपर नर्मदा पारकर नाँदनेर आ पहुँचे। मोतीसे मुझे मालूम हुआ कि सब मेरे विवाहकी चर्चाके लिए एकत्र हुए हैं।

"उस समय मेरा तेरहवाँ वर्ष समाप्त हुआ था और चौदहवाँ लग रहा था। आज तो मैं अपने घरकी लड़कियोंका विवाह भी बीस वर्षसे पहले नहीं होने देना चाहता, किन्तु मेरे विवाहके समय मेरा चौदहवाँ वर्ष समाप्त हो रहा था और मेरी पत्नी नौवें वर्षमें लगो थी। विवाहकी चर्चाके पश्चात् मैं कुछ अधिक संजीदा दीखने लगा था और दादाजीका व्यवहार भी मेरे प्रति बदल गया था। अब मुझ पर उन्हें न तो उतना क्रोध आता था और न ही वे मन्दिर-व्यवस्थाके समय होने वाली चर्चाओं

मेंसे मुझे हटाते थे। अब मैं शालाके नये विद्यार्थियोंको शब्द रूपावलि और समासचक्र पढ़ाने भी लगा था। किन्तु मोती और मुलियाको देखते ही मेरा शरारती स्वभाव मानो ऊब उठता था। यहाँ अन्तिम क्षणोंमें मैं लघुकौमुदी पढ़ रहा था। थोड़े ही दिनों पश्चात् मेरा नाँदनेर-निवास समाप्त हो गया।

"जिस दिन मैं नाँदनेरसे चला, उस दिन मंगलवार था। १६०३ अपनी समाप्ति पर था। बाबईका बाजार-दिन था। पटेल लक्ष्मणसिंह अपनी झालर और पर्दे लगी हुई दो बैलगाड़ियोंमें बाबईका बाज़ार करने जा रहे थे। बाबई नाँदनेरसे दक्षिणमें है, अतः बुधवारका वियोग बच्चेसे न हो, इस बातको बचानेके लिए मंगलवार हीको पीठ पर दिशाशूल लेकर मुझे बाबई भेजना तय हुआ।

ढाई वर्षका संस्कृत-अध्ययन और असन्तोष

"जब मैं नाँदनेरसे लौटकर छिदगाँव आया, तब पिताजीने मुझसे पूछा कि तुमने रघुवंश पढ़ा है? तुम्हें माघ पढ़ाया गया है? तथा ऐसे ही कुछ प्रश्न और किये। मैंने कहा कि मुझे कुछ नहीं पढ़ाया गया। मैंने अपने ग्रन्थोंके नाम गिनाये—कौमुदी, अमरकोष, श्रीमद्भागवतका नवम और दशम स्कन्ध, शीघ्रबोध, मुहूर्तचिन्तामणि तथा वे पुस्तकें जिनसे पाठ-पूजा और ज्योतिषके ज्ञानकी अभिवृद्धि हो सकती थी। मैंने देखा, पिताजी इस शिक्षणसे बहुत संतुष्ट नहीं हुए। पिताजीका ध्यान पाठ-पूजा-की अपेक्षा अध्ययनकी ओर ही अधिक था। इसी कारण पिताजीको नाँदनेरकी पढ़ाई सन्तुष्ट न कर सकी। पिताजीके असन्तोषके कारण मुझे भी अपनी पढ़ाईसे बहुत ही असन्तोष हुआ।"

१९ वीं सदीका अन्त विना उत्तराधिकारके हुआ था। यह स्वाभाविक ही था कि २० वीं सदीका जन्म स्तम्भित और हतप्रभ अवस्थाओंमें

अपने प्रथम क्षणोंसे ही दुःस्वप्न देखते हुए हुआ और इस तरह हुआ कि मानो आधुनिक सभ्यता इस कोनेसे लेकर उस कोनेतक छोटे छोटे मरुप्रदेशके टापुओंसे घिरी हो और २० वीं सदी अत्यधिक संकटग्रस्त हो। क्योंकि २० वीं सदी बिना उत्तराधिकारके, फुटपाथके कंगालियों जैसी जन्मी थी, और प्रसवकी दाई आदिका संरक्षण तक उसे नसीब नहीं हुआ था, इसीलिए उसके भाग्यमें दुर्दैवने तक़दीर नामसे जो लिखा था, वह एक ही शब्द था : असन्तोष। २० वीं सदीका रोम-रोम असन्तोषसे प्रतिक्षण रोमांचित रहेगा और असन्तोषकी अग्निसे सुलगती हुई वह दिन जागेगी और रात जागेगी...मानो, वह आजीवन चिन्तातुर रहनेके लिए ही अपना जन्म ज़बरदस्ती लेकर आयी थी!

२० वीं सदीका यह रोग उन सबका अपना रोग है, जो इसकी जन्म-घड़ियोंमें होश ग्रहण कर रहे थे। या जन्मे थे। २० वीं सदीने उन्हें जन्मघुट्टीके रूपमें जो मीठा ज़हर दिया, वह था हर क्षण गहरे रोषसे भरे रहना।

किन्तु अकेला रोष तो बालकोंमें क्षय उत्पन्न करता है। रोषके साथ जीनेकी पुरअसर हिम्मत व न हारनेकी ऐंठ चाहिए। आनबान चाहिए। दम-खम चाहिए। और-पासकी सुस्त-उदास तरुणाईको देनेके लिए एक जुनून चाहिए। और चाहिए कठोर गरजती-बरसती मूसलाधार कालिमामें चमकती-दमकती चपल बिजलीकी चकाचौंध। इस बीसवीं सदीमें जो भी नया आया, वह बरसता हुआ आया और सो भी अग्रिम अंधड़को लेकर। निरन्तर अंधड़ों और बारिशमें बीसवीं सदीकी सन्तति कैसे जीवित रहनेकी यन्त्रणा सह सकी (मौतकी यन्त्रणाकी परवाह उसने की ही कब ?) यह सारे विश्वकी एक कहानी है।

भारतमें मध्यप्रदेश अपना एकान्त जीवन तृषाकुल घटाओंके नीचे जिस तरह बिता रहा था, उसकी बहुत कुछ रूपरेखा बालक माखनलालकी उन पगडण्डियोंमें है, जो उसे चलनेके लिए दी जा रही थीं, पर

जहाँ हर पदनिक्षेपपर उसे कुछ अदृश्य पगडण्डियाँ अपनी ओर आकर्षित कर रही थीं। इन्हीं अदृश्य पगडण्डियोंके आकर्षणने २० वीं सदीके रोष, असन्तोष और तृषाकुल घटाओंके नीचे जीवटका जीवन जीनेकी संजीवनी चुपकेसे जन-मनमें बाँटी थी···

नाँदनेरने माखनलालको कुलविद्याका एक अंश पूरे विश्वासके साथ सौंप दिया था। २० वीं सदी कुलविद्याओंके प्रति विमोह लेकर ही अवतरित हुई थी। सो यह स्वाभाविक ही था कि उसके प्रति माखनलालके पिताको इतनी हृदयोद्बोधक चुभन-सी हुई।

बाबईने यदि माखनलालको गाँवसे बाहर निकलकर घूमनेकी हौंस दी, तो छिदगाँवने परिवारकी चौखटोंसे ही बाहर रहनेकी उतावली दी। नाँदनेरने इस उतावलीकी बेबस लहरोंको शान्त रहनेके लिए एक सरोवर-सा जैसे दे दिया। जहाँ पिता अध्ययनको ही लगन देनेमें उतावले बने हुए थे, वहाँ नाँदनेरने इस बालकको अनुशासन दिया और बालकोंके गिरोहमें जीवनयापन करनेका शिक्षण दिया, जो इसके भाग्यमें सदा-सदाके लिए बदा था। यह बालक बचपनसे ही परिवारमें नहीं, गिरोहमें जीनेकी जन्मपत्री लिखाकर लाया था!

जो काम माँकी पिटाई और पिताकी पिटाई न कर सकी, वह गुरुकुलके जीवन और मुक्त प्रकृतिके विचरणने इस बालकको दे दी। शैशवकी मनोहारिणी भूषा उसकी चपलता है। पर यह चपलता कुलगौरवके आकाशको छूनेवाली हो, न कि उस आकाशको जाकर छूए जिसे किसीने देखा ही न हो। शालाके प्रधानाध्यापकका पुत्र तो विद्याव्यसनी ही हो, यह लालसा सही थी। जंगलमें चरनेवाले घोड़े-घोड़ियोंपर जंगली तरीक़ेसे चढ़ते घूमना, इधरका सामान उधर पार कर देना, बिना अर्थोंकी संगतमें मन रमाना, पिताके प्राथमिक उपदेशोंपर ध्यान न देना, माताकी झिड़कियोंको अनसुनी कर रखना और पिताकी प्रतिष्ठाको किसी भी क्षण आँच पहुँचाते रहना—ये सभी बातें किसी भी स्थितिमें व्यावहारिक

नहीं हो सकती थीं। नाँदनेरके दादाजीने और नर्मदाके कछारने इस उद्धत बालकके स्वभावको मृदु बना दिया और उसे जीवनकी एक सीधी दिशा दी। वह आगे बढ़नेकी दिशा थी, एक नई दिशा थी। माखनलाल-के स्वभावका व्यक्ति, जिसे अगुआईकी प्रतिकामना सक्रिय रखती थी, उसी दिशामें हर्षित मन और सधे क़दमों वह चल सकता था। संस्कृत पेट-भराईकी भाषा होनेके कारण इस बालकके मनको मोहनेका अवसर न पा सकी। स्वयं नाँदनेरका सामन्ती वातावरण ऐसा था, कि यह बालक यदि वहाँ अधिक दिन रखा भी जाता तो इसके लिए वहाँ रहनेकी गुंजाइश नहीं थी, पर इस संस्कृत-पठनने शैशवके क्षितिजपर उड़ते हुए बालकको ज़मीनपर उतरने और चिन्तनकी सरल गम्भीरता लेकर चलने के लिए ज़रूर अपने अनुरूप साध लिया। साथ ही, इसी संस्कृत-पठनने वैष्णवी दृष्टि भी इस ब्राह्मण बालकको एक निजी वस्तु-सी थमा दी।

मध्ययुगोंकी डूबती-उतराती राज्य-क्रान्तियोंकी लपटोंमें भारतीय ग्रामोंने अपनी सुरक्षा, अपनी पारिवारिकताकी सुरक्षा, अपने समाजके अस्तित्वकी सुरक्षा और व्यक्तिके धर्म-कर्तव्यकी सुरक्षा अल्पवयके विवाहोंसे तानकर रखी। कन्याएँ विपत्तिकी निमन्त्रण-पत्रिका हर दिन, हर रात आवागमन करनेवाली सेनाओंके लिए हो चुकी थीं। वयस्क कन्याओंको पिताके यहाँ कुँवारी रखना अनिश्चित भविष्यकी जोखिम जानबूझकर बुलाना था। अबोधावस्थामें ही वह विवाही जाकर, पीहर और ससुराल इन दो संयुक्त दायित्वोंसे रक्षित रहे, उसमें दो लाभ थे। लड़की और लड़के वालोंके समाज संयुक्त धर्मकी हथेलियोंको आपसमें गूँथे हुए पूरे समाजको आपसमें गुँथे रहनेका आवाहन करते थे। इसी आवाहनने जब माखनलालको अपनी परिधिमें घसीटा तो उसके माता-पिताने उसका सहर्ष स्वागत किया। तेरह वर्षकी आयु पार करते ही वह पाणिग्रहण-संस्कारकी वेदीपर ले जा कर बैठा दिया गया। इन विवाहोंमें इस समय तक दान-दहेज कमसे कम, संयुक्त सामाजिकताकी जागरूकता अधिकसे-

किन्तु मेरा उस गलीसे निकलना मना था। और यदि दूसरी गलीसे निकलता तो मंगला लोहारका घर पड़ता था, जो यद्यपि बच्चोंपर बहुत प्रेम करता था, किन्तु जिसकी शकल देखते ही मुझे और दूसरे विद्यार्थियोंको भय मालूम होता था। हम लोग जब मंगल लोहारके घरके आगेसे निकलते, तो इतने झुक जाते कि दुकानमें बैठे हुए अपने भट्‌ठेकी धौंकनी धौंकते हुए मंगलको हम दिखाई न पड़ सकें। किन्तु यदि इस बीच वह खाँस उठता, तो हमारा दलका दल इस तरह भाग खड़ा होता, मानो पीछेसे कोई दैत्य दौड़ा रहा है।

"उधर ससुरालवाली गलीसे जब मैं निकलता, तो मेरी सास अपने किसी रिश्तेदारसे कुछ मिठाइयाँ गलीके मोड़पर ही मेरे पास भिजवा देतीं। मैं मोहवश मिठाइयाँ ले लेता और तब मैं भूआके घर पहुँचनेपर इतना बनाया जाता कि मुझे अपना बाबईमें रहना बहुत कष्टदायक मालूम देता। तभी मुझे एक मार्ग मिला…

"अपने घरसे भूआके घर जानेके लिए मैं जागीरदार रामकिशनके घरको पार करता। उस घरके विशाल प्रांगणमेंसे मैं उनके चौकेके बगलसे होकर निकल जाता और गली लाँघते ही बूआके घर पहुँच जाता। इस मकानसे होकर जानेपर एक तो मुझे मंगल लोहारके मकानके पाससे होकर गुज़रना नहीं पड़ता, दूसरे मुझे ससुरालकी गलीमेंसे होकर नहीं जाना पड़ता। किन्तु जागीरदार रामकिशनके घरमेंसे जानेमें मुझे बहुत बड़ी कठिनाई यह थी कि मैं अकेला तो वहाँसे निकल सकता था, किन्तु मेरे साथियोंका हुजूम वहाँसे नहीं जा सकता था। और भूआका घर मानो मेरे जीवनकी ऐसी ढुलकन ज़मीन थी, जहाँ दिन और रातमें मुझे कई बार पहुँचना ही चाहिए। भूआ थीं कि रामायण, भागवत तथा कथा-कहानियोंका कोष थीं। अतः वहाँ पहुँचनेपर भूआके पास बैठकर मुझे बहुत-कुछ मिलता। दूसरे उपद्रव-स्वभाव पसन्द होनेके कारण उनके पुत्र श्यामलालके साथ मेरी खूब ही पटती। किन्तु विशेष श्रद्धाका केन्द्र तो

भूआ थीं। ये मेरी छोटी भूआ थीं। पहुँचते ही वे मुझे पहले बाजरेकी रोटी और कढ़ी अथवा बाजरेकी खिचड़ीमें घी डालकर खिलातीं और और दिन भर कथा-कहानी सुनाया करतीं। साथ ही उनके बाड़ेके दरख्तों-पर मैं चढ़ जाता और बेर, सीताफल तथा अन्य फलोंको पके या कच्चे भी न छोड़ता। मेरे घरमें इन चीज़ोंमेंसे कोई न थी। मेरे घरमें अपरिमित लाड था, शासन था और 'यह करूँ, वह न करूँ'की आज्ञा थी। भूआके यहाँ मुझे इन तीनों आपदाओंसे छुट्टी मिल जाती थी। पीठ या सिरपर हाथ फेरनेसे मुझे आँसू आ जाते थे। किन्तु उनका अत्यधिक होना मैं नहीं समझ सकता था। अतः मेरे निवासके तीनों मकान मुझे चौखट-अन्दर रोक सकनेमें असमर्थ थे। और मैं भूआके यहाँ चला जाता था। किन्तु जब मेरे फूफाजी और काकाजी अपने स्कूलोंसे, गाँवोंसे छुट्टी लेकर बाबई आ जाते थे, तब उनकी चर्चा, उनके विनोद, उनके चुटकुले, उनकी कहानियाँ, उनका भाई-भाईकन् मिलकर चौसर खेलने बैठना तथा उनका संस्कृतके श्लोकोंको लेकर उनके अर्थोंपर झगड़ पड़ना—यह सब कुछ मुझे अच्छा लगता था

"नाँदनेरवाले दादाजी, हमारे पिताजी और काकाजीको पढ़ा-लिखा नहीं समझते थे। वे तानेमें कहा करते, 'भाईजी, स्कूल-मास्टरी पास करनेसे कोई विद्वान् नहीं हुआ करता।'

"और मेरे पिताजी और काकाजी अपने बड़े भाईके इस तानेसे अत्यन्त नम्रतापूर्वक सहम जाते। किन्तु सबसे बड़े भाई छोटेलाल चतुर्वेदी जब गजपुरसे आते, तब वे अपने छोटे भाइयोंपर बहुत प्यार करते और हमारे घरके सब लोगोंकी श्रद्धा अपने गजपुरवाले बड़े भाई छोटेलाल चतुर्वेदीपर बढ़ती जाती। बड़े दादाजी जब बाबई आते तो इसी चिन्तामें अधिक रहते कि अब माखनकी शादी होनी है और उसमें कौन-कौन-सी व्यवस्था किस-किसके सिपुर्द करनी है।

विवाहकी धूमधाम शुरू हुई

"मेरे विवाहका निश्चय होते ही घरमें भजन-गीतोंका ताँता लग गया। हमारे तीनों खपरैलोंमें आम्रवृन्तोंके तोरण हमारे परिवारके नाई नित्य ही नये-नये लगाते। लड़कीवालेके घर भी इसी प्रकार तोरण लगाये जाने लगे और गायन-वादन होने लगा। हमारा घर और मेरी ससुरालकी दूरी एक फर्लाङ्ग भी तो नहीं थी, जो यहाँकी बातोंका वहाँ और वहाँकी बातोंका यहाँ पता न चल सके। मध्यके रिश्तेदार लड़कीकी श्रेष्ठताकी कहानियाँ इस घरमें और कदाचित् लड़केकी श्रेष्ठताकी कहानियाँ उस घरमें पहुँचाते रहते। और उस तरफ़के पुरुष और स्त्री-सम्बन्धियोंकी प्रशंसा इस ओर आती रहती और इस तरफ़की प्रशंसा उस ओर जाती रहती। यही क्यों, हमारे चौथे दादाजी तुलसीरामजी तो अपने बड़े छोटे भाइयोंमें बैठकर इस बातकी भी चर्चा करते रहते कि लड़कीवालोंने दहेजमें कौन-कौन-सी चीज़ और कितनी मूल्यवान् वस्तुएँ देनी तय की हैं। इस ख़बर-के देनेमें उनका उद्देश्य यह होता कि हमारे परिवारकी ओरसे भी लोग अपने खर्चका बजट ऐसा बढ़ावें कि बाबईमें वाह-वाह हो जाय!

"एक दिन बड़ा उत्पात होते-होते बचा। विवाहकी विंदौरी (घोड़े पर बैठा कर मुझे घुमाया जा रहा था) में वरके सामने बारूदके दाने छोड़े जा रहे थे। यह जुलूस अक्सर रातको ही निकलता है। इस समय भी मैं अपनी शरारतसे कैसे बाज आता। हल्दी-चढ़ा कटार हाथमें लेकर जब मैं भूआके छोटे पुत्रके साथ घोड़ेपर बैठाया गया तब मैंने छुपाकर बारूदका एक अनार अपनी जेबमें रख लिया। और ज्योंही जुलूस बाज़ारमें पहुँचा, सामने जलते हुए एक बारूदी अनारको ताक कर मैंने अपनी जेबका अनार दे मारा। निशाना ठीक जगह पर पड़ा और दो अनार बड़ी ज़ोरसे भड़क पड़े। सड़क चौड़ी थी अतः माँगी लाल सेठ की दुकानसे लोग इधर-उधर बँट गये। किन्तु थोड़ी ही देरमें वह जुलूस

आधा भी नहीं रहा। जब हम घर लौट कर आये, तब मेरे छोटे काका हीरालालजीने अपने हल्दी-चढ़े भतीजेकी अच्छी मरम्मत की और पिटाई भी की। बात इतनी ही हुई कि लोगोंको इस पिटाईका पता नहीं चला।

"दूल्हाने तो कदाचित् शरमके मारे नहीं कहा, और परिवारके लोग बदनामीके डरसे इस बातको छिपा गये !

"विवाहकी एक प्रथा मुझे बहुत आनन्ददायक लगी। जब बेटा विवाहने जाने लगता है तब वर-निकासी होनेसे पहले वह अपनी माँके पैर पड़ने आता है। उस समय उस बेटेको माँ खड़े-खड़े ही अपना स्तनपान कराती है। विवाह जैसे शृङ्गारके वातावरणमें उस क्षण जाने कैसे देवत्व उतर आता है ! परिवारमें और आस-पास यह प्रथा अक्षुण्ण बनी रहे, इसके लिए आज भी मैं उद्योग किया करता हूँ।

"बारातमें डेढ़ सौ आदमी गये थे। उस समय मुझे लाल कपड़ेका गोटा लगा हुआ एक जामा पहनाया गया था, जिसमें ऊपर तनियाँ लगी हुई थीं और नीचे घेरादार लँहगानुमा यह जामा झूल रहा था। सिरके ऊपर सेहरा लगाया गया था, जो लाल पगड़ीके ऊपर बाँधा गया था। सेहरेमें मोती और जरीका काम किया हुआ था।

"कन्याको पहले दिन तो, जब तक कि वहाँ सप्तपदी नहीं हो चुकी थी, उसके मामाकी ओरसे दी हुई सफ़ेद धोती ही पहनाई हुई थी, जिस-पर हल्दीयानेके कारण जहाँ-तहाँ पीले दाग़ लगे हुए थे। वह 'मामा चोला' कहलाता था। उसी एक कपड़ेको अपने चारों तरफ़ लपेटकर कन्या मण्डपके नीचे प्रारम्भिक रस्म पूरी करने बैठती है।

"फेरोंके एक दिन पहलेसे मुझे दिन भर पकड़कर रखा गया था। और रातभर बन्द कर दिया गया था। इसलिए सप्तपदीके समय मुझे शरारत सूझी। फेरोंके समय मैं वधूको जल्दी-जल्दी चलाता हुआ, अपने पीछे घसीटने लगा ! तब हमारे कुलगुरुने मुझे रोक दिया और धीरे चलनेपर बाध्य किया।

"सप्तपदीकी परिक्रमा हो जानेके पश्चात् ज्योंही कन्यादानकी विवाह-विधि समाप्त हुई, दाहिने हाथकी ओर बैठी हुई कन्या वामांगमें बैठा दी गई। दूल्हा दक्षिण पार्श्वमें बैठ गया। और इस विधिसे सम्पन्न होते ही कन्याको भीतर ले जाकर नये वस्त्रों और आभूषणोंसे उसका श्रृङ्गार करके बड़ा-सा घूँघट निकलवाकर उसे दूल्हेके वामांगमें बैठा दिया गया। जबतक सफ़ेद धोती पहने हुए थी, तबतक कन्याका घूंघट उतना बड़ा नहीं था, किन्तु श्रृङ्गार होते ही घूँघट अनाप-शनाप बढ़ गया था।

"मेरे हाथमें किसीका हाथ आजाए तो सम्भव नहीं था कि वह सकुशल लौट जाए। तो, फेरोंके समय जो प्रक्रिया हुई उसका परिणाम यह निकला कि वधूके हाथ दुखने लगे और जब वह अन्दर गई तो अन्दर जाते ही इस दुखसे रोने लगी! कहने लगी कि वहाँ हम जाकर नहीं बैठेंगे! तब उसके घरकी बड़ी-बूढ़ियोंने उसे समझाया कि अब हाथमें हथेली देनेका काम ही कहाँ रह गया है!!

"माँको यह समाचार जब किसी तरह मिला तो उसने घर पहुँचते ही कसकर मेरा स्वागत किया। और लड़कीका हाथ ख़ूब-ख़ूब सहलाया गया, तब जाकर उस अबोधाका दर्द कहीं निकल पाया होगा···

"विवाह-विधिके श्लोक मुझे भी याद थे। इसलिए जब पण्डितोंका उच्चारण ग़लत हो जाता, तब मैं उनकी तरफ़ घूरकर देखने लगता। किन्तु, इतने ही में सामने काकाजी बैठे होते और अपने ओंठपर उँगली रखकर संकेत कर देते कि चुप। और मैं चुप रहता। एक प्रथा विवाहमें होती है जिसे 'जान्हन्यौतना' कहते हैं। उसमें दोनों ओरसे श्लोक कहे जाते हैं। कन्यापक्षके पण्डित कहते कि हमारे यहाँ लड़कीका शुभ विवाह है, आप सब बारातको लेकर वर्षमें किसी समय भोजन करने पधारिये। और वर पक्षके भुक्कड़ श्लोकोंमें ही विद्रूप-व्यंग्यमें कुछ चुभती बात कहकर उस निमन्त्रणका उत्तर देते। उस समय संस्कृत श्लोकोंकी वह मोर्चेबन्दी उस उम्रमें भी मुझे बहुत पसन्द आई।

तोरण-द्वारपर

"जब बारात लेकर लड़की वालेके यहाँ गये, तो प्रथाके अनुसार तोरण मारनेके लिए कहा गया। यह तोरण लकड़ीकी चिड़ियें बनाकर उन्हें हरा रंगके तथा उनकी चोंचोंको लाल रंग देकर, एक चौखटमें सजाकर, उन्हें मण्डपपर जड़ दिया होता है। जब उस तोरण मारनेके लिए घोड़े पर बैठे हुए दूल्हेको प्रायः अर्द्धरात्रिके समय संकेत किया गया, उस समय काफ़ी बड़ा जुलूस था। किन्तु मेरे काकाजीने मेरे कानमें धीरेसे कह दिया, 'कोई शरारत नहीं करना, धीरेसे तोरण मार देना।'

"इसलिए एक संकट और टल गया, नहीं तो मेरे शरारती मनने कुछ और ही सोचा था। ऐसी लकड़ी तानकर मारनेका इरादा था कि तोरन टुकड़े-टुकड़े होकर ज़मीन पर आ गिरे। किन्तु काकाजीके भयसे अपने हाथ की लाठीसे महज़ उसे छू भर दिया।

"उन दिनोंके विवाहोंमें गालियोंकी प्रथा थी। अपने जीवनमें इन अंचलोंमें मेरे निश्चयके द्वारा ही इन गालियोंके विरोधमें बहुत आंदोलन हुए हैं और अब शायद एक-दो फ़ीसदी विवाहोंमें भी गालियाँ नहीं गायी जातीं। किन्तु मेरे विवाहमें तो गालियाँ ख़ूब गायी गईं और बारातमें गये हुए बूढ़ोंने भी बहुत आनन्दित हो-होकर उन्हें सुना। मेरे यज्ञो-पवीत संस्कारके गुरुदेव कुछ पण्डितोंको लेकर पुरानी पद्धतिसे विवाह सम्पन्न करनेके लिए योगदान कर रहे थे। तब उनके साथ जो सज्जन पण्डित-गण संस्कृत शब्दोंका उच्चारण करते थे, मैं उनकी भूलें पकड़नेका अपना सुभाव नियन्त्रणमें रख सकूँ, इसके लिए मेरे काकाजीका मुझपर पहरा था।

शरारती दूल्हेकी कंकण-विजय

"दूसरे दिन एक ऐसी प्रथामें दूल्हेको जाना पड़ा, जिसे जूआ खेलना

कहते हैं। वहाँ पुरुष कोई नहीं होता। सब स्त्रियाँ ही होती हैं। बाबई हीमें विवाह होनेके कारण जो स्त्रियाँ थीं, उनमेंसे अधिकांशको मैं पहचानता था। जब एक बड़े गहरे बर्तनमें हल्दीका पानी बनाकर जुआ खेलना प्रारम्भ किया गया तो शरारत-पसन्द मैं लड़कीके हाथमें कंकण लगने ही न दूँ। सातों ही बार कंकण मैंने जीत लिया।

"जब हम उम्रके बड़े हो गये, तब मेरी पत्नीने किसी नाराजगीमें एक बार शिकायत की कि 'तुम बड़े वैसे आदमी हो। विवाहमें एक बार भी मेरे हाथ कंकण नहीं लगने दिया ?'

"हाँ, मैं विवाहमें यह ज़रूर चाहता था कि कंकण वाली शरारत परिवारके पुरुषवर्गमें जाकर कोई नहीं कहे, किन्तु मेरी भूआके लड़के श्यामलाल, जो मुझसे दो साल छोटे थे, वहाँ खड़े यह तमाशा देख रहे थे। उन्होंने जाकर काकाजीसे शिकायत कर दी और मुझे अल्टीमेटम मिला कि यदि मैंने फिर कोई शरारत की तो वे मुझे विवाहमें भी क्षमा नहीं करेंगे।

वरने भाँग पी ली

"जाने किस बातपर बारात और ससुरालवालोंका झगड़ा हो गया। उस दिन बाराती लड़कीवालोंके यहाँ भोजन करने तो आये, किन्तु निमित्त करनेके लिए आये थे। भोजन करना उन लोगोंका उद्देश्य नहीं था। बारातमें तीसरे पहर भंग बनी थी और अत्यन्त लाड़से थोड़ी-सी मुझे भी दे दी गई थी। अतः जब रातको ससुरालमें भोजन करने बैठे, और जब लोग निमित्त पूराकर जल्दी ही उठने लगे, तब मैंने ज़ोरसे कह दिया कि वाह, मेरा पेट नहीं भरा है, मैं कैसे उठूँगा।

"यह चीज़ समाजमें अच्छी नहीं मानी जाती। किन्तु मेरा परिवार भयभीत था कि मैं कहीं और कोई शरारत न कर बैठूँ। इसलिए वहाँसे

तो मैं उठा लाया गया, किन्तु मुझे फिर अकेलेमें काकाजीकी भली-बुरी खूब सुननी पड़ी।

"जब मण्डप-शोभा नामके वैवाहिक उत्सवके लिए बारात लेकर हम लोग गये, वहाँ गीतोंका एक लम्बा कार्यक्रम हुआ, जिसे बारातके लोग आनन्द लेकर सुन रहे थे। गीत अपने कुलदेवताकी प्रार्थनासे प्रारम्भ होते और अपने [illegible], [illegible] और उसके स्नान, ससुरालके लोगोंकी प्रार्थनापर उसका घर आना आदि बातें गीतोंमें गुँथी होतीं और फिर गाली-गलौजमें बड़े आदमियों और उनकी स्त्रियोंके नाम लेकर विनोद किये जाते। लोग बारातमेंसे थोड़ा बोल उठते और उससे उत्तेजित होकर स्त्रियाँ और गाली भरे गीत सुनातीं।

"दामादकी कोमलता और सुन्दरताका बखान करते हुए इसी समय एक गीत गाया गया था, जिसकी पहली पंक्ति है—'**यहाँ सरवरिया रा ताल, जमाई आया पाहुणा जी म्हा का राज**···।'

"एक बात निःसंकोच कही जा सकती है कि इन गीतों और व्यवहारोंसे जितनी सन्निकटता उन दिनों देखी जाती थी, उतनी सन्निकटता अब दुर्लभ हो गई है। अब तो मानो मुद्दई-मुद्दाअलेहके झगड़ेकी तरह वर और कन्या-पक्ष एक दूसरेके सामने होते हैं और एक बड़ी रक़म लड़कीवालेसे वसूल करना तय कर लिया जाता है, मानो वह लड़केकी बाज़ार-दर हो। दूसरे, उन दिनों विवाह एक धार्मिक संस्कार था। जो पूजा-भावना लड़कीवालोंकी लड़केवालेके प्रति रहती थी और लड़केवाले भी अपने जीवनकी उज्ज्वलतासे अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करनेके लिए उन दिनों प्रयत्नशील रहते थे। सुधारोंके इस युगमें वह बात न जाने सदाके लिए कहाँ चली गई है?

"उन दिनों परदेकी प्रथा बहुत कठोर थी।

बारात वर-वधूको लेकर लौटी

"विवाहमें समधिनोंसे समधिनें मिलीं। समधियोंसे समधी मिले। यदि न मिलने योग्य अछूत थे तो केवल वर-वधू! और वे मिलते भी क्या, जब वे नौ वर्ष और चौदह वर्षके बालक-बालिका या गुड्डे-गुड्डी मात्र ही थे। हाँ जब वधू विवाहके पश्चात् हमारे यहाँ घर आई, तब एक दिन बेचारीने कहीं मेरी पुस्तकोंका बस्ता खोल लिया। राग-रंग और भोजनके उस उत्सव-समारोहमें ज्योंही मुझे मालूम हुआ कि मेरी पुस्तकों-का बस्ता खोल लिया गया है और ज्योंही मुझे दुर्वासा होते देखा गया, त्योंही मेरी माँने मुझे डाँटा और कहा कि सिर्फ़ तीन-चार बरसकी बात ही है बेटा, उसके पश्चात् तो पूरे घरकी मालकिन हो जानेके बाद तुम्हें, तुम्हारे पिताजीको और मुझे भी उसकी आज्ञा माननी पड़ेगी!!

"यद्यपि शादी गाँवमें ही हुई थी, किन्तु बारात जब चलने लगी, तब घर आनेसे पहिले विवाहके जुलूसने गाँवमें बड़ा-सा चक्कर लगाया और लड़की वाले दूरतक पहुँचाने आये। उस समय जो विनय व्यक्त की गई और लड़केवालोंकी तरफ़से हमारे बड़े दादाओंने उस विनयका जिस नम्रतासे उत्तर दिया, वह दृश्य जब-जब मुझे याद आ गया है तब-तब मुझे लगा है कि सगे-समधी शब्दका निर्माण कदाचित् उसी विनयके द्वारा कभी हुआ होगा।

नई दुल्हनसे स्पर्धा

बारात जानेसे पहले जितना लाड़-प्यार मुझे दिया गया था, कदा-चित् वह अंश कुछ और बढ़ाकर नई वधूको प्राप्त हो गया। और, मैं अपनी टोलीमें खेलनेके लिए खुला छोड़ दिया गया। अब यदि कहींसे भोजनका आमन्त्रण आता तो वधूको बड़े ठाठसे भोजनके लिए ले जाया जाता। किन्तु मैं इसलिए वहाँ भोजन करने जाता कि घरमें मुझे कोई

भोजन देता ही नहीं था। परिणाम यह हुआ कि मुझे नई दुलहनसे भी स्पर्धा हो गई। और किसीसे तो नहीं, किन्तु मैं अपनी माँसे इस बातके लिए लड़ता कि मेरे हिस्सेकी परवाह न कर माँ खानेकी सारी अच्छी वस्तुएँ अपनी बहूको दे देती हैं। हमारे परिवारकी स्त्रियोंमें मेरी यह बात एक कुतूहलका विषय बनकर रह जाती। यही क्यों, लोगोंके यहाँसे आये हुए सामानको लौटानेके लिए दादाजी मुझीको हुकुम देते कि कुलियोंके साथ जाओ और सामान लौटा आओ। उन सामानोंमें क्या-क्या तूफ़ान नहीं होते। काफ़ी बड़ी-बड़ी कढ़ाइयाँ, बड़े-बड़े बर्तन, लकड़ीकी बल्लियाँ, तथा अन्य सामान। एक दिन मुझे हुकुम हुआ कि अपने बड़े दादाजीके लिए मैं अफ़ीम कहींसे ले आऊँ। ठेकेदारका मकान ज़रा दूर होनेसे मुझसे कहा गया कि मैं घोड़ीपर बैठकर जल्दीसे जल्दी खरीद लाऊँ। और मेरे हाथ घोड़ी लगते ही मैंने उसे तवा नदी-की तरफ़ भगाया और अफ़ीम लेकर जो मुझे आध घण्टेमें आ जाना चाहिये था, तो सुबहका गया शामको आया! विवाह होते ही पिताजी तथा काकाजी अपनी स्कूल-मास्टरीमें चले गये थे। अतः दादाजीने अपने लाड़में थोड़ा-सा डाँटकर मुझे छोड़ दिया। नहीं तो, जाने कैसी मरम्मत होती।

वधूका शृङ्गार

"दुलहिनके शृङ्गारमें उस समय घाघरा होता, लूगड़ा होता, जेवरमें बोर होता, वह सुहागका चिह्न माना जाता। चूड़ा लाखका होता। वह मुहूर्त देखकर बनाया जाता। पैरोंमें कड़ी, तोड़े, पायल, पायजेब।

"उन दिनों टिकुली लगाने और बिछिया पहननेकी भी प्रथा थी, किन्तु वर और कन्या दोनोंके ही, विवाहके समय, चेहरेपर चमक लगायी जाती थी। वह लाल और सफ़ेद और हरे और पीले रंगकी होती हैं। शादीके पूर्व दोनोंको ही चमक लगायी जाती है और दोनोंके हाथ-पैरोंमें

मेंहदी मांडी जाती। मेरे हाथोंमें जब मेंहदी लगाई गई, तब मेरे शरारती स्वभावके कारण एक हाथपर एक भाभीका पहरा था, दूसरे हाथपर दूसरी भाभीका पहरा था। मेंहदी मांडनेके दूसरे दिन मीठा तेल लगाकर वह चमकाई जाती तो पुरुष भी पूछा करते थे कि कलकी मेंहदी किसने लगाई है। ठीक दुलहनकी तरह दूल्हेके पाँवमें भी मेंहदी लगाई जाती। किन्तु जब दूल्हेके महावर नहीं लगायी गई, तब मुझे यह मालूम नहीं था कि वरको महावर नहीं लगाई जाती। जब दुलहनके आनेपर महावरके गीत गाये जाने लगे, तब मैं इसलिए भाग गया कि मेरे पाँवोंमें कहीं महावर लगाई न जाये। और मेरी भूआके बेटे श्री कन्हैयालालजी की पत्नी (मेरी भावज) ने कितने दिनों ही मुझे डराये रखा कि कहाँ तक बचोगे। आज तुम्हें महावर ज़रूर लगायी जायगी। संकोचवश मैं यह बात किसीसे पूछ भी न पाता था। अतः मुझे यह बात मालूम ही न हो पाई कि लड़कोंको महावर नहीं लगायी जाती।

मधु-यामिनीका नीरव संगीत

"रतजगाके दिन हमारे यहाँ यह प्रथा होती थी कि घरके बड़े-बूढ़े और जिसका विवाह हुआ है, उसको लेकर सभी अपनी पत्नियोंके साथ एक बड़ी पंक्तिमें बैठ जाते थे। मैं और मेरी पत्नी उस पंक्तिमें सबसे अन्तमें बैठे थे। यह रतजगा भिनसारेकी भोरके ज़रा पहले पूरा हुआ था और उसके बाद सब तो उठ-उठकर चले गये थे, किन्तु उस कमरेमें मैं और मेरी पत्नी अकेले छोड़ दिये गये थे। वहाँ बैठे हुए मैं ऊब चुका था और सटककर भागनेकी तैयारीमें था। उधर वधू भी सटककर भागनेकी तैयारीमें थी। किन्तु दरवाज़ेपर भौजी पहरा दे रही थी। जैसे ही मैं या वह उठनेकी तैयारी करते, वह डाँटकर कहती कि खबरदार! अब आप ही सोच लीजिए कि किस तरह हमारी शृङ्गार-रात्रि बीती!

दूल्हेने वधूकी मेवा चुराई

"जब दुलहन आई तो उसकी माँने उसके जेवरोंकी पेटीमें कुछ मेवा रख दी थी। पहले दिन तो उसने मेरे छोटे भाई-बहनोंके साथ वह मेवा खाई थी। मैंने वह खाना देख लिया था। उसी दिन मैंने उस पेटीकी चाभी पार कर दी और दूसरे दिन आरामके साथ वह मेवा स्वयं ही खाई। लेकिन जब वधू उसे खानेके लिए पेटीकी चाभी देखने लगी तो नदारद। तब दादाजीने कहा माँसे कि ऊँई ऊधमीके कने चाभी होसी। तू पोटर ले लियो। टाबरने मारजो मती न। काईं बोलबाको काम को न।

"माँने आखिर एक उपाय सोचा और हमसे कहा कि आज तुझे हम नहलायेंगी। मैं राज़ी हो गया। सोचा कि चलो, पत्थरमें फूल तो खिले! बहूपर लाड़ होते-होते मुझपर पुराना लाड़ जागा तो। किन्तु जब मैं नहाकर लौटा तो मेरे कुर्तेमें-से चाभी ग़ायब थी। और मेरी भाभियाँ मुझे चिढ़ा रही थीं कि और खाते हो चोरीके मेवे? और उन हँसनेवाली पाँतमें दुलहनका बड़ा हिस्सा था। ऐसी ही उम्र और ऐसे ही शऊर थे हमारे!!

"विवाह के पहले, एक ही गाँवमें रहते हुए वधूके साथ साक्षात्कार होनेके बड़े-बड़े क़िस्से हुए थे। वह वधू अपनी लड़कियोंको साथ लेकर अपने मकानके पिछवाड़े पेड़पर चढ़ जाया करती और मुझे घूरा करती। मैं भी भूआके आँगनमें बैठकर उस घूरनेका रस लिया करता। तब भूआ-की नज़र जैसे ही उस पेड़पर पड़ती, वह डाँटकर कहती कि क्यों री लड़कियो, उतरो वहाँसे! मैं बड़ा भोला बना भूआसे अब पूछता कि क्या था भूआ? तब भूआ मुझे एक हलकी चपत लगाकर कहती कि मुझे ही बनाने चला है?

"जब हथलेवाकी विधि सम्पन्न हो रही थी, तब एक शरारत और की गई। हथलेवाके समय मैंने अपना सरौता दूसरे हाथमें ले लिया था। यह सरौता और उससे बँधा हुआ बटुआ दूल्हे और दुलहिनके हाथमें रहता ही है। यह सम्भवतः हल्दबानके समय दे दिया जाता है। वधूने भी अपना सरौता दूसरे हाथमें ले लिया। लेकिन उस रात बेसुधीके क्षणों-में वधूका भी सरौता मैंने ही ले लिया। और उसे लेकर खुशीसे दूसरे दिन घूमने लगा। कोई पूछता कि यह सरौता कहाँसे आया है, तो यही कहता कि इसी सरौतेसे पूछ लो न!

"तब एक दूरके रिश्तेकी भावजने आखिर वह सरौता मुझसे छिनवा लिया। जिद्द-बहसके बाद यह फैसला हुआ कि दोनों दलोंको उनके सरौते बाँट दिये जायँ। पर उन सरौतोंके साथ जो बटुए थे, उनमेंसे वधूके सरौतेके साथका बटुवा मैं देनेको तैयार न था। किन्तु उसे दिये बिना भावज किये गये फैसलेपर अमल करनेको तैयार न थीं। आखिर मुझे वह बटुवा देनेको विवश होना पड़ा। वह बटुवा रेशमका था। अनिच्छा-का पालन करते हुए मैंने वह सरौता और बटुवा भी दे दिया। तब मुझे मेरा सरौता वापस मिला।

"गौना तीन साल बाद हुआ था। यह घटना १९०४में हुई। उस समय पिताजी मसनगाँवमें थे। वहाँ उनकी बदली हो चुकी थी और उन्हींके साथ मैं भी चला गया था। पत्नीने तो इस कारण कभी छिदगाँव देखा ही नहीं था।

"लेकिन जब-तब घरमें त्यौहार-बार हुए, गौनेसे भी पहले बाबईमें पत्नी बुलाई जाती रही थी।

"एक बार पत्नीको लेने मेरे छोटे भाई वीर बाबई गये। वे नई रोशनीके युवक थे। वहाँ जानेपर उन्होंने उनके घरके नाईसे रूमाल लिया और उससे अपने जूते साफ़ कर वह वापस ही नाईको दे दिया।

इसे वहाँवालोंने बहुत बुरा माना और पिताजीको पत्र लिखा कि बस, एक ही कसर रह गई थी। वे उस कपड़ेसे अगर अपना मुँह और पोंछ लेते !

मुलिया भी माखनलालके विवाहमें आई

"मेरे विवाहमें कुछ मज़दूर भी जहाँ-तहाँसे इकट्ठे किये गये। नाँदनेरसे मुलिया तथा उसकी माँ भी आई थीं। वे दिनभर पानी भरते, झाड़ू देते, बोझा उठाते, पीसते-कूटते, बर्तन मलते, बड़े बर्तन और बोझीले सामानोंको इधर-उधर रखते, सामानोंको लाते-ले जाते। मुझे जब हल्दी लगती अथवा मैं सरौता हाथमें लेकर उसमें लगे हुए रेशमी बटुवों समेत आँखोंमें काजल और हाथोंमें मेंहदी लगाये हल्दीके पीले रंगसे लिपटा बदशकल-सा इधर-उधर घूमता, तब मुलिया लीपने-पोतने और बर्तन मलनेका काम करते हुए भी चाहती कि मैं उससे कुछ बोलूँ। वह कोठरीका दरवाज़ा खुला छोड़नेपर ज़ोरसे चिल्लाकर कहती कि बिल्ली दूध पी जायगी, दरवाज़ा बन्द कर दो। स्नानके पश्चात् दौड़कर मेरे सूखे कपड़े देने आती और भूआ जब मुझे खिलाती-पिलातीं, तब जाने कहाँसे मुलियाको मैं दूर कुछ काम करते देखता। किन्तु मेरा ब्राह्मणत्व, मेरा ब्याह और मज़दूरोंपर मेरे परिवारकी मालिकी ये तीन ही चीज़ें होंगी शायद कि जिसके कारण मैं मुलियासे और उसकी माँसे न कभी नाँदनेरके हाल पूछता, न उसके पिता और कक्काकी जानकारी लेता और न यही जानकारी लेता कि वे क्या खाते हैं, कहाँ पड़े रहते हैं और उनकी ओढ़ने-बिछानेको भी कुछ मिलता है कि नहीं। किन्तु इन सबके बावजूद जब मैं वर-निकासीके लिए जाने लगा और सेहरे लगे हुए सिरसे जब मैंने प्रथाके अनुसार माँका स्तन अपने मुँहमें लिया, उस समय मुलियाकी आँखोंमें आँसू थे और वह पानीका लोटा लेकर मेरा मुँह धुलानेके लिए पास ही खड़ी थी ! किन्तु मैंने पानीका लोटा उससे नहीं लिया और अपनी भौजीको आज्ञा दी कि वह मेरा मुँह धुला दे।

"मैंने बारातमें सुना, कि मुलिया अपने पिताके साथ नाँदनेर भाग गई। किन्तु मेरे आश्चर्यकी सीमा न रही, जब विवाहसे लौटनेके पश्चात् नई वधूकी सेवा-शुश्रूषामें मुलियाको सबसे अधिक व्यस्त पाया। यद्यपि नई वधूके साथ नाइन आई थी, किन्तु समाजमें वधूका जितना सम्मान होता है, मेरे विचारसे उसकी अपेक्षा नाइनके अहंका अत्यधिक सम्मान होता था।

"जब तीन दिन रहनेके बाद वधूकी विदाई हुई, तब उसके दूसरे दिन मेहनत-मज़दूरी करनेवाले लोग वापस लौटे और नाते-रिश्तेके लोग भी। उसी दिन गाड़ी-बैलपर नाँदनेरवाले दादाजी भी लौटे और घोड़ेपर नाँदनेरवाले बड़े भैया भी। पीछे-पीछे एक खुली बारबरदारीकी बैलगाड़ी भी दादाजीके साथ ही थी, जिसमें विवाहके लिए नाँदनेरसे आया हुआ बिछा-वनका सामान तथा कुछ बर्तन भी थे। उसमें मुलिया, उसकी माँ और उसके पिता भी थे।

"दादाजीकी गाड़ीमें अधिक व्यक्ति बैठे होनेके कारण बारबरदारीकी गाड़ी थोड़ी दूर हाँककर मैं दादाजीको पहुँचाने बाबईके समीन गाँवके महुएके खेतोंतक आया था। उस समय अपनी ही गाड़ीमें मुलियाने मुझे बैठा देखकर मानो कितनी बार प्रणाम नहीं किया था, और उसको माँने कितनी बार आशीर्वाद नहीं दिया था। उसकी माँने जब कहा, 'भैया, तुम बड़े आदमी हो, हम ग़रीबोंको मेहनत-मज़दूरीके समय याद करते रहना', उस समय मुलियाका बूढ़ा बाप और मुलिया आँखोंमें आँसू भर लाये थे। किन्तु मैं पत्थरकी तरह बिना पसीजे गाड़ी हाँक रहा था और बाबईसे मील भर आगे आते ही मैं गाड़ीसे उतर पड़ा था। और रमलू भोई, जो अभी तक पैदल चल रहा था, गाड़ी हाँकने बैठ गया था। मैंने दादाजी और दूसरे मेहमानोंको प्रणाम किया और विदा ली। किन्तु मेरे समीनतक जाने-

में केवल दादाजीको पहुँचाना ही अकेला कारण था, यही बात नहीं थी। मुलिया दूसरा कारण थी।

वैष्णव-पदोंका समारंभ

"जिन दिनों मैं नाँदनेरसे छिदगाँव लौटकर आया, मैं तुकबन्दियाँ लिखने लगा था। भोजनके पहले और स्नानके पश्चात् नित्य पंचपदी पढ़ना अब मेरी रुचि और सुझावकी वस्तु हो गया था। संन्ध्याके समय पिताजी जब रामायण लिये बैठते तो किये जानेवाले प्रश्नों, उठाई जानेवाली शंकाओं और रामकथामें होनेवाली घटनाओंमें मैं रस लेने लगा। अतः यह स्वाभाविक हुआ होगा कि मुझमें रचनाकी प्रवृत्ति जाग्रत हो। परन्तु साथ ही मेरा उपद्रवपसंद सुभाव भी अपना काम किये जाता। जब मैं अपने साथियोंके साथ उनके खेतों, बगीचों अथवा गाँवके नदी-नालोंपर चला जाता, तो मैं उनमें उसी तरह घुलमिल जाता, जिस तरह मैं पहले छोटी उम्रमें घुल-मिल जाया करता था।

"यह कहना तो कठिन है कि कौन-सी रचना, मैंने पहले लिखी, किन्तु वैष्णवपदोंकी तरह जब कोई पद मैं लिखता तब मेरी भूआ मुझे बहुत प्रोत्साहन देती थीं। यों मेरे काकाजी तथा पिताजीने कुछ पद मुझे छुटपनसे ही रटा दिये थे, जिनमें सूरदास तथा अन्य कृष्णभक्त कवियोंके पद होते थे। जहाँ कहीं परिचयके लिए लोग एकत्रित होते, मैं अपने काकाजीके हुक्मपर अपने पदोंको दुहरा देता था। बचपनकी बोली और उन पदोंके कारण मैं परिचित सज्जनोंसे बहुत लाड़प्यार पाता। किन्तु मेरा मूल सुभाव उग्र था। समस्त लाड़-प्यारके बावजूद यदि कोई मुझे छेड़ता, तो फिर मेरे वैष्णवपद मुझे लड़ने और मारपीट करनेसे नहीं रोक पाते थे।

"हाँ, पिताजीके शासनका ही मुझे डर रहता था। क्योंकि जब उन्हें गुस्सा आता, तो वे बच्चोंको मकानसे सड़कपर फेंक देते थे। मेरे साथ भी ऐसा ही हुआ और मेरे छोटे भाई रामदयालके साथ भी।

"जब हम मन्दिरमें किसी उत्सवमें शामिल होते, तो वहाँ मैं दो-चार वैष्णवपद सुनाते हुए, कभी-कभी एकाध पद अपना भी मिला लिया करता। उन्हीं दिनों मुझे दो समाचार-पत्र देखनेको मिले : एक 'बंगवासी', दूसरा 'वेंकटेश्वर समाचार'। दोनों पत्र मालगुज़ारके यहाँ आते थे और मेरे पिताजीको पढ़नेके लिए दिये जाते थे। नाँदनेर जानेके पहिले ही मैं, इन दो मेंसे किसी पत्रको, पढ़नेकी कोठरीमें, जिसके आधे भागमें गोशाला थी, लगा दिया करता था। उस समय आम धारणा यह थी कि जो कुछ भी लिखा जाय, भगवान्के नामपर लिखा जाना चाहिए। तब भी मैं किसीपर फब्तियाँ कसनेके लिए लोगोंपर कुछ-न-कुछ लिख दिया करता था और इसका फल मेरे माता-पिताको भोगना पड़ता।

मसनगाँवका जीवन

"थोड़े दिनों पश्चात्, १२ अप्रैल १९०५ को, पिताजीकी बदली छिदगाँवसे मसनगाँव हो गई। मसनगाँवमें शालासे लगा हुआ पोस्ट-आफ़िस था। उसका काम भी पिताजी ही किया करते थे। मुझे शालामें तो बहुत अच्छा मालूम नहीं होता था। अतः मैं बाहर घूमने और पढ़े-लिखे व्यक्तिकी तलाश करनेमें लग जाता। गाँवसे बाहर पटवारियोंके बगीचेमें एक साधु रहते थे। तथा गाँवके बहुत लोग उनके शिष्य भी थे। वहाँ नित्य योगवाशिष्ठ पढ़ा जाता था। थोड़े ही दिनोंमें मैंने वहाँ योगवाशिष्ठ स्वयं पढ़ना शुरू कर दिया। वहाँ अध्यात्मरामायण, रामगीता जो अध्यात्मरामायणका ही अंश है, योगवाशिष्ठ तथा वेदान्त-सम्बन्धी

अन्य ग्रन्थोंको पढ़ने लगा। अब मैं इन्हीं ग्रन्थोंमें रम गया। वैष्णवपद अब सिर्फ़ भोजनसे पहले पढ़नेकी चीज़ थी।

बालपनकी परिचिता नर्मदी मसनगाँव में

"एक श्रावणपर राखीका त्यौहार मनाने नर्मदी हमारे यहाँ मसनगाँव आ गई। उस समयतक नर्मदीकी माँका स्वर्गवास हो चुका था और अब वह मातृविहीना थी। श्रावणपर नर्मदी चार दिन हमारे घर ठहरी। पाँचवें दिन नर्मदीको पिताजीने वापस उड़ाँ पहुँचा दिया। यद्यपि ऊपरसे देखनेमें तो श्रावण समाप्त हो जानेके कारण नर्मदी वापस भेजी गई थी, किन्तु मूल कारण यह था कि मेरी पत्नीने नर्मदीका मसनगाँवमें रहना और आना अच्छा नहीं समझा। और मेरी माँ अपनी बहूके इस भावको जान गई। उस दिन पिताजीने मन्दिरके वेदान्ती पण्डितजीको अपने यहाँ भोजनके लिए आमन्त्रित किया था, अतः मुझे उन्हें बुलाने भेज दिया गया। जब मैं लौटकर आया तब मुझे मालूम हुआ कि नर्मदी चली गई। मुझे नर्मदीके जानेके ठीक कारणका पता उस समय चला, जब पत्नीने सन्ध्या समय मुझसे तानेसे कहा, 'आज नर्मदी बाईजीके चले जानेसे घर सूना-सूना लगता है', और इसके बाद अपनी मुसकराहटमें उसने वह सब कुछ कह दिया, जो वह कहना चाहती थी।

"शालामें पिताजी मुसलमान विद्यार्थी और बलाही विद्यार्थियोंको भी बहुत चावसे पढ़ाया करते थे। श्री रामेश्वर अग्निभोज एम. एल. ए. के काका रामलाल अग्निभोज उन दिनों पिताजीके ही विद्यार्थी थे तथा उनके पिता श्री उमराव अलगसे बड़ी उम्रके होनेके बाद भी पढ़ने लगे थे। मसनगाँवमें रामायणका कोई क्षेत्र न होनेके कारण रामायण, गीता तथा अपने उर्दूके ग्रन्थोंको पिताजी अकेले ही घरमें पढ़ने लगे थे। मेरी पत्नी उन दिनों मसनगाँवमें ही थीं और मेरे माता-पिता इस बातसे प्रसन्न थे

कि उनकी बहू उनके पास है। किन्तु बहूके आनेका कोई विशेष असर मुझपर नहीं पड़ा।

वधूका घड़ा कुएँके अन्दरसे ग़ायब हुआ

"एक दिन एक बढ़ई विद्यार्थी मुझे अपने घर ले गया और रामायणके कुछ स्थलोंको पूछने लगा। मैंने वे स्थल उसे बताये। कुछ दिनों पश्चात् बढ़इयोंके पिछवाड़ेके खेतमें जो कुआँ था, उसमें उतरकर मैं कुएँमें नहाने लगा। इस बीचमें मुझे शरारत सूझी। मैं कुएँमें उतरा और पानी खींचनेवालोंके सब घड़े उनकी रस्सीसे खोलकर पानीमें डुबो दिये। स्वभावतः इस बातकी शिकायत पिताजीके पास पहुँचनी ही थी, और पहुँची। मुझे इस बातका पता नहीं था कि उन डुबोये हुए घड़ोंमेंसे एक घड़ा पिताजीकी बहूका भी था! और लोगोंकी रस्सियाँ तो कुएँमें लटक रही थीं, अतः उनके घड़े निकालकर उनकी रस्सीमें बाँध दिये। किन्तु पिताजीकी बहूरानी तो ग़ुस्सेमें अपनी ख़ाली रस्सी भी साथ ले गई थीं। इसे वहाँकी भाषामें नेज या नेजू कहते हैं। वे अपनी नेज वहाँ रखतीं तो घड़ा बाँध दिया जाता। मैं इस आपदासे छुट्टी पानेके लिए कुएँसे बाहर निकलकर भागना ही चाहता था कि पिताजी बढ़ई मुहल्लेमें मुझसे मिल गये और उन्होंने कुछ सख्त-सुस्त बातें सुनाईं। सुनकर रह जाना तो अपना सुभाव ही था।

"विवाह हो जानेके पश्चात् मेरे दो विरोधी हो गये—मेरी पत्नी तथा मेरी बहन कस्तूराबाई। माँके पास मिलकर दोनों शिकायतें करतीं और यही बातें पिताजीके पास भी पहुँचातीं। किन्तु पिताजी इन बातोंपर ध्यान नहीं देते और इस तरह प्रकारान्तरसे वे मेरी बढ़ती हुई उम्रमें मेरा, मेरे कार्योंका मौन समर्थन करते रहते!

माताके कष्टोंकी गहन गाथा

"किन्तु माँमें तो एक गहन गम्भीर मौन छा गया था। बहू और बेटे-बेटियोंके बीच वे शान्त रहतीं, किन्तु उनके अन्दर एक दूसरा ही मौन था। माँ धनवान् बापके यहाँसे आई थीं। उनका वहाँ बेटेकी तरहसे लाड़ किया गया था। पर अपने घरमें उनका कष्ट अब मैं देखने लगा था और मुझसे देखा नहीं जाता था।

"मेरी भूआ यद्यपि मुझे बहुत प्यार करतीं, किन्तु माँको बहुत कष्ट देतीं। और तो और, सीधी-सी बातके भी उलटे अर्थ लगाये जाते। एक बार माँने संक्रान्तिके त्यौहारपर मुझे प्यार किया और मेरी पीठपर हाथ फेर दिया। भूआ इस बातपर इतनी लड़ीं कि तूने प्यार किया ही क्यों? यह हमारा बच्चा है। तू उसकी होती ही कौन है? तू लौंडी, हमारे पाँवकी जूती!

"परिणाम यह हुआ कि माँने घरकी सारी मज़दूरी करते हुए तीन दिनोंतक भोजन नहीं किया और माँसे किसीने कहा भी नहीं कि वह भोजन करे। एक दिन नन्हेंसे मैंने ही बहुत ज़िद् की, तब माँने खिचड़ी खाई।

"इसी तरह मेरे काका, बाबा या परिवारके और भी लोग आते तो उन सबका शासन माँपर चलता। माँ बुरा नहीं, अच्छा भी कहे तो अपराधिन। और पिताजी माँकी कोई बात सुनना नहीं चाहते। माँ कुएँसे पानी भरकर लातीं, दूर नालेपर जाकर सबके कपड़े धोकर लातीं। उस समय हमारी बड़ी काकी, हमारे भूआके बड़े भैया कन्हैयालाल, दादाजीके बड़े भैया अयोध्याप्रसाद तथा बड़ी भूआ वहीं थीं। अतः सबके कपड़े धोनेके लिए माँ जातीं। वह बहुत शीघ्रतासे लौटतीं, फिर भी कपड़े सुखाते हुए माँको गालियाँ सुननी पड़तीं कि वह बहुत देरसे आई!

"छोटे-छोटे बच्चेकी मरजी रखना माँको भारी पड़ता। माँके प्रति अत्यन्त कटुताका व्यवहार होनेसे कारण भूआका प्यार बचपनमें मुझे बोझ-

सा मालूम होने लगा था। माँके ये कष्ट अपनी १६ वर्षकी उम्र तक मैंने मौन भावसे देखे। किन्तु १६ वर्षकी उम्रके बाद माँसे यदि कोई कुछ भी कहता तो मैं उसे बरदाश्त नहीं कर सकता था। पिताजीको प्रारम्भमें मेरा यह सुभाव कदाचित् पसन्द नहीं आया, क्योंकि वे अक्सर मुझे डाँट दिया करते। किन्तु उसके पश्चात् पिताजी मेरे सुभावपर अधिक रुष्ट होते नहीं देखे गये। और माँके लिए परिवारके व्यक्तियोंसे जब मैं लड़ाई मोल लेने लगा, तब माँने ही मुझे समझाया कि मैं तो सहती आई हूँ और सह लूँगी, किन्तु तुझको और तेरे भैयाको अपने परिवारसे बुरा नहीं होना चाहिए। तुम छोटे-छोटे भाई-बहन हो और तुमको सुखी देखनेके लिए इस सब परिवारकी मुझे आवश्यकता है।

"कितनी ही बार तो मैं जब परिवारके लोगोंसे लड़ लेता, तब माँ मेरी ओरसे माँफ़ी माँगती। इतना होते हुए भी माँके प्रति परिवारके लोगोंका व्यवहार सन् १९२० तक मैंने बहुत अच्छा नहीं देखा। सन् १९२०में जब मेरी बहनकी शादी हुई, तब वर्धासे स्वर्गीय भाई जमनालाल बजाजके संकेतपर मैंने लड़केका चुनाव किया था, अतः परिवारके लोगोंने, जिन लोगोंमें प्रायः हमारे सब सगे ही थे, खबर उड़ा दी कि हम तो जाति-पाँति तोड़कर विवाह कर रहे हैं। इन लोगोंमें मेरे द्वारा दो अपराध हुए थे। एक तो जिद्द करके बड़ी उम्रमें लड़कीकी शादी करना और दूसरे परिवारसे अपरिचित स्थानसे दामाद चुन कर लाना। अतः बड़ा तूफ़ान खड़ा किया गया। मैं बड़ा हो चुका था। अतः पिताजी मेरे कार्यमें हस्त-क्षेप नहीं करते थे। किन्तु विवाह हो जानेपर यह तूफ़ान स्वयं शान्त हो गया और परिवारके सब लोग मेरी छोटी बहन जमना बाई तथा उनके पति श्री सोनीरामजी जोशीकी खूब प्रशंसा करने लगे।

"जब मैं छोटा था, तब माँको यह अधिकार भी नहीं था कि वह अपने बच्चोंके लिए कपड़े तथा उनके रंगोंका चुनाव कर सके। या, अपनी

मर्ज़ीसे उनके कपड़े सिलवा सके। अथवा, बच्चे बीमार हों तो उनकी बीमारीकी ख़बर दे सके। और यदि बच्चे अधिक बीमार हों अथवा किसी प्रकारके कष्टमें हों तो वह ज़ोरसे रो भी सके।

"छल करने, झूठ बोलने, क्रूर होने, परिवारका भला न चाहने, चीज़ोंको छुपाने आदि न जाने कौन-कौनसे अपराध माँके ऊपर परिवार-जनोंकी तरफ़से लगाये जाते। किन्तु माँके मौनने और उसकी सहिष्णुताने परिवारकी नावको, इस सबके बावजूद, न जाने कितने संकटोंसे पार किया।

"सच पूछिए, तो माँका हृदय बहुत विशाल था। छोटेसे स्कूलके मास्टर होनेके नाते पिताजीके पास अनेक जातियोंके कितने विद्यार्थी पढ़े इसकी संख्या नहीं है। उन्हें रोटी बना-बनाकर खिलानेकी व्यवस्था कैसे की, इसका हिसाब नहीं है। किसी छोटे परिवारमें, जहाँ स्कूलसे मास्टरका वेतन कभी सात रुपये और कभी दस रुपये रहे हों, वहाँ ये बातें कभी सम्भव ही नहीं हो सकतीं थीं। पर माँके आँचलके नीचे यही सब बराबर सम्भव होता गया!

तरुण माखनलालने भूत देखे

"बचपनमें मेरी एक आदत भूत तलाश करनेकी रही। अपने विवाह-के अगले वर्ष जब मेरी बहन कस्तूराबाईका विवाह हुआ, तब हम लोगोंने बावईसे चार मील दूर गजपुरसे किया; वहाँ मेरे बड़े दादा छोटेलालजी चतुर्वेदी रहते थे। उनका मन्दिर था, ज़मीन थी और आस-पासके बावन गाँवोंमें उनकी पुरोहिती थी।

"मारवाड़ी समाजमें विवाहके समय चाकवासकी प्रथाके अवसरपर कुछ मिट्टीके बरतनोंकी आवश्यकता पड़ती है, उन्हें ले जाना किसीको याद न रहा। किसीको उन्हें बनवानेकी याद नहीं रही। न किसी कुम्हारसे

उनके लिए कहा ही गया। तब मुझे आज्ञा दी गई कि मैं रातोंरात बाबई जाऊँ और चाकवासके बरतन लेकर रातको ही गजपुर लौट आऊँ।

"उस समय मेरी भूआका बेटा मेरे साथ जानेको तैयार हो गया। हम लोगोंने उस समय सोलहवाँ वर्ष भी नहीं लाँघा था। उसी समय रात-के अँधियारेमें रास्तेपर चलते हुए मुझे ख़याल आया कि चाहे भूत कभी न मिला हो, किन्तु आज भूत ज़रूर मिलेगा। गजपुरसे मरोड़ा जाते समय ज्योंही हम तवाके तटपर आगे बढ़ते हैं, बहुत घना जंगल लग जाता है।

"आज तो शहरोंमें रहते-रहते मैं इस बातकी कल्पना भी नहीं कर सकता कि छोटी उम्रके वैसे बच्चे उतनी रातको, जब सोता पड़ने लगे, कोई घना जंगल लाँघ सकेंगे। किन्तु मुझे लगता, यह तत्त्वज्ञान : भयका तत्त्वज्ञान, शायद अमीरी दर्शन है। या, कमसे-कम शहराती आदत तो है ही। ग़रीब आदमी भयकी भाषामें सोचकर अपना काम नहीं चला सकता। सो, हम लोग चले। हम दोनों भाइयोंमें मैं ही बड़ा था। कपड़े भी ज़रा ढंगके पहने हुए था। ज्यों ही हम लोग जंगलसे निकले, एक वृक्षकी ऊँची टहनीसे दो-तीन अंगारे गिरे। मैंने सोचा, भूत मिल गया। मुझे बहुत हर्ष हुआ कि आख़िर जिस चीज़को ढूँढ़ रहे थे, वह मिल गयी। मैंने कहा कि कौन है? नीचे उतरो।

"बात ऐसे तावसे कही गई थी कि ऊपरके आदमियोंसे एक नीचे उतर आया और बोला कि तुम चाहे थोड़ा-बहुत शहद ले जाओ, किन्तु मड़ोराके नाकेदारसे न कहना। हम तो शहद तोड़ रहे हैं।

"उनसे कुछ बातचीत भी हुई। किन्तु उस बातचीतका सिरपैर मुझे पूर्णरूपसे याद नहीं है। हाँ, मेरे छोटे भाईने उस आदमीके पैर देखे, यह विश्वास करनेके लिए कि यह आदमी ही है, या भूत है। ऐसी आम धारणा है कि भूतके पैर पीछेकी तरफ़ होते हैं। किन्तु, जब उस

अर्जनने अपनेको गजपुरके ठाकुर सूरज सिंहका आदमी बताया, तब तो हमारी भूतकी कल्पना बिलकुल ही विलीन हो गई। और, हम हँसते हुए उस घने जंगलमें और आगे बढ़ गये। जब जंगल घना हो जाता, तब हम वैष्णव पदोंको ज़ोर-ज़ोरसे गाने लगते। इसी तरह मँडोरा पहुँचे और तवाकी रेतीमें उतरे। तवा नदीका पाट यहाँ लगभग पाँच फर्लाङ्गसे भी बड़ा है। किन्तु मड़ोराके ढीमरोंने हमसे कहा कि रातके समय जंगली जानवर पानी पीने आया करते हैं, अतः हम लूघड़े (जली हुई लकड़ी) हाथमें लेकर आवें। तवाके तटपर जो ढीमर और कीर रहते थे, वे दादाजी-का नाम सुनते ही और उनके यहाँके बच्चे समझकर, लाठी उठा हमें पहुँचाने साथ हो लिये तथा एक जलती लकड़ी साथ ले ली। वे हमें तवा पार करा गये।

"उन दिनों तवा नदीके चौड़े पाटमें भी घुटने-घुटनेसे अधिक पानी नहीं था। और धारा बाबईवाले किनारेकी तरफ़ बह रही थी। इसलिए यह उमंग भी मनकी मनमें ही रह गई कि अब तवा मिलेगा, मजेसे तैर-कर उस पार जायेंगे। तवाकी धारामें-से मँड़ोरेके आदमी वापस लौट गये। और हम पारकी घाटी चढ़कर ऊपर आ गये। वहाँ बीच सड़कमें एक आदमी खड़ा था दूरीपर। मेरे छोटे भाईने कहा कि मैं तो आगे नहीं जाऊँगा, यह तो भूत है।

"मैं भी ठहर गया। उसे मनाने लगा। थोड़ी ही देरमें हमें लगा, कि वह तो जितना ऊँचा था, उससे बहुत ऊँचा लग रहा है! मैं गजपुर लौटना नहीं चाहता था और छोटा भाई आगे बढ़नेके लिए तैयार नहीं था। अतः मैं उसे मनाता रहा। इस बीच मुझे एक तदबीर सूझ गई। मैंने एक पत्थर उठाकर उस भूतको मार दिया। वहाँसे तो खटसे आवाज़ आई। और, मेरा छोटा भाई चलनेके लिए तैयार हो गया। बोल उठा कि अरे, यह तो गाँवकी मेड़का पत्थर है। उस पत्थरके पास जाकर हमने

उसे चारों तरफ़से बहुत ठोका-पीटा। मेरे मनमें एक निराशा रह गई कि हाय, यह कमबख्त भी भूत न निकला!

"रातको हम लोग बाबई पहुँचे। अपने भावी समधीजीको ही जगाया। वे टाउन एरियाके अधिकारी थे। कुम्हारोंने बयाना लिया और गधोंपर बर्तन लादकर वे गजपुरकी ओर रवाना हो गये। इस बार गधे और कुम्हारोंके साथ हमारी भी यात्रा चैनसे कटी, कहीं कोई भय न था। सूरज उगनेके लगभग डेढ़ घण्टे पहले हम लोग गजपुर पहुँच गये।

"यों, गजपुरको चलनेके समय मेरी माँको ख़बर नहीं दी गई थी। ख़बर मिलनेपर माँ विवाहको ही कोस रही थीं और पिताजी तथा अन्य लोगोंसे नाराज़ थीं। दादाजी भी नाराज़ हो रहे थे कि छोटे बच्चोंको क्यों पहुँचाया। रातका समय, छोटे बच्चे जंगलोंमें रास्ता भूल गये होंगे। किन्तु हमारी भूआ, दादाजी और माँको धीरज देती रहीं और जब हम लोग वापस लौट गये तो माँने सबसे पहले, मेरी छोटी भूआके बेटेकी बलैयाँ लीं। उसे गोदमें उठा लिया और लिये-लिये घूमती रहीं। और मुझे बहुत डाँटा। यद्यपि वह डाँटना इसलिए अधिक प्रेमका हो गया, क्योंकि मैं जिस कामके लिए गया था, उस कामको पूर्ण करके लौटा था।

"इस तरह जंगल, नदी, पहाड़, चढ़ाव, उतार, बोगदे, लड़ाई-झगड़े ये मेरे जीवनमें बहुत नजदीक रहे हैं। और एक आधी ज़िन्दगीका मेरा इनका सम्बन्ध तथा प्रभाव मेरी दूसरी आधी ज़िन्दगीमें न तो टूट पाया, न कम हो पाया।

भादौं गाँवमें हेडमास्टरीका लुत्फ़ लिया

"भादौं गाँवमें गंजालके किनारे एक बार मैं एवज़ीपर प्रधानाध्यापक होकर गया हूँ। वहाँके हेडमास्टर श्री दरियाव सिंहने छुट्टी ले ली थी।

मैं उन दिनों टिमरनीमें पढ़ता था। पढ़नेमें तेज़ होनेके कारण मुझे ही एवज़ीकी प्रधानाध्यापकी मिली। जब मैं चार्ज लेनेके लिए वहाँ पहुँचा, तब देखा कि मेरे सहायक होनेवाले असिस्टेन्ट मास्टर केवलपुरी मुझसे काफ़ी ऊँचे हैं और उनके बड़ी-बड़ी मूँछें हैं। मेरे तो मूँछें उगना शुरू ही नहीं हुई थीं। ईमानकी बात तो यह है कि वेतनमें मैं प्रधानाध्यापक था और मुझपर हुकुम चलानेमें केवलपुरीजी प्रधान अध्यापक थे।

"चूँकि भादौं गाँव छिदगाँवसे बहुत नज़दीक था, इसलिए पिताजी अपने हेडमास्टर (!) पुत्रके लिए एक थैलेमें थोड़ा-सा गेहूँ रख गये। भोजन तो हाथसे ही बनाना होता था। मैं स्कूलकी ही एक कोठरीमें भोजन बना लिया करता था। स्कूल बहुत सुन्दर स्थानपर था। उसका आगेका दरवाज़ा गाँवके बाज़ारमें था, किन्तु पीछे स्कूलके अहातेसे लगी हुई, भयंकर रूप धारण किये हुए गंजाल नदी थी। जिसके कटाव और चढ़ाव ऐसे टेढ़े थे कि वहाँसे मनुष्य चढ़ तो न सके, नीचे गिरे तो सीधा ऊपर जाय !!

"नदीके उस पार सातपुड़ाके घने और भयंकर जंगल थे। भादौं गाँवमें बन्दर बहुत थे। जब मैं नदीपर स्नान करने जाता और यह देखता कि दो-तीन बन्दरोंने कुत्तेको पकड़ लिया है और अपनी छोटी-सी बँदरिया-की सवारी कुत्तेपर करा दी है और कुत्ता चूँ-चूँकर घबड़ा रहा है, तो मैं उस दृश्यको देखनेमें इतनी देर लगा देता कि ऊपर स्कूलसे असिस्टेन्ट मास्टर चिल्लाकर कहते, 'जल्दी आइए, स्कूलका टाइम हो गया।' अब मैं आऊँ भी तो किस रास्ते ? पगडण्डीके बीचोंबीच तो वानर-मंगल हो रहा है !

"एक दिनकी बात है कि सुबहसे दस बजेतक विद्यार्थियोंको पढ़ाकर मैंने दोपहरको खाना बनाया और स्कूलकी लम्बी-चौड़ी-विस्तीर्ण टेबुलपर सो रहा। शाला-भवनमें खिड़कियाँ तो थीं, किन्तु उनमें विचित्रता यह थी कि खिड़कीका एक पल्ला यदि एक लकड़ी और एक आकृतिका बना हुआ था

तो यह आवश्यक नहीं था कि दूसरा पल्ला भी उसी आकृति और उसी लकड़ीका बना हुआ हो। हाँ, कहनेके लिए साँकल-कुण्डी हर एकमें थीं। मैंने उस खपरैल-स्कूलकी सब खिड़कियाँ लगा दीं और सो रहा। पिताजी द्वारा लाई हुई गेहूँकी टाटकी थैली टेबुलसे थोड़ी ही दूर रखी हुई थी। जाने कैसे बन्दरोंने एक खिड़की खोल ली और गेहूँकी थैलीपर उनकी पंगति होने लगी।

"जाड़ेके दिन थे। मैं लिहाफ़ ओढ़े हुए था। ज्योंही बन्दरों द्वारा गेहूँ चबानेकी आवाज़ ज़ोर-ज़ोरसे मेरे कानोंमें पहुँची, मैं घबड़ा गया। कुछ उपाय तो सूझा नहीं, तत्काल जो सूझा, वही कर गुज़रा। लिहाफ़में लिपटे हुए ही मैं थैलीपर लुढ़क गया। ज़ोरसे पीठमें लगी, मगर किससे कहता? परन्तु देखा यह कि बन्दर वहाँसे भाग गये। मैंने उठकर साँकल लगाई और उस दिनके पश्चात् भादौं गाँवके स्कूलकी टेबुलपर और दिनमें मैं कभी नहीं सोया। टेबुल यों ही विस्तारमें लम्बी-चौड़ी थी, किन्तु वह कलियुगका प्रतीक थी! एक पहिया उसका दृढ़ था, और तीन हिलते-डुलते। एक तो इतना डुलता था कि ऊपर लगे हुए कुन्देके बावजूद उसे किसी भी दिशामें घुमाया जा सकता था। उसपर बैठने या सोनेपर वह टेबुल, पलंग और झूला दोनोंका काम देती थी!! अतः जब मैं थैलीपर गिरा, तब यह नामुमकिन था कि टेबुल मुझपर न गिरती!!!

किन्तु यह भी उतना ही सत्य है कि बन्दर मेरे गिरनेसे न भगे होंगे। वे टेबुलके गिरनेसे भाग खड़े हुए होंगे। इस तरह जीवनकी पहली हेड-मास्टरीका शुभारम्भ हुआ था।"

इस समय तक माखनलालकी काव्य-प्रवृत्तियाँ सुपुष्ट और मांसल हो चली थीं और प्रकृतिकी दीर्घ दिशाओंका दृष्टि-भेदन उनका मुख्य कार्य बन चुका था। भादौं गाँवमें, अवकाशके क्षणोंमें, माखनलाल गहन बनके बीच घिरे हुए, उस खपरैल-स्कूलके अहातेमें टहलते हुए या बैठे हुए

प्राकृतिक सुषमाकी भाव-लहरियोंपर दृष्टि-क्रीड़ा किया करता। तभी आ गया वसन्त। कैशोर अवस्थाकी पहली मौलिक अभिव्यक्ति प्रस्तुत करते हुए कविने उसका स्वागत-गान गाया—

"बराबर किया उष्ण और ठंड, हटाया जाड़ेका पाखण्ड।
रात-दिन भी कर दिये समान, तुम्हें है धन्य-धन्य मतिमान्।
बेलकी बहक, और द्रुमकी लटक
चिड़ियाकी चहक देख शोभा सरसाई है।
गोमुखमें अंग धोय, शान्त कान्तिको संजोय
भौरनके कुंजनमें भीर-सी लगाई है।
अति मदमाते दोऊ कूल नदियाके बहैं,
फूले-फूले वृच्छनकी लोनी घटा छाई है।
धन्य गंजाल, दोऊ पाल (तट) हैं निहाल,
आज तेरे घर प्यारे ऋतुराजकी अवाई है।"

भादौं गाँवकी यह एवज़ी प्रधानाध्यापकी शिक्षण-अनुभवकी दृष्टिसे एक साहसिक गति अवश्य थी, लेकिन इस लघु प्रवासमें माखनलालका मानस गंजाल नदीके विकराल रूप और उसको आवृत्त किये हुए विशाल पर्वतोंकी जंगल-पटी श्रृङ्खलाओंके गहन अन्तरालका दिव्य दर्शन करनेका अलभ्य सुयोग पा गया था।

सप्तम परिच्छेद

मिडिल परीक्षाकी तैयारी और क्रान्तिकारियोंसे परिचय

"मिडिल परीक्षाएँ जबलपुरसे ही होती थीं। कुछ विद्यार्थी तो जबलपुर जाकर ही मिडिलकी शिक्षा लिया करते थे। पर जो अन्य विद्यार्थी टाऊन स्कूलोंमें पढ़ा करते थे, उनकी परीक्षा क्योंकि जबलपुरमें ही होती थी, इसलिए उनकी परीक्षाके समय जबलपुरमें ही जाना पड़ता था। पिताजीने यही उचित समझा कि परीक्षाके काफ़ी दिन पहले वे मुझे जबलपुर भिजवानेकी व्यवस्था कर दें। इससे जबलपुरके स्कूलकी रीति-रिवाज़ोंसे परिचित हो जाऊँगा, वहाँके परीक्षकों और अध्यापकोंका सुभाव जान जाऊँगा और वहाँके शिक्षण-क्रमको भी समझ लूँगा। और यह भी मालूम हो जायगा कि परीक्षाका ढंग किस तरहसे सरल-सहल हुआ करता है।

"टिमरनीसे जबलपुरका किराया दो रुपये तेरह आनेके लगभग लगता था और वह पाससे ही देना पड़ता था। जबलपुरके नार्मल स्कूलमें हमारे अध्यापक श्री मन्नीलालजी थे। वहाँ जाकर मैं स्कूलके होस्टलमें ठहर गया।

"होस्टलमें निर्मल नामक छात्र रहता था। वह छात्र मेरा ही अधिक मित्र हो सकता था। और उसके साथ मिलकर, जबलपुरके स्वतन्त्र

वातावरणमें, जैसे कई वर्षोंकी शैतानी फूट पड़ी। आयु बढ़नेके साथ समझदारीकी गणित फलानेका अवकाश मिला था, उधर समझदारीकी हवामें ऐसे समझदार मित्र भी मिले थे, जिनके साथ शैतानी करनेका विशेष आनन्द मिला करता था।

"यहाँपर गोंडोंके अन्तर्गत जो बैगा जाति होती है, उसका एक विद्यार्थी हमारे साथ पढ़ता था। एक दिन मैंने निर्मलके साथ मिलकर उस बैगाको खाटपर खाटपर खाटपर खाट चढ़ा कर उसे छतपर चढ़ा दिया और नीचेसे जो पहली खाट हटाई तो ऊपरकी सभी खाटें एक-एककर गिरनी शुरू हुईं। उस समय तक वह छात्र ठीक तरहसे छतपर न जा सका था। खाटोंके गिरते ही वह छात्र नीचे आ रहा! मन्नीलालजी तक शिकायत जब पहुँची तो यह पूछनेपर कि क्या हुआ, उस बैगाने कहा, 'इधरसे गया, उधर पड़ी। अरे बाप रे, गिर पड़ा होता।'

"उन दिनों अहिन्दी भाषियोंमें कुछ इसी तरह तोड़-मरोड़ कर हिन्दी बोली जानी संभव हो पाती थी।

"इस शरारतका दण्ड यह दिया गया कि हम सबकी खाटें छीन ली गईं। उस बैगाके पास खाट रहने दी गई। पर बादमें तंग आकर उस बैगाने अपनी भी खाट लौटा दी!

चूल्हेकी मिठाईका आनन्द

"इसी जबलपुरमें एक बार हमसे एक चूल्हे बनानेवालीने कहा कि बेटा, चूल्हे नहीं बिकते। उन दिनों एक चूल्हा दो पैसेका बिका करता था। हमने हिसाब लगाया कि अगर इसके एक साथ ८० चूल्हे बिकें, तब जाकर यह बेचारी महीने भरको खुराकी पा सकेगी, यही कि पौने तीन रुपयेके लगभग पा जायगी। और मैंने निर्मलसे मिलकर एक योजना बनाई। हमारे होस्टलमें यही ८० विद्यार्थी थे और सब अपना-अपना भोजन उन दिनों अलग-अलग बनाया करते थे। सब विद्यार्थियोंका कार्य-

क्रम यह था कि सुबह ही दो वेलाका भोजन तैयार कर लेते। और फिर पढ़ने चले जाते। जब दुपहरमें आते तो सबसे पहले उनका काम अपना तैयार किया हुआ भोजन ही करना होता। जिस दिन हमारी योजना अपने अमलपर आई, उस दिन दुपहरमें होस्टलका नजारा देखने योग्य था। जब एक विद्यार्थीने अपना छींका देखा, तो यह देखकर अचम्भेमें आ गया कि उसने अपने लिए रोटियाँ बनाई थीं, यह खिचड़ी कहाँसे आ गई? दूसरे विद्यार्थीकी परेशानी यह थी कि उसके चावलके स्थानपर, रोटियाँ रखी थीं। तीसरे विद्यार्थीके भोजनमें सब्जीकी जगह दाल मौजूद थी, और इस तरह, इस तरह। कुछ विद्यार्थियोंने तो जब अधिक हेरफेर नहीं पाया तो भोजन करनेकी उतावलीमें भोजन कर भी लिया था, लेकिन अन्य विद्यार्थियोंकी चीख़-चिल्लाहटमें जब उन्होंने भी आँखें फाड़ कर अपने भोजनोंको देखा, तो कमसे-कम इतना अन्तर जरूर पाया कि उनकी रोटियोंमें ही अन्तर है। वे तो पतली रोटियाँ बनाकर गये थे, यहाँ इतनी मोटी रोटियाँ कहाँसे आ गईं। ८० विद्यार्थियोंका शोर कम नहीं होता। और भोजनके क्षणोंमें तो हर व्यक्ति परोसी गई पत्तलपर, चाहे वह सूखे अन्नकी ही हो या तर मालकी हो, भूखा ब्राह्मण बन ही जाया करता है! सो, वह चीख-पुकार ८० भूखे ब्राह्मणोंकी हो गई!! उस शोरशरापेमें दो विद्यार्थी, जिसमें एक माखनलाल था, अपने पढ़नेमें व्यस्त थे। वैसे तो उन्हें अपने भोजनसे क्योंकि कोई शिकायत नहीं थी, इसलिए शोर करना उन्होंने उचित नहीं समझा।"

मास्टर मन्नीलालजी तक शिकायत गई। वे समझ गये कि यह माखनलालका ही काम है। उन्होंने उसे बुलाया और कहा कि देखो, अपनी शैतानियाँ बन्द करो। हम तुम्हारे पिताको लिख देंगे। और दो-तीन डाँटें माखनलालके दिमागपर, कीलकी मानिंद ठोंक कर, उन्होंने अपराधीको वापस भेज दिया।

पर ८० विद्यार्थियोंके चूल्हे बिगड़ चुके थे। उस समय भोजनकी

थालीका अशुद्ध हो जाना, मिट्टीका चूल्हा ही अशुद्ध हो जाना मान लिया जाता था। छूआछूत उस युगकी ऐसी ही मनोरंजक थी। सो एकके-बाद-एक वे अशुद्ध चूल्हे तोड़े गये और जल्दीसे-जल्दी भोजन बनाया जाय, इसके लिए नये चूल्होंकी पुकार हुई, भाग हुई। देखते न देखते, उस बुढ़ियाके ८० नये चूल्हे खरीद लिये गये। नये चूल्होंपर ही उन सारे भूखे ब्राह्मणोंने नये सिरेसे भोजन बनाया और माखनलालको कोसते हुए सबने बहुत देर बाद भूखसे बिलखते हुए कलेजेमें दो-दो कौर उँड़ेले।

बुढ़िया माई माखनलालपर गद्‌गद और फूली न समाई। उसने एक रुपयेकी मिठाई अपनी कल्पनातीत कमाईमेंसे खरीदी और माखनलालको दे गई। वह युग था, जब एक रुपयेकी मिठाई अधिकसे-अधिक आया करती थी। माखनलाल बहुत खुश और उसका साथी निर्मल भी बहुत खुश। उसने यह कह-कहकर अपने साथियोंको मिठाई बाँटना शुरू किया, "लो सालो, चूल्हेकी मिठाई खाओ, चूल्हेकी मिठाई खाओ।"

यार लोगोंने चूल्हेकी मिठाई मजे ले-लेकर, लोट-पोट होकर खाई। पर दूसरे दिन ही कस कर शामत भी आई। जब खीजे हुए विद्यार्थियोंने चूल्हेकी मिठाई खानेकी शिकायत की, तो मास्टर मन्नीलालजी अपने अपनापेमें न रह सके। उन्होंने उठाई बेंत और माखनलालकी जो खाल उधेड़ी तो बस उधेड़नेमें कसर न रखी। इतने शैतान विद्यार्थीको यदि जिन्दा ज़मीनमें गड़वानेका विधान कहीं रहा होता, तो वे उतना करनेसे भी न चूकते...

माखनलालका व्यक्तित्व जबलपुरमें एक अत्यन्त गौरवर्ण तरुणके रूपमें आकर्षक हो चला था। हँसमुख, मेधावी और क्योंकि वह गणितमें तेज़ था, इसलिए उसकी शैतान-बुद्धि फ़ुर्सतके क्षणोंमें शैतानीका ही गुणा-

फल निकाला करती, या सोचा करती। जितने भी समझदार, चुस्त, मौजी, हरकत-पसन्द बालक थे, वे स्वभावतः उसकी ओर खिंचते थे और उसके दलमें बैठकर गप्प लड़ाना पसन्द करते थे। ऐसे ही क्षणोंमें कुछ बंगाली विद्यार्थियोंने उसे अपने यहाँके एक क्लबमें ले जाकर बैठाना शुरू किया। प्रारम्भमें यहाँ क्या होता है, यह ठीक समझमें न आया। पर धीरे-धीरे वहाँके गुप्त कार्यक्रमको माखनलालने अपने कन्धोंपर लेना शुरू कर दिया। एक दिन वहाँ ऐसा ही प्रश्न उठा था जिसे करना जोखिमसे खाली न था। पर माखनलालने कहा कि यह काम मेरे जिम्मे कर दिया जाये। कुछ पाँच या छः बमके गोले थे। माखनलालने पूछनेपर बताया कि मैं इन्हें स्कूलमें रख लूँगा। यह तो किसी भी रूपमें गोपनीय नहीं रह सकता था, पर माखनलालने अपनी जिम्मेदारीपर उन गोलोंको एक थैलेमें उठाया, साथमें एक साथी लिया और अपने होस्टलमें ले आया। उसी दिन मालीने होस्टलके उद्यानमें कुछ गड्ढे खोदकर रख छोड़े थे। उनमें वह कुछ नये पौधे लगानेकी तैयारीमें था। कुछ पौधे वह लगा चुका था। दोनोंने सम्हालकर वे गोले एक ऐसे ही गड्ढेमें दबा दिये, उसमें मिट्टी भरी और ऊपरसे एक पेड़ जमाकर उसमें पानी भी दे दिया, ताकि माली यही समझे कि वह यहाँ भी पेड़ जमा चुका है।

ये गोले इसमें दो महीने रहे। बादमें जब इसकी माँग आई तो बिना किसी साथीकी सहायताके, वह इन सभी गोलोंको सुरक्षित अवस्थामें निरापद स्थान तक पहुँचा भी आया।

जबलपुरका शिक्षा-क्रम अपने उचित रूपमें चल रहा था, पर माखनलालकी शैतानी अब गुप्त दिशाओंमें अपनी जड़ें पकड़ रही थीं। जो ग्रामीण बालक अपने शैशवसे लेकर आज तक केवल ग्रामीण तर्जकी शैतानी ही कर गुजरनेका अभ्यासी था, जबलपुरकी शहरी हवामें उसे नई सूझ-बूझका आकर्षण प्रिय लग रहा था। जो तरुण गुप्त कार्यवाहियाँ कर रहे थे, उसके लिए शैतानी रोमांचक ही थी। यद्यपि यह दूसरी बात

थी कि इन कारगुजारियोंमें उसे उसी दम कोई खास आनन्द हासिल न हो पाता था। फिर भी इन तरुणोंकी बातोंने उसे कसकर अपनी गिरफ्तमें ले लिया। उसकी विश्वसनीयताकी यह खबर जब काशीमें, जहाँ इन तरुणोंका केन्द्रीय स्थल था, पहुँची तो वहाँसे माँग आई कि किसी तरहसे इस मेधावी ग्रामीण तरुणको भी काशी लाया जाय, जहाँ उसे गुप्त कार्यवाहियोंकी शिक्षा-दीक्षा दी जाय और उसे भी नियमित सदस्य बनाया जाय।

इस अवस्था तक माखनलालके जीवनमें नित्य नई यात्राओंके प्रति ऐसी प्रगाढ़ आसक्ति थी कि यात्राके उद्देश्योंको वह गौण मानने लग जाता था। यात्रा अपने आपमें जिस चरम आह्लाद और मनोरंजनको गोदियों खिलाती है, उसीकी मोहिनी माखनलालको खींचती रही। पहाड़, नदियाँ और निर्जन स्थानोंका विचरण वह अपने गाँवके दायरेसे बाहर करनेके बाद कुछ अधिक विस्तृत दायरेमें आगे बढ़नेकी उतावली लिये बैठा रहता था। भाग्यसे उसे वैसा ही कार्यक्रम मिलता जा रहा था। और आज दिन वह जबलपुर आ गया था। अब काशीका निमन्त्रण मिला था, उसे। वह काशी अवश्य जायगा। पिताजीको विना सूचना दिये। जबलपुरके संरक्षकोंसे छिपकर ही वह काशी जायगा। यात्राओंने उसे निस्सीम उछाह दिया है। नई दिशाओंकी यात्रा जैसे उसे प्रथम कार्य-सी अनिवार्य थी।

बुन्देलखण्डसे बाहर यात्राओंके अन्य प्रसंग

आख़िर वह अपने कुछ नवपरिचितोंके साथ काशी गया। ये नव-परिचित उसके शेष सभी साथियोंसे कहीं अधिक सभ्य, सुसंस्कृत, रोजानाकी चखचखसे दूर, देशकी बात करते थे। कोई छुट्टी आकर पड़ी थी। ये उसके नवमित्र जब अपनी बँगलामें बातें करते, तो इसके कुछ पल्ले न पड़ता। पर जब वे झटके दे-देकर हिन्दी बोलते, तो इसको समझमें कुछ

आने लगता। एक थे असितबाबू। वे ही उसे काशी ले जा रहे थे। मार्गमें इसको लेकर वे एक दिन प्रयाग भी ठहरे। "जब दूसरे दिन हम काशी पहुँचे सुबह ग्यारह बजे, तो वहाँसे सीधे पत्थरगलीके एक अँधेरे मकानमें गये, जहाँ केवल छतपर ही सूर्य-किरणें आती थीं। वहाँ लगभग १३ व्यक्ति उपस्थित थे। मेरा परिचय देवस्करजी नामक एक व्यक्तिसे कराया गया। और भी दो-तीन व्यक्तियोंसे कराया गया। देवस्करजीने अंग्रेज़ी राज्यका इतिहास तथा भारतीय क्रान्तिकी आवश्यकतापर ज़ोर दिया। कहना नहीं होगा, कि एक ग्रामीण बालक होनेके कारण, मुझे सब बातोंपर शीघ्र ही विश्वास हो जाता था, मैं ऐसी बातोंको सुनने नहीं लगा था, पीने लगा था। यह घटना १९०५ के फरवरी महीनेकी है।"

इस समय देशमें कुछ तरुणोंने, जिनमें बंगालके तरुणोंकी संख्या अधिक थी, यह व्रत लिया था कि वे देशसे अंग्रेज़ोंको बाहर कर देंगे। उनकी पाठ्य-पुस्तक बंकिमचन्द्र चटर्जीकी 'आनन्दमठ' नामक पुस्तक थी। ये तरुण एक हाथमें पिस्तौल और दूसरे हाथमें गीता लेकर इस कर्म-पथ-पर आ रहे थे। गीता उन्हें कर्मकी भाषा और वाणी दे रही थी। 'आनन्दमठ' उस वाणी और कर्मको दिशा दिखानेका काम कर रही थी। इन तरुणोंके गुरु एक महाराष्ट्रीय सज्जन थे, जिनका संक्षिप्त नाम देवस्कर-जी था। वे बँगला खूब बोल लेते थे, और उनका केन्द्रीय निवास काशीमें था। वे अपनी और अपने दलीय तरुणोंकी कार्यवाही बहुत गुप्त रखते थे। उनकी अधिकांश शक्ति हर कार्यवाहीको गुप्त रखनेमें ही व्यय हो रही थी। पर उनका सबसे बड़ा सन्तोष यह था कि वे एक बड़ी संख्यामें तरुणोंको क्रान्तिकी दीक्षा दे चुके थे और दिये जा रहे थे। जब बाहरसे उनके आदेशपर नये तरुण लाये जाते, तो सबको एकदम ही आपसमें परिचित नहीं करा दिया जाता था। अलग-अलग दलोंमें बाँटकर वे उनसे बातें करते और सबको सबसे परिचित नहीं कराया जाता। वे उचित समयकी प्रतीक्षा ही इस कार्यके लिए सर्वमान्य समझते थे।

ये सभी क्रान्तिवादी ईश्वरपर विश्वास करनेवाले आस्तिक थे। अधिकांश उनमें कृष्ण-भक्त थे। ईश्वरके प्रति अश्रद्धा रखनेवाला निर्बुद्धि इनमें कोई नहीं था। देवस्करजीने इन तरुणोंको यही प्राथमिक ज्ञान दिया कि मृत्युसे कभी भय नहीं खाना चाहिए, क्योंकि वह तो एक-न-एक दिन सभीकी ओर किसी भी दिन आ सकती है। क्रान्तिदलके प्राप्त उपदेशोंको और उनकी गतिविधियोंके सम्बन्धमें कभी कहीं कुछ न बोलना चाहिए। प्रातः और सायं और जब भी किसी संकटग्रस्त अवस्थामें हों, भगवान् रामकृष्ण परमहंसदेवके द्वारा इंगित मतके अनुसार प्रार्थनाएँ करनी चाहिए। गीताका नियमित पाठ होना चाहिए और उसके मर्मको बहुत गहराईतक समझनेकी चेष्टा करनी चाहिए।

पर इन बातोंसे भी मुख्य बात यह सिखाई गई कि हर क्रान्तिवादी तरुणको अपने यशकी भूख न हो। अपने बारेमें कहीं भी कम-से-कम बोलो। अधिक मौन ही रखो।

ये सभी बातें वैष्णववादी तरुणोंको अधिक प्रभावित करनेकी क्षमता रखती थीं। नाँदनेरसे ताजा हाल लौटे हुए माखनलालको यह क्रान्तिवादिता वैष्णव धर्मकी नई आवश्यकता-सी महसूस हुई। और उसने जब यह देखा कि ऐसे क्रान्तिवादी तरुणोंकी संख्या बराबर बढ़ रही है और उनका जाल नागपुर, जबलपुर तथा अन्य स्थानोंमें बिछता जा रहा है, तो वह और भी उत्साहित हुआ। उसे उनके प्रति नया विश्वास प्रिय लगा सो लगा, यह भी लगा कि व्यर्थके कामोंमें अब अपनी शक्ति अधिक व्यय नहीं करनी चाहिए।

कलकत्ताकी मौन यात्रा

इन्हीं दिनों १९०६में, कलकत्तामें कांग्रेस हुई। उसमें लोकमान्य तिलक भी गये। ये सभी तरुण देशीय राजनीतिमें उनकी उग्रवादिताके कायल थे। कुछ तरुणोंको आदेश हुआ कि कलकत्ता जाओ और तिलक-

की रक्षा करो। जिन्हें आदेश दिया गया, उनमें माखनलाल भी एक था। और आदेशमें यह भी बताया गया था कि वहाँ जाकर जो ज्ञान प्राप्त कर सको, करो। "इन दिनों हम [illegible] थे। टेढ़ी टोपी लगाते थे।" माखनलाल भला कलकत्ताकी यात्रासे कब रुकता। इतनी दूर गमनका सोद्देश्य बादमें था, पहले तो वह एक नये प्रदेशकी यात्रा थी। पितासे अनकहे, किसीको भी सूचना दिये बिना उसने अनुपस्थित होनेका प्रबन्ध किया और कलकत्तेकी दिशामें बढ़ गया।

१९०६का कलकत्ता कमसे-कम आधुनिक था। वह अंग्रेज़ोंके व्यापार-का प्रधान केन्द्र ही अधिक था। चारों ओर खपरैलोंकी खोलाबारियाँ (मध्यप्रदेशके टप्परैलोंके तुल्य) ही चारों ओर फैली हुई थीं। बंगाली लोगोंका वह देश था और अन्य जातियोंके लोग उस समय तक इतनी अधिक प्रतिशत मात्रामें नहीं पहुँचे थे। कलकत्ते तकका रेलमार्ग भी कोई आरामप्रद नहीं था। हावड़ा स्टेशन एक मामूली-सा स्टेशन था। पर वह देशका पूर्वी कोना था। माखनलालने यहाँ पहुँचकर काँग्रेसमें भाग लिया, सार्वजनिक और राष्ट्रीय बृहद् सभाका संचालन देखा, तरुणोंके साथ आत्म-अनुशासनका पाठ सीखा, अन्य नगरोंमें क्या हवा बह रही है, उसका हल्का-फुल्का रुख जाना। जब तिलक कलकत्तासे कार्य पूरा कर प्रयाग आये, तो इन तरुणोंका दल उनके साथ ही ट्रेनमें प्रयाग पहुँचा। यहाँ-पर उनके भाषणकी योजना बनाई गई। किसी कायस्थ पाठशालाके हालमें वह भाषण होना था। उस पाठशालाके ट्रस्टियोंमें मदनमोहनजी मालवीय भी थे। इन तरुणोंने ट्रस्टियोंसे भेंट की और उनसे वह हॉल माँगा, हॉलमें बिछानेके लिए दरी माँगी। लेकिन सारी कोशिशोंके बावजूद न वह हॉल मिला, न वह दरी मिली। और भाषणसे पहले आखिर एक दूसरे मकान-के अहातेमें वह प्रबंध हुआ। तिलकको सुननेके लिए लगभग ३ सहस्र व्यक्ति आये। यह संख्या एक नगरकी ही नहीं, देशकी बढ़ती हुई राज-नीतिक चेतनाकी उठी हुई उँगली थी! उससे लोगोंके जागरणका नाप भी

लिया जा सकता था। भाषणके दूसरे दिन प्रयागके अर्द्ध-सरकारी पत्र 'पायनियर' ने लिखा कि एक रिवोल्यूशनरीके भाषण सुननेके लिए तीन हज़ार लोग एकत्र हुए, तो 'क्या इस देशमें ब्रिटिश सरकार नहीं रह गई है ?'

इन तरुणोंके बीचमें सुरक्षा और निश्चिन्तताके लिए तय कर लिया गया था कि किसीको कोई पत्र कभी नहीं लिखेगा और पत्र लिखा गया तो देशके घटना-चक्रोंका कभी उल्लेख नहीं करेगा। कोई भी चीज़ कहींसे उधार नहीं ली जायगी। विश्वास करके किसीके पास भी कोई वस्तुएँ नहीं रखी जायँगी। जो व्यक्ति कार्यशील हैं, वे अपने पास आर्थिक उत्तर-दायित्व कभी नहीं रखेंगे। यदि कोई सामान किसी सदस्यके पास रहेगा तो उसका उत्तरदायित्व एक ही व्यक्ति के पास रहेगा। और, जब वह व्यक्ति संकटमें पड़ जायगा, तभी अपने स्थानपर रखे सामानका जिम्मा किसी अन्य व्यक्तिके पास देगा। यदि कोई तरुण सन्देहका अवसर देगा तो उसे अपना सम्पूर्ण अस्तित्व समाप्त करनेके लिए प्रस्तुत रहना चाहिए! गीता और वैष्णववादपर जिनका विश्वास न हो, उन लोगोंके हाथमें देश-को सुरक्षित नहीं समझना चाहिए। जो पहाड़ोंकी घाटियोंपर चढ़ न सके, दौड़ न लगा सके, मनकी बात गुप्त न रख सके, कठोरसे-कठोर गालियाँ बरदाश्त न कर सके, उत्तेजित होनेकी प्रवृत्तिको न रोक सके, सहिष्णुतामें कमाल हासिल न कर सके, प्रलोभनोंसे दूर रहनेकी अद्‌भुत् क्षमता व्यक्त न कर सके, दिन और रात जागकर भी साधनामें रत रहनेकी योग्यता न दिखा सके, किसी पारिवारिकके स्वर्गवासके क्षणोंमें या किसी भी संकटमें पड़ने-पर जो डाँवाडोल हो जाय—ऐसे व्यक्ति देश-सेवाके मार्गमें इन तरुणोंके लिए विश्वसनीय नहीं हो सकते थे। ये उनसे तुरन्त अपना सम्बन्ध-विच्छेद करनेमें ही अपने मार्गका कल्याण समझते थे। माखनलाल इन सब परीक्षाओंमें शनैः-शनै पूरा उतरता जा रहा था। यह दूसरी बात थी कि वह इस दिशाके मार्गपर सक्रिय अवस्थामें आगे न बढ़ सका। जबल-

पुरका शिक्षाक्रम उसे लगे हाथ पूरा कर लेना था और पिताकी आशाओं-के अनुरूप यहाँकी परीक्षा भी सफलतापूर्वक और निर्विघ्न पूरी कर लेनी थी।

डिप्टी इंस्पेक्टरकी दुर्गति

"सन् १९०४ में एक विचित्र घटना घटी। मैं पिताजीके पास रहता था। और उनके कामोंमें हाथ बँटाता था। उन दिनों एक डिप्टी इंस्पेक्टर श्रीमूलचन्द्र श्रीवास्तव मसन गाँवका स्कूल देखने आये।

"मसनगाँवका निरीक्षण समाप्त करके, इंस्पेक्टर साहब नर्मदाके किनारे ही सोन तलाईकी पाठशाला देखनेके लिए मसन गाँवसे निकले। उन्होंने पिताजीसे भी कहा कि वे उनके साथ सोन तलाई तक जायँ। किन्तु स्वभाववश पिताजी नहीं गये। तब उन्होंने मुझे अपने साथ ले लिया। बैलगाड़ीसे जब हम लोग मार्गमें पड़नेवाले खमलाय गाँवसे आगे बढ़े, तब इंस्पेक्टर साहब अपने चपरासी बिहारीसे बोले, 'गाड़ीके बैल बहुत खराब हैं। एक बैल बिलकुल नहीं चलता है। इस बैलको सामने जाते हुए बैलोंमेंसे एकसे बदल लो।'

"उन दिनों सरकारी अधिकारियोंकी यह जबरदस्ती खूब चलती थी। इधर इंस्पेक्टर साहब मुझसे साहित्य और धर्मपर ही चर्चा कर रहे थे। इस यात्रामें मैं इसलिए जा रहा था कि एक तो मुझे पिताजीकी अनुपस्थितिमें मूलचन्द्र साहबसे कुछ साहित्यिक चर्चा आदिका अवसर मिलेगा, दूसरे सोनतलाई गाँवके पास नर्मदाका एक घाट है, जिसे पुन्य घाट कहते हैं और गाँवकी बोलीमें उसे पुनघाट कहते हैं, उस स्थानको भी मैं देख आऊँगा। लगे हाथ वहाँ नर्मदामें तैरनेको मिल जायगा। इस दृष्टिसे मैंने अपने थोड़ेसे कपड़े भी रख लिये थे, जिसमें विशेषरूपसे लँगोट और मेरी एक धोती थी।

"मैं इंस्पेक्टर साहबसे बातें करता और नर्मदामें तैरनेके स्वप्न गढ़ता चला जा रहा था कि बिहारी चपरासीने गाड़ी रोकी और एक बैल पकड़कर अपनी गाड़ीमें जोत लिया तथा दूसरा बैल जो धीरे चलता था, छोड़ दिया। उन्हीं बैलोंके पीछे बिस्नोई जातिकी एक मारवाड़ी स्त्री आ रही थी। उसने ललकार कर कहा, 'खबरदार! मेरे बैलको हाथ लगाया तो!'

"मेरे लिए यह बिलकुल नई आवाज़ थी और किसी सरकारी अधिकारीके सामने एक ग्रामीण स्त्रीको बोलते देखकर मुझे कुछ अचम्भा हुआ। मैंने धीरेसे उस स्त्रीसे कहा, 'बाई, ये इंस्पेक्टर साहब हैं।'

"मारवाड़ी स्त्री बोली, 'होगो निगोडो कोई इसपिक्टर।' और उसने बिहारी चपरासीसे ललकार कर कहा, 'मेरा बैल छोड़ दे। नहीं छोडेगो तो ईं दाँतलासे थाँरी गर्दन उतार ल्यूँगी।'

"बिहारी तो साहबका चपरासी था, वह हँस कर दर्पसे बोला, 'जा जा, ऐसी कई औरतें मैंने देखी हैं। बिहारीलालसे बात करनेके लिए तेरे मर्दको भेज दे।'

"स्त्रीने गुस्सेमें कहा, 'रांडुवियाँ, थारॉमें इत्ती हिम्मत।' और अपने सिरके घासका गट्ठा उसने बिहारीके सिरपर दे मारा। बिहारी गाड़ीसे नीचे गिरा। इन्सपेक्टर साहब पलायन करते भये! वह अपना फेंटा सम्हालते जाते और न्यासकी भाषामें बोलते जाते, 'छोड़ दे बिहारी, उसका बैल छोड़ दे।'

"बिहारी उस स्त्रीके पैर पड़ा और बोला, 'अम्मा, मैं मेरा बैल तो ले आऊँ, जो इसकी जगहपर जोतूँ।'

"बैल लाया गया और रामा बिस्नोईकी स्त्रीका बैल छोड़ दिया गया। इन्स्पेक्टर साहब फिरसे गाड़ीमें बैठे और दर-कूच-दर मंजिल बैलगाड़ी चलने लगी···

"इस समय बिहारीको लगा और शायद साहब को भी लगा कि वे

लोग मुझे नाहक साथ ले आये, क्योंकि उसके बाद सोनतलाई गाँव तक न बिहारी कुछ बोला, न इन्सपेक्टर साहबने ही एक शब्द बोलकर अपनी निर्भीकता व्यक्त की। हाँ, जब हम लोग सोनतलाई पहुँच गये, तब जो बिहारी मुझे केवल 'भैया' कहता, और 'तुम' लगाकर बोलता था, वह स्कूलके अहातेमें ले जाकर, एक तरफ़ खड़ा होकर, मुझसे कहने लगा कि मेहरबानी करके आप खमलायकी औरतका क़िस्सा किसीसे कहिए नहीं।

"मैंने उससे कहा, 'मैं पुनघाट जाना चाहता हूँ। साहबसे स्वीकृति दिला दो।'

"साहबने बिहारीसे कहा कि सोनतलाईकी शालाके विद्यार्थियोंकी परीक्षा हो जानेके बाद माखनलालको छुट्टी दी जा सकती है।

"उस परीक्षाको 'साल तमाम' की परीक्षा कहते थे। उन दिनों पहली, दूसरी, तीसरी और चौथी कक्षाओंकी परीक्षा इन्स्पेक्टर ही लिया करते थे। साहबके हुक्मके अनुसार मैंने सब क्लासोंकी परीक्षा लेना क्रम-क्रमसे आरम्भ किया, ज्योंही चौथी कक्षाकी परीक्षा समाप्त हुई और शालाके प्रतिशत परिणाममें प्राइमरी कक्षाका परिणाम शत-प्रति-शत रहा, अर्थात् चार विद्यार्थियोंमें चारों पास हो गये, तब हेडमास्टर साहब अत्यन्त प्रसन्न हुए। जब उन्हें मालूम हुआ कि मैं मसनगाँवके हेड-मास्टर साहबका पुत्र हूँ, तब तो उन्होंने न जाने कितना प्रेम व्यक्त किया और मेरे खाने-पीनेकी व्यवस्था अपने ही घर की। साथ ही उन्होंने एक ग्रामीण सज्जनको मेरे साथ दे दिया, जो मुझे नर्मदाके पुनघाटपर ले जाय।

"पुनघाटपर वेदान्ती साधु उन दिनों ठहरे हुए थे। वे निमाड़ जिलेके ही रहनेवाले थे और निमाड़ी भाषा ही बोलते थे। भगवा कपड़े, ठिगना बदन, गठीला शरीर, चौड़ा ललाट, घुटा हुआ सिर और दूरतक देखती हुई आँखें। उन्हें पाकर मुझे बड़ा सुख हुआ। जब उन्होंने मुझसे

पूछा कि तुम्हारा पुनघाट आनेका लक्ष्य क्या है, तो पाण्डवगीतामें पढ़ा हुआ एक श्लोक मुझे याद आ गया। मैंने निवेदन किया कि—

जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिः
जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः।
केनापि देवेन हृदि स्थितेन
यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि॥

"इसे सुनकर वे बोले कि यद्यपि यह कथन दुर्योधनका है, तथापि साधारण लोगोंके यह कथन बहुत निकट है। और इसका उच्चारण करके लोग सम्पूर्ण व्यक्तका उच्चारण करते हैं। फिर उन्होंने पूछा कि तुम किसी कारणसे निराश तो नहीं हो ? अथवा नास्तिक तो नहीं हो ? मैंने निवेदन किया कि निराश भी नहीं हूँ और नास्तिक हूँ या नहीं, यह भी नहीं कह सकता। क्योंकि अस्ति और नास्तिके कोई प्रश्न मेरे मनमें नहीं उठते। हाँ, यह मैं जानता हूँ कि मैं वैष्णव परिवारमें पैदा हुआ हूँ और भक्तिके पाँच पद पढ़े बिना बच्चोंको हमारे परिवारमें भोजन नहीं करने दिया जाता।

"भक्तिका नाम सुनते ही साधुने अपनी त्योरी चढ़ाई और भक्तिके खिलाफ़ जितनी बात वे कह सकते थे, सब कह चले। मैं सुनते-सुनते ऊब गया। इतनेमें ही एक पण्डित साधुजीसे मिलने आ गये और उनसे बातें करने लगे। तब 'घुटे हुए मस्तक' को 'कानों तक दाढ़ी बढ़ाये हुए मस्तक' से रगड़ खाता हुआ (!) छोड़कर मैं वहाँसे चुपचाप खिसक गया और ज्यों ही नर्मदा घाटपर पहुँचा, तो देखा कि खमलायके असिस्टेण्ट मास्टर तथा बिहारी चपरासी भी नर्मदा स्नान करने आ गये हैं। मैंने स्नान किया और भक्तिके उन्हीं पदोंको दुहराने लगा। जिन्हें मैं नित्य कहा करता था।

"सोनतलाईसे एक दूसरा गाड़ी-बैल तैयार हुआ, जिसपर साहब और

बिहारी किसी दूसरे गाँवके लिए रवाना हुए और मैं उस गाड़ीपर अकेला रवाना हुआ, जिस गाड़ीको बेगारमें साहब बहादुर मसनगाँवसे ले आये थे।

"इस बीच भगवान् पटेल, जिसकी यह बैलगाड़ी थी, का आदमी भी गाड़ी-बैल वापस ले जानेके लिए सोनतलाई आ पहुँचा। उसने गाड़ी हाँकी और मैं जब लौटकर मसनगाँव आ रहा था, तब जान-बूझकर खमलाय गया। वहाँ मुझे मालूम हुआ कि उस बिस्नोई परिवारके आदमीका नाम रामा है और बिस्नोइयोंकी खमलायमें काफ़ी तादाद है। वे लोग, मैंने सुना, अपनी विवाहादिकी पंक्तियोंमें केवल लपसी (तरल हलुवा) बनाया करते हैं और इतना घी डालते हैं कि पत्तलसे छनकर वह घी ज़मीनको भिगो दिया करता है। भोजन करनेके बाद वे प्रायः हाथ नहीं धोते या कम धोते हैं और प्राण छोड़कर गाड़ी-बैल दौड़ाते हैं। इसलिए इस जातिके बैल बहुत ऊँचे और बहुत अच्छे होते हैं तथा गरमीके दिनोंमें ये लोग बैलोंको नथुनोंसे घी पिलाते हैं। मैंने उस भाग्य-वान् बैलको भी रामाके यहाँ देखा, जिसे उसकी मालकिनने साहब बहादुर की चलती गाड़ीसे छुड़ाया था।

"जब रामा और रामाकी बहूको यह मालूम हुआ कि मैं मसनगाँवके गुरुजीका लड़का हूँ, तब उसने अपना गाड़ी-बैल सजाया, मुझे उसमें बैठाया और भगवान् पटेलके गाड़ी-बैलको हम लोगोंके चलनेके पहिले ही रवाना कर दिया। रात हो चुकी थी। रामाकी बहूने ख़ूब औंटा हुआ दूध एक गिलासमें भर कर दिया। उसने तो लोटेमें दिया था, मेरे कहनेसे ही दूध गिलासमें भरा गया था। रामाकी बहू बोली कि म्हारो बैल पकड़तो तो राखोड़ियाने मारई नाकती!

"मैंने उससे कहा कि वह सरकारी अफ़सर था, रामाकी बहू। तुझे डर नहीं लगा?

"वह बोली कि डर किशो लालजी ? इशा राखोड़िया तो रोज घुमबो करै है। म्हारा बैलाँने तो हूँ टावरा कानी राखूँ हूँ। थारो काकोजी हाथ लगाय (अपने पतिकी ओर इशारा कर बोली) तो मैं ईंका हाथ काट नाकूँ !

"मैं उसके शब्दोंका अर्थ नहीं समझा, पर रामाने कहा कि चालरे भाया, आपा चालाँ। ई जऊजात रे मूँडे लगबासे काँई फायदो कोनी।

"मेरे मनमें भय रहा कि साहबका अपमान होनेके कारण पिताजी रामाको भी दस-पाँच जली-कटी सुनायेंगे और मुझे भी तो दो-चार बात कहेंगे ही। जब रामाकी गाड़ीमें मैं मसनगाँव पहुँचा, तब पिताजी अपने सदाके स्वभावके अनुसार, स्कूलमें साहबके स्वागतमें लगी झंडियाँ उखड़वा रहे थे ! रात हो चुकी थी। स्कूलमें तेलकी एक छोटी-सी टिमटिमदानी जल रही थी। दो-तीन विद्यार्थी तथा असिस्टेण्ट मास्टर झंडियाँ उखाड़नेका काम कर रहे थे। पिताजीकी मनोदशा बहुत प्रसन्न नहीं थी। इसलिए मुझे और भी डर लगा। अपनी पत्नीकी करतूत रामाने डरते-डरते खुद ही पिताजीको सुनाई। उसने कहा कि जऊजात, गरूजी, वे थ्वारा साहबसे ही भिड़ पड़ी। वो सालो मूने बुलावालो छो। पर जाँबाकी नौबत कोउ आई ना।

"तब पिताजीने मुझसे सारा हाल जानना चाहा। मैंने डरते-डरते सब घटना सुना दी। पिताजी मेरी धारणाके ठीक विपरीत रामासे बोले कि ओ बड़ी बहादुर लड़की है। छोरीसे कुछ कहना मत। मैं आज वह बात सुनके बहुत ख़ुश हुआ।

"पिताजीके इस कथनका मेरे मनपर बहुत असर पड़ा और मैं अपने पिताजीको उनकी इस भावनाके कारण अत्यधिक श्रद्धाकी दृष्टिसे अब देखने लगा। रामा चिलम पीता जाता था। हम सब घर पहुँचे। घर पहुँचते ही पिताजीने यही बात अपनी भाषामें मेरी माँसे कही और दूसरे दिन तो वह बात सारे गाँवमें फैल गई।

हरदाकी प्राइवेट ट्यूटरशिप

मसनगाँवमें रहते हुए एक बार मैं हरदामें अध्यापक भी हुआ। हरदा मसनगाँवसे कोई सात मील दूर है। वहाँ पड़ा प्लेग। अतः हरदाके तहसीलदार साहबके पुत्रको पढ़ानेके लिए एक अध्यापककी आवश्यकता हुई। मुझसे तंग आकर मेरे पिताजीने कदाचित् मुझे हरदामें तहसीलदारके पुत्रको पढ़ानेके लिए भेजा। अन्य लोगोंके साथ, तहसीलदार साहब भी उन दिनों नदीके पार जंगलोंमें अपने प्लेग-कैम्पोंमें रहते थे। यह व्यवस्था उस ज़मानेके डिप्टी इंस्पेक्टर श्री देवबख्शरायजीके कहनेसे हुई थी। श्री देवबख्शरायजी और पिताजी एक दूसरेको बहुत चाहते थे। पिताजीके सुभावसे देवबख्शरायजी बहुत .खुश थे अथवा पिताजीके उर्दू जाननेके कारण बहुत .खुश थे, यह कहना बहुत कठिन है। जब मैं नदी के किनारे कड़ोला कैम्पमें तहसीलदार देवीदयालजीके पुत्र महादेवप्रसाद को पढ़ाने चला गया, तब दूसरे कैम्पसे इंस्पेक्टर देवबख्शरायजी नित्य तहसीलदार साहबके कैम्पमें आते और मेरी खोज-खबर लेते। महादेवप्रसाद, जैसा कि अफ़सरोंके पुत्रोंके विषयमें हुआ करता है, प्रायः पढ़ाईमें बहुत कम ध्यान देते थे। जब तहसीलदार साहब दौरेमें जाते, तब कभी-कभी मुझे और अपने महादेवप्रसादको वे एक बैलगाड़ीमें एक साथ ले जाते, ताकि उनके पुत्रका अध्ययन न छूटे। कोई तीन महीने पश्चात् मैं मसनगाँव लौट आया।

जीवनमें नाटकोंका प्रथम अभिज्ञान और…

हरदामें रहते हुए मैंने तीन नाटक देखे। जीवनमें ये पहले ही नाटक थे। दो अलग-अलग कम्पनियोंके नाटक थे। एक तो मैंने 'इन्दर-सभा' देखा। दूसरा नाटक जो देखा, उसका नाम '.खुदादाद' था। लोगोंकी काफ़ी भीड़ थी। लोग बहुत रस लेते थे। छिदगाँवके मालगुज़ारके

पुत्रोंमें रहते हुए, उस केकरे परिवारसे तथा मेरे विद्यागुरु बलवन्तराव भट्टके परिवारसे परिचयके कारण मैं कुछ मराठी समझने लगा था। उन्हीं दिनों एक मराठीका नाटक भी वहाँ आया। वहाँ शहरमें टाउनहालके पास परुलकर बाड़ेमें एक मंडप बनाकर नाटक किया जा रहा था। मैं उस नाटकको देखने गया। नाटकका नाम था 'संगीतशारदा'। कहानी मैं किसी प्रकार समझ सका, किन्तु 'इन्दरसभा'की अपेक्षा मैं मराठीके नाटक-अभिनयसे बहुत प्रभावित हुआ। नाटकमें पुरुषका काम भी पुरुष करते थे और स्त्रियोंका काम भी पुरुष ही कर रहे थे। 'इन्दर-सभा' समझमें आनेके बावजूद भी, खेलसे मेरा जी ऊबता-सा था। किन्तु 'संगीतशारदा'में मैं अन्ततक बैठा रहा।

"इसी नाटकमें मेरी दो तरुणोंसे मुलाक़ात हुई। वे मुझसे उम्रमें बड़े थे। फेंटा बाँधे हुए थे। मैं उन्हें पंजाबी समझता था। वे झटके दे-देकर हिन्दी बोलते थे। यह जानकर कि मैं तहसीलदारके यहाँ पढ़ाता हूँ, उन्होंने कहा कि शेष बातें हम तुमको फिर कभी बतायेंगे। शायद जबलपुरमें उन्हें मेरा पता मिला था और वे ढूँढ़ते हुए मुझसे आ मिले थे।

"जब मसनगाँवसे एक दिन मैं टिमरनी पहुँचा, तो उन दोमें-से एक अकेले असित गाँगुली मुझे टिमरनीके रेलवे स्टेशनपर, जिस तरफ़ छिदगाँवकी सड़क होनेके कारण मैं नित्य घूमने जाया करता था, मिल गये। मैंने उन्हें तुरन्त पहचान लिया और उनकी स्नेह-भावनासे मैं बहुत प्रभावित हुआ। मुझे यह जानकर भी अत्यन्त हर्ष हुआ कि वे राधाकृष्ण के उपासक थे। चैतन्यचरित्रके संबन्धमें पहली बातें मुझे श्री गाँगुलीने ही बताईं। मैंने गाँगुलीकी पेटी और उनकी पिस्तौल आदि लेकर अपने एक स्कूलके साथी शालिग्रामके यहाँ रख दिये और मैं तथा असितबाबू इधर-उधर गाँवमें घूमते रहे।

"मेरे गुरुदेव मुंशी कुंदनलालजी मुझपर बहुत प्रेम करते थे। वे

एक तो पिताजीके मित्र थे। और दूसरे कक्षामें पढ़नेमें अच्छा होनेके कारण परीक्षा लेनेके लिए आये हुए अफ़सरोंके सामने मुझे अपनी योग्यता दिखानेका प्रथम अवसर दिया करते थे। जब छुट्टियाँ हुईं तब पिताजीसे मैंने यह कहा कि बहुत दिन हो गये हैं, मैं बाबई नाँदनेरकी तरफ़ चला जाऊँ। चूँकि मेरी पत्नी बाबई अपने मैके जा चुकी थी, इसलिए मेरी माँने पिताजीसे आग्रह किया कि मुझे घूम आने दें। किन्तु मुझे तो असितबाबूके साथ काशी जाना था। वहाँ एक मीटिंगमें मेरी भी बुलाहट हुई थी!

"बाबई जानेके स्थानपर मैं सीधे काशी गया और वहाँ एक दिनकी मीटिंगमें भाग लेकर सीधे बाबई पहुँचा। लेकिन बाबईसे जानबूझकर खाली हाथ लौट आया। पिताजीसे मैंने कभी भी आमने-सामने बातें नहीं कीं। बस जाकर माँ से कह दिया कि उन लोगोंने बहूको नहीं भेजा। सो, बस, माँ तो बहूके पीहरवालोंपर झींकती रहीं, गुस्सेमें बड़बड़ करती रहीं। उसका आनन्द मैंने कम नहीं लिया। इसी आनन्दमें काशी-प्रवास-का आनन्द भी शामिल था!

"अब क्रान्तिवादी तरुणोंका मेरे पास आना-जाना शुरू हो चुका था। एक दिन ऐसे ही दो तरुण मुझे टिमरनीमें न पाकर मसनगाँव आये। पिताजीको वे ज़रा अजनबी लगे। यह पहला ही मौक़ा था कि ऐसे तरुणोंका सामना पिताजीसे हुआ था। उन्होंने भोजन तो दोनोंको करा दिया। किन्तु मुझे आज्ञा दी कि मैं उन्हें तुरन्त ही रवाना कर दूँ। उन्हें जैसे मेरे भविष्यके बारेमें एक गहरी आशंकाने बेहाल कर दिया था। जहाँ तक मैं उन दोनों तरुणोंको पहुँचाने गया था और उसमें जितना समय लगा, उसी बीचमें उन दो घण्टोंके बीच, पिताजी और माताजीमें जाने क्या बातचीत हुई। घर पहुँचते ही दोनोंने मिलकर मुझे ख़ूब डाँटा और मुझसे कहा कि ये लक्षण अच्छे नहीं हैं। मेरी पत्नीसे भी न जाने

माताजीने मेरे पीछे क्या कह दिया कि वह भी दिनभर रोती ही रही। और उस दिन हमारे घरमें विचित्र प्रकारकी उदासी छाई रही।

"इस समयतक मैं क्रान्तिवादी तरुणोंके दलमें यही स्थिति लेकर गया था कि मैं उनके किसी भी सक्रिय कार्यमें शामिल नहीं रहूँगा। मेरी स्थिति केवल ऐसे सहानुभूति-प्रिय साथी जैसी थी, जो उनके कार्योंमें भरसक सहायक हो सकता था और उनके सामान आदिको सुरक्षित रूपमें कुछ समयके लिए रखनेका प्रबन्ध करना जानता था। उसी रूपमें वे यदा-कदा मेरे पास आने लगे थे।

"मसनगाँवके जीवनकी इन बातोंके बीचमेंसे एक बात और याद आती है। इन दिनों मेरी एक आदत और हो गई थी। भूत-प्रेत या देवी-देवता कहे जानेवाले पत्थरोंका ढेर जब मैं कहीं देखता, तो उन्हें उठाकर यहाँसे वहाँ तितर-बितर कर देता। इससे उन स्थानोंके रहनेवाले ग्रामीण मुझसे खिन्न रहा करते। वे मुझसे अपनी चिट्ठियाँ और काग़ज़ात लिखवानेका काम लेते रहते। मैं उनके लिए दवा भी ला देता। उनके लड़कोंके पढ़ानेमें भी कामका हो जाता। किन्तु मुँडेरपर रखे हुए देवी-देवता बने पत्थरोंका फेंकना तो मैं नहीं रोक सकता था। इस फेंकनेमें कोई कारण न रहा होगा। किन्तु मैं रुक ही नहीं सकता था।"

अष्टम परिच्छेद

खण्डवामें प्राइमरी स्कूलकी अध्यापकी शिरोधार्य

"जब मेरा परीक्षाफल प्रकट हो गया और यह निश्चित हो गया कि मैं शिक्षककी परीक्षा पास हो गया, तब भी पिताजी नहीं चाहते थे कि मुझे नौकरी मिले। यों इस परीक्षामें मैं पास होऊँ, इसके लिए उन्होंने काफ़ी व्यय सहन किया था। कारण यह था कि मैं परीक्षा देनेके बाद बीमार हो गया था। पिताजीकी शर्त यह थी कि जब-तक मैं बिलकुल आरोग्य न हो जाऊँ, तब-तक वे मुझे नौकरीपर न जाने देंगे। इधर मेरी पत्नी बहुत उत्सुक थी कि मैं नौकरीपर अवश्य और शीघ्र जाऊँ। यद्यपि मेरी सास नहीं चाहतीं थीं कि उनकी लाड़ली बेटी बाबईसे बहुत दूर कहीं जावे। उनका लाड़ इसलिए, क्योंकि उनके कोई पुत्र न था! मात्र दो कन्याएँ थीं। मेरी पत्नी उनकी बड़ी कन्या थी। किन्तु पत्नीके मनमें यह उछाह था कि नौकरी लगेगी तो कहीं पति-पत्नी अकेले रहने लगेंगे। वह बेचारी न मेरा स्वभाव जानती थी, न हमारी पारिवारिक परम्परा!

"उधर जब पिताजीने यह जाना कि मैं आरोग्य हो गया हूँ, तब उन्होंने मेरे आरोग्य होनेकी यह शर्त रखी कि मसनगाँवमें मेरे एक साथी मित्र श्री मोतीराम मुकातीसे जबतक मैं कुश्ती लड़कर न बता दूँ, और उस कुश्तीमें भी न जीत जाऊँ, तबतक वे मुझे नौकरीपर नहीं जाने देंगे।

मैंने दो बार मोतीरामसे उनके खलेमें, गेहूँके भुसपर, कुश्ती लड़ी और मैं दोनों ही बार हार गया। परिणामतः पिताजीने मुझे दरख़ास्त नहीं भेजने दी। इससे मैं भी दुःखी रहता, मेरी पत्नी भी दुःखी रहती और पीछे-पीछे तो पिताजीकी ज़िद्दपर मेरी माँ भी दुःखी रहने लगी। तीसरी बार मैं कुश्ती जीत गया। पता नहीं, मैं जीत गया या जिता दिया गया। तब मेरी दरख़ास्त भेजी गई और मुझे आज्ञा मिली कि मैं खण्डवाके बम्बई-बाज़ार स्कूलमें सहायक शिक्षककी जगहपर कार्य करूँ। उन दिनों मेरे खण्डवा आनेसे कोई डेढ़ महीने पहले मेरी छोटी बहनका जन्म हुआ था। मेरी माँ अकसर कहा करती थीं कि भैयाकी नौकरीपर लगनेकी स्मारक यह छोटी-सी लड़की होगी। मेरी वही छोटी बहन आजकल ग्वालियरमें है।

"अब मेरी खण्डवाकी तैयारी शुरू हुई। आज्ञा मिलनेके पश्चात् एक हफ्तेके अन्दर मुझे चार्ज लेना था। खण्डवा आनेसे पहले मैं अनेक यात्राएँ कर चुका था, इसलिए मेरा बाहर आना मेरे माता-पिताको ज़्यादा अखरा नहीं। केवल पिताजीको एक बातका ख्याल था। मैं शरारती बहुत हूँ और शिक्षण-विभागमें ऐसा आदमी कहाँ निभ सकेगा! वे मुझसे कुछ न कहते थे। किन्तु कभी मेरी गैरहाज़िरीमें और कभी हाज़िरीमें अपनी इस चिन्ताको व्यक्त कर दिया करते थे।

"जब मैं मसनगाँवसे चला, तब मेरी शरारतकी आदत जैसे आख़िरी बार खुली। मसनगाँव स्टेशनपर जब ट्रेनमें चढ़ा, तो मैं सेकेण्ड-क्लासके एक डिब्बेमें घुस गया। चुपचाप उस डिब्बेके गद्दे एकपर एक रख दिये और एक गद्दा खाली रहने दिया और फिर जाकर बगलके ही थर्डक्लासमें बैठ गया। सेकेण्ड क्लासके डिब्बेमें खण्डवा तक कोई विशेष घटना नहीं घटी, क्योंकि सेकेण्ड क्लासका टिकट लेकर उसमें कोई बैठनेवाला आया ही नहीं। इसलिए मुझे थोड़ी-बहुत निराशा हुई।

"उस समय खण्डवा आनेकी मेरी वेश-भूषा यह थी: मैं एक शेरवानी और चूड़ीदार पायजामा पहने हुए था। फेल्टकेप लगाये हुए था

और एक छोटा-सा रूमाल, जिसकी गाँठमें इलायची-सुपारी-लौंग बँधे हुए थे, अपने काँधेपर लिये हुए था। खण्डवा स्टेशनपर जब मैं उतरा, तब मुझसे बोलनेवाला कौन था। मेरे जैसे हज़ारों आदमी रेलगाड़ीसे आते-जाते रहते हैं। मैं बोगदानुमा गन्दे रास्तेको पारकर, जहाँसे कि उस समय यात्री आया करते थे, खण्डवाके स्टेशनसे बाहर आया और स्टेशनके सामने ही एक म्युनिसिपल सरायमें एक कोठरीमें ठहर गया। मैं अपना सामान स्टेशनसे खुद ही लेकर आया था। यद्यपि कुली उन दिनो भी होते थे।

"धर्मशालामें कमरेका किराया दो आने रोज़ था, जो मुझे बहुत अधिक लगा। किन्तु वहाँ रात तो काटनी ही थी। दरवाज़ेपर एक कांस्टेबल तैनात थे। उनका नाम था रणजीतप्रसाद मिशर। वे पट्टा लगाये, कमरबन्द पहने थे। उन्हें जाने क्या सूझा कि धर्मशालाके मैनेजरके पास गये और मेरे लिए कोठरीकी व्यवस्था कर दी। मुझसे यह भी कहा कि छः बजे शामको तो मैं ड्यूटीपर उतर जाऊँगा, किन्तु कल सुबह ही मैं नौकरीपर तैनात हो जाऊँगा। तभी आपको बम्बई बाजार ले चलूँगा।

"उन दिनों पैसेञ्जर चार बजे शामको खण्डवा पहुँचा करता था और मैं उसी गाड़ीसे आया था। रात मेरी बड़ी मुश्किलसे कटी, इसलिए नहीं कि मुझे नौकरीपर जानेका बहुत उत्साह था, किन्तु इसलिए कि सरायकी टाट-पट्टियोंमें खटमल इतने अधिक थे कि उनपर लगाई हुई मेरी दरी खटमलोंसे भर गई और मैं रातभर प्रायः खटमल ही बीनकर फेंकता रहा! राम-राम कर प्रातःकाल हुआ। आठ बजे पं० रणजीतप्रसाद ड्यूटीपर आ गये। मैंने आलू डालकर खिचड़ी बनाई थी, क्योंकि भोजन बनानेका तो मुझे नाँदनेरमें खूब अभ्यास हो चुका था। जल्दीके कारण मेरी खिचड़ी कच्ची ही रह गई। जल्दी-जल्दी दिन चढ़ रहा था और शहरोंके स्कूल दस बजे खुल जाते थे, इसकी चिन्ता सिरपर सवार थी।

गाँवमें तो स्कूल सुबह सात बजे और दुपहरको दो बजे दो पारीमें लगते थे।

"मैं स्कूल गया। हेडमास्टर मोहनलाल कोसेका फेंटा बाँधे हुए बैठे थे। स्कूल एक खपरैल थी, जिसकी चार दीवारें थीं। बीचमें कोई कमरा नहीं था और अपने लड़कोंको बैठा कर क्लासोंकी हदबन्दी-सी बना कर मास्टर बैठ जाया करते थे। शिक्षकके सामने एक छोटा-सा स्टूल टेबलकी जगहपर रहता था और बैठनेके लिए एक कुर्सी। जिस दिन मैंने बम्बई बाजार स्कूलमें चार्ज लिया, उसी दिन एक और अध्यापक महाशय मुकुन्दराव पुरन्दरेने भी उसी शालामें चार्ज लिया। वे दो साल पहले जबलपुरसे ट्रेण्ड हो चुके थे और यहाँ इस ज़िलेकी डिस्ट्रिक्ट कौंसिलकी स्कूलोंमें बोरगाँव नामक गाँवमें हेडमास्टर थे। हम दोनोंको हेडमास्टरने ले जाकर अपनी-अपनी कक्षाएँ बता दीं और हम लोग पढ़ाने लगे। खण्डवाके इस आगमन तक मेरी मूछें नहीं उगी थीं।

"पहले तो स्कूलके लड़कोंको लेकर मैंने रहनेके लिए स्थान ढूँढ़ा। मुझे ब्रह्मपुरीमें छः आने महीनेपर एक कोठरी मिल गई। उसके मालिक कोई महाराष्ट्र गार्ड थे, जिनकी बुढ़िया माँ यहाँ रहती थीं। मैंने अपना सामान उस कोठरीमें लाकर रख दिया। तीन-चार पैसेका एक ताला भी लाकर कोठरीमें लगा दिया। मेरी शालामें विद्यार्थी यद्यपि कुछ मुझसे छोटे थे, तो रेलवे-पोर्टरों और जंगलके गार्डोंके कुछ लड़के ऐसे भी थे, जो न केवल ऊँचाई हीमें मुझसे बड़े थे, किन्तु वे मुझसे उम्रमें भी बड़े थे। आते ही मैंने पढ़ानेका काम प्रारम्भ कर दिया। मुझे यह भय था कि पिताजीके आनेपर हेडमास्टर साहब मेरे पढ़ानेकी कोई शिकायत न कर दें। किन्तु खण्डवा आनेपर मेरी एक कठिनाई बढ़ गई। उस समयकी परम्पराके अनुसार क्लासमें छुट्टीके समय जाते हुए विद्यार्थी मुझे प्रणाम करने लगे। यह मेरे जीवनकी एक बिलकुल नई वस्तु थी। अब मैं जाने कैसे, शरारतोंकी ओरसे अपना मन फेरने लगा और अपनी सज्जनता तथा

श्रेष्ठताके लिए उदाहरण-स्वरूप अपने पिताका उदाहरण अपने सामने रखने लगा।

"जो विद्यार्थी मुझसे कुछ पूछने आते, मैं अपनी जानकारीके अनुसार उन्हें समझा देता। परिणाम यह हुआ कि भाषा सीखनेके लिए हाईस्कूल तकके विद्यार्थी रामायणका अयोध्याकाण्ड पढ़नेके लिए, जो उस समय उनके पाठ्यक्रममें था, मेरे पास आने लगे।

गणित-ज्ञानका सार्वजनिक पुरस्कार

"इसी बीच ज़िलेमें एक शिक्षक-परिषद् हुई। उन दिनों यहाँ एक म्युनिसिपल मिडिल स्कूल भी था। हाईस्कूल कोई न था। एक ग़ैरसरकारी हाईस्कूल चलता था, जिसमें मैट्रिककी तीन क्लासोंके बच्चे मात्र पढ़ाये जाते थे, और उन्हें कहीं दूसरे स्थानपर परीक्षाके लिए भेजा जाता था। शिक्षक-परिषद् मिडिल स्कूलके अहातेमें हुई। मिडिल स्कूलके प्रधानाध्यापक उसके अध्यक्ष थे। काले तख्तेपर उस दिन गणित समझाये जा रहे थे। हिन्दी स्कूलके अध्यापकोंका, शायद उनकी मूर्खताका तमाशा देखनेके लिए, परिषद्में कुछ सरकारी अफ़सर भी आकर बैठ जाया करते थे। पूछे जानेवाले प्रश्नोंका उत्तर जब कोई हिन्दी अध्यापक देता, तब वे अफ़सर खुलेआम हँस दिया करते थे। मुझे याद है, अपनेको कदाचित् लोकहँसाईसे बचानेके लिए कुछ बुजुर्ग शिक्षक न किसी प्रश्नका उत्तर देते थे और न अपने स्थानसे उठकर वे काले तख्तेके पास ही जाते थे।

"इसी बीच एक प्रश्न पूछा गया। प्रश्न था : एक ऐसी संख्या लो, जिसमें यदि ५४ जोड़ें तो उस संख्यामें जो दहाईका अंक है इकाईमें आ जाय और इकाईका अंक दहाईमें आ जाय। और एक अंशकी संख्या दहम अंशसे तिगुनी हो। एक अध्यापक महाशय जो बुजुर्ग थे, उठ कर खड़े हुए। कहा कि सरकार, ऐसे सवाल हमसे क्यों पूछते हैं। ये बी. ए., यम. ए. (एम. ए.) लोगोंके करनेके सवाल होंगे। हम ग़रीब अध्यापकोंके

करनेके सवाल ये नहीं हैं। इस कथनपर फिर लोग क़हक़हा लगा कर हँसे। गणितकी एक पंक्ति यह भी थी कि इसको बीजगणितसे और अंक-गणितसे दोनों पद्धतियोंसे सिद्ध न किया जाये, केवल अंकगणितसे सिद्ध किया जाय। प्रश्न काले तख्तेपर खड़ा रहा, लोग हँसते रहे, किन्तु उत्तर कोई न बतावे। इस बीचमें अध्यक्ष महाशयने अपने ही गणितके अध्यापकसे कहा कि इस गणितको सिद्ध करो।

"अध्यापक महाशयने पूछा कि बीजगणितसे सिद्ध करूँ?

"कि मैं अपने स्थानपर खड़ा हो गया। मेरे वेशमें अंग्रेज़ियतका अत्यन्ताभाव देखकर तथा मेरे चमरौधे जूतेकी ओर फब्तियाँ कसते हुए एक महाशय बोले, 'इस छोकड़ेको करने दो। आओ। आओ।'

"मैं ब्लैकबोर्डपर गया और मैंने निवेदन किया कि एकम अंशकी संख्या दहम अंशसे तिगुनी तेरह होती है। उसमें ५४ जोड़नेपर उचित उत्तर नहीं मिलता। दूसरी संख्या २६ होती है, उसमें भी ५४ जोड़नेपर उचित उत्तर नहीं आता। अर्थात् इकाईकी संख्या दहाईकी और दहाई-की संख्या इकाईमें नहीं बदलती। तीसरी और अन्तिम संख्या ३९ होती है। उसमें ५४ जोड़ने पर ९३ हो जाते हैं। और इस तरह एकमकी संख्या दहम और दहाईकी संख्या इकाईपर हो जाती है।

"हेडमास्टर साहबने कहा कि इसी शिक्षकको गणितका पुरस्कार दिया जायगा।

"इस तरह खण्डवामें प्रारंभमें ही मुझे सफलता मिली। किन्तु मैं ख़ूब जानता था कि गणितमें मेरी सफलता पिताजीकी सफलता है, जिन्हें मेरी भाषा सुधारनेकी अपेक्षा मुझे गणितमें अच्छा बनानेकी सदैव ही चिंता रहती थी। शिक्षकके परीक्षा-फलमें भी मैं गणितमें अधिक गुण पानेवाला था—गणितमें मुझे १०० में-से ९३ गुण मिले थे।

"शिक्षक-परिषद्की यह घटना शायद गाँव भरमें घूम गई। क्योंकि अब मेरे पास भाषा सीखनेवाले विद्यार्थियोंकी तरह ही गणित सीखने-

वाले विद्यार्थियोंकी तादाद भी बढ़ने लगी थी। किन्तु प्रातःकाल और सायंकाल तो मैं प्राइमरी स्कूलके विद्यार्थियोंको ही पढ़ाता था और रातके समय सेठ धन्नालालजी जैनकी दुकानपर अंग्रेज़ी स्कूलके विद्यार्थियोंको भाषा तथा गणित मेरी समझके अनुसार बता दिया करता था। एक बातका यहाँ उल्लेख करना आवश्यक है कि यद्यपि मेरा वेतन १० रु० मासिक था, तो भी खंडवा आनेके कुछ ही दिन बाद ट्यूशनसे मुझे २६ रुपये मासिक मिलने लगे थे, जो एक-दो वर्ष बाद बढ़ते-बढ़ते ४२ रुपये मासिक तक हो गये थे। इसके पश्चात् भी, मैं जिन विद्यार्थियोंको विना कुछ लिये पढ़ाता था, उन मज़दूर-पेशा लोगोंके ग़रीब विद्यार्थियोंकी संख्या ट्यूशनके विद्यार्थियोंसे कहीं अधिक थी और उसके परिणामस्वरूप बहुत लोगोंकी कृपा और आशीर्वाद मुझे इसी समयसे प्राप्त होने लगे थे...

वयःसन्धिकी शुभ्र गम्भीरता

"एक दिन मुझे ज़िला इन्स्पेक्टर आफ़ स्कूल्सका चपरासी बुलाने आया। मैं डरते-डरते शामको उनके यहाँ पहुँचा। वे खारी बावड़ीपर रहते थे। ज्योंही मैं उनके कमरेमें प्रवेश करूँ कि बड़े ग़ुस्सेमें साहब बोले, 'छोटा-सा बच्चा होकर खंडवामें आते ही इतनी चालाकी सीख गया। मिलने भी नहीं आया।'

"मैंने देखा, वे तो मेरे परिवारके सुपरिचित देवब्रह्म रायजी थे। मैं चुपचाप खड़ा रहा। उन्होंने कहाँ रहता हूँ, कब स्कूल जाता हूँ, स्कूलके हेडमास्टरका व्यवहार कैसा है, रोज़ नहाता हूँ कि नहीं नहाता, खाना दोनों जून बनाता हूँ कि एक जून बनाता हूँ, वेतन समयपर मिल जाता है कि नहीं मिल जाता, कपड़े धोबीसे धुलवाने लगा हूँ कि ख़ुद धोता हूँ, शहरमें बीड़ी पीने और पान खानेकी आदत पड़ी कि नहीं पड़ी और इसी तरहके बीसियों तरहके सवाल पूछे। मैंने उत्तर दिये। मेरे चलनेके

समय उन्होंने अपने पुत्र गनपतरायको मेरे साथ कर दिया कि वह जाकर देखे, मैं साफ़-सुथरे मकानमें रहता हूँ या गन्दे मकानमें। साथ ही कुछ सन्तरे और एक गोभीका फूल उनकी धर्मपत्नीने चलते समय मुझे दिया। इन सब बातोंके बावजूद भी, इस सारी कृपाके होते हुए भी, मैं कमरेसे डरते-डरते ही निकला। सड़कपर आ गया, तब धीरजको साँस ली।

"गनपतराय जब मेरे कमरेमें आये, तब वह बोले कि मैं तो बब्बाजी-से तुम्हारे कमरेको अच्छा नहीं कहूँगा। भला, यह भी कोई जगह रहनेकी जगह है? कौन है इसका मालिक? मैंने उनको समझाया, किन्तु उन्होंने कहा कि तुम्हारी माँ और भाभी खंडवा भेजी जायँ, उसके पहले तुम्हारे पिताजीने बब्बाजीको लिखा है कि यदि वह ऐसे मकानमें रहता हो, जहाँ उसकी माँ और उसके बाल-बच्चे रह सकें, तो मैं बाल-बच्चोंको भिजवा दूँ। सब बातें मेरी समझमें आ गईं। मैंने तीन दिनोंमें ही मकान बदल लिया। मैं पड़ोसके शामराव काड़ेके मकानमें चला गया, जिसका किराया सवा दो रुपया महीना था।

"किन्तु इसके पश्चात्, मेरी माँ, मेरी पत्नी और भाई-बहनोंकी जगह-पर आये पिताजी! उन्होंने तीन दिन तक हेडमास्टर साहबसे, मुंशी देव-बल्लरायजीसे और न जाने किन-किनसे चर्चा की और उनका यह सन्देह बद्धमूल हो गया कि मै अपनी सब शरारतें कैसे छोड़ बैठा? मैं तो दूसरा ही हो गया हूँ। मुझमें शरारत है ही नहीं। पिताजीने मुझे स्कूलसे चार दिनोंकी छुट्टी दिलवाई और अपने एक महाराष्ट्र मित्र वैद्यराजको दिखाने-के लिए हरदा ले गये। उनसे पिताजीने यही कहा कि मास्टर होनेके पहले यह बहुत शरारती था और अब पिछले तीन महीनेसे यद्यपि हेडमास्टर इसके कामसे बहुत ख़ुश हैं, किन्तु मुझे भय है कि इसको कोई बीमारी है। इसलिए यह सुन्न-सा रहता है। इसकी कड़ी जाँच कीजिए।

"पिताजी तो बाज़ार करने चले गये और वैद्यराजजीने उलटे-सुलटे प्रश्न पूछकर मेरी कड़ी जाँच प्रारम्भ कर दी। जब पिताजी लौटे तो वैद्यराजजीका उत्तर था कि इसे कोई बीमारी नहीं है। मेरी जानमें जान आई।

"तब पिताजी मुझसे पूछने लगे कि तेरी शरारत करनेकी आदत एकदम क्यों बन्द हो गई? मैंने उत्तर दिया कि क्लासके विद्यार्थियोंने जबसे मुझे प्रणाम करना आरम्भ किया है, मैं सोचने लगा हूँ कि मैं शिक्षक हूँ, तबसे मेरी कोई इच्छा छेड़छाड़ करनेकी नहीं होती। मेरे उत्तरसे पिताजीको सन्तोष नहीं हुआ। वे बोले कि यह तो नहीं हो सकता। **स्वभावो मूर्ध्नि वर्तते**। ऐसा कहकर उन्होंने मेरे कथनपर सन्देह किया। मेरी शरारतोंका एक लम्बा प्रकरण रहा था, इसलिए पिताजीका अविश्वास बिलकुल स्वाभाविक था।"

खण्डवा नगरका इतिहास*

खण्डवा नगर बम्बईसे ३५२ मील और कलकत्तासे ९९६ मील दूर है। राजपूताना-मालवा ब्रांचकी रेल यहाँ बड़ी लाइनसे आकर मिलती है। यह समुद्रतलसे १००६ फ़ीटकी ऊँचाई पर बैसाल्ट चट्टानपर बसा हुआ है। यही कारण है कि यहाँपर वृक्षोंकी संख्या कमसे-कम है। जब कि १८७२ में इसकी जनसंख्या केवल १५ हज़ार थी, १९०१ में यह बढ़कर बीस हज़ारके लगभग हो चुकी थी। यहाँपर मुसलमान, ईसाई, जैन और पारसी वर्ग रहते हैं। वैश्य और ब्राह्मणोंकी संख्या भी पर्याप्त है।

इतिहासमें इसका एक जनश्रुत स्थान है। उत्तरी और पश्चिमी भारतसे दक्षिण जानेवाली दो प्रधान रेलोंका यह जंकशन है, इसी कारण कनिंघमने

---

* सेंट्रल प्रोवीन्सेज डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स, निमार डिस्ट्रिक्ट, वोल्यूम ए, एडीटेड बाय आर वी रसेल, आई. सी. एस., १९०८।

टोलेमी द्वारा वर्णित कोगनाबांदाका इसीको पर्याय माना है। इसकी चर्चा अरबी भूगोलशास्त्री अलबरूनीने ११ वीं सदीमें खांडवाहो नामसे की है। स्थानीय धार्मिक तत्त्व इसकी चर्चा करते हुए महाभारतके खांडव वनोंको याद करते हैं, और बताते हैं कि जब अग्निदेवताने बारह वर्ष तक घृतपान करनेके कारण अपना आमाशय रुग्ण कर लिया था, तब उन्हें उपचारके निमित्त यह बताया गया था कि खांडववनोंके जंगली पशुओंकी चर्बीका भक्षण करो। किन्तु उनके इस कार्यमें इन्द्र विघ्न बने, जो इस भूभागके संरक्षक थे और उन्होंने घनघोर वर्षा शुरू कर दी। लेकिन कृष्ण और अर्जुनकी सहायतासे अग्निदेवने इन्द्रके विघ्नको दूर रखते हुए केवल पन्द्रह दिनोंमें ही सारे वनका और यहाँके पशुओंका भक्षण कर डाला। इससे पता चलता है कि आर्योंने यहाँके जंगल जला डाले थे। १२ वीं सदीमें यह स्थान जैन धर्मावलम्बियोंका एक प्रसिद्ध स्थान था; उनके उस युगके मन्दिरोंके अवशेष अब भी यहाँ देखे जा सकते हैं। नगरकी चार दिशाओंमें चार कुण्ड निर्मित किये गये थे। हर तालाबके किनारेपर एक-एक मन्दिर है। इसके बादका हाल फ़रिश्ता नामक इतिहासकारने लिखा है कि यहाँ पर १५१६ ई० में मालवाके राजवंशका बड़ा अधिकारी शासन करता है। १८०२ में जसवन्तराव होल्करने इसे जला डाला था, और उसके बाद टाँटिया टोपेने इसे पुनः १८५८ में नष्ट-भ्रष्ट किया था।

अबुल फजलने लिखा है कि यहाँके गोंड लोग शेरोंको इस तरह पालतू कर लेते हैं कि फिर उसके बाद उनसे मनचाहा काम लेने लगते हैं। उनके बारेमें बड़ी अद्‌भुत कहानियाँ सुननेको मिलती हैं।

अकबरके शासनके बाद बुरहानपुर यद्यपि दक्षिणकी उद्धत नाकमें डाली जानेवाली नकेलोंके पकड़नेकी मुष्टिके तुल्य था, लेकिन उसके उपरान्त निमाड़की जनशक्ति शान्ति मिलनेपर स्वाभिमानका जीवन बितानेका ही प्रयास करती रही।

अब यहाँपर मिडिल स्कूल, हाईस्कूल, कालेज, बड़ा अस्पताल जैसी संस्थाएँ हैं।

"यहाँकी प्रधान खेती कपास है, जो पूरे पैदावारका ४० प्रतिशत होती है। यहाँ ३० प्रतिशत ज्वार भी होती है।

खण्डवा तहसीलके उत्तरमें नर्मदा नदी बहती है और इसे होल्करकी सीमासे विलग करती है। इसके पूर्वमें हरसुद है, दक्षिणमें बुरहानपुर और पश्चिममें इन्दौर। आबना और सुक्त नदियोंकी तराई यहाँपर विद्यमान है। दक्षिणमें सातपुड़ा पहाड़की एक शाखा ताप्ती नदी तक चली गई है। यहाँकी भूमिमें चूनेकी मात्रा अधिक होनेके ही कारण, यह कपासके लिए उपयुक्त बन गई है।

लोक-विश्वासोंकी मान्यता है कि भगवान् राम चित्रकूटसे प्रस्थान कर यहाँसे ही पञ्चवटीकी दिशा गये थे, और इसी भू-भागपर शूर्पणखाकी नाक काटी गई थी। कालान्तरमें उद्धत उत्तर भारतने मदान्ध होकर दक्षिण भारतकी संस्कृतिकी नाक काटनेका अज्ञानभरा क्रम जारी रखा···

सम्राट् समुद्रगुप्तके समय खण्डवा उसके साम्राज्यकी दक्षिणी रेखाका फहराता हुआ आंचल था। मध्यकटि-रेखापर स्थित होनेके कारण यह नगर उत्तर और दक्षिणके विग्रह व सन्धियोंका साक्षी रहा है।

इसी खण्डवामें जीवनका पहला होश सम्हालते ही माखनलालने अपनी सूझ और अपनी महत्त्वाकांक्षाओंका केन्द्र बनाया।

यह खण्डवा बहुत बड़ा नगर उन दिनों नहीं था। बुन्देलखण्डी ग्रामोंके बीच यह अंग्रेज़ी शान-शौकतकी शिविर-नगरी भर था।

अँग्रेज़ी युगने एक-एक कर हमारी सौ-सौ सदियोंके अमर-प्राण गाँवों-का आब मिट्टीमें मिलाकर कुछ नये शहर बसाने शुरू किये थे, जो मुस-लिम युगोंके शहरोंसे इन अर्थोंमें भिन्न थे कि जहाँ अंग्रेज़ी संरक्षणके शहरोंमें भारतीय रुग्ण और शोचनीय आर्थिक पीड़ाको लेकर जीवित रहते

हुए कुछ नई मानसिकताकी मृग-मरीचिकाका लोभ संवरण नहीं कर पा रहे थे, वहाँ मुसलिम युगोंके शहर ठेठ भारतीय अर्थोंमें देशीय सभ्यता-संस्कृतिके आदर्श गढ़ हो चले थे। इसीलिए इन अंग्रेज़ी शहरोंने व्यक्तिको एक झीनी चदरियासे अधिक कभी कुछ नहीं दिया। झीनी चदरियापर व्यक्ति अपना दम्भ भले ही तिहरी तह कर ओढ़ता घूमे और शहरकी उँगली-पर गिनी जानेवाली निराशाओंपर निजी झूठी हँसीके फूल खिलाता फिरे। शहर हर हालतमें झीनी चदरियाके कच्चे धागे ही सहेजता आया है। पर, ग्रामोंने तो अपने जन्मकालसे साँसें ही दुहरी पायी थीं। देहकी चमड़ी भी दुहरी ही पायी थी। दुर्दैव उसके मानसोंको कितना ही वस्त्रकी दृष्टिसे नग्न रख ले, ग्रामोंने दुहरी परतकी आत्मा अपने मनुजोंकी कायाके अन्दर बिछानेके लिए दी है। इस तरह कि जैसे बर्फ़ हिमालयके अन्दर बिछी हुई है! ऊपरसे भले ही गरमी उसे पिघलाती रहे, अन्दरकी बर्फ़ अपनी तहोंसे ही सुरक्षित उसे हिलालय बनाये रहती है!! यह जो हिमालय इतना ऊँचा और बारहमासा बर्फ़ीला बना रहता है, सो राष्ट्रके कोटि-कोटि ग्रामोंका प्रतिनिधि प्रतिबिम्ब बनकर ही तो हुआ है। इससे कोई दूसरी सच्ची बात राष्ट्रीय जन-जीवनमें है नहीं।

ग्रामोंकी चौहद्दीसे निकलकर, माखनलाल अपने साथ खण्डवा शहरमें यही दुहरी आत्माकी परतसे रक्षित आ गया था। सात-आठ रुपये मासिक वेतनधारी प्राइमरी कक्षाओंके प्रधानाध्यापकका तरुण पुत्र खंडवा शहरकी प्राइमरी शालाका अध्यापक १७ वर्षकी आयुमें ही होकर चला आया था, यह कोई कम बात न थी। जहाँ अभी तक सात-आठ रुपयोंमें पिताने यही दस-ग्यारह व्यक्तियोंका भरण-पोषण किया था, वहाँ उनकी यह प्रत्याशा इतनी त्याग-तपस्याके बाद ठीक आँगनमें आ ठहरी थी कि उनका पुत्र अब उनकी वय-शिथिल रीढ़की हड्डीमें अपनी कमाईका रस भी थोड़ा सींचता रहेगा। इस समय तक दो बहनें और दो भाई, पत्नी और माँ माखनलालके परिवारमें थे और थे कुछ वे विद्यार्थी जिनको पिताजी या

तो अपनी सासोंकी क़ीमतपर पढ़ायें, या माखनलाल अपनी साँसोंकी क़ीमतपर पिताजीकी इच्छाओंकी पूर्ति करे। १७ वर्षकी आयुमें होश खुला था और उसीके साथ ११ वर्षकी पत्नीकी चेतना नये रंगोंसे मनः-हर रश्मियाँ पा गई थी। पत्नी अपने प्रथम क्षणोंमें ऐसी तृषा ही तो है, जिसकी तृप्तिके लिए प्रचुर धन चाहिए। केवल माँ जो थीं, वे तो अपना वरद हस्त अपने इस तरुण बच्चेके सिरपर ही रखने आई थीं। उसे धन नामसे कुछ भी तो नहीं चाहिए था। उसने अपने जीवन-धनके सामने भी हथेली कब पसारी थी, उसके सिरपर भी सेवाका वरद हस्त ही धूप-शीतके क्षणोंमें थामे रखा था। माखनलालकी वह माँ ऐसी ही छत रही, जो स्वयं भींगे और गरम हो तपती रहे, पर अपने आँचलमें दबाये प्राणोंको पानीकी रेख या धूपका हलका तीर भी न लगने दे!

माखनलाल जब ग्रामोंसे निकलकर खण्डवा शहर आया, तो उसकी शहरी जीवनकी ताज़ी पृष्ठभूमि जबलपुर ही थी। वहाँ ही उसने शहरी हवाके कुछ स्वप्न पाये थे। लेकिन खण्डवा पहुँचकर भी माखनलाल अगरचे शहरी तरुणाईमें घुल-मिल गया और शहरी रंगोंसे वह भिन्न नहीं रह गया, पर बहुत कुछ वह ठेठ ग्रामीण ही रहा। हर शहरी व्यक्ति ताड़का अकेला ऊँचा वृक्ष होनेमें विश्वास करता है। शहरोंमें जो सामा-जिकता आई है, वह ग्रामोंकी ही देन है। हर ग्रामीण शहरमें आकर घुलने-मिलनेकी चेष्टाको ही फलवती बनानेका श्रम करता है। माखनलाल खण्डवामें आकर, अपने देहाती शैतान मनको खुली छूट नहीं दे पाया। उसका नटखटपन गाँवोंके वातावरणमें खुलकर बोल सकता था, शहरी राग-रंगमें वह ठस्स साबित होता, इसीलिए उसने उसका संकोच किया। विद्यार्थी प्रणाम करने लगे थे, इसलिए वह गम्भीर रहने लगा, यह बात अधिक प्रमाणवती नहीं थी और यही कारण था कि उसके पिताने जब पहली बार खंडवा आकर गम्भीरताको उसपर हावी देखा तो निश्चय ही उन्हें विश्वास नहीं हो सकता था कि बिना किसी रोगके उनका यह पुत्र

अपने विनोदी स्वभावका परित्याग कर सकता था। शहरमें विनोद उसी क्षण निर्झर-सा बहता है, जब व्यक्तिका अपना अस्तित्व शहरी ज़मीनपर मज़बूतीसे ठीक पैरोंको जमा लेता है। एक ग्रामीण तरुण वेतनधारी होकर जब कर्तव्यपुत्रके रूपमें प्रतिक्षण विद्यादानका श्रम करने लगा, तो उसका पहला सत्य यही था कि वह अब जीवनकी आर्थिक-शक्तिका रहस्य पा गया है। यही कारण है कि वह अपनी ट्यूशनोंके वेतनसे अधिक रुपये कमाने लगा और परिवारके पोषणमें दत्तचित्त हो गया।

सार्वजनिक गति-विधिका पहला चरण : रामलीला

माखनलालका विनोद और उसका नटखटपन और उसकी शैतानियाँ उसकी घटना प्रियतामें ही निहित थीं। जब विद्यार्थियोंके एक बड़े समूहमें वह प्रिय 'मास्टरजी' बन गया और इसीके साथ उन विद्यार्थियोंके अभिभावकों और माता-पिताओंकी प्रशंसाका पात्र मान्य हो गया तो उसकी घटनाप्रियताने शनैः-शनैः अपनी कुम्भकर्णी नींदका परित्याग किया। खण्डवामें प्रतिवर्ष अपने ढर्रे और अपने नज़रियेकी रामलीलाएँ हुआ करती थीं। माखनलालने बालपनमें बावईमें रामलीलाएँ खेली थीं और मसनगाँवमें उसने एक या दो गँवई नाटक खेल डाले थे। बातचीतमें जब यह बात फैली कि रामलीलाओंका यह पात्र अब खण्डवामें रामकथाको कुछ साहित्यिक रूप दे सकता है, और साहित्यिकताका अर्थ इन क्षणों तक केवल सरस वाचालताका ही दूसरा नाम था, तो उसके निकटतम मित्रोंका आग्रह रहा कि इस बार नये ढंगसे कथोपकथन लिखे जाकर ही रामलीला खेली जाय। अन्य शहरोंमें पारसी थिएटर खेले जा रहे थे और उनकी धूम अन्य शहरोंमें जनश्रुतियाँ बन कर फैल रही थीं। खण्डवामें 'नर्मदेश्वर नाटक समाज' प्रति वर्ष रामलीला खेलता था। रामलीलाएँ हर शहरकी पुरातन-प्राचीन लोकरूढ़ि रही हैं। लेकिन ऐसी कि लोकजीवन उन्हें निरन्तर अपने ममत्वसे प्राणदान करता आया है। इसी नाटक-

समाजमें माखनलालको भी शामिल कर लिया गया और उसे यह काम सौंपा कि दस दिनों तक खेली जानेवाली रामलीलाओंके कथोपकथन वह अपने ढंगसे तैयार करे। खंडवा यों तो प्रधानतया मराठी भाषी क्षेत्र था, लेकिन हिन्दीभाषियोंका अपना समाज कम चेतन नहीं था। उधर जबसे प्रह्लाद अम्बादासजी तहसीलदार होकर आये थे, उन्होंने इन रामलीलाओंको अपने संरक्षणसे और भी प्राणवान् बनानेके लिए ठोस काम किया। इस समय भी वे खंडवामें ही थे। ये तहसीलदार साहब इस प्रदेशके शासकोंमें अपना एक न्यारा दबदबा लेकर आये थे। रामलीलाएँ मौखिक सहानुभूति नहीं चाहतीं, चाहती हैं ठोस आर्थिक सहायता। इन तहसीलदार साहबने इसीका पहला इन्तजाम प्रति वर्ष करके दिया। प्रह्लाद अम्बादासजी उन सरकारी हिन्दू अफ़सरोंमें थे, जो जन-जीवनमें रामायणका अत्यधिक प्रचार ही राष्ट्रसेवाके रूपमें और भारतीयोंके बृहद् कल्याणके रूपमें मानते थे।

उत्तर भारतकी रामलीलाओंमें और राधाकृष्णके जीवनपर अवलम्बित रासलीलाओंमें मञ्च केवल वह निरावरण केन्द्र होता था, जहाँ पात्र अपनी वेश-भूषाओंमें ही खड़े होते थे। मंचकी भूषा परदे नहीं, पात्र होते थे। अथच, यदि मन्दिर हुआ तो वही पृष्ठभूमिके परदेका काम कर दिया करता था। और दर्शकोंको स्वयं ही दृश्य बदलनेकी कल्पना कर लेनी पड़ती थी। पश्चिमी तर्ज़के अनुवादी नाटकोंकी जोड़-तोड़ पारसी थियेटरने कर ली थी और उसका प्रभाव काफ़ी पहलेसे दक्षिणी नाटकोंमें भी होने लगा था, और जिसका असर खण्डवाकी रामलीलापर भी होने लगा था कि पहले एक दृश्य सज्जित अवस्थामें प्रस्तुत किया जा सके, और जब तक वह पूर्ण हो या उसके संवाद कहे जायँ, परदेके पीछे दूसरा दृश्य सज्जित कर लिया जाय। प्राम्पटरकी जगह भी निश्चित रहती थी। माखनलालने अभी तक बिना परदेकी रामलीलाओंके सूत्र कण्ठस्थ किये थे और वह उसीका परिस्थितिजन्य पात्र बना था। लेकिन यहाँ तो ऐसी रामलीलाओं-

का आयोजन होता था जहाँ परिस्थितियाँ पहले स्वयं भूषित होती थीं अकल्पनीय रूपसे, उसीके बाद सीमा-विस्तारकी सम्भावनाओंको प्रकट करते हुए पात्रोंकी अभिज्ञता उनके साज-शृङ्गारसे मुखर करनेकी मोद-प्रियता प्रस्तुत की जाती थी। इसके साथ पात्रोंका कथोपकथन अपने आपमें उष्ण रसेन्द्रियताका परिचायक होता ही था। नाटककी ऐसी विशेष-ताओंको रामलीलामें आत्मसात् करते हुए माखनलालका मन-मानस ख़ूब रम गया और बुद्धिप्रधान शक्तियोंको एक नया स्रोत अपनी घटनाप्रियताके लिए अनजाने-अखोजे ही उसे मिल गया।

इन रामलीलाओंमें उपस्थिति ३–४ हज़ारतक हुआ करती थी। वही प्रधानरूपसे वर्ष भरका एक मनोरंजन होता था। आस-पासके ग्रामीणतक इन रामलीलाओंमें उपस्थित होना अपना आवश्यक काम समझते थे। रस्सियोंसे पुरुषों और महिलाओंके लिए बैठनेके स्थानोंको घेर दिया जाता था। इन रामलीलाओंमें युगकी प्रथाके अनुरूप सीता और अन्य स्त्री-पात्र लड़के ही बनते थे। और इन लड़कोंके स्त्रैण-स्वभावका क्या कहना। अपने आपमें वह कम मनोरंजक इतिहास नहीं है। ये रामलीलाएँ ९ दिन चला करतीं और इन ९ दिनोंतक नेपथ्यके पीछे स्त्री-पात्र रूप लड़कोंका नाजनखरा क्या-क्या रूप ग्रहण करता रहता, वह केवल रामलीलाके आयो-जक ही जान पाते। पात्रोंके काले-गोरे रंगोंका अपना मूल्य कुछ नहीं था। सभीको समान रूपसे अपना चेहरा गुलाबी-सफ़ेदी मिश्रित रंगसे पोतना होता था। और, क्योंकि रामलीलाके लायक बहुत ही सीमित संख्यामें लड़के सुलभ थे, इसलिए उनकी थिएटरी नज़ाकतका असह्य बोझा आयोजकोंको उठाना ही पड़ता था।

एक दिन ऐन मौक़ेपर किशोरी नामक लड़केने मन्थराका काम करने-से इनकार कर दिया। न जाने किस हावभावके क्षणोंमें, जहाँ मंचपर मन्थरा कैकेयीको अपने वशीभूत करती है, वहाँ नेपथ्यमें कैकेयीने मन्थरा-को ही चिढ़ा दिया था! आख़िर आयोजकोंने फ़ैसला किया। कैकेयीको

जिसका रंग एक दिन पहले बहुत गोरा रखा गया था, साँवला पोता गया और जिस मन्थराको साँवला रखा गया था, उसे निहायत गोरी बना दिया गया ! यही क्यों, मन्थराने अपने हाथोंमें रेशमी 'हेंडकरचीफ' रखनेका अधिकार बरकरार रखा और वह जब कैकेयीसे रामको वनवास देनेके लिए आग्रह कर रही थी, तो दर्शकोंकी ओर देखते समय बार-बार अपने गालोंपर रेशमी 'हेंडकरचीफ' भी फरफराती जाती थी····

जब सहायक पात्रियोंका यह हाल था, तो मुख्य पात्री सीताका क्या हाल रहा होगा ? बस, कुछ न पूछिए महारानी सीताका, जो अभिनय क्षणोंमें सती-साध्वी, जगद्धात्रीका रूप बिसार कर, अभिसारिका रूपमें ही मंचपर अवतरित होती थी। इसकी परवाह क्या, जब मुँहसे वह क्या-क्या रटा-रटाया मर्यादा और आदर्शका जाज्वल्य रूप प्रस्तुत करती है। जो लड़का सीता बनता था, उसका एक आकर्षण सीता बननेका यह था कि उसके कपड़ोंमें रोज़ ही इत्र लगाया जाता था। रामलीलाके प्रकरणमें जबतक सीता महलोंकी अधीश्वरी बनी रही, यह इत्र-प्रकरण सभी आयोजकोंको स्वीकार रहा। लेकिन वनवासिनी या [illegible] सीताको जब इत्र न लगानेके लिए विवश किया गया तो उसने काम करनेसे ही इनकार कर दिया।

आखिर, दूसरे दिन उसके घरपर सभी आयोजक गये और उसे यह आश्वासन देना पड़ा कि भाई, मन भरकर इत्र लगाओ, पर काम तो करो। यही नहीं, उसके लिए केवड़े और गुलाबका इत्र हाथों-हाथ ख़रीदा भी गया !

उन दिनों फाउन्टेनपेन चले ही चले थे और सीता-पात्रका कोई रिश्तेदार बम्बईसे अपने लिए एक फाउन्टेनपेन भी ले आया था। सीताको वनवासिनी रूपमें और अशोकवाटिकामें भी बैठते समय अपनी साड़ीपर फाउन्टेनपेन लगानेकी और हाथमें रेशमी रूमाल हिलाते हुए चलनेकी मुमानियतको मजबूरन वापस लेना पड़ा। और वनवासिनी सीता हर दस

मिनट बाद अपने रेशमी रूमालसे अपने गालोंको साफ़ करना अपना जैसे जन्मसिद्ध अधिकार मानती रही !!

माखनलाल इन रामलीलाओंमें सूत्रधार बनते। "जब मेरे लिखे हुए कथानक पात्रोंके मुँहसे मैं सुनता तो प्रसन्न कम होता। केवल यह बात उसी समय सूझती कि कथानकमें कौन-सी भूल रह गई है और कलकी रामलीलाके कथानकोंमेंसे तथा भविष्यकी होनेवाली रामलीलाओंके कथानकोंमें-से कौन-कौन-सी बातें निकाल देनी चाहिए और किन-किन विशेषताओंको बढ़ाना चाहिए। साथ ही, रामलीलामें मेरा कोई पात्र बनना उन दिनों मेरे पिताजी, मेरे हेडमास्टर तथा अन्य अध्यापको द्वारा भी लज्जाकी बात मानी जाती थी।"

अध्यापक समाजका सबसे अधिक परवश, विवश और खूँटेसे बँधा प्राणी है। ऐसी ही लघु सीमाएँ उसे परस्परमें ईर्ष्या-द्वेषके दोषोंसे कुरेदा करती हैं, ताकि वह अपनी ही उदासीनताओंको कुछ-कुछ साथी अध्यापकोंको भी उढ़ाता चले। माखनलाल जब अध्यापक हो ही गया तो उसके जीवनमें भी अध्यापकोंका यह अभिशाप बोल उठा। जीवनकी सक्रियताका बहाना कुछ चाहिए था। ये रामलीलाएँ बहाना हुईं। ये रामलीलाएँ न होतीं, कुछ और बात होती। बिरले अध्यापक ही समाज में लोकप्रियता और प्रशंसा प्राप्त कर पाते हैं। और, जो कर पाते हैं, वे उदासीन अध्यापकोंकी आँखोंमें किरकिरी बनकर खटकते हैं। इन रामलीलाओंमें अभिनय करनेसे अधिक खण्डवाके हिन्दी-भाषियोंमें नामवरी पानेके पुरस्कार-स्वरूप अपने ही स्कूलमें माखनलालने यह दण्ड पाया कि उसे पाँच रुपया जुर्माना कर दिया गया।

संकीर्ण मानसिकताका पहला क्लेश

"उस समय मेरा वेतन दस रुपये महीने था और मेरे पास मेरी माँ, मेरे चार भाई-बहन तथा मेरी पत्नी भी रहती थी। जब जुर्मानेकी खबर

पिताजीको पहुँची तो उन्होंने दो पत्र लिखे। एक तो अंग्रेज़ इन्स्पेक्टर ऑफ स्कूल्स मि० ए. पी. मिचलको, जिनके आग्रहपर मैं खण्डवा भेजा गया था, और दूसरा मुंशी देवब्रतरायको, जो यद्यपि खण्डवासे स्थानान्तरण कर चुके थे, किन्तु पिताजीकी धारणा थी, वे अभी खण्डवामें ही हैं। थोड़े ही दिनों बाद मिचल साहब दौरेपर खण्डवा आये। उन्होंने अपना चपरासी भेजकर मुझे डाकबँगलेमें मिलनेके लिए बुलवा लिया। डाकबँगला स्कूलसे थोड़ी ही दूरपर था। स्कूल पहले पोस्ट-आफ़िसके सामने था और डाकबँगला आजकी उसी स्कूल-बिल्डिंगके पास उस भवनमें था, जहाँ आजकल सदर कोतवाली है। डाकबँगला पहुँचनेपर पहले मिचल साहबने मुझे ख़ूब डाँटा, 'तुम मास्टरी करने आये हो या नाटक खेलने ? तुम अगर अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे होते तो आज मैंने तुम्हें छोटा साहब बनवा दिया होता। मैं तो तुमको जल्दी ही किसी हिन्दी मिडिल स्कूलका हेडमास्टर बनाना चाहता हूँ और तुम नाटक खेलनेमें लगे हुए हो ?'

"उनकी समस्त डाट-फटकारके बावजूद मैंने सब क़िस्सा ज्योंका-त्यों कह दिया कि हाँ, मैं रामलीलामें शामिल हुआ था। उसके कथानक मैंने ही लिखे थे। मैं वहाँ रातभर जागता था इसलिए उन दिनों मुझे स्कूलमें नींद आ जाती थी।

"इस बीचमें मिचल साहबने मुझसे तीन बातें विशेषरूपसे पूछीं : पहला प्रश्न तो यह था कि तुम्हारे नाटकमें गाँवके कितने आदमी एकत्र होते हैं और वे क्या तुम्हारे खेले हुए नाटकको पसन्द करते हैं ? दूसरे नाटकके कथानक लिखनेके कारण तुम्हारे हिन्दीके ज्ञानमें कुछ ऐसी वृद्धि हुई है क्या, कि जिससे तुम अपने विद्यार्थियोंको अच्छी हिन्दी पढ़ा सको ? और, तीसरे, इस नाटकके खेलनेसे तुम्हारे चरित्रको कौन-सा लाभ पहुँचा है ? इन तीनों प्रश्नोंका उत्तर तो हाँमें ही था, अतः मैं मिचल साहबसे यह कह कर चला आया कि यह तो योग्य व्यक्तियोंके

कहनेकी बातें हैं, अतः मैं लोगोंसे पूछ कर जवाब दूँगा। उन दिनों खण्डवा शहरमें संस्कृतके महाविद्वान् श्री प्यारेलाल गांगुली रहते थे। मैं उनके नातीको पढ़ाने जाता था। वह बूढ़ा विद्वान् नित्य आकर रामलीला देखा करता था। मैंने उनसे मिचल साहबके तीनों प्रश्नोंको दुहरा दिया और पूछा कि मैं क्या जवाब दूँ। चुरुट पीते हुए वे हँसकर बोले कि यदि तुम्हारे जैसा आदमी लन्दनमें होता तो उसकी बहुत इज़्ज़त की जाती और यहाँ तुमसे कैफ़ियत ली जा रही है!

"मैंने निवेदन किया कि कैफ़ियत ही नहीं ली जा रही है, मुझे तो पाँच रुपये जुर्माना हो चुका है और अब लगता है कि सर्किल इन्स्पेक्टर साहब मुझे नौकरीसे भी निकाल देंगे। प्यारेलाल बाबूने मुझसे कहा कि लाओ काग़ज़। उन्होंने एक पत्र लिख कर मुझे सर्टिफिकेटकी तरहसे दे दिया। पत्र अंग्रेज़ीमें था। मैं उन दिनों अंग्रेज़ी पढ़ नहीं सकता था। वहाँसे जाकर उन्हीं प्रश्नोंकी बात मैंने तहसीलदार प्रह्लाद अम्बादाससे कही। उन्होंने भी एक चिट्ठी लिखकर मुझे दे दी, जिसे मैं मिचल साहब-को दे सकूँ। यह चिट्ठी भी अंग्रेज़ीमें ही थी। मैं विलम्ब किये विना, डाकबँगले गया और ये दोनों चिट्ठियाँ मिचल साहबको दे आया। उस समय अपने मुहर्रिरके द्वारा उन्होंने केवल वे चिट्ठियाँ ही ले लीं और मुझसे कुछ न कहा। किन्तु लगभग एक घण्टे पश्चात् ही उनका चपरासी मुझे ढूँढ़ता हुआ घर आया और मुझे साहबके पास ले गया। वे मेरी ही प्रतीक्षा कर रहे थे किन्तु मैं डाकबँगलेके बाहर ही रहा।"

"उस समय वे हमारे स्कूलके सुपरवाइज़रसे बातें कर रहे थे। और हेडमास्टर साहब खड़े हुए थे बाहर। हेडमास्टर साहबने मुझसे कहा कि आपने यह अच्छा नहीं किया कि पाँच रुपये जुर्मानेकी बात मिचल साहबके कानों तक पहुँचा दी। वह पाँच रुपया जुर्माना तो यहीं माफ़ हो सकता था। और, फिर आप जुर्माना न देते, तो हम लोगोंमेंसे कोई दे देता। मैंने हेडमास्टर साहबसे निवेदन किया कि मैंने तो केवल पिताजीको पत्र

लिखा है। मैंने मिचल साहबको कुछ नहीं लिखा। थोड़ी ही देर बाद हेडमास्टर साहबको अन्दर बुलवाया गया और थोड़ी देर तक उनकी बात-चीत मिचल साहबसे हुई। हेडमास्टरने स्वीकार करते हुए कहा कि हाँ, इसके पहले भी कितनी ही बार कितने ही मास्टर स्कूलमें आकर झपकी लेते रहे हैं और उनकी उन्होंने न कभी कोई रिपोर्ट की और न उन्हें कभी जुर्माना ही किया। हेडमास्टर साहबने अपने सरल स्वभावसे मिचल साहबके सामने यह भी स्वीकार किया कि स्वयं उन्हें भी कितनी ही बार स्कूलमें झपकी लग गई और स्कूलके मास्टर, असिस्टेण्ट मास्टर उनके पास आकर लौट गये हैं। उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि कितनी ही बार झपकी लगनेपर अन्य सहायक अध्यापकोंके साथ माखनलाल चतुर्वेदीने भी मुझे सोतेसे जगाया। उन्होंने यह भी स्वीकार कर लिया कि यह रिपोर्ट सुपरवाइज़रके कहनेसे दी गई थी, क्योंकि माखनलाल चतुर्वेदीने पिछले सरकारी उत्सवमें कविता लिखकर देनेसे इनकार कर दिया था। मिचल साहब और हेडमास्टर साहब इतने ज़ोर-ज़ोरसे बोल रहे थे कि बाहर बैठे हुए भी मुझे उनकी बातें साफ़ सुनाई पड़ रही थीं। मिचल साहबकी हिन्दीमें क्रियापद खानसामोंकी-सी हिन्दीकी तरह खड़ा ही बोला जाता था और उस क्रियापदका आख़िरी था या है गायब हो जाता था। हेडमास्टर साहब शुद्ध हिन्दीमें उत्तर दे रहे थे। उसके बाद मिचल साहबने धीरेसे बातचीत की। इस चर्चामें उन्हें कोई आधा घण्टा लग गया। फिर मुझे बुलावा आया और बोले, कि इस बार तो तुम्हारा जुर्माना माफ़ कर दिया जाता है। यदि भविष्यमें तुमसे फिर कोई ऐसी ग़लती हुई तो सख्त सज़ा दी जायगी। और हेडमास्टर साहबसे कहा कि अपना कागज़ हम भेजेगा। टुम म्युनिसिपैलिटीको भेज डेना।"

माखनलाल अब नौकरशाही सत्ताका एक पुरजा हो चुका था। दूसरे अभी वह ताज़ा-ताज़ा ही गाँवसे आया हुआ ग्रामीण युवक था, जिसके उत्साह और जिसकी प्रतिभामें किसीको शक नहीं था, लेकिन जिसकी

शक्तियाँ केवल शालामें ही लगनी चाहिए, यह उसके वेतनदाताओंकी इच्छा थी। नौकरशाही सत्ता इसीलिए जानबूझकर ग्रामीणोंको नगरोंकी नौकरियाँ दिया करती थीं, कि वे विशुद्ध रूपसे नौकरी ही करेंगे, शहरी बननेसे बाज आयेंगे। माखनलाल अभी शहरी नहीं बन पाया था। रामलीलाएँ ग्रामीण रुचिका ही ज़्यादा प्रतिनिधित्व करती थीं, इसलिए चेतावनी देकर उसका जुर्माना माफ़ कर दिया गया था। अन्यथा उसने अपराध कम मामूली नहीं किया था!

हिन्दी साहित्यका सुखद स्पर्श

अंग्रेज़ोंने इस देशमें नौकरशाहीकी भूलभुलैया बड़े करीनेसे रची थी। जेलोंका विधान यद्यपि भिन्न भाव-भूमिपर रचा गया था, लेकिन व्यक्तिकी दृढ़ हड्डियों और उफनती शक्तियोंको पस्त करनेका जो करीना था, वही नौकरियोंके विधानमें निमज्जित कर दिया गया था चाहे जेलमें, चाहे बाहर ब्रिटिश सत्ताकी नौकरी करते हुए, व्यक्ति जीवित तो रहे, लेकिन वह सत्ताकी मनचाही रीतिसे जीवे। माखनलाल भी इसी भूल-भुलैयामें जीवन-यापन करने आया था। उसने इस घटनाके तुरन्त बाद, नौकरीके विधानको अक्षरशः सरमाथे लिया और अब इस दिशासे मुँह मोड़ लिया, जहाँ उसकी घटनाप्रियता अवश्य अपने स्वप्न चरितार्थ कर सकती थी साथ ही उसकी शक्तियाँ ग़लत दिशामें उलझनेका ख़तरा भी साथ लिये घूम रही थीं।

अब उसने अपने हेडमास्टर साहबसे और भी निकटका रिश्ता कायम किया और सेवाभावमें उनका बहुत कुछ कार्य वह स्वयं करने लगा। इधर हेडमास्टर साहबने अपने युगके प्रसिद्ध हिन्दी साहित्यिक श्री सैयद अमीरअली 'मीर' से 'जगत्विनोद' पढ़ना आरम्भ कर दिया था। माखनलालकी भेंट भी मीर साहबसे हिन्दीके प्रसिद्ध कवि श्री जगन्नाथ-प्रसाद 'भानु' के यहाँ हो चुकी थी। मीर साहब जब हेडमास्टर साहबके

यहाँ पहुँचते, तो हेडमास्टर साहब माखनलालको अपने ही यहाँ बुला लिया करते थे। इस आत्मीयताने इस ग्रामीण युवकको मोह लिया। अब हेडमास्टर साहब और माखनलाल सुबह कुछ ग्रन्थोंको साथ देखते। उसके बाद माखनलाल प्रातःकाल हेडमास्टर साहबकी चौथी क्लास अलगसे लिया करता। स्कूलमें भी वह हेडमास्टर साहबका अतिरिक्त कार्य करता, रजिस्टर भरता और शालाकी व्यवस्था अत्युत्तम हो, इसमें हाथ बँटाता। उस वर्ष शालाका, विशेषतः प्राइमरी क्लासका परीक्षाफल बहुत अच्छा रहा।

इस नये उत्साहपूर्ण वातावरणमें शालाका जो जीवन चल रहा था, उसमें माखनलालने न तो हेडमास्टर साहबके सामने आत्मसमर्पण ही किया था, न परिस्थितियोंसे ही समझौता। तरुण माखनलाल सर्वाधिक परिश्रम करते हुए अपनी प्रतिभाको एक नयी दिशा ही इस माध्यमसे दे रहा था। अत्यल्प वेतन पाते हुए भी, माखनलालके पिताने जिस प्रकार अनेकानेक विद्यार्थियोंको विद्या सम्पन्न किया था, उसी तरह पिताकी आशाके अनुरूप माखनलालने भी अपने इर्द-गिर्द विद्यादानका एक सौम्य वातावरण तैयार करनेमें खण्डवा शहरकी प्रियप्रदर्शिका प्राप्त कर ली।

"अब धीरे-धीरे मैं और हेडमास्टर मोहनलाल वर्मा बहुत निकट आ गये। शालाके रजिस्टर मैं ही लिखता, उनकी खानापुरी मैं ही भरता तथा स्कूलके घंटोंसे बाहर, प्रातःकाल आकर मैं हेडमास्टरकी क्लास भी पढ़ाता। उन दिनों शाला और समस्त प्राइमरी शालाएँ तथा सब प्रकारकी शालाएँ ११ बजे लगती थीं और पाँच बजे शामको छुट्टी हो जाया करती थी। मुझे प्रातःकाल बिस्तरेसे उठकर उन विद्यार्थियोंको पढ़ाना होता था, जो किसी प्रकारकी फीस नहीं दे सकते थे। ऐसे विद्यार्थियोंकी तादाद १८–२० तक होती थी। यह सब कुछ मेरी पत्नी और मेरी माँकी इच्छासे होता था। ये दोनों मुझसे पूछे विना विद्यार्थियोंको घर पढ़ने

आनेकी स्वीकृति दे दिया करतीं। उन विद्यार्थियोंमें एक मेरे नाईका लड़का होता, एक दूधवाली महाराजिनका, एक कुर्बान नामका वह लड़का होता, जिसके बूढ़े पितासे आम बेचनेके दिनों आम खरीदे जाते। कुछ मुहल्लेके विद्यार्थी भी होते थे और कुछ मुहल्लेके बाहरके। उनमेंसे कुछ विद्यार्थी बाज़ारमें दियासलाई बेचकर अपने परिवारका पोषण करते थे। वे हर इतवारको दियासलाईके डिब्बे ले लेते और धेलेकी तीन चिल्ला-चिल्लाकर दियासलाइयाँ बेचते रहते। दुर्भाग्य या सौभाग्य, बात यह थी कि जो मास्टर लगाते थे, पैसा खर्च करते थे, उनकी अपेक्षा ये ग़रीब विद्यार्थी बहुत अच्छे दर्जेमें और बहुत अधिक तादादमें उत्तीर्ण होते थे।"

पहला स्वलिखित नाटक और उसमें अभिनय

जब हेडमास्टर मोहनलाल वर्माके साथ माखनलालकी आत्मीयता प्रगाढ़ हो गई तो बहुत शीघ्र ही उनके संरक्षणमें और उनकी ही स्वीकृति-से एक नाटक खेले जानेकी व्यवस्था हुई। यह नाटक भी माखनलालने ही लिखा था। बात यह थी कि मीर साहबके समान और समभाव साहित्यिक शिष्य होनेके नाते, अब हेडमास्टर और उसके इस तरुण सहायकमें साहित्यिक मैत्री ही हो चली थी। वर्माजीका प्रेम अब स्वभावतः माखनलालपर बहुत बढ़ गया। स्कूलके घंटोंमें भी वे उसकी बातें और सुझाव मानने लगे। इन्हीं दिनों मीर साहबने एक कहानी लिखी—'होनहार बालक'। उस कहानीका आधार लेकर माखनलालने एक नाटक लिखा था—'विद्याविलासी बालक'। उन दिनों स्कूलोंके डिप्टी इन्स्पेक्टर एक महा-राष्ट्र सज्जन श्री जम्मेकर थे। वे जब खंडवा आये तो उन्होंने सबके आगे विचार रखा कि शिक्षक-परिषद्के अवसरपर एक नाटक खेला जाय। यह जानकर कि माखनलालने एक नाटक लिखकर तैयार रखा है, वे बहुत प्रसन्न हुए और उन्हींकी सोत्साह स्वीकृतिसे यह नाटक खेला गया। अब

उन सभी तत्त्वोंने भी इस नाटकमें सहयोग दिया, यहाँ तक कि सुपरवाइज़र महोदयने भी, जो माखनलालके गत रानर्जना-प्रकरणमें एक विरोध लिये खड़े थे। मुख्य कारण इसका यह भी था कि स्वयं श्री जाम्मेकर साहब इस अवसरपर उपस्थित हो रहे थे। यह कहानी एक ऐसे विद्यार्थीकी थी, जिसे ग़रीब होनेके कारण शालामें बहुत यन्त्रणाएँ दी गई थीं—घरमें अभावोंका मारा, सुविधाओंसे त्यक्त और मित्रों द्वारा प्रताड़ित, पड़ोसियों द्वारा दुतकारा जानेवाला और केवल ग़रीबीमें जन्म होनेके कारण हेडमास्टर व शिक्षकोंकी दृष्टिमें भी हेय। पर वह दुर्भाग्य-प्रताड़ित बालक मैट्रिककी परीक्षामें प्रथम श्रेणीमें प्रथम आया। गौरवान्वित स्कूलके हेडमास्टरके पास शिक्षा-विभागके डायरेक्टरने अत्यन्त प्रशंसाका एक तार भेजा कि उनका एक छात्र प्रथम श्रेणीमें प्रथम आया है। अब हेडमास्टरने एक समारोहमें उस विद्यार्थीका बहुत सम्मान किया और उपस्थित समुदायके सामने अपने बुरे व्यवहारके लिए क्षमा-प्रार्थना की। नाटककी कहानी यही थी और शिक्षक-परिषद्के लिए एक आदर्श अनुकरणीय गाथा थी। जाम्मेकर साहबके आग्रहपर माखनलालने इसमें स्वयं हेडमास्टरका कार्य किया। अभिनयमें सूट, टाई, टोप धारण किये हुए वह जब मंचपर पहुँचा तो दर्शकोंने हर्षसे तालियाँ बजायीं। नाटक बहुत सफल रहा। पर नाटकके तीसरे ही दिन माखनलाल मोतीझिरेसे बीमार हो गया।

नवम परिच्छेद

साहित्यिक क्षितिजपर बिहँसती उषाका आगमन

नदी-नाव संयोगको तरह ही, तरुणाई और प्रतिभा आरती-अर्चनाका ऐसा समाँ बाँध देती हैं कि कौन किसकी चन्द्रकलाको विकसित कर रहा है, यह कहना मुश्किल हो जाता है। दैनन्दिन रामायणका पाठ करनेवाले पिताका पुत्र खंडवा आकर, अपने उचित क्षणोंमें अध्ययन-अध्यवसायकी ओर प्रवृत्त हुआ। ग्रामोंमें इसकी सुविधा नहीं थी। खंडवा शहरमें हिन्दी पुस्तकोंका यद्यपि अच्छा संकलन नहीं था, लेकिन जिन ट्यूशनोंमें उसे कुछ घरोंमें जाना होता, वहाँसे उसे निरन्तर नयी पुस्तकें हाथ लगती रहतीं। ऐसा ही एक घर था श्री चम्पालालजी जौहरी 'सुधाकर' का।

खंडवा शहर अपने प्रदेशकी केन्द्रीय स्थितिपर था और यहाँ निरन्तर ऐसे समाचारों और विषयोंका प्रसार-विस्तार हुआ करता, जिन्हें दूसरोंके मुखसे सुनकर माखनलाल अवाक् बैठा रह जाता। अभी तक वह अपने दलमें स्वयं अगुवाई करता रहा है, लेकिन यह ऐसा जीवन हाथ लगा है कि वह सबके सामने किशोर बालक-सा गुमसुम केवल सुनभर सकता है, अपने अज्ञानको मौनमें ही छिपा-भर सकता है। आखिर तो इस असह्य स्थितिको दूर करना ही होगा। शहरमें प्रतिक्षण ग्रामीणकी-सी मनोभावना लेकर जीवन दूभर हो जायगा। अब तो वह ग्रामोंका प्राणी

और, इन्हीं क्षणोंमें हिन्दीकी दूसरी वन्दनीय मेधा खंडवामें आ उपस्थित हुई। उसका नाम था श्रीसैयद अमीरअली 'मीर'। खंडवामें आनेसे पहले वे देवरी (जिला सागर) में हिन्दी अध्यापक थे। कहते हैं कि जब एक बार अंग्रेज़ डिप्टी कमिश्नर देवरीमें आया, उस समय एक ऐसा आन्दोलन दानेदार चीनीके खिलाफ़ छिड़ा कि उन डिप्टी कमिश्नरको देवरीमें कहीं भी दानेदार चीनी नसीब न हुई। सम्भवतः इस आन्दोलनमें मीर साहबका भी हाथ रहा। बस, सागर जिलेके सरकारी अधिकारी उनके पीछे ऐसे पड़े कि वे देवरी छोड़नेके लिए बाध्य हो गये और खंडवा आ बसे। खंडवा पहुँचते ही भानुजीने जब यह जाना कि मीर साहब इसी शहरमें क़याम रखे हुए हैं तो आपने उनको मुलाक़ातके लिए याद किया और उन्हें अपने विभागमें नौकरी देनेकी बात कही। मीर साहब आर्थिक मारसे परेशान थे। उन्होंने तत्काल ही स्वीकार कर लिया। खंडवा आनेसे पहले मीर साहबकी प्रसिद्धि हिन्दी लेखकके नाते पर्याप्त हो चुकी थी। पर भानुजीका मीर साहबको अपने पास रखनेके लिए एक स्वार्थ था। वे अपना साहित्यिक कार्य उन सभी व्यक्तियोंसे कराया करते थे, जो उनके विभागमें नौकर थे और साहित्यिक रुचि रखते थे। मीर साहबसे भी उन्होंने 'काव्य-प्रभाकर' और 'छन्द-प्रभाकर' ग्रन्थ लिखना प्रारम्भ कर दिया। दूसरोंसे ग्रन्थ लिखाना केवल खंडवामें ही नहीं, काशी और लखनऊमें उन दिनों मज़ेसे चल रहा था और यह कार्य करा रहे थे उस युगके स्वनामधन्य हिन्दी लेखक। दूसरोंके परिश्रमपर अनेक लोग स्वयं हिन्दी लेखक बन रहे थे। यह लाभ उन्हें इसलिए अधिक मिल रहा था, कि वे औने-पौने दाम अपने लिक्खाड़ लेखकोंको दे डालनेकी भाग्यशाली स्थितिमें थे। कहीं-कहीं तो भानुजी जैसी सरकारी स्थितिके व्यक्ति बिना पारिश्रमिक दिये ही अपनी पुस्तकें तैयार करानेमें रोब-दाबसे काम ले रहे थे।

यही कारण है कि 'सरस्वती' में उसके सम्पादक श्री महावीरप्रसादजी

द्विवेदीने 'काव्य-प्रभाकर' की आलोचना उस समयके सबसे अधिक पढ़े जानेवाले कवि श्री मैथिलीशरण गुप्तसे कराई थी और उन्होंने इस पुस्तकमें अनेक दोष निकाले थे। श्री गुप्तजीने यद्यपि निकट जानकारीके अभावमें यह तो नहीं लिखा था कि यह पुस्तक भानुजीकी नहीं है, लेकिन गुप्तजीकी आलोचनासे यह स्पष्ट हो गया था कि यह पुस्तक एक व्यक्तिके न लिखे जानेके कारण धारावाहिकतासे वञ्चित है। यह आलोचना १९१२ के सरस्वतीके अप्रेल-मई दो अङ्कोंमें प्रकाशित हुई थी। इस आलोचनासे चिढ़कर भानुजीने और उनके एक मध्यप्रदेशीय कवि-साथी (जो 'सरस्वती' में पर्याप्त स्थान पा रहे थे) ने कलकत्ताके 'भारतमित्र' में बहुत ही कटु उत्तर दिया था।

तो, जब मीर साहब खण्डवा आये, हाथका बुना कपड़ा पहनने लगे थे। कोसेका फेंटा बाँधते, और देवरीके करघोंपर बुने हुए कपड़ोंके पाजामे और शेरवानी पहनते थे। ठिंगने आदमी थे। उनकी दाढ़ीपर भूले-भटके सफ़ेद बाल आना शुरू हो चुके थे। स्वभावसे बहुत कोमल और अंग्रेज़ोंके बहुत खिलाफ़! भानुजीके निकट सम्पर्कमें आनेके बाद यह आवश्यक था ही कि माखनलाल मीरसाहबके भी सम्पर्कमें आता। माखनलालने क्रमशः मीर साहबकी कृपासे बिहारी सतसई, पद्माकर, कविवर मतिरामका जगत्विनोद, भूषण और कुछ अन्य काव्यग्रन्थोंका अनुशीलन कर लिया। पहली ही भेंटमें मीरसाहब जगत्विनोदके पन्ने पलटा रहे थे। जब छन्दोंके अर्थोंपर चर्चा चली, माखनलालने अपने अर्थ सामने रखे। मीर साहबने उन्हें सुनकर कहा कि यह तो निरा पागलपन है। पर कुछ दिनों बाद उन्होंने यह भी कहा कि हाँ, तुम्हारा भी अर्थ उचित हो सकता है। इस प्रकार मीर साहबका पारस-स्पर्श माखनलालकी उठती हुई साहित्यिक प्रतिभापर जो लगा, तो वह नया कुंदन-भाव पा गई।

साहित्यिक प्रतिभा परिस्थितियोंके थपेड़े खानेकी अभ्यासी नहीं है।

न वह वातावरणके सामञ्जस्यकी हामी है। वह पूर्वापर सम्बन्धोंकी प्रत्यु-त्पन्नमतिके अतिरिक्त कुछ नहीं है। जब व्यक्तिकी ज़िन्दादिलीकी चाशनी उसे मिल जाती है, तो वह अपने स्वतन्त्र डैने उगाकर उड़ने लगती है। केवल साहित्यिक प्रतिभामें ही यह गुण है कि वह अपने डैने स्वयं उगाना जानती है!—चींटीके-से बरसाती पर नहीं, अमर-अजर डैने जो उसकी नश्वर कायाके बाद भी व्योममें विचरण करते ही रहते हैं!!

खंडवाके साहित्यिक वातावरणमें घुलने-मिलने, उस स्तर-तक स्वयं उठनेकी जिज्ञासा लेकर घूमने और तैयारी करने, साहित्य-सागरमें श्रमिक गोताखोरों-सी डुबकी लगाने और अपने कच्चे मानस-सूत्रोंकी पक्वा-वस्थाके निमित्त बलवत्तर खादकी तलाशमें भटकनेसे पहले माखनलालने अध्ययनशील पिताके पास रहकर छिदगाँवमें 'वेङ्कटेश्वर समाचार' और 'भारतमित्र' जैसे पत्रोंका रस लेना सीख लिया था। छिदगाँवके पटेल केकरे परिवारके सान्निध्यसे, विना किसी विशेष सोच-विचारके माखनलाल-में मराठी बोलने और सीखनेकी प्रवृत्ति जन्म ले चुकी थी, जिसने खडवा पहुँचनेपर और भी नया बल पाया। खंडवा उस युगमें मराठी-प्रधान देश था—इन अर्थोंमें कि मराठी बोलनेवालोंकी अधिक संख्या न होनेपर भी रेलवे, शासन और सार्वजनिक संस्थाओंमें उनकी ही चलती थी। इसलिए भी कि खंडवाके हिन्दी-भाषी भी मराठी बोलने और समझनेमें रस लेते। यह वह युग था, जब मध्यप्रदेशमें हिन्दीके एक या दो पत्र, लेकिन मराठीके अधिकांश साप्ताहिक और मासिक व दैनिक पत्र निकला करते थे। यदि मध्यप्रदेशमें रहकर दीन-दुनियाकी ख़बर किसीको रखनी होती तो वह अनिवार्यतः मराठी पत्र ही पढ़ना और ख़रीदना आवश्यक समझता। माखनलालने भी इसी अनिवार्यताको विना ऊहापोहके अपने हितार्थ स्वीकार कर लिया। इस नाते माखनलालकी निरन्तर बढ़ती हुई मित्र-मण्डली या परिचित समाजमें उसे 'केरलकोकिल' 'विविधज्ञान विस्तार',

'मासिक मनोरंजन' तथा साप्ताहिक 'केसरी' पढ़नेके लिए सुलभ होने लगे। खंडवासे भी एक मराठी साप्ताहिक 'सुबोधसिन्धु' निकलता ही था। इन मराठी पत्रोंसे माखनलालने मराठी साहित्यकी अनेक प्रवृत्तियोंको समझा-बूझा और उसके प्रचलित साहित्यिक आन्दोलनों और उसके लेखक-रत्नोंके प्रति भी उसकी जिज्ञासाएँ परिपक्व हुईं।

हिन्दी मासिकोंमें 'सरस्वती' खंडवामें प्राप्तव्य था। बम्बईका (हिन्दी) 'वेंकटेश्वर समाचार' भी उसके विद्यार्थी पढ़नेके लिए ले आते थे। 'सरस्वती'के सम्पादक श्री महाबीर प्रसादजी द्विवेदी भी अपने दैनिक जीवनमें बराबर मराठी पत्रोंका अध्ययन करते रहे और अपने मासिकमें मराठीसे अनूदित समाचार और टिप्पणियाँ वे बराबर देते रहे।

समाचारपत्र व्योमकी अनन्ततासे छूटे हुए ऐसे चमकते तारे हैं, जो मानस-सरोवर तक पहुँचते-पहुँचते पत्थरके टुकड़ोंमें बदले मिलते हैं। और जब शान्त-सरोवरमें पत्थर फेंका जाता है तो वहाँ लहरें पैदा होती हैं। शहरी आदमी बहुत वर्षों बाद जाकर समाचारपत्रोंको पुराने रोगीकी तरह औषधको पथ्यके रूपमें पिया करते हैं। पर नया, ताज़ा, तरुण या ग्रामीण व्यक्ति जब समाचारपत्रोंको पीना शुरू करता है, तो वे बार-बार उसके शान्त मानस-सरोवरमें सिवाय ढेले-सा आघात पहुँचानेके और कुछ काम नहीं करते। और वह व्यक्ति अपने आपको लहरोंकी तरह समाजमें फैलानेके लिए बावला-सा हो उठता है। वही हालत माखनलालकी हुई। वह अपनी प्राइमरी-शालाके अध्ययन-अध्यापनकी संकुचित दुनियासे बाहर, घोंसलेके चूज़ेकी तरह, अब बार-बार झाँकने ही नहीं लगा, रह-रहकर कुछ कर गुज़रनेकी महती आकांक्षा मनमें, मानसमें, हृदयमें सँजोने लगा। क्रान्तिवादी तरुणोंके साथ यों काशी, प्रयाग, कलकत्ता और एक-दो अन्य स्थानोंकी यात्राएँ उसने की थी, पर यह कर गुज़रनेकी आकांक्षा तो नये डैनोंवाले बालपक्षीकी प्रथम उड़ानसे भी अधिक थी। और कुछ ऐसी थी, जिसकी रूप-रेखा स्वयं उसके मनमें स्पष्ट नहीं थी।

प्रथम साहित्यिक-लेखका प्रकाशन

इन्हीं दिनों एक घटना घटी। उस घटनाने बहुत जल्दी अपना विस्तृत रूप प्रकट भी किया। जबलपुरसे पं० माधवरावजी सप्रे, पूनाके मराठी 'केसरी'के आधारपर 'हिन्दी केसरी' निकालने लगे थे। आपने एक विज्ञापन प्रकाशित कराया कि जो व्यक्ति राष्ट्रीय-आन्दोलनपर और बहिष्कारपर लेख लिखेंगे, उनमें-से प्रथम आनेवाले व्यक्तिको पुरस्कार दिया जायगा। माखनलालने भी चुपके-से एक लेख लिखा। अब तक क्रांतिवादी तरुणोंके गुरुवर्य श्री सखारामजी देवस्कर अपनी 'देशेरकथा' या 'देशकी बात' पुस्तक लिख चुके थे। माखनलाल उसका पारायण कर चुका था। इसने उसी पुस्तकको आधार बनाते हुए और कुछ समकालीन समाचार-पत्रोंसे प्राप्त मनोभावनाको पीठिका-स्वरूप लेते हुए यह लेख तैयार किया था। यह इस तरुण अध्यापकका पहला लेख था, जो बाहर जाकर प्रकाशित हुआ। 'हिन्दी केसरी'ने इस लेखको प्रकाशित भी किया। यद्यपि किसी नौसिखिएका यह लेख था, पर सप्रेजीके हाथोंसे तो एक अप्रत्याशित चमत्कारका उद्भव होना था। उन्होंने इसी लेखको प्रथम घोषित किया। इसके प्रथम होनेका कारण यह भी रहा कि उन दिनों बहिष्कार जैसे आग्नेय विषयपर आखिर लिखता कौन? और लिखकर अपनी जान साँसतमें क्यों डाले? जो इस विषयके गरम-दलीय पारखी थे, वे पुरस्कार-के मिलनेके हिसाबसे लेख लिखना अपनी तौहीनी समझते थे। हिन्दीमें लेख लिखना ऐसी ही एक निम्नस्तरीय प्रवंचना थी…

थोड़े दिनों बाद स्वयं सप्रेजी खंडवा पधारे। पूछते-पूछते माखनलाल-के घर पहुँचे और एक गौरवर्ण, प्रशस्त ललाट, सौम्य मुख और सक्रिय दृष्टि युवकको जब उन्होंने देखा, तो बोले जिसका लेख इतना सुन्दर है, वह खुद भी बड़ा सुन्दर होगा, ऐसा हमने सोचा। सो उस सुन्दर आदमीको देखने चले आये हैं। सप्रेजीकी दिलदारी ऐसी ही थी। उनकी दिलदारीने

सदा-सदाके लिए इस युवकको अपना ऐसा शिष्य बनाया, जो उनका नामलेवा अपने जीवनकी अन्तिम श्वासों तक रहा।

सार्वजनिक सभामें पहला भाषण

जिसने झोपड़ोंकी काँटोंवाली फाटकका नियन्त्रण किसी भी क्षण स्वीकार नहीं किया था और जो गाँवोंसे बाहर नदी, तालाब, पहाड़ और जंगलोंकी अलंघ्य सीमाओंको छूकर आता था, वह शहरमें आकर तो और भी उत्साहसे मचल-मचल पड़ता था। शहरकी भाव-सीमाओंके विस्तारका क्या कहना? यहाँ उन समस्त भावनाओंका एक लम्बा-चौड़ा विस्तार है, जिनकी कल्पना गाँवोंमें किये नहीं बन पड़ती। शहर तो प्रतिदिन नवीन घटनाओंकी झनझनाती हुई ऐसी लौह-श्रृङ्खला है, जो हर खुल-खेलनेवालेको एक न्योता दे दिया करती हैं। माखनलाल इन्हीं न्योतोंको सुना करता था और राह देखा करता था कि वह कब इन न्योतोंको अपने सिरमाथे ले सकता है। यों खंडवाकी जितनी भी सभाएँ होतीं, अपनी सुविधाके हिसाबसे माखनलाल उनमें जाने और बैठनेकी इच्छा पूरी करता। खंडवा अपने आपमें एक लघु नगरी है। अधिक घटनाओं और सभाओंकी गुंजाइश तो आज भी यहाँ नहीं है। पर निकटवर्ती महानगरों और बड़े नगरोंका स्फुरण और कम्पन यहाँ तक पहुँचकर ही रहता था। इन सभाओंके केन्द्र श्रीबिहारीलाल दाधीच थे। सार्वजनिक सेवा तो नहीं, सार्वजनिक चेतनाका ऐलान करना भर इस युगमें एक बड़ा काम था। ये दाधीचजी पण्डित महाराज थे और सत्यनारायण मन्दिरमें इनका निवास था। मन्दिरके दर्शनार्थियोंपर इनका असर था, इसलिए उसी-का योग-सम्पादन करते हुए वे अपने मन्दिरमें कभी-कभी शोक-प्रस्ताव या बधाईका प्रस्ताव पास करनेकी हिम्मत अवश्य कर लेते थे। प्रत्येक सभाके लिए पहलेसे अग्रिम छपे हुए परचे रहते थे, केवल उनमें सभाका विषय और तारीख भरनी होती थी। और यह काम स्वयं पण्डितजी कर

लिया करते। तब एक आदमी मुख्य-मुख्य आदमीको यह परचे बाँटकर आता और उन गिने-चुने परचोंके आधारपर सभामें ५० : १०० की उपस्थितिकी आशा की जाती। दाधीचजीके साथ उठने-बैठनेके कारण, माखनलाल भी इन परचोंको फ़ुरसत पानेपर लिखने-भरने लगा। जब लाला लाजपतरायको देश निकालेकी सज़ा हुई, दाधीचजीने परचे भरवाकर सभाका आयोजन किया माखनलाल ही उन परचोंको नियत स्थानों तक बाँटकर आया। जब शामको सभाकी उपस्थिति देखी गई तो केवल ४०-५० व्यक्ति थे। पर यह ४०-५० व्यक्ति भी एकत्र कर ले जाना दाधीचजी जैसे व्यक्तिके लिए बहुत ही बड़ी विजय थी। इस सभामें माखनलालने पहली बार अपने मनका उकसाव प्रकट करते हुए यह इच्छा प्रकट की कि वह भी कुछ बोलेगा। कक्षामें विद्यार्थियोंके सामने बोलनेवाले तरुण अध्यापकने ठीक ही सोचा कि वह बोल ले जायगा। सार्वजनिक जीवनमें सन्तोषजनक कार्य करनेवाला व्यक्ति आखिर इतनी जानकारी तो रखता ही था कि वह कुछ ऐसा बोले, जो दूसरे आदमी केवल संक्षेपमें जानते-भर हैं। किन्तु जब बोलनेके क्षण आये, तब मुझसे बोलते नहीं बना। मैं खड़ा हुआ। मैंने कहा कि 'सभापति महाशय', फिर कहा, 'सभापति महाशय ···।' इसी बीच सभापति महाशय पं० बिहारीलाल दाधीचने कहा, 'बोलिए, बोलिए। इसमें घबड़ानेकी बात क्या है?' बस, यही प्रोत्साहन मानो मेरे लिए संकट हो गया। दिन-भर लोगोंसे मिलकर जो लफ्फाजी किया करता था, उसका एक भी शब्द बोलते समय टेबलके सामने सूझता ही न था। हाँ, मेरे हाथ-पाँव काँप रहे थे। और लगता था, अब गिरा···अब गिरा··· और अपने भाषण करनेकी इस प्रथम कीर्तिके साथ मैं विना बोले बैठ गया! इस घटनाने मेरी इस प्रवृत्तिको गहरी ठोकर दी कि मैं सब-कुछ कर ले जा सकता हूँ। किन्तु इसके पश्चात् ही मुझमें यह भावना जाग्रत हुई कि जो कुछ बोलूँ, उसमें मेरे मिशनसे बाहर कुछ न बोलूँ और

दूसरे जो कुछ बोलना चाहूँ, उस सबका मसाला मेरे पास बोलनेसे पहले खूब तैयार रहे। अतः मैं जो सावधानी लेख लिखते समय लेने लगा, वही बादमें बोलनेके समय भी लेने लगा। सत्यनारायण-मन्दिरकी सभामें मेरे न बोल सकनेके कारण पुलिस इन्स्पेक्टर श्री रतनलाल मेरी कोठरीमें आये और कहने लगे, 'आपको तो अपनी मास्टरीकी तरफ़ ज़्यादा ध्यान देना चाहिए। इस बोलने-चालनेमें कुछ नहीं रक्खा है।' गुरुवर देवस्कर-जीकी 'देशकी कथा' पढ़ चुकनेके बाद, पुलिसका यह कथन मुझे चुनौती लगा। मैं मानो अपनेसे ही खीझ-सा उठा। और बिना कोई भय खाये एक दूसरे भाषणकी तैयारी करने लगा। तुलसीदासपर भाषण देनेका अवसर उपस्थित होनेवाला था। उस अवसरपर जीवनका दूसरा भाषण करते हुए मैंने 'रामकी दिग्विजय'को बहुत ही राजनीतिक महत्त्व दिया और यह कहा कि सचमुच भगवान् राम भारतवासियोंके आराध्य हैं और घर-घरमें पूजाकी वस्तु जो वे हो सके, उसमें महान् कारण उनके द्वारा भारतवर्षकी महान् दिग्विजय है।"

पुलिसकी सशंक नज़रोंमें

१८-१९ वर्षीय ग्रामीण अध्यापककी स्फूर्ति और अधिकाधिक प्रवृत्तियोंमें निमग्न हो जानेकी लालसाने समाजके कई व्यक्तियोंकी दृष्टि उसपर केन्द्रित कर दी थी। यहाँ तक कि शालाके अध्यापक-वर्गके अतिरिक्त गिने-चुने प्रबुद्धशील व्यक्तियोंके समाजमें उसका हर क्षण स्वागत होने लगा। पर सशंक पुलिसकी निगाहें उसे अवांछनीय तत्त्वके रूपमें भी देखने लगीं। एक-दो बार उसे हल्की-फुल्की चेतावनी भी दी गई। घरसे बाहर निकलकर दस आदमियोंके बीचमें बैठना ही पुलिसके कान खड़े करनेके बराबर था। और यह ग्रामीण युवक यहाँ आकर अध्यापकी करते हुए भाषण तक देनेकी गुस्ताख़ी कर रहा है।

मसन गाँवमें भी एक दिन पिताजीने दो अनजाने क्रान्तिवादी तरुणों-

के प्रकट होनेपर क्या कुछ नहीं कहा था और उसके आपत्ति-बोझिल भविष्यकी चिन्तासे वे सिहरतक गये थे। और घरमें कितना क्लेश नहीं हुआ था। वे उसे केवल एक भरे-पूरे परिवारका भरण-पोषण करनेवाला योग्य और आज्ञाकारी पुत्र ही देखना चाहते थे। लेकिन बरसातके आकाशीय जलसे जब मिट्टी तर हो लेती है तो उसके अन्दर ही केंचुए जीवित हो उठते हैं और उसीमें साँस लेकर बढ़ते-पनपते हैं। जिस मिट्टीमें केंचुएँ जन्म नहीं ले पाते, उसकी प्रजनन शक्ति निर्वीर्य मानी जाती है। यही हाल क्रान्तिके केंचुओंका है। निरंकुश सत्ता क्रान्तिवादी तरुणाईमें उमगी-पगी आत्माओंको मिट्टी खानेवाले केंचुए ही तो समझती हैं। और ये केंचुए कुछ ऐसी छिपी-दबी मिट्टीकी सीलनमें ही प्राणरस ग्रहण करते रहते हैं जिसका अता-पता साधारण दुनियादारको तो कम-से-कम मिल ही नहीं सकता। राष्ट्रकी क्रान्ति ऐसे ही केंचुओंके बलपर फलप्रदा हुई है। काशीके केन्द्रीय कार्यालयसे कुछ गिने-चुने तरुण चुपचाप कुछ बातोंकी तैयारी कर रहे थे। उनकी तैयारीमें परामर्शके क्षणोंमें माखनलालको भी ले जाया गया था। यद्यपि वह खंडवामें शान्ति भावसे अध्यापकी करने लगा था, पर इन अज्ञात तरुणोंका उसके पास पुलिसकी आँखोंमें धूल झोंककर आना तो ज़ारी ही रहा। माखनलालकी स्थिति उनके दायरेमें एक ऐसे विश्वसनीय सहयोगीकी-सी ही थी, जो उनके किसी काममें केवल सहायक-भर बना रहे, भले ही उनकी गतिविधियोंमें सक्रिय न बने। किन्तु यह सक्रियता-रहित सहायता देना सिरपर प्रतिक्षण मौतको सवार कराये रखना था। प्राणोंकी आहुति जहाँ मुख्य बन जाय, वहाँ व्यक्ति कुन्दन ही होता रहा है। ऐसे कुन्दन हुए व्यक्तियोंके लिए क्रान्ति सदा ही यज्ञ रही है। इन व्यक्तियोंने अपने एक हाथमें गीता सम्हाली थी, दूसरे हाथमें पिस्तौल। गीता और क्रान्ति जीवनमें अशिवरात्रिकी हामी नहीं रहीं कभी। ऐसे हामियोंके सामने मृत्यु हौवा न बन सकी। जो यज्ञभ्रष्ट है, उसे किसीने मारनेका प्रयास ही कब किया, वह तो स्वयं शेष हो गया। सती जब जल

गई, तो शिव शक्ति-शून्य हो गए थे। उन क्षणोंमें उनकी जन्मजात तपस्याने आत्मसमर्पण कर दिया था। खंडवामें जब क्रान्तिवादी तरुण इस ग्रामीण तरुण अध्यापकके घरपर एक विश्वास लिये उपस्थित हुए, तो यह व्यक्ति उनकी सहायतार्थ ऐसे ही आत्मसमर्पण की मद्धिम लौ थामे मिलता, अपने अस्तित्वकी सार्थकताका प्रमाण भी वह कुछ उस कर्मके द्वारा देता, जो बहुतोंके लिए सदा ही गोपनीय रहा। माखनलालका जहाँ एक चौथाई व्यक्तित्व मुखर होनेके लिए तरस रहा था, वहाँ उसका तीन चौथाई व्यक्ति परम गोपनीयं, परम गोपनीयं बना हुआ था।

बुन्देलखण्डकी उद्गार आत्मासे साक्षात्कार

ये क्रान्तिवादी तरुण आते और माखनलाल उनके लिए भरपूर तो नहीं, कम-से-कम तैयारियाँ जुटाकर रखता। या तो उनका गोपनीय सामान कहीं सुरक्षित रखना होता था, या उन तरुणोंको किसी सुरक्षित स्थानपर कुछ दिन टिकानेका बन्दोबस्त करना पड़ता था। और यह काम वही कर सकता है, जो एक बड़े दायरेमें अपना विश्वास औरोंको दे और दूसरोंका विश्वास स्वयं भी पाता रहे।

"उन्हीं दिनों मसलाय जमींदारीके राव भैरोसिंहकी दृष्टि मेरी ओर घूमी। उन्हें लगा कि मैं रामायणपर बहुत अच्छा बोलता हूँ। वे जब पेन्शन लेनेके लिए खंडवा पधारते तो मुझे अपने पास बुलवाकर रामायण-पर कुछ-न-कुछ चर्चा अवश्य करते। उन्हें २००) रु० मासिक पेन्शन मिलती थी। कदाचित् १८५७ में उनके पूर्वजोंने इस अंचलमें अंग्रेज़ोंकी सहायता की थी। यह उसीका पुरस्कार था। उन्होंने अपने दो लड़के मेरे पास पढ़नेके लिए बैठा दिये। उनके यहाँसे आनेवाली फ़ीस अर्थात् मेरा मासिक पारिश्रमिक कभी न तो पूरा मिलता था और न समयपर मिलता था। किन्तु अपनी तलवार और व्रतपर दृढ़ व्यक्ति होनेके कारण मुझपर राव भैरोसिंहका असर पड़ गया। अतः मैं उनके दोनों बच्चोंको चावसे पढ़ाता

रहा। इसी बीच उनके मझले लड़के ठाकुर बख्तावरसिंह जो उन दिनों अंग्रेज़ी स्कूलमें पढ़ते थे, मुझसे मिलने-जुलने लगे। थोड़े ही दिनोंके बाद, कदाचित् दूसरी-तीसरी अंग्रेज़ी क्लाससे बख्तावरसिंहजीने पढ़ना छोड़ दिया। अब मैंने निश्चिन्त होकर क्रान्तिवादी तरुणोंका भार ठा० बख्तावर-सिंहजी को दे दिया। वे सभी निश्चित कार्यक्रमके अनुसार मसलाय जमींदारी ओंकारेश्वर अर्थात् नर्मदातटीय जंगलोंके आसपास राव भैरो-सिंहजीके गाँवमें रहने लगे। नर्मदाकी उस तरफ़की सीमापर तीन राज्य बहुत निकट थे : होल्कर, धार रियासत और बड़वानी रियासत। राव भैरोसिंहके स्वर्गवासके बाद, ठा० बख्तावरसिंह तथा ठा० रणजीतसिंह क्रान्तिवादियोंके परम सहायक हो गये। उनके गाँवमें क्रान्तिवादियोंको एक दूसरे कारणसे भी रखा जाता था। उन दिनों एक रियासतसे दूसरी रियासतमें किसी व्यक्तिका वारण्ट स्थानान्तरित करनेके लिए लगभग एक मासका समय लग जाता था। इसलिए जब किसी तरुणके विरुद्ध एक रियासतमें कोई वारण्ट निकलता, तो उसे रातों-रात दूसरी रियासतकी सीमाओंमें पहुँचा दिया जाता या उस घाटसे नर्मदाके इस घाट ले आया जाता। होल्कर राज्यमें क्रान्तिवादी तरुणोंकी सहायताके लिए ठा० बख्तावरसिंहजीकी मार्फ़त मैं ठा० बाघसिंहजीका उपयोग किया करता। और धार तथा देवास रियासतमें स्वयं ठा० बख्तावरसिंहजी ही प्रबन्ध किया करते। उन दिनों रियासतोंका शासन इतना ब्रिटिशमुखी अन्धा था कि यदि कोई आदमी उन रियासतोंमें पकड़ा जाय तो बिना सबूतके या तो वह जेलमें ही सड़-सड़कर मर जाता था अथवा उसकी पहचान रखने-वालोंकी जायदादें ज़ब्त करके भीतर-बाहर तरह-तरहकी यन्त्रणाएँ दी जाती थीं।"

लेकिन एक ही गोपनीय स्थानसे सन्तोष किया भी नहीं जा सकता था। नियमित रूपसे शालाका अध्यापन कार्य करते हुए, यह आवश्यक हो गया था कि खण्डवाके आसपास अन्य भी ऐसे स्थान ढूँढ़ें जायँ, जहाँ

अपने गोपनीय साथियोंको यथास्थान आवश्यकता पड़नेपर छिपाकर रखा जा सके। इस प्रवृत्तिकी चेष्टाने माखनलालको खण्डवाके आसपासके जंगलों और पहाड़ोंमें घूमने-भटकनेका आदी बना दिया। नज़दीकके जंगल, गाँव, घाटियाँ, नदियाँ, नाले, तीर्थस्थल, पड़ाव आदि स्थानोंपर कुछ ऊँची कक्षाओंके विद्यार्थियोंके साथ घूमनेमें उसे बहुत सुख मिलता। अनेक बार जब वह अकेला घूमता तो गुप्तचर पीछे लग जाते। लेकिन आहट मिलते ही वह किसी जंगलमें आमके पेड़के नीचे कोई पुस्तक पढ़ता हुआ लेट जाता और वहीं सो जाता। यह निरुद्देश्य भ्रमण देखकर गुप्तचर वहाँसे लौट आते और माखनलाल अपने उद्देश्यकी पूर्तिमें आगे बढ़ जाते। किसीको कानोंकान ख़बर न लगे, ऐसे ही गोपनीय स्थलोंकी ख़बर लेना इस भ्रमणका उद्देश्य होता। पर, कभी-कभी यह भी आवश्यक हो जाता कि क्रान्तिवादी तरुणोंके कार्यसे उसे स्वयं भी किसी अन्य कारणका बहाना बनाकर खण्डवासे ग़ायब होनेके लिए बाध्य होना पड़ जाता। क्रान्तिवादी प्रवृत्तियोंने माखनलालको आदतन किसी भी बातको प्रकट न करनेके लिए तैयार कर दिया था। इसलिए खण्डवामें बहुत ही कम व्यक्ति उसकी इस गोपनीयताकी टोह ले सके। उधर माखनलाल मृत्यु-पथपर जीवनका सर्वोच्च दर्शन पानेका सौभाग्य अर्जित करता रहा।

सौन्दर्यकी परिभाषा हाथ लगी

"१९१० में होशंगाबादके उस पार घने जंगलोंमें मैं घूम रहा था। पुलिसको मेरा नाम तो मालूम नहीं था, पर वह इस तलाशमें जरूर थी कि कोई बदमाश इधर आया हुआ है। इसलिए मैं भी पुलिससे सतर्क था। होशंगाबादके उस पार जर्रापुर गाँव है। उसके नज़दीक ही विन्ध्या-का घना जंगल है। बरसात हो चुकी थी और उसमें मैं कुछ भींग भी गया था। तभी जंगलमें घूमते हुए मुझे दूरीपर एक टपरी नज़र आई। बरसाती नालेको पार कर मैं उधर ही चला गया। उस टपरीमें एक गोंड

दम्पति रहता था। उस गोंडका नाम था बित्ता। उसके लड़केका नाम था मुण्डा। पानीमें भींगा हुआ जब मैं टपरीके पास गया, तो उस गोंड-की पत्नीने यह देखा कि एक भींगा हुआ किन्तु संकटग्रस्त अच्छे दीखने-वाला तरुण पास आ गया है। तो उसने गोंड-हिन्दी मिश्रित भाषामें पूछा कि तुमको क्या तकलीफ़ है? और कहाँ से आ रहे हो? जिधरसे आया था, वह दिशा मैंने दिखा दी। उसने मुझे बैठनेको स्थान दे दिया। शामको उसका पति चार भैंसोंको आगे-आगे लिये आया। जैसे ही उसने मुझे वहाँ बैठे देखा तो वह क्रोधसे उबल पड़ा और पूछा कि तू कौन है? और इसके पेश्तर कि मैं जवाब दूँ, उसने अपने गँड़ासेसे मेरे दो टुकड़े करनेके लिए हाथ उठाया कि उसकी पत्नीने गोंडीमें कुछ कहा, जैसे उसने मुझे मारनेके लिए बरजा। उसके गँड़ासेसे मैं भयभीत नहीं था। क्योंकि पिस्तौल मेरे पास थी और उसके गँड़ासे उठानेसे पहले ही उसपर मेरा हाथ जा चुका था। तब उसने फिर पूछा कि कहाँसे आया है? गोंडीमें तुम या आपका प्रवेश नहीं हुआ। ममता और क्रोधमें वे तू का ही प्रयोग करते हैं। जब वह मेरी बातोंसे बहुत सन्तुष्ट हुआ तो उसने मेरे गीले कपड़े उतरवाये, अपने फटे कम्बल मुझे ओढ़नेको दिये और चना-बाजरा मिश्रित कूटा हुआ भूँजा खानेको दिया। भैंसका दूध भी पीनेको दिया। उस समय मुझे ऐसा लगा कि जिसे स्वर्ग-सुख कहते हैं, वह इससे अच्छा नहीं हो सकता।

"इसी प्रकार जब मैं जर्रापुर नालेके उस पार एक रिमझा पेड़की छायामें लेटा हुआ था, तब मेरे बायें तरफ़ नालेमें बहुत गहरेपर गुल-बासके झाड़ उगे हुए थे और वे फूलोंसे लदे भी हुए थे। उन्हींके निकट दो साँपोंका एक जोड़ा उन दरख्तोंसे खेल रहा था। तब उसी क्षण मेरे मनमें आया कि यही सौन्दर्यकी परिभाषा है। सौन्दर्यकी परिभाषाको जीवन-की परिभाषासे भिन्न नहीं होना चाहिए।

"थोड़ी देर बाद रात उतर आई। कि एक झाड़पर बिजलीकी रोशनी नज़र आई। मैंने गोंड-परिवारको विना ख़बर दिये यह ताड़ लिया कि हो-न-हो, बिजलीकी रोशनीसे कोई किसीको खोजता चला आ रहा है? मेरे कपड़े सूखे नहीं थे। उन्हें बित्तेकी कोठरीसे जल्दी-जल्दी पहने। और मैं चलने लगा। बित्ताकी पत्नी और उसकी बच्ची मुझे आने देना नहीं चाहतीं थीं। उनकी आँखोंमें आँसू आ गये। किन्तु मुझे तो चल देना था, चल दिया। साथ ही बित्ताकी बहूसे कहता आया कानमें कि यहाँ आकर कोई पूछे कि कोई था, तो यही कहना कि कोई नहीं था ताकि तुमपर कोई संकट न आने पावे और तुमसे कोई पूछ-ताछ न हो। मैं अन्धकारमें विलीन हो गया। थोड़ी दूर जाकर जब मैं नर्मदाके घाटपर मन्दिरके सामने पहुँचा, तब नर्मना सायँ-सायँ बह रही थी। वह बाढ़में थी। यद्यपि बाढ़ बहुत न थी। मैं लम्बा भागता चला ही गया। कोई डेढ़ मील दूर जाकर नर्मदामें कूद पड़ा। मुझे अचम्भा इसी बातका हो रहा था कि वह प्रकाश कभी दूर और कभी पास दिखायी पड़ रहा था। अब इतने वर्ष बाद सोचता हूँ कि वह फिरसे दीखा हुआ प्रकाश कदाचित् मेरा भ्रम था। मैं तो आगे-पीछे विना सोचे नर्मदामें कूद पड़ा। और बहुत प्रयत्नके बाद उस किनारेपर जा लगा। यद्यपि तैरनेका अभ्यास मुझे बहुत पहलेसे था, पर उस दिनकी कठिन तैराकीसे मैं काँप उठा था। पार लगनेपर मुझे हर्ष नहीं था। नर्मदाके उसपार होशंगाबादकी कोठी बाज़ार था और उसीसे लगा हुआ कमिश्नरका बंगला तथा आफ़िस! अब मैं फिर नर्मदामें गिरनेको बाध्य हुआ और होशंगाबादके तपस्वी घाटपर आकर लगा। मुझसे सीढ़ियाँ नहीं चढ़ी जा रही थीं, किन्तु धीरे-धीरे चढ़ा और पास ही रहनेवाले गवर्नमेण्ट हाई स्कूलके अध्यापक श्री रेवतीप्रसाद टिकारियाके यहाँ मैं चला गया। वे मेरी गतिविधियोंसे तथा मेरे इस उजड्डपनसे थोड़े-से परिचित थे। उन्होंने सूखे कपड़े पहनने-को दिये। गीले कपड़े सुखाये और मैं उनके यहाँ सो गया।"

लक्ष्य-बोधकी अवस्था उस-सी है, जब बदलियाँ शीत पाकर बरस जाया करती हैं। पर अनदेखे लक्ष्यकी दिशा बढ़नेकी अवस्था उस तप्त ज्वारकी-सी है, जो अपने जलको ही वाष्प बनाकर खुद खाली होता रहता है। माखनलाल इसी अवस्थासे गुज़रता हुआ स्वप्नमय होनेका आनन्द लिया करता था। उधर खण्डवाकी पुलिसने क़दम-ब-क़दम इस अध्यापककी गतिविधियोंपर नज़र रखना प्रारम्भ कर दिया। घरपर माँ जब झगड़ते-झगड़ते थक गई और उसका लाल अख़बारोंको घरमें लाकर पढ़नेसे बाज़ न आया, तो उसने एक दूसरा उपाय खोज निकाला। वह रोज़ ही अख़बारोंको जला दिया करती। जब एक दिन एक पुलिस कान्स्टेबल घरपर पहुँच गया, माखनलाल उस समय उपस्थित नहीं था। कान्स्टेबलकी मन्शा भी यही थी। उसने माँसे पूछा कि तुम्हारे यहाँ कौन-कौन-से अख़बार आते हैं? माँने विना हिचकिचाहट जवाब दे दिया कि हमारे यहाँ कोई अख़बार नहीं आते। माँ तैयारी इस बातकी पहलेसे ही कर ली थी कि तलाशीमें अख़बारकी एक कतरन भी मिलनेसे जो रही! इस घटनाके बाद माखनलालने अख़बार अपने उन मित्रोंके यहाँ जाकर पढ़ना ज़ारी रखा, जहाँ वे आते थे और जहाँ उनका आना निरापद समझा जाता था।

स्वयं तो पुलिसको अपनेसे चार क़दम दूर रखना माखनलालने सीख ही लिया था, अन्यचेता तरुणोंकी रक्षा भी वह हमसाथीके नाते बड़ी सूक्ष्म बुद्धिसे किया करता था।

"एक दिन खण्डवाके किसी मुहल्लेमें आग लगी। ठाकुर लक्ष्मण सिंह* मेरे घर आने लगे थे। कदाचित् वे अंग्रेज़ीके दूसरे या तीसरे दरजेमें पढ़ते थे। मैं उन्हें लक्ष्मण ही कहा करता था। उन्हीं दिनों ख़बर

* स्वर्गीय श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहानके पति।

आई कि सम्राट् एडवर्ड सप्तमका स्वर्गवास हो गया। लक्ष्मण सिंहने एक दोहा लिखा :

> **मृत्यु व्याधने मारी कै दमा बानकी चोट।**
> **श्री सप्तम एडवर्ड मृग कियो दृगनकी ओट॥**

मैंने लक्ष्मणकी इस सूझकी दाद नहीं दी और यह सोचकर वह दोहा सन्दूकमें कहीं छुपा दिया कि कहीं पुलिस लक्ष्मणका पीछा न करने लगे।"

दशम परिच्छेद

सरस दाम्पत्यके सुखद क्षण

शालाका अध्यापन, ग़रीब विद्यार्थियोंको घरपर पढ़ाना, ट्यूशन करना, साहित्यिक प्रवृत्तियोंकी रुचिके विकासको सम्हालना, यदा-कदा होनेवाली सभाओंमें भाग लेना और इन सबके बावजूद क्रान्तिवादी तरुणों-की व्यवस्थामें भी व्यस्त रह जाना—ऐसे तरुण अध्यापकके जीवनमें अब एक सरस दाम्पत्यका परिच्छेद और जुड़ चला था।

विवाहके समय पत्नी सिर्फ़ ६ वर्षकी थी। अब उसकी आयु एक वयस्क गृहिणीके समकक्ष थी। पति-गृहमें आकर वह अब घरका सारा कार्यभार सम्हालती थी और पति-सेवा भी करती थी। घरपर माँ थीं और एक या दो गाँवसे आये हुए विद्यार्थी भी होते। छोटे भाई-बहन भी साथ ही थे। सद्गृहस्थके रूपमें गृहपति माखनलाल अपने परिवारका भरण-पोषण कर रहा था। घरके सदस्योंकी आशाओं और आकांक्षाओंकी अशान्त लहरोंमें उसकी तरणी अपने ही संकोचके साथ आगे बढ़ रही थी। पर तरुणकी गृहस्थीमें सबसे बड़ा सत्य तो उसकी नवपत्नी होती है। जबतक है, वही उसकी तरणीकी डाँडोंका सम्बल होती है।

दिन घरसे बाहर और रात पुस्तकोंसे उलझे रहनेके कारण ग्यारसी बाईका रोष और उपालम्भ पतिके साथ यह रहता कि वे पुस्तकें उसकी सौत हो गई हैं। उन्हींमें रमण करना क्या उसके पतिने बस सीखा है।

ग्यारसी बाई अपनी माताकी बड़ी पुत्री थी। ज्येष्ठ कन्या स्वभावतः बहुत शीघ्र मानवी गुणोंसे लब्ध हो जाती है। मराठीकी एक कहावत भी है : बड़ी कन्या तूप-रोटी, अर्थात् ज्येष्ठ कन्या रोटीपर लगे हुए मक्खन-के तुल्य होती है। माखनलालकी पत्नीके रूपमें ग्यारसी बाईने दो संरक्षण पाये। उसके श्वसुर गाँवमें ही उसे अत्यधिक स्नेह दे चुके थे और उसे प्रथम पुत्रवधूके रूपमें पाकर सन्तुष्ट थे। उसकी गुण-सम्पन्नतापर हर्षित थे। खण्डवा पहुँचकर अपनी सासकी सेवामें उसने अपने प्राप्त संस्कारों-को इस तरह व्यय किया कि वह सासकी प्रिय वधू हो गई और इतनी प्रिय कि उसने निःसंकोच अपने प्रति पतिके हाथों बरती जानेवाली उपेक्षाकी शिकायत साससे करनेमें उसने कोई संकोच नहीं किया। माता पुत्र और पुत्रवधूके बीच किसी खाईको नहीं देख रही थी। बस इसीकी प्रतीति उसे थी कि जितना प्यार और ध्यान इस बेटेको अपनी बहूके हिस्सेमें देना चाहिए, उतना वह नहीं कर रहा था। उसे तो अपने बाहरी जीवनमें ही अधिक रस है। इस नाते बहूके साथ न्याय करनेवाली सास अपने बेटेको कम झिड़कियाँ नहीं देती और उस झिड़की-दानके समय परदेकी ओट बहूरानी हल्के-हल्के इस तरह मुसकराती कि उसका पति भी इस छिपी मुसकानको और इसके अर्थको बूझ ले और अब तो अपनी हार मानकर स्वीकार करे कि हाँ, अब इतना समय पत्नीके हिस्सेका और उसके अधि-कारका आगेसे बराबर रहेगा।

"मेरी पत्नी मेरे जीवनक्रमके कारण मुझसे बहुत नाराज़ रहती थी। जो विद्यार्थी मेरे पास पढ़ने आते, फिर चाहे मैट्रिक क्लासोंके विद्यार्थी हिन्दी सीखने आते हों, या प्राइमरी शालाके विद्यार्थी हों, मैं उन्हें प्रातः-काल चार बजेका समय देता। गरमीके दिनोंमें तो यह समय किसी प्रकार सध जाता, किन्तु जाड़ेके दिनोंमें विद्यार्थियोंको कष्ट होता। इसलिए मेरी पत्नी मुझसे कहतीं कि तुम्हारे यहाँ बाल-बच्चे होते, तब तुम अनुभव करते कि दूसरोंके बच्चोंको सुबह आनेमें कैसी तकलीफ़ होती है। मैं मुँह

बनाकर कह देता कि तुम तो ऐसी बड़ी-बूढ़ी जैसी बातें कर रही हो, जैसे तो तुम्हें ही बहुत बच्चे पैदा हो गये हों! चिढ़कर वे यह कहकर उठ जातीं कि तुमसे पेश आना तो मुश्किल है।

"किन्तु बच्चोंके आनेके समय वे मेरी घड़ीका टाइम बढ़ा दिया करतीं। बात तब पकड़में आई, जब घड़ीमें चार उस समय बजा, जब दिन उग आया। उस दिन हम दोनोंकी कहा-सुनी हो गई। किन्तु परिणाममें अपराधीपर नाराज़ होनेके बजाय, उसे मनाना पड़ा और समझाना पड़ा—तब उस दिन रोटियाँ नसीब हुईं। ऐसी पत्नी-प्रदत्त कठिनाइयोंमें पड़कर मैं कभी-कभी विद्यार्थियोंको सुबह तीन-चार बजे पढ़ानेका समय न दे पाता। ऐसे दिनोंमें बचत तभी मिलती जब लड़कोंको प्रातःकाल पढ़ाने-का समय न देकर हेडमास्टर साहबकी क्लास पढ़ानेके लिए सुबह स्कूल चला जाता। फिर मीर साहबके पास जाता और तब भोजन करके स्कूल पहुँचता था।"

दाम्पत्यका यह 'कभी-कभी' बहुत कम आ पाता; महीनेके ३० दिन तो पतिकी निजी व्यस्ततामें बीतते। और ३० रातें छोटी-सी टिमटिमदानोके उजालेमें पुस्तकोंके अनुशीलनमें शेष हो जातीं। इसलिए पत्नी अपने सारे शील और माधुर्यको रोषसे मिश्रित कर बोलतीं, "ये पुस्तकें तो मेरी सौत हैं जाने किस दिन इस घरसे ये निकलेंगी।"

ईर्ष्या और शंकाओंके लघु प्रकरण

किन्तु इसी बीच किताबों और समाचारपत्रोंके प्रति पत्नीका रोष बढ़ते-बढ़ते एक दूसरे ही बिन्दुपर केन्द्रित हो गया। जिस मकानमें माखनलाल अपनी गिरिस्तीको लेकर किरायेपर रहता था, वह एक गुजराती सज्जन-का मकान था। वे गुजराती महाशय अपने छोटे भाई और उसकी बहू और अपनी पत्नीके साथ रहते थे। माखनलाल अन्य ट्यूशनोंके साथ

अपने मकान मालिकके दो बच्चोंकी भी ट्यूशनें करता। जाने कैसे तरुण अध्यापक महोदयकी पत्नीको एक शंका खा गई। और शंका भी छोटी-मोटी नहीं, बहुत ही ज़बरदस्त। और जब दिलजमई हो गई, तो उस ग्रामवधूको विश्वास हो गया कि उसके पति तो यहाँ शहरमें आकर शहरी रोगके शिकार हो रहे हैं। कहाँ तो उसकी वह उतावली थी कि उसके पति जल्दी ही नौकरी पायें और पति-पत्नी एकान्तका स्वर्ग बसायें। किन्तु यहाँ तो महीनेके ३० दिनकी वैसे ही अन्य-अन्य कारणोंसे उपेक्षा और अब यह उनके रहे-सहे आनन्दका मन्थन करने और उनके बचे-खुचे अमृतको पी जाने और दोनोंको मिलकर सिर्फ़ बचा हुआ जहर पिलानेके लिए उनके जीवनका जो मेहमान रोग आ धमका है, उसका क्या इलाज़ करें? पत्नीने शायद एक ही मकानमें रहनेकी सुविधाका लाभ उठाते हुए ताक-झाँक कर देखा कि जब उसका पति अपने मकान-मालिकके दोनों बच्चोंको पढ़ाने जाता है, तो उस कमरेमें एक परदा टँगा होता है, जिसके एक ओर ट्यूशनकी पढ़ाई होती है और दूसरी ओर परदेके पास ही दोनों तरुणी देवरानी-जेठानी पढ़ानेवाले गौरववर्ण अध्यापकको कनखियोंसे देखती रहती हैं। एक दिन इस शंकालु पत्नीसे न रहा गया और वह निकटसे सत्यकी जानकारीके लिए उस समय उन जेठानी-देवरानीके पास ही आ बैठी, जब परदेकी दूसरी ओर उसका पति बच्चोंको पढ़ा रहा था। उसने महसूस किया कि कनखियाँ तो व्यस्त रहना चाहती हैं, परदेकी दिशापर उसकी उपस्थितिमें उन कनखियोंकी कठिनाई बढ़ चली है! अब उससे न रहा गया और उसने उसी दिन फ़ुरसत पाते ही पतिसे कह ही तो दिया कि जब आप पढ़ाते हैं, तो बच्चोंकी माताएँ आपको कनखियोंसे देखा करती हैं!! शायद पतिने सफ़ाई दी होगी कि तुम्हारा ईर्ष्यालु मन है, और कुछ नहीं। पर ईर्ष्यालु मन भी अगर है, तो इतने सस्ते और इतनी सरलतासे स्वस्थ कैसे हो? घरमें एक अबोला क्लेश चुपके-चुपके दोनोंको उनके दाम्पत्यका जैसे सूर्यास्त ही

थमा गया हो और वे हैं कि अपने इस कृत्रिम सूर्यास्तको उठाकर सड़कपर फेंकनेकी व्यवस्था नहीं कर सकते…

पर शीघ्र ही समाधानका क्षण आया। उस दिन सुबहसे शहरमें रक्षाबन्धनका पर्व था, पर माखनलाल किसी दूसरे शहर शाम होते ही जानेकी तैयारी करनेमें व्यस्त था। कि नीचेसे मकान-मालिकका बुलावा आया। बुलावेका उत्तर यह गया कि वह तो किसी शहर जानेकी तैयारी कर रहे हैं। दुबारा बुलावा आया तो माखनलालने स्वयं जाकर मकान-मालिकसे उस दिन ठहर जानेकी एक शर्त यह ठहराई कि उनके परिवार-की दोनों पत्नियाँ उसे रक्षाबन्धनका डोरा बाँध दें। मकान-मालिकने इस शर्तको बहुत ही प्रिय-दृष्टिसे देखा। जब अपने किरायेदार अध्यापकको मकान-मालकिन और उसकी देवरानी राखी बाँधनेके लिए तैयार हुईं शामका झुटपुटा-सा छा चुका था। अक्षत-रोलीकी थाली आई। और जब जेठानीने राखीका डोरा बाँधा तो माखनलालने स्पष्ट देखा कि मकान-मालकिनकी आँखोंसे एक आँसू गिरा और उसकी कलाईपर, जहाँ राखीका डोरा बँध रहा है, टिककर रह गया है। उसके बाद उसकी देवरानीने राखीका डोरा बाँधा।

और, दो महीने बाद, उस देवरानीका निधन हो गया!

राखीका डोरा भी खतरेके टलनेकी घण्टी-सा बँध चुका, पर पत्नीकी ईर्ष्यालु दृष्टिने चौकन्ना रहना न छोड़ा। मौके-बेमौके जब अपने पतिकी गहन व्यस्तताके क्षणोंमें वह अपने प्रति घोर उपेक्षा देखती, तो उसे एक ही अस्त्र हाथमें रखा हुआ मिलता था। जेठानीका नाम लेकर वह कहती, "बेचारी गंगा बहनसे ज़बरदस्ती राखीका डोरा बँधवानेका ढोंग कर लिया है!"

इस ईर्ष्यालु, शिकायतप्रिय पत्नीके ऐसे उपालम्भका उत्तर भला हो ही क्या सकता था?

माखनलाल कई ट्यूशनोंमेंसे एक मद्रासी बालककी ट्यूशन और करता था, या उसके घरपर उसका आना-जाना था। माखनलाल ऐसा ही प्रिय सामाजिक जीव था। उसका आगमन सबके मनको हर्षित-उत्साहित-उत्फुल्लित कर उठता। उस बालकके परिवारमें एक छोटी बहन भी थी। उसका नाम था नर्मदी। जब उस ग्यारसी बाईको नर्मदीका पता चला, तो यह नहीं जाना कि वह किस अल्पायुकी कन्या है, बस उसका नाम ले-लेकर कहना शुरू किया पत्नीने, कि तुमको फ़ुरसत मिल ही कैसे सकती है। सारी फ़ुरसत तो वह नर्मदी हज़्म कर जाती है।

ग्रामीण पत्नी शहरके व्यस्त जीवनमें जब तक पैर टिकानेका बौद्धिक धरातल नहीं पा लेती, उसका मृग-मन अपने ही तप्त जेठकी दुपहरिया-सी शंकालु वृत्तियोंके कारण काला स्याह पड़ता रहता है। पर एक कठोर सच्चाई यह भी होती है कि गाँवोंमें झोपड़ेके भीतर और बाहर जितने भी इन्द्रधनुष अपनी रंग-बिरंगी छटा लेकर उपस्थित होते हैं, वे सभी दाम्पत्यकी धरोहर होते हैं। किन्तु शहरमें आते ही दाम्पत्यकी छटा आसमानके इन्द्र-धनुषोंमें नहीं, पास-पड़ोसके घरेलू इन्द्रधनुषोंमें इस तरह विकीर्ण होने लगती है कि उसका इलाज सबके बूतेका नहीं होता, और एक ग्रामवधूका प्रथम क्षणोंमें तो बिलकुल ही नहीं। अबोधा ग्रामीण पत्नीका भोलापन इसीलिए शहरके पतिको दूभर महसूस होने लगता है।

गंगा बहनका इलाज तो माखनलालने यह किया कि जल्दीसे-जल्दी गुजराती मकान मालिकके लाख मना करनेपर भी उसमें अपना निवास छोड़ दिया और वहाँसे दूर जाकर रहने लगा। और दूसरे क्लेश नर्मदीका, यह इलाज किया कि पत्नीको नर्मदीके घर ले गया। वहाँ जाकर उसकी पत्नीने जब नर्मदीको एक छोटी बालिकाके रूपमें देखा, तो वह अपनी शंकाओंसे आश्वस्त हो गई और नर्मदीकी माताजीसे मिलकर बहुत ही सन्तुष्ट हुई। बात ख़त्म-सी हो गई। लेकिन ख़त्म कहाँ हो गई।

अब तो पतिको चिढ़ानेका जैसे एक सबल अस्त्र मिल गया। जिस दिन माखनलाल परिश्रम-जन्य उदासीनतासे ग्रस्त होता, पत्नीने बस एक ही चिढ़ानेकी बात पल्ले बाँध रखी थी—"क्या करें, गंगा-नर्मदा इन्हें चैन लेने दें, जब तो !"

ऐसी थीं माखनलालकी पत्नी, जिनका दिमाग़ पारिवारिक सन्तुलनका एक न्यारा ही काँटा था, जिसपर वे जब तक अपने पतिकी करतूतोंको नहीं तोल लेतीं, उन्हें पत्नीजन्य सन्तोष न मिलता। पर वे ऐसी ही तो नहीं थीं। यह तो उनका सौंवा हिस्सा था। शेष निन्नानबेवाँ हिस्सा तो यह था कि वे सदा घरपर आनेवाले विद्यार्थियोंको लाड़-प्यारमें कहा करतीं, "देखो, तुम लोग अपने मास्टरजीकी ही तरह जीवनमें पवित्र रहना।"

दाम्पत्यके चुभते चोपदे

एक बार स्कूलमें ग्रुप फोटो खिंचा। माखनलाल भी उसमें शरीक़ हुए। शरीक़ हुए तो एक सुन्दर मनःहारी तरुणका फोटो भी सुन्दर आना ही था। घर जब उस चित्रकी एक प्रति पहुँची तो पत्नीने बहुत सम्हालकर उस फोटोको सन्दूकमें रख दिया। जिसने भी उस चित्रमें माखनलालको देखा, उसने उसके चित्रकी भूरि भूरि दाद दी। यद्यपि वह चित्र पहला था, पर उतरा ख़ूब था। एक दिन आपको ज़रा बात करनेको फ़ुरसत मिली। पत्नीसे पूछा कि वह चित्र कहाँ है, और हाँ, यह तो बताओ, कि कैसा उतरा है ? माखनलाल अपने विद्यार्थियोंसे यह तो सुन चुके थे कि उनकी पत्नी भी उस फोटोकी ख़ूब प्रशंसा कई बार कर चुकी हैं। पर जब आमने-सामने यह प्रश्न हुआ, तो न जाने कबकी खीज भरी थी और कबका बदला लिया जाना था, कि विना झिझकके उत्तर दिया गया कि फोटो हमें तो पसन्द नहीं आया। भला क्यों नहीं पसन्द आया ? तो अकल्पनीय मधुरतासे ओत-प्रोत उत्तर मिला, "फोटो सुन्दर आता ही कैसे ?

हम तो इस फोटोमें हैं नहीं। सुन्दर तो हम हैं। हम आपके साथ होतीं, तो यह फोटो भी सुन्दर आता !!!"

लेकिन माखनलाल तो माखनलाल। इस संकेतको न पकड़ पाया। पत्नीके साथ फोटो उतरवानेकी इस कामनाकी पूर्ति उसने न की। पत्नीके साथ बैठकर फोटो उतरवानेकी जैसे फुरसत ही उसने कभी न पाई। उल्टे इस उद्दाम आनन्दसे लालायित उत्तरसे वह जल-भुन कर रह गया।

ट्यूशनोंके बावजूद भी घरकी ग़रीबी तो पूर्ववत् थी। घरमें ग्रामवधू चक्की पीसती, तब रोटियोंका आटा तैयार होता। शायद छुट्टीका दिन था। पत्नी चक्की पीस रही थी। माखनलाल पास ही ज़मीनपर लेटा हुआ था। पत्नीको प्यार उमड़ा, एक हाथसे चक्की रोकी और पतिका सिर अपने घुटनोंपर रख लिया, ताकि बिना तकिये वे जो लेटे हैं, सो तकिया ही लग जाय। पर तकिया क्या लगा, चक्की पीसते हुए वह घुटना हिलने लगा और सिरको दलेल दी जाने लगी। अब जो प्यार उमड़ा है, उसे इस तरह तो बरदाश्त नहीं किया जा सकता कि अपना ही सिर चक्कीकी घूमती मूठकी तरह मथ डाला जाय। पत्नीसे यह कहते हुए माखनलालने अपना सिर घुटनेसे उठा लिया कि मुझे तो बख्शिए और आप अपनी चक्की ही पीस लीजिए!

अब तुलकनेकी बारी पत्नीकी थी। इतना सुनते ही उसे परवांच याद आ गया और नई बहुओंकी एक लोकपुरातन परम्पराको दुहराते हुए उसने चक्की तो बन्द कर दी और तानोंके तीरोंका बौछार करते हुए कहना शुरू किया कि मेरे पीहरवालोंने मेरी शादीमें जो वह भैंस दी थी तो तुम्हारे मामाने उसकी ऐसी गत बनायी और मेरे पीहरवालोंने जो वह घोड़ी दी थी, उसकी कैसी गत बनाई और मेरे पीहरवालोंने जो....

मतलब यह कि मेरे पीहरवालोंने जो मुझ लाडोको तुम्हें सौंपा, सो

उसकी कैसी गत बना रखी है, उसका रोना कितना रोया जाय और किस तरह रोया जाय।

किन्तु यह मान-मनुहार कभी-कभी दाम्पत्यका आदर्श सूर्योदय बनकर मुखर होती। ऐसे ही एक दूसरे छुट्टीके दिन पत्नी उसी प्रकार चक्की पीस रही थी। माखनलाल पास ही लेटा था कि आज उसे अपनी बारी याद आई और उसने स्वयं ही उसके घुटनेपर अपना सिर रख लिया। पत्नीको उस दिनकी बात याद थी। जब घुटनेपर सिर रख लिया गया तो उस बेचारीने रोज़-रोज़की झकझकसे बचनेके लिए चक्की पीसना बन्द कर दिया। माखनलालने कहा कि नहीं, नहीं, चक्की पीसना ज़ारी रखो। मुझे तो इस हिलते हुए घुटनेपर ही नींद आयेगी।

ऐसे वाचाल पतिका अध्ययन करनेके लिए जैसे पत्नीको अभी बहुत कुछ मनन करना बाक़ी था, पर आज तो उस आँगनमें मधुर दाम्पत्यके क्षितिजका स्वर्ण चमक आया था।

शह और मात

एक बार माखनलाल बम्बई गया और वहाँसे दो साड़ियाँ लाया। नीचे गंगा बहनने पूछा कि ये दो साड़ियाँ किस लिए। प्रश्न सरल मनसे पूछा गया था। पर उत्तर नटखट स्वभावसे और अपने मनके दबे-छिपे व्यंग्यको चुभता शर बनाकर दिया ग्यारसीबाईने और कहा, "आप नहीं जानतीं? एक तो साड़ी मेरे लिए लाये हैं। एक इनकी पत्नी और है, दूसरी उसके लिए।"

मुक्का गंगा बहनपर ही तानकर मारा गया था, पर गंगा बहन बेचारी निहायत भोली गुर्जर युवती। उसने शायद अपने पतिसे कहा, देवरसे कहा और बात बाहर फैली और इतनी फैली कि एक दिन सार्वजनिक सभामें भी इसका विस्फोट हो गया। एक सार्वजनिक सभा हो रही थी सामाजिक सुधारोंपर और बहुविवाहका विरोध किया जानेवाला था। पर एक

वक्ता महोदय बहु विवाहका विरोध करना तो भूल गये और बोलने लगे, "और, इन माखनलालको ही देखिए। इनकी दो पत्नियाँ हैं। आराम और मज़ेसे रहते हैं। कहीं भी तो कोई तकलीफ़ नहीं है इन्हें!"

उषाकी स्मितिसे सूर्य जैसा अग्निपुञ्ज नित्य ही प्रकट होता है। पत्नी-की शिष्ट विनोदप्रियतासे माखनलालकी दूसरी कल्पित पत्नीकी अनिर्वच नीयता जितने मज़ेसे जादुई पुतलीकी तरह सबकी आँखोंके आगे खड़ी हो गई, उसने माखनलालकी समग्र कल्पनाप्रियताको एक ज़बरदस्त शह दी।

घरसे बाहरके जीवनमें माखनलाल अपनी विनोदप्रियतासे चाहे जितनी शह अपने परिचित मित्रोंको दे आये। घरमें तो उसे पत्नीकी शह ही अधिक मिलती थी। पाणिग्रहणके क्षणोंमें, दाम्पत्यके प्रथम परिचय स्वरूप जो शुभ जुआ खेला गया था, उसमें १४ वर्षीय दूल्हे माखनलालने ६ वर्षीया लाजकी मारी सकुची लाडीको हरा दिया था, पर अब तो विनोदकी शत-रंजमें शहकी मारका बचाव बचकर भी नहीं मिलता था। ऐसे क्षणोंमें माखनलालका शहरीपन गौण हो जाता, उसका ग्रामीण व्यक्तित्व ही अपना सिर उठा बैठता। उसका ग्रामीण पति अपना हाथ उठा लेता। जब यह धुन सवार हुई कि शालामें इतने विद्यार्थियोंको वह पढ़ाता है और ट्यूशनोंमें इतनी कन्याओंको वह पढ़ा रहा है तो घरमें अपनी इस षोडशी पत्नीको भी वह क्यों न शिक्षित करे। आख़िर, शुभ घड़ी शुभ मुहूर्तमें पढ़ाना तय हुआ। तय तो हो गया, पर पढ़ाईका क्रम अस्त-व्यस्त ही रहा। जो याद करनेको दिया था, अल्हड़ और ज़िद्दी पत्नीने याद नहीं किया। बस, माखनलालके जाग्रत पतिने कसकर दो तमाचे जड़ दिये।

छात्र या छात्रा, पढ़नेके समय पत्नी भी छात्रासे अधिक क्या है? लेकिन जब पत्नीने तमाचे खाये तो वह छात्रा न रही, पत्नी ही रही और उसने अपने आँसुओंको कंठमें ही पीकर यह और किया कि चार-पाँच

रोज़ भोजन नहीं खाया। पर भारतीय गिरिस्ती तो उस गाड़ीकी तरह है जिसके पहिये रेलसे नीचे भले ही उतर जायँ, पर फिर अपने आप ही विना किसी क्रेन मशीनकी सहायताके, दुबारा रेलपर चलने लगती है। पर पत्नी अपनी शहकी ताकमें रही। हाँ, बाल-कविताओंमें वे रस लेने लगीं। एक दूसरे दिन जब दुबारा माखनलालने कुछ याद करनेके लिए दिया तो आप उस समय किताब खोलकर बैठीं, जब माँ भी साथ ही कुछ दाल-चावलकी बिनाई कर रही थीं और उन्होंने बहूको कुछ चुगनेके लिए दिया था। आप चुगती भी जा रही थीं और विना अर्थ आँखें टिकाये हुए किताबको भी देखती जा रही थीं। माँ ने ज़रा प्यारसे कहा कि यह किताब किसी और समय देखना। बहूने बहुत ही लाडली बहू बनकर दबे स्वरमें कहा, 'नहीं करूँगी, तो वे मारेंगे।' मारनेकी बात सुनते ही माँ चौंकी। पूछा कि क्या वह मारता भी है? बहू चुप। चुपका अर्थ है कि जो चाल चली है वह है चुप! और फिर भोले बनकर यह भी कह दिया कि हाँ, एक दिन याद नहीं किया था तो मारा था। माँ भी अवसर ढूँढ़ रही थी कि अपने इस वयस्क कमाऊ पुत्रकी ज़रा कसकर खबर लें। वह अवसर आज हाथ आ गया। जब माखनलाल घर आया तो माँ ने डाँट पिलाई और कहा, 'यह तुम्हारी कोई स्टूडेण्ट नहीं है कि जाओ, निकल जाओ इस घरसे। यहाँ घरमें तुम्हारी हेडमास्टरी नहीं चलेगी। यह बहू पीटनेके लिए नहीं बनी है। न पढ़नेके लिए बनी है।' और दे गालीपर-गाली···और उधर सासकी ढालके पीछे सुरक्षित बहू हलके-हलके मुसकरा रही हैं···

एक छाँव आम्र-निकुंजोंकी होती है, एक ठंडी छाँव गहरे-घने बरगद-की होती है, एक सुहानी छाँव नीमकी होती है और एक छाँव लताद्रुमोंसे आवृत एकान्त निकुंजोंकी होती है, पर एक छाँव माँकी अनुपस्थितिमें नवपत्नीकी होती है। उस छाँवमें समग्र व्योम हस्तामलक-सा निकट

आकर खड़ा हो जाता है। व्योमकी गहरी नीलिमा उन्हीं क्षणोंमें अपना गोपन राग गा सुनाती है !

पतिकी नाकका अभिषेक !

प्रतिवर्ष माखनलालके संयोजकत्वमें वसन्तपञ्चमीके दिन छात्रोंके सहयोगसे एक हस्तलिखित पत्रिका निकलती थी। यह इस अध्यापककी पत्रकारिताके वे अनियन्त्रित सूत्र थे, जो यत्र-तत्र ज़मीन फोड़कर मुँह खोलने लगे थे। इस पत्रिकाका सम्पादक कोई भी एक छात्र होता और हर अङ्क पीछे सम्पादक कोई दूसरा छात्र आ जाता। इस पत्रिकामें प्राइमरी शालाके अतिरिक्त ऊँची कक्षाओंमें पढ़नेवाले दूसरे स्कूलोंके छात्र भी होते और वे छात्र भी होते जो खण्डवासे बाहर शहरोंमें ऊँची श्रेणियोंकी परीक्षा देनेके बाद लौटते। इस पत्रिकाका नाम था 'भारतीय विद्यार्थी'। वसन्त पञ्चमीके दिन यह पत्रिका निकलती और वे विद्यार्थी माखनलालके घरपर एकत्र होकर किसी एक कामकी प्रतिज्ञा करते और उसे पूरा कर दिखाते।

एक वसन्तपञ्चमी आई। उससे पहले ही एक दिन ग्यारसीबाईने माखनलालके शिष्योंको ज़रा चहका दिया और कहा कि यदि उनके ऐसे प्रिय छात्र हो, तो नदीकी धारा बाँधकर दिखाओ, वरना तुम्हारे मास्टरजी-की नाक कटी समझो जायगी !

अब मास्टरजीकी नाक शूर्पणखाकी नाक तो थी नहीं कि उसे काटने-से किसीको यश मिले। वह नाक तो तीव्र बुद्धि विद्यार्थियोंकी अपनी ही नाक थी। वसन्तपञ्चमी आई और ग्यारसीबाईने एकत्र छात्रोंसे स्वयं ही कहा कि चलो, आज नदीकी धारा बाँध दी जाय, वरना तो इनकी नाक···और बात पूरी करनेसे पहले स्वयं चलनेकी भी तैयारी कर ली। माताजी गाँव गई हुई थीं। एकान्तप्रियताका पूरा उत्साह था। विद्यार्थियों-की पूरी छुट्टी थी। खण्डवासे यही डेढ़ मील दूर आना नदी है। यों वह

ग्रीष्ममें सूख जाती है, लेकिन उसकी पतली धारा तो बहती ही रहती है। एक स्थलपर जाकर वह छोटा प्रपात बनाती है। ठीक उससे कुछ इधर ही उस धाराका संक्षिप्त पाट ऐसा था, जहाँ वह बाँधी जा सकती थी। खाना बनाकर सुबह ही तैयार कर लिया गया था। कन्धोंपर लटकाकर उसे, सब नदी किनारे पहुँच रहे थे। सबके पीछे माखनलाल था। उसे अपने विद्यार्थियोंपर विश्वास था और था अभिमुख अपनी पत्नीकी ओर, जो स्वयं ही अपने हाथों उसकी नाकका अभिषेक करनेके लिए आनन्द-विह्वल बढ़ी चली जा रही है।

नदीपर पहुँचकर खाना एक ओर रख दिया गया और पत्थर व गारे-से सब मिल-जुट गये धारको रोकनेके लिए। दुपहर आ गई और दुपहर ढल गई, पर धारा पूरी बँध नहीं रही थी। उस धाराको जैसे इस तरुणी-से ही ठिठोली करनेकी सूझी थी। बार-बार उसके बनाये बाँधको लाँघ जाती थी। इधर जिद् यह थी कि जब तक धारा न बँधे, कोई भोजन न खाये। माखनलाल तो अलग एक पेड़के नीचे अपनी एक पुस्तक पढ़ता रहा। यों, दुहरी मार व्यंग्यों और शिकायतोंकी बादमें शामको जाकर न पड़े कि इन्होंने एक भी पत्थर नहीं उठाया था, दो-चार पत्थर उठाकर रखे भी, पर सारे समय अपने अध्ययनमें ही लेटे रहा। उधर तीसरा पहर ढला, जब जाकर वह धारा बँधी। पत्नीने स्वयं ही नाक काटनेका आयोजन रचा था और स्वयं ही उस नाककी प्रतिष्ठाके लिए कमर कसी थी! जब धारा बँध गई तो बड़ी हर्षित, बड़ी मुदित हुईं। विद्यार्थी भी ताली पीट रहे हैं। तब नदी किनारे मिला-जुला भोजन हुआ। स्वयं ही ग्यारसीबाईने सबको परोसा। बड़े चावसे, बड़े उत्साहसे। सबसे अधिक ख़ुश उस दिन ग्यारसीबाई ही रहीं।

पर माखनलालने नदी किनारे इस आयोजनमें जो निठल्लोंका-सा पार्ट किया था, और नाम भरको एक पत्थर उठाकर रखा था, उसका सबक़ सिखानेका क्षण तब आया, जब माँ गाँवसे लौटीं। आपने ही

सबसे पहले माँको सूचना दी कि वसन्तपंचमीके दिन ये ऐसे-ऐसे सबको नदी किनारे ले गये थे और वहाँ हम सबको गारा-मिट्टी-पत्थर उठवाते रहे।

माँ पूरी तरह भड़कीं। पहले तो उन्होंने मकान-मालकिन गंगा बहनकी खबर ली कि तुमको शर्म नहीं आई कि भले घरकी बहू-बेटीको यह यूँ नदी किनारे ले गया और तुमने जाने दिया। और वहाँ इस जवान-बहूसे इसने यों गारा-मिट्टी उठवाया। माखनलालको भी क्या डाटें नहीं पिलाईं। और कहा, 'म्हारी सरवन-सी बहूसे तू गारा-कीचड़ और पत्थर उठवायेगा?' और बड़ी देर तक माँकी भर्त्सना, तिरस्कार और लांछनाका रिकार्ड बजता रहा। और उधर बहूरानी पर्देके पीछे खड़ी हँस रही हैं। माँका विवाहित पुत्रपर बहूके पक्षमें न्याय देकर इस तरह दण्डित किया जाना, उन्हें सदा ही आनन्दित करता था।

ख़ैर, गालियाँ खाईं, सो खाईं। भोजनका समय आया। अध्यापक महाशय रसोईमें जाकर बैठे। आपने सुस्त, उदासीन देखा कि बहूरानी तो निहायत भोली बनी बैठी रसोई परस रही हैं। कहीं भी तो चेहरेपर विजयके चिह्न नहीं हैं कि कहीं प्रश्न कर रही हों कि कहिए, वसन्तपंचमीके दिन पेड़के नीचे आरामसे पैर फैलाकर लेटनेका मज़ा आया? पर भोली वे कब तक रह सकती थीं। जो हँसी छूटी, तो भागी बाहर रसोईसे। अब अकेले ही रसोई खायी जा रही है और जो एकान्त मिला था कि सासकी लाडोरानीकी तबियत ज़रा दुरुस्त कर दें सो वह अवसर भी हाथसे गया। आखिर वयस्क पुत्रने माँसे चीखकर पूछा कि यहाँ रसोई कौन परोसेगा? क्या खाली थाली लिये रसोईमें बैठा रहूँ? माँने फिर न्याय बहूरानीके पक्षमें दिया। बोलीं, 'अरे, ज़रा थावस ले। रसोईसे बाहर काम हो गया होगा। अभी आती है।' पर द्वारेसे साफ़ दीख रहा है कि बहूरानी तो आँगनमें एक आड़में खड़ी होकर पेटमें बल डाल-डालकर हँस रही हैं।

न्याय-वसूलीके अकल्पनीय पैंतरे

एक रातके तीसरे पहर विद्यार्थियोंके घर आनेका समय निर्धारित। घरका मुख्य द्वार बाहर एक लम्बी गलीके मुँहपर। आप चुपकेसे उस समय गलीके द्वारपर ही पहुँच गईं, जब आहट लगी कि लड़के आ रहे हैं। आपने द्वारेसे ही सब विद्यार्थियोंको वापस कर दिया यह कह कर कि आज मास्टरजी नहीं पढ़ायेंगे। विद्यार्थी लौट गये। मास्टरजी अन्दर कमरेमें कुछ देर प्रतीक्षा करनेके बाद वापस सो गये। दूसरे दिन एक ऐसे वैश्य सज्जनने मास्टरजीकी हलकी-सी खबर ली कि आखिर आप रातको जब पढ़ानेके लिए समय नहीं दे सकते, तो बच्चोंको उतनी रात अपने घरपर बुलानेका कष्ट ही क्यों देते हैं। मास्टरजी सुनकर परेशान। वे तो यह शिकायत करनेपर तुले थे कि मैं कमरेमें राह देखता रहा और बच्चे ही पढ़ने नहीं आये। शिकायत सुनी तो बहुत अखरा। घर आये। कुरेद-कुरेदकर पूछा तो पता लगा कि हाँ, घरकी मालकिन साहिबाने बच्चोंको गलीसे ही बाहर अपने अधिकारसे भेज दिया था। अध्यापक महाशयने घरकी मालकिनकी डटकर खबर ली। घरकी मालकिनने इस समय डाट-फटकार इसलिए सुन ली, क्योंकि अकेली थीं और सासजी गाँव गई हुई थीं। जब सास आई तो उनके घरमें पैर रखते ही सारी शिकायत की और अपने मनका फैसला हो, इसलिए ऐसे-ऐसे तर्क दिये कि सासजीने अपने सगे बेटेकी दलील विना सुने ही उसे दण्डित किया जाना स्वीकार किया और जैसे ही वह घर आया कि उसकी खबर लेते हुए कहा, "खबरदार, विद्यार्थियोंको पढ़ानेका काम आजसे इस घरसे बाहर होगा। अभी बाहर निकल जाओ इस घरसे। यह घर बहूका है। उसके मामलेमें कहीं दखल न दो!"

श्रीनारायणजी चतुर्वेदीके पिता श्रीद्वारकाप्रसादजी चतुर्वेदीकी कोई पुस्तक महाभारतकी कहानियोंके आधारपर प्रकाशित हुई थी। माखनलाल

वह पुस्तक लाया और पत्नीके हाथमें थमाते हुए कहा कि इसे आजकलमें ही पढ़ लेना, वापस करनी है। लेकिन बहूरानी उसे पढ़ने बैठीं उस समय, जब घरका काम होना था। सासजीने कहा कि यह पढ़ाईका काम पीछे करना, पहले घरका काम करले। चुपकेसे जवाब दिया कि कह गये हैं, जल्दी पढ़ लेना, वापस करनी है। इस चुपकेसे स्वरका अर्थ सासजीके लिए यह होता कि बहू अत्याचारोंकी मारसे दुःखी है। और उनका हृदय पसीज जाता कि इस बहूको पतिके अत्याचारोंसे तुरन्त मुक्त किया जाय। माँने वह किताब बहूके हाथसे लेकर सड़कपर फेंक दी और जब अध्यापक महाशय घरमें घुसे तो उसे डाँट पिलाई कि बहूको पढ़कर नौकरी नहीं करनी है। यह पढ़ना-पढ़ाना तू अपने ही पास रख।

माताजी गाँवसे जब वापस लौटतीं, तो आते ही उनका सबसे पहला काम यह कि अपनी बहूरानीके सारे शरीरको ध्यानसे देखा करती थीं कि कहीं उसपर मार-पीटके निशान तो नहीं हैं या किसी और प्रकारके चिह्न तो नहीं उभड़े हैं। एक बार यह हुआ कि उनकी तीव्र दृष्टिने आखिर खोज लिया बहू की उँगलीपर खरोंचका एक निशान। पूछा कि यह कहाँ लगी? पूछना इतने प्यारसे हुआ था कि बहूरानीका स्वर काँपते हुए भी थोड़ा दर्द भरा-सा हो गया! बोलीं, "एक दिन घूमने ले गये थे। वहाँ पुल पार करवाया। पार करते समय एक काँटा लग गया।" बस माँने सबसे पहला काम यह किया कि श्रीमान् कमाऊ पूतके घरमें पैर रखते ही उसकी खबर ली और कहा, "म्हारा शरवण (शालीन) जिशा टाबरांने मत ले जाबो कर। तू अकेला घूम आबोकर।" और न जाने कितने समय तक अपना डाँटना ज़ारी रखा।

माखनलालपर माँसे फटकार पड़वानेका एक ही उद्देश्य बहूरानीका रहा करता। वह यह ज़िद्द थामे रहता रात होते ही, कि घूमने चलना है। और घूमना भी ज़रा-सी दूरका हो, एक मीलका हो तो ग़नीमत समझो।

घुमक्कड़ पति जब तक पाँच-छः मील न घूम ले, उसके पैरोंकी खुजली न मिटे। बेचारी दिन-भरके घरेलू कामसे थकित पत्नी अब देर रातमें पतिकी इस इच्छाकी पूर्ति कैसे करे कि वह उसके साथ पाँच-छः मील अँधेरेमें घूमने निकले। तो, इस घूमनेकी साँससतसे पल्ला छूटे और घुमक्कड़ पति अपने साथ अपनी पत्नीको भी घुमानेकी ज़िद्दसे बाज आये, इसलिए अनाथा पत्नी अपनी सासका संरक्षण चाहती और किसी-न-किसी बहाने पतिकी इस ज़िद्दकी दुरुस्ती करवाती।

पर माखनलालका पति अपने अवसरकी भी ताकमें रहता और खूब डाँट-फटकार पड़नेपर पत्नीसे कहा करता, "अच्छा अबकी बार आने दीजिए मुझे बुख़ार, तब देखा जायगा।"

बुख़ार आते ही माँका सारा पक्ष बहूसे हटाकर बेटेके सिरहाने रख दिया जाता। अब बीमार बेटेके लिए गरम पानी जल्दी नहीं हुआ है, या कोई पीनेका गिलास ठीकसे साफ़ नहीं हुआ है या कोई और मामूली ग़लती हो गई है तो बेटा बहूकी शिकायत माँसे करता और उन क्षणोंमें माँने जो ५० प्रतिशत न्याय बेटेके लिए सुरक्षित कर रखा था, उसकी बँधी हुई गाँठ खोल देतीं और बहूको वह-वह फटकार और डाँट पिलातीं कि उसे रोना-सा आ जाता और बेटेके आनन्दकी सीमा न रहती।

सुरुचि और चरम आनन्दके कठिन क्षण

किन्तु माँकी ओटमें पति-पत्नीका यह सदाबहारी पुष्पित जीवन जब दूसरे परिच्छेदमें प्रविष्ट हुआ तो सम्पूर्ण दृश्य बदला, यद्यपि पात्र-पात्री वे ही रहे।

"एक बार ब्रह्मनपुरीवाले शामराव कालेके मकानमें, जहाँ मैं किरायेसे रहता था, मेरे कुछ क्रान्तिवादी मित्र आये। रात-भर हम लोग चर्चा करते रहे, क्योंकि रात ही उन्हें चले जाना था। आज सोचता हूँ कि उन मित्रोंके द्वारा जंगलसे बहुत बड़ा लम्बा भूमिभाग लाँघकर जो ज्ञान, जो

संस्कृति, जो दृढ़ता और बात करनेका जो सलीका उन मित्रोंके द्वारा मेरे खंडवाके मकानमें मेरे पास आया करता था, वह यदि न आता तो कदाचित् ऐसी बुद्धि न पाता कि अपनी असफलताओंमें मैं किसी प्रकार टिक ले जाऊँ और अपनी कठिनाइयों और बदनामियोंमें धीरज रख ले जाऊँ।

"सुबह जब वे चले गये, तो मैंने अपनी छोटी-सी पेटीमें जब पिस्तौल छुपा कर रखे, तो पत्नीने कहा कि लाओ, मैं रख दूँगी। ताला लगा दूँगी।

"जब मैंने ज़रा बनकर कहा कि बड़ी कामकी चीज़ है। ज़रा सम्हाल कर रखना। तो वह बोली कि मैंने रातको तुम्हारी सब बातें सुन ली हैं। यह चीज़ क्या है, यह भी मैं जानती हूँ और यह भी जान गई हूँ कि तुम इसका चलाना सीख गये हो। अबकी बार आने दो माँको, सब कहे देती हूँ।

"किन्तु यह महज़ धमकी थी। पत्नीने सब सामान सम्हालकर रख दिया। उस रात जब आगन्तुक चले गये, तो शेष रात हम दोनों पति-पत्नीकी बातचीतमें ही गुज़री। उस दिन मानो मैंने अपनी पत्नीको पाया। उस दिन मेरे परिवारके प्रति मेरे मनमें प्रथम बार स्नेह जाग्रत हुआ। उसी दिन मेरे कटु स्वभावमें पहले-पहल मधुरताने प्रवेश किया। उस दिन हम लोग कुछ ऐसी मूर्खतापूर्ण बातें करते रहे, जिसका शायद ही कोई सिर-पैर हो। हाँ, जब ठेठ भोरमें मेरा पढ़ानेका समय हो गया और लड़के उस साढ़े तीन कमरेवाले हमारे टपरेके एक कमरेमें आकर बैठ गये, तब जीवनमें पहली बार पत्नीने मुझे पाँवमें गुदगुदी चलाकर जगाया। और, मैंने कदाचित् पहली बार जाना कि पति-पत्नीका सम्बन्ध ऐसा हुआ करता है!

"उस दिनके बाद, वेतनका रुपया पत्नीके हाथोंमें देते समय मुझे बहुत भला मालूम देता था और अधिक खर्च कर देनेपर उसकी झिड़की-

से मुझे रंज नहीं होता था। मेरे दो छोटे भाई, जो मेरे पास रहते थे, पत्नी उनको खूब साज-सिंगार कर स्कूलमें पढ़ने भेजतीं। छोटे भाई हरप्रसाद जो चीज़ पहनते थे, उसे जल्दी फाड़ डालते थे। जब उनकी धोतियाँ फट जातीं और फाड़नेके बाद फटना दबानेके लिए जब वे धोतीमें गाँठें बाँध लेते, तो मेरी पत्नी पहननेके लिए मेरे धुले हुए उपरने (लम्बे अंगौछे) उसे पहननेके लिए दे देतीं। और फिर जब वे भी फट जाते, तब उन्हें सीकर स्कूल जाते समय मेरे गलेपर डालने योग्य अंगौछे बनाकर मुझे दे देतीं। जब मैं अपनी नाराजवृत्तिसे उपरनोंके फटने और सिये जानेका कारण पूछता, तब वह ताना-सा करके कहतीं, 'चौबे-वंशको तो ज़रा-सी भी बात बरदाश्त नहीं होती! तुम्हारे पास इतने बच्चे पढ़ने आते हैं कि तुमको इतनी छोटी बातपर ध्यान ही नहीं देना चाहिए।''

"मैं ग़ुस्सेसे कहता कि बुढ़िया बननेकी ज़रूरत नहीं है। मेरे उपरने मत फाड़ा करो। किन्तु उन उपरनोंका फटना, उनका धोया जाना और उनकी सिलाई बाक़ायदा ज़ारी रहती। तनखाह छोटी होनेसे मैं परिवारमें किसीको सुखी नहीं रख सकता था। किन्तु इसके पश्चात् भी जब मैं बातोंको मान जाता तो मन-ही-मन कहने लगता कि यह ऐसी कौन-सी बात है जो मुझे इतना ठण्डा कर देती है!

"घरमें जब यह परिवर्तन आया तो मेरी पत्नीपर मेरा यह इलज़ाम था कि उसने मुझे कुछ अद्रव्य खिला दिया है और अपने वशमें कर लिया है। यह इलज़ाम अकेले मेरे परिवारके बड़े-बूढ़ोंका ही नहीं था, खण्डवाके सारे मुहल्लेकी बड़ी-बूढ़ियाँ इस विषयमें मानो एक मत थीं।

"तब, मेरी पत्नीने एक दिन इस आपदाका यह उपाय सुझाया कि यदि मैं उसे रोज़ मारता-पीटता रहूँ और घरमें रोना-चिल्लाना होता रहे तो इस बातसे उसकी बदनामियाँ भी कम होंगी और मुझपर भी इलज़ाम

नहीं लगेंगे। एक-दो दिन विना मारे-पीटे ही यह स्वांग भरके देखा, किन्तु इससे मुझे घृणा हो गई और मैंने भविष्यमें व्यर्थ मारने-पीटनेकी बातको स्वीकार नहीं किया।

"हाँ, जब कभी मेरी पत्नीकी माँ अपनी बेटीको देखने आतीं, तो विना कारण ही मैं सोच लेता था कि वे अपनी बेटीको मेरे परिवारके ख़िलाफ़ भड़काती हैं और मैं उनका अपने घरमें अधिक दिन रहना बरदाश्त नहीं करता था। मुझे यह ख्याल कभी आता ही नहीं था कि यदि मुझे अपने माता-पिता प्रिय हैं, तो मेरी पत्नीको भी उसके माता-पिता प्रिय हो सकते हैं। जब मैं अपनी पत्नीको लेनेके लिए ससुराल जाता, तो मुद्दई-मुद्दा-लेहकी भावनासे झगड़ता और उनके बहुत प्यार करनेपर भी मेरे परिवारकी ज़रा-सी आलोचना कर देनेपर मैं भड़ककर ससुरालसे चल देता और अपनी छोटी भूआके यहाँ भोजन करता। मेरी पत्नी यदि इस विषयमें कुछ समझाती तो मैं उसकी कोई बात सुननेके लिए तैयार नहीं था। मुझे रह-रहकर एक ही बातका आश्चर्य होता कि मेरी पत्नी पिस्तौल और ख़तरोंकी बात न मेरे माता-पिताको मालूम होने देती है और न किसी औरको। यहाँ तक कि अब किताबें और अख़बार भी मेरी पत्नीकी पेटीमें सुरक्षित रहने लगे थे। वह हँसकर कहती, 'इन सौतोंको भी मुझे ही सम्हालकर रखना पड़ता है।'

"मेरी किताबों और अख़बारों और वस्तुओंका सुरक्षित रह जानेका प्रबन्ध हो जानेसे मेरे मनको सन्तोष हुआ। मेरी पत्नीकी नाराज़गीका अब एक ही कारण रह गया था, वह था मेरे घरमें लोगोंका अत्यधिक आना-जाना। परन्तु वह अपने मनमें समझ गई थी कि मैं भी चाहूँ तो लोगोंके आने-जानेको नहीं रोक सकता।

"इन दिनों मेरे परिवारकी बड़ी-बूढ़ियाँ मेरे स्वभावके ख़राब होनेका कारण मेरी पत्नीको ही समझती थीं और पत्नीको भी अपनी बदनामी

सुननेका अभ्यास पड़ गया था। इसलिए अब मेरी माँ मेरे अपराधोंकी फ़ेहरिस्त बनाकर मेरी पत्नीसे एक-एक बातकी कैफ़ियत तलब करतीं, तब मेरी पत्नी मौन धारण कर लेती। हाँ, जब पिताजी खण्डवा आते, तब वे अपनी बहूका अत्यधिक पक्ष लेते और माँको समझाते कि तुम्हारे दिनोंमें तुमने जो दुःख भोगे हैं, वे ही दुःख बहू क्यों भोगे? किन्तु इस तरहकी दलीलोंसे शान्ति मिलनेके बजाय माँ भड़कती ही अधिक थीं। और मेरी पत्नी उनके समक्ष अधिक अप्रिय हो जाती थीं। पर पिताजीकी नज़रमें यद्यपि मैंने स्कूलमें अध्यापकी करनेके बादसे शैतानी करना बन्द कर दिया था, पर बहूके मामलेमें मैंने शैतानी बन्द कर दी है, इसका विश्वास उन्हें हो ही नहीं सकता था। यही एक कारण था कि उनका न्याय सदा बहूके पक्षमें होता था।

"जब रातके दस-ग्यारह बज जाते और माँके सोनेकी आवाज़ स्पष्ट सुनाई देती, तब हम पति-पत्नी घूमने निकलते। मेरा थोड़ा उद्दण्ड स्वभाव था ही। ज़िद्दी भी था। अतः पत्नीके अनुनय-विनय करनेपर भी मैं उसे घसीटकर बाहर ले जाता। वह मुझे समझाती कि बाबई और मसनगाँवमें तो कोई नहीं घूमने जाता। क्या वहाँ आदमी नहीं रहते? तब मैं कहता कि दलील मत करो और चुपचाप चलो। हम लोग सुदूर पद्म-कुण्डपर जाकर बैठते। उन दिनों वह घने जंगलोंमें था। बड़े-बड़े विशालकाय वृक्ष औरउसके बीचमेंसे एक पगडण्डी। मेरी पत्नी बहुत डरती थी। किन्तु मैं सिरसे छोटी-सी साफी बाँधे, हाथमें लट्ठ लिये, जब जंगलमें घुसता, तब पत्नी बहुत घबड़ाती। उस अँधेरे बियाबानमें मुझे तो आनन्द आता, किन्तु उसे पैरमें काँटा लग जानेकी, या रास्तेकी किसी ख़राबीकी, रास्तेमें गड्ढे मिल जानेकी शिकायत प्रायः रहती। कभी-कभी मैं अपने साथ बहुत आग्रह करनेपर एक-दो विद्यार्थियोंको, जो मेरे घर रहकर ही पढ़ते थे, ले लेता। पद्मकुण्डके सुनसानपर मेरी विचित्र आसक्ति थी।

"जिस समय माँ घर चली जातीं, मेरे सम्बन्धमें पत्नीसे आगाह करती हुई कह जातीं, 'देख, इसे सभा वगैरहमें जाने, देरसे घर आने, बाज़ारकी चीज़ें खाने, अपनी हैसियतसे ज्यादा क़ीमतका कपड़ा ख़रीदने, लोगोंसे बिना सबब लड़ाई लेने और राडूल्या (स्त्रैण, स्त्री-आधीन) जैसे सदा ही घर रहनेकी इसकी आदत न पड़ जाय। मैं तेरे भरोसे छोड़कर जाती हूँ।' उस समय मानो भरोसेके योग्य बस दो प्राणी थे—मेरी माँ और मेरी पत्नी और अविश्वास करने योग्य केवल मैं था।

"और, जब सोचता हूँ, मेरा परिवार मुझपर विश्वास नहीं करता था, लोग मुझपर विश्वास नहीं करते थे और अंग्रेज़ी शासनसे भय खाते थे, राज्य भी मुझपर विश्वास नहीं करता था। सचमुच, मैं विश्वासका पात्र तो था। किन्तु, आजकी दृष्टि तो उस समय थी नहीं। मैं तो अपने कामोंमें रुकावट करनेवाले लोगों और परिवार-जनोंको भी शत्रु समझने लगता था।"

मनमें शत्रुभाव जहाँ हावी हो गया हो, वहाँ पारिवारिकताका रस बस उतना ही रहता है कि वह निराश्रित और खुले आसमानका वृक्ष नहीं है; परिवारका एक सदस्य है और उस बन्धनमें उसे बँधे ही रहना है। इस रसमें ग्लानि अधिक फफूँदती है। माखनलाल घरमें कमाऊ और परिवार-परायण रह कर भी, प्रतिक्षण अनिश्चय-सन्देह-अनहोनी इन तीन विपर्ययोंके दमघोट्टू वातावरणमें साँस लेते हुए तरुणाईके दिन व्यतीत कर रहा था। बेचारी पत्नी—नववयस्का पत्नी, अपने दाम्पत्यके अकल्पनीय असन्तुलन और वैषम्यसे हाय खाते हुए भी मौन थी और दैनन्दिन कार्योंमें जूटी रह कर कुछ सोच न पा रही थी कि घरका आनन्द किस कोनेमें गुम हो गया है और वह किस शुभ घड़ीमें मिलेगा। शुभ घड़ीकी प्रतीक्षामें बैठे हुए, उसकी टोह लेते हुए एक-न-एक अशुभ जब दर्शन दे जाते थे, तो अबोधा पत्नी सिहर जाती। माँ सिहर जाती। घरमें जो

माखनलालके छोटे भाई साथ रहते, वे भी होशकी साँसोंमें घटित होने वाले अशुभोंको निकटसे देखते और जैसे उनसे अधिकाधिक परिचित होते जाते। इस सिहरनमें ही २० वर्षीय माखनलाल, भविष्यकी ओर दृष्टि उठाये, आखिर साहस कर जीवनके एक नये मोड़पर आ खड़ा हुआ···

एकादश परिच्छेद

हिन्दी-पत्रकारिताका योजना-बद्ध अभियान

माखनलालने बम्बई बाज़ारकी पाठशालामें पहली कक्षाके पाठक (इन दिनों अध्यापक 'पाठक' ही कहलाता था) के रूपमें १९०७ की १९ जुलाईसे काम शुरू किया था। दो वर्ष बीतते-न-बीतते नाम भरके लिए वह इस पाठशालाका अध्यापक रहा, यों उसका अधिकांश समय पाठशालासे बाहर अन्य गतिविधियोंमें बीतने लगा। पाठशालाके रजिस्टरमें माखनलालकी उपस्थिति प्रतिदिन है। पर यह उपस्थिति उसके जीवनके अन्य रहस्योंकी भाँति केवल भुलावा पैदा करनेवाली है। उसके पर उग चुके थे और वह अब उड़ान भरनेवाली साहसिकता पूरी तरहसे अपने छरहरे शरीरपर ओढ़ चुका था। जो शुरूमें नौकरी करते हुए होना था, वह सिर्फ़ यह होकर रहा कि हेडमास्टर श्री मोहनलाल वर्मासे स्वाभाविक अवस्थाकी ज़रा चखचख हो गई, किन्तु सैयद अमीर अली 'मीर'की सदाशयताने इन विरोधी आत्माओंमें गहरी निष्ठा और आत्मीयता इस तरह रोप दी कि देखनेमें यह पाठक हेडमास्टरका अधीन व आज्ञाकारी कर्मचारी भर रह गया, पर व्यावहारिक जगत्में हेडमास्टर इस तरुण पाठककी अनधिकृत कार्यवाहियोंका आधारस्तम्भ बन गया। अब यह गोपनीय रूपसे समझौता हो गया कि किसी भी कामसे माखनलाल खंडवा-

से या पाठशालासे अनुपस्थित रहे, लेकिन रजिस्टरमें उसकी अनुपस्थिति पूर्ववत् लगायी जायगी। अनुपस्थित होनेका एक अर्थ यही होता कि पुलिस तत्क्षण इस तरुण पाठकको गिरफ्तार कर लेती। दूसरे यह तय रहा कि आचार-विचारमें हेडमास्टर इस तीव्र मेधावी पाठकका सदा ही कट्टर आलोचक रहेगा। दृश्य आलोचनामें माखनलालके विरोधी वह नहीं देख पाते थे, जिसे देखनेसे उन्हें उसके खिलाफ़ नया खड्यंत्र रचनेमें आनन्दसे अधिक जीवनका सबसे बड़ा हर्ष मिल पाता। पाठशालामें हेडमास्टरके अलावा एक पाठक और था, वह सभी प्रकारसे हेडमास्टरके आश्रित था, इसलिए माखनलालकी गुप्त कार्यवाहियोंके प्रति अनिच्छापूर्वक उदासीन रहनेमें ही वह अपनी हित-सिद्धि देखा करता।

पाठशालामें छठे-चौमासे इन्स्पेक्टर ऑफ स्कूल्स, असिस्टेण्ट इन्स-पेक्टर ऑफ स्कूल्स तथा म्युनिसिपल बोर्डके निरीक्षक आते। वे और उनका निरीक्षण अपने सुभाव और अपनी मौज़के अनुरूप कुछ घोषित कर जाते। पाठशालाकी जो 'विजिटर्स बुक' है, उसमें अधिकांश आगत जनों द्वारा पाठक माखनलालकी शिक्षण-पद्धतिपर असन्तोष ही प्रकट किया गया है। २० जुलाई १९१० की निरीक्षण-रिपोर्टमें लिखा गया है कि "प्रथम कक्षाके पाठककी पढ़ाई ठीक रीतिसे नहीं होती। उसने रीति भी नहीं समझायी है। कविताके अर्थ समझाना चाहिए। पढ़ायी इस कक्षाकी बहुत कम है, ज्यादः ध्यान देना चाहिए।"

पश्चिमी आगकी तपिश

अपने जिस पुत्रको अपने जीवनकी श्रेयास्पद चिन्ता मानकर जिस पिताने एक-एक दिन गिननेके बाद अपनी ही दिली इच्छाके अनुरूप एक पाठशालाका पाठक बनवाया था, उस पुत्रकी गति यह थी! यों श्री नन्द-लालजी चतुर्वेदी स्वयं इन निरीक्षक साहबोंकी रिपोर्टोंको बहुत ज्यादा तूल

न देते, हो सकता है उसी हिसाबसे माखनलालने भी इन रिमार्कोंको अपने दिमाग़का बोझा न बनाया हो। पर पिता जहाँ पाठशालाके जीवनमें दत्त-चित्त थे, वहाँ उनका पुत्र पाठशालामें कमसे कम जड़ें रोप पाया था। वह तो आकाशबेल-सा उड़ा-उड़ा एक ऐसा आसरा खोज पानेके लिए जी-जान एक लगा रहा था, जहाँ वह अपने स्वतन्त्र विधानमें अपने सूत्र फैला सके, स्वयं विकसित हो सके। प्राइमरी पाठशाला अंग्रेज़ी सल्तनतका ऐसा अस्तबल था, जहाँ थोड़ेसे शिक्षित घोड़ोंको सल्तनतकी सवारी करने-करानेकी प्राथमिक सुविधाओंके साथ ऐसे शिकंजेसे बाँध रक्खा गया था कि वे मजबूरीकी हिनहिनाहट तक न कर सकते थे।

ऐसे सिहरन-भरे क्षणोंमें माखनलालको एक ऐसे व्यक्तिका परिचय मिला, जो अंग्रेज़-परस्त शासनका एक पुरजा तो था, लेकिन पुरजेसे अधिक अपनी स्वतन्त्र हस्ती भी रखता था। यह व्यक्ति इसी पाठशालाकी कमिटी-का ऐसा सदस्य था, जो सबसे अधिक कार्यकाल तक रहा। अन्य सदस्य इस कमिटीमें आते रहे, लेकिन कमसे-कम समय रहे। इस व्यक्तिका नाम था श्री कालूरामजी गगराड़े। ये खंडवाके वकील थे, लेकिन समाज-सुधारकोंमें इनका नाम सबसे अधिक ऊपर था। गगराड़ेजी भी अपने समाजमें कम आलोचनाके पात्र नहीं थे और उन्हें भी कम जली-कटी सुननेको नहीं मिली थी। फिर भी वे अपने निश्चयोंमें दृढ़ थे। स्वयं एक जाति-सुधार विषयक पत्र प्रकाशित करते थे। उनका आगमन प्रायः पाठ-शालामें होता। वे पाठशालाके हेडमास्टरके साथ पाठक माखनलालके भी सम्पर्कमें आये। उन्हें माखनलालमें एक योग्य सहायक और सुधारप्रियसे अधिक सूझ-बूझके नौजवान होनेकी गन्ध मिली। उन्होंने उसे अपने पास क्रमशः उठाया-बैठाया। प्रचलित विषयोंपर वे उससे बहस करते, उसे नया प्रकाश देते, विश्वमें चल रहे आन्दोलनोंका ज्ञान देते और उसे बताते कि देशमें कैसे नवजवानोंकी इस समय आज आवश्यकता है। राज-नीतिक चेतनाका प्रश्न गगराड़ेजीके साथ था भी नहीं, वे तो हुमस और

हुलास, तरंग और तराश, सुहास और साहस, पकड़ और परख, मर्यादा और मरीचिका जैसे दायरेमें ही अपनी प्राणशक्ति और चिन्तनशक्तिकी कतर-ब्यौंत करनेमें अपने पौरुषकी सार्थकता मानते थे। लेकिन यह वह युग था, जब ऐसी ही सार्थकता समाजमें जबरदस्त मान्यता पाया करती और पा लिया करती। पश्चिमी शिक्षा कुछ ऐसी ही आग थी कि उसकी तपिशसे भारतके नौजवानोंमें एक नया रंग चटखता था और उनकी बदरंग डालियोंपर एक नयी पत्ती ही कोपला उठती थी। देशके भिन्न-भिन्न समाजोंमें जो जागृति और सुधार-चेतना आई, वह ऐसी ही सामूहिक हरियालीका फल थी।

माखनलाल जीवनके नये मोड़की पूरी खोज-ख़बर पाता जा रहा था। उसका यह मोड़ उसकी क्रान्तिप्रियतासे भी अधिक घटनाप्रिय होने वाला था। अब इस मोड़पर उसे प्रतिक्षण पुलिसकी निगाहोंसे बचनेके लिए परेशान होनेकी जरूरत नहीं होगी। इस मोड़पर आगे बढ़नेमें उसकी प्रतिभा उलूकवादिताका जीवन न बितायेगी। इस मोड़पर वह जैसे अपने सम्पूर्ण जीवनका कर्तृत्व एक छोटेसे दीपकके रूपमें पा जायगा, जिसका फैलाव उसके हाथमें रहेगा, जिसके प्रकाशको दूर तक फैलानेमें उसकी सामर्थ्यका कोई विरोधी न रहेगा। गगराड़ेजी यदि एक नये स्वप्न-के संयोजक थे, तो उन्हें माखनलाल ऐसा कार्यकर्ता मिला जिसके हाथमें उस नये संयोजनके कार्यकी क्षमता अपूर्व थी।

किन्तु गगराड़ेजीमें जो नहीं था और जिसका मिलना माखनलालके सौभाग्यकी दृष्टिसे आवश्यक था, वैसा व्यक्तित्व भी खण्डवामें विद्यमान था। सूर्यकी किरणोंमें दाहकता तो है, पर स्वयंमें वे अशक्त हैं। उन्हें आग जलानेके लिए उस शीशेकी जरूरत पड़ती है, जिसमें केन्द्रित होकर वे आग जलानेकी जुम्बिश भर सकें। माखनलालमें नये मोड़पर भाग चलनेके लिए जिस जुम्बिशकी जरूरत थी, वह दी श्री माणिकचन्दजी जैन ने।

श्रीमाणिकचन्दजी जैन खंडवाके ही एक सम्भ्रान्त परिवारके तीक्ष्ण-बुद्धि वकील थे। आपने खंडवा हाईस्कूलसे १९०२ में फर्स्ट डिवीज़नमें परीक्षा पासकर स्कालरशिप प्राप्त की थी। इन्दौर होल्कर कालेजसे आपने मध्यप्रान्त भरमें एफ. ऍ. की अनौपचारिक परीक्षामें दूसरे नम्बरपर उत्तीर्ण होकर पहली ख्याति पायी थी। तदुपरान्त आपने छात्रवृत्ति प्राप्त करनेके कारण एफ. ए. की पढ़ाई नागपुरके हिस्लाप कालेजमें शुरू की, और एफ. ए. पास किया। उसके बाद आपने आगेका शिक्षण प्रयागके सेण्ट्रल म्योर कालेजमें शुरू किया, जहाँ आपको खंडवाके ही श्री कालूरामजी गगराड़ेसे बहुत अधिक सहायता मिली। गगराड़ेजीने अपना गहरा प्रभाव इस प्रगतिप्रिय युवकपर छोड़ा। ऐसे ही नये संस्कारोंसे लब्ध इस युवकने बी. ए. की परीक्षा पास की। साथ ही आपको जापान जाकर आगेकी शिक्षा पूरी करनेके लिए १००) रु० मासिककी छात्रवृत्ति भी दी गई। पर इस समय तक आपके पिताजीका देहान्त हो चुका था। अतः आपका जापान जाना रुक गया और आपने कानूनी शिक्षा शुरू कर दी। १९१० में आपने एल.-एल. बी. की परीक्षा ट्यूशनों आदिके आधारसे पास की और उसीके बादसे खंडवामें वकालत शुरू कर दी। वकालत प्रारम्भ करते ही आपकी गणना खंडवाके प्रथम श्रेणीके वकीलोंमें होने लगी।

श्रेणीबद्ध होनेके लिए व्यक्तिके निजी गुणोंकी सार्थकता अधिक अर्थ नहीं रखती। वह सामाजिक प्रयत्नशीलताका मुखापेक्षी होता है। प्रयागमें उच्च शिक्षा ग्रहण करते हुए आपने सार्वजनिक जीवनका जो आग्रह पाया था, वह खण्डवामें सर्वसाधारणोपयोगी कार्योंमें सक्रिय होने लगा। सभी समझदार आपसे परामर्श करनेमें उत्साह पाते। सच्चाई, कार्यकुशलता, प्रामाणिकतासे आपने हर सभा-सोसायटीमें और सरकारी क्षेत्रोंमें प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली। निमाण जिलेके प्राणोंमें आपकी गिनती होने लगी। मौन आपका सिद्धान्त था, कार्यकी सम्पूर्ति आपकी श्वास थी। प्रयागसे ही आपने तन और मनका योगदान देना सीख लिया था। जब आपकी दृष्टि

माखनलालपर पड़ी, और गगराड़ेजीके दायरेमें उसके रहते हुए वह दृष्टि पड़नी ही थी, तो आपने बहुत जल्दी इस कार्यक्षम युवकको अपने साह-चर्यमें ले लिया।

राजद्रोहका पहला आरोप

१९०७में प्रयागमें शिक्षा ग्रहण करते हुए आपने पं० मदनमोहनजी मालवीयकी स्वीकृतिसे अभ्युदयके कार्यालयमें सम्पादन-कार्य शुरू कर दिया था और कुछ-कुछ पत्रकारिताकी दीक्षा भी ले ली थी। खण्डवामें आनेके समय यहाँ केवल एक मराठी साप्ताहिक 'सुबोधसिन्धु' ही प्रकाशित हुआ करता था। इसके बारेमें यह प्रसिद्ध था कि यह पत्रकारिताका एक पोच बहाना भर था। इसमें केवल 'आले, गेले, मेले' (अर्थात् आये, गये और मरे) के समाचार ही छपा करते थे और इसमें वह कुछ नहीं था जो समाजके रक्तकी हरकतकी सूचना दे सके। १९१०तक अपने कलेवरके साथ अपने अस्तित्वको विकलांगकी तरह घसीटते हुए इसका अन्त निकट आ चुका था। माणिकचन्दजीके सत्परामर्श और प्रयत्नोंके फलस्वरूप उसके संचालकोंने 'सुबोध-सिन्धु'का हिन्दी-संस्करण निकालना स्वीकार कर लिया, और माणिकचन्दजीके आग्रहसे माखनलालने उसमें काम करना शुरू किया।

"विना किसी आर्थिक सहायताके, मैं 'सुबोध-सिन्धु' के लेख, समा-चार आदि लिखने लगा। अध्यापकी तो करता ही था। दशहरेके अवसर-पर (१९१२) उसमें मेरा एक लेख निकला 'शक्ति-पूजा'पर। तत्कालीन स्थानीय पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट मिस्टर फेयरवैदरको उसमें राजद्रोहकी गन्ध मिली और उन्होंने उस लेखके लेखकके बारेमें पत्र-संचालकोंसे पूछताछ की। और यह भी जिज्ञासा की कि तुम्हारे पत्रमें राजद्रोह क्यों छपा है? संचालकोंने निर्मल भावसे और निर्दोष रूपसे कह दिया कि वह लेख तो माखनलालका लिखा हुआ है। एक पुलिसका सिपाही पुलिस सुपरिन्टे-

न्डेन्टकी ओरसे मुझे बुलानेके लिए स्कूलमें चला आया। ज्योंही मुझे इस बातका पता चला, मैं दौड़कर माणिकचन्दजीके पास गया।

"उन्होंने कहा कि आपको पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्टसे मिलनेके लिए पैदल हरगिज़ नहीं जाने दूँगा। मेरा ताँगा लेकर जाइए। मैं ताँगेपर पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट महाशयके यहाँ गया, वे अंग्रेज़ थे। अपराधीकी तरह मैं लगभग दो बजेतक, दो घण्टे उनके यहाँ बैठा रहा। उसके बाद उन्होंने मुझसे बातें कीं।

"मैं 'सुबोध-सिन्धु' की एक प्रति जेबमें लेकर गया था। फेयरवैदर महाशयने मुझे घूरकर देखा और पूछा कि टुम सिडीशन लिखता है? जानटा है, टुमको हम कुचल डालेगा?

"कलमके लिए प्रसाद मिलनेका यह मेरा पहला अवसर था। अतः मुझे लगा कि अब शायद मुझे घर वापस नहीं लौटने दिया जायगा। मेरी पत्नी, माँ और मेरे छोटे भाई-बहन घरमें थे। जब उन्हें इस बातका पता चला कि अख़बारमें लिखनेके कारण पुलिस मुझे पकड़कर ले गई है, तब घरमें हाय-हाय और रोना-पीटना मच चुका था।

"पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट महाशयने जब थोड़े ठण्डे होकर मेरे उस लेख-के लिखनेका कारण जानना चाहा, तब मैंने उनसे निवेदन किया कि मैं हिन्दीमें वह लेख आपको सुना देता हूँ। उसके बाद चर्चा होने लगी। वे हिन्दी जानते थे। इस बातके लिए राज़ी हो गये। मैंने पूरा लेख उनको पढ़कर सुना दिया जहाँ-जहाँ उनको सन्देह होता था, उन्हें अर्थ भी बता दिये। वे इतने क्रोधित हुए कि उन्होंने उस पुलिस इन्स्पेक्टरको बुलवाया, जिसने उस लेखका अंग्रेज़ीमें अनुवाद किया था और उसे राजद्रोह-भरा घोषित किया था। वे ऐसे ही दिन थे, जब किसी राजद्रोहीको पकड़वाना किसी पुलिस इन्स्पेक्टरके लिए किसी डाकू या हत्यारेके पकड़वानेसे अधिक महत्त्वकी चीज़ मानी जाती थी। जब पुलिस इन्स्पेक्टर सामने

आया, मैंने देखा कि वे हैं रतनलालजी, रात-दिन मेरे बड़े मित्र बननेवाले। विशुद्ध गौड़ ब्राह्मण। साक्षात् मेरी मातृभूमि जयपुरसे पधारे हुए। अब वे एक ओर थे और दूसरी ओर मैं।

"साहब गुस्सेमें थे। रतनलालसे बोले कि बताओ, साला, वो कहाँ है इस आर्टिकलमें जो टुमने हमको बोला था?

"जालिमकी उम्र कोतह। पहले तो रतनलालकी चालाकीकी गुलाटोंके लिए उस लेखमें जगह नहीं थी और दूसरे उनकी छातीपर मैं विराजमान था। साहब बहादुर अब मुझसे बोले कि हम मानटा है कि टुम्हारा आर्टिकलमें सिडीशन नहीं है। मगर टुम आफिशियल इन्स्टीटयूटमें स्कूलमास्टर है, इसलिए टुमको हम वार्निंग डेटा है कि अबसे टुम कभी कहीं कोई आर्टिकल नहीं लिखेगा।

"और साहबने रतनलालको अंग्रेज़ीमें गालियाँ देते हुए कहा कि टुमने हमको गुमराह किया। यदि इस लेखपर मुकडमा चलटा तो गवर्नमेण्टको वकीलोंके सवालोंमें बहुत अनकम्फर्टेबुल फील होटा और मुकडमा हार जाना पड़ता।

"साहब बहादुरने फिर मेरी ओर मुख़ातिब होकर कहा कि टुम बहुट अच्छा आडमी है। टुम्हारा अक्ल बहुट अच्छा है। टुमको ऐसा लेख नहीं लिखना चाहिए। इसके पश्चात्, लम्बे उपदेश समाप्त करनेके बाद उन्होंने मुझे लौटनेके लिए कहा। जब उन्हें मालूम हुआ कि मैं टाँगेमें बैठ कर आया हूँ तो वे पुनः भड़के कि खंडवामें टो टाँगा नहीं है। टुम किसका टाँगामें बैठकर आया है? जब उन्हें मालूम हुआ कि यह माणिकचन्दजीका टाँगा है, तो उन्होंने नाक-मुँह यों मरोड़े, मानो कह रहे हों कि मैं माणिकचन्द वकीलको देख लूँगा।

"जब मैं लौट कर घर आ गया तो सारी रिपोर्ट मैंने माणिकचन्दजीको दी। वे खूब हँसे और मुझसे बोले कि आपकी साहित्यिक प्रवृत्तियोंको

गवर्नमेण्ट शायद ही चलने दे । किन्तु मैं आपसे कहूँगा कि आप हरगिज़ नौकरी न छोड़िए ।

नम्बर तीन सौ तीस

"यहीं मैं बाबू माणिकचन्दजी जैनके स्वभावकी भी थोड़ी चर्चा कर लूँ । जहाँ मैं लोकमान्य तिलकके गरम दलको देशका रक्षक मानता था, वहाँ माणिकलालजी सर फिरोजशाह मेहता और गोपालकृष्ण गोखलेके नरमदलके नेतृत्वको ही उन्नति मानते थे । परन्तु वे अद्भुत वीरवृत्ति व्यक्ति थे । एक बार माणिकचन्दजीने एक कोट बनवाया, जिसमें कपड़ेपर लगे हुए कुछ हज़ारके नम्बरोंमेंसे कट कर तीन सौ तीसका नम्बर उनके काँधेपर बाक़ी रह गया । जब वह कोट धुल कर आया और उसे पहनकर वे रेलवे स्टेशनपर खंडवासे गुज़रते हुए पं० मदनमोहनजी मालवीयका स्वागत करने गये तो स्टेशनपर ही एक पुलिस इन्सपेक्टरने निहायत अदबसे उनसे पूछा कि यह नम्बर काहेका है वकील साहब ?

"माणिकचन्दजीको मज़ाक सूझा और बोले कि अरे, आप पुलिसमें चीफ साहब होकर भी इस नम्बरको नहीं जानते ?

"चीफ साहब शरारतसे भरे किन्तु अत्यन्त गद्गद होकर बोले कि जी नहीं, बताइए ?

"अरे साहब, बंगालके जो क्रान्तिवादी हैं, उनमें मेरा नम्बर तीन सौ तीस है ।"

"यह खबर जब तत्कालीन सरकारी क्षेत्रोंमें फैली तो तहलका मच गया । यहाँ तक कि जब नर्मदा कमिश्नरी, जिसमें खंडवा जिला भी था, वे कमिश्नर साहब खंडवा आये तो उन्होंने माणिकचन्दजीको बुलवाया । कमिश्नर साहबने शहरके कितने ही भले आदमियोंको तथा जिलेके पुलिस सुपरिण्टेडेण्ट साहबको वहाँ बैठा रखा था । इधर चतुर माणिकचन्दजीने उसी कपड़ेके दो थान, जिनपर पूरे नम्बर लिखे हुए थे, अपने नौकरके काँधेपर लदवाकर कमिश्नर साहबके बुलावेपर कमरेमें प्रवेश किया । जब

कपड़ेके थानोंके नम्बरोंका सारा रहस्य मि० मॉको समझाया गया तो सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब और पुलिस इन्स्पेक्टर साहबकी बहुत फ़जीहत हुई। यहाँ तक कि पुलिस इन्स्पेक्टर साहबको तुरन्त ही किसी देहातके थानेमें बदल दिया गया।

"माणिकचन्दजीके जीवनकी निर्भीकताका दूसरा उदाहरण यहाँके म्युनिसिपैलिटीके चुनावमें भी मिला। वकालत शुरू करनेके बाद ही वे म्युनिसिपैलिटीके सदस्य चुने जाने लगे थे। उन दिनों यहाँ म्युनिसिपैलिटी आफ़िशियल प्रेसीडेण्ट वाली थी और कोई चूँ नहीं करता था कि यहाँ ग़ैरसरकारी अध्यक्ष हो। माणिकचन्दजीने ही इस बातके लिए आन्दोलन किया। इधर म्युनिसिपैलिटीके चुनाव भी हो गये। सदाकी तरह किसी सरकारी कर्मचारीको ही अध्यक्ष बनानेकी तैयारियाँ की जाने लगीं। गवर्नमेण्टका ख्याल था कि खण्डवा तो आफ़िशियल प्रेसीडेण्ट चाहता है, केवल माणिकचन्दजी जैन ही ऐसे झगड़ालू राजनीतिज्ञ हैं जो ग़ैरसरकारी अध्यक्ष चाहते हैं। सरकारने मध्यमार्ग ढूँढ़नेकी कोशिश की, किन्तु वह उसे नहीं मिला। इसी बीच सर्वेण्ट आफ़ इण्डिया सोसायटीके अंग्रेज़ी साप्ताहिक (उन दिनों साप्ताहिक ही निकलता था) 'हितवाद' में किसीने 'प्रोबोनो-पब्लिकी' के नामसे ऐसे लेख छपवाये जिनकी भाषा बहुत उग्र थी। इन लेखोंमें खण्डवा म्युनिसिपैलिटीमें ग़ैरसरकारी अध्यक्ष होनेका समर्थन था। जब मि० मॉ ही (अथवा तत्कालीन कमिश्नर जो भी रहे हों) जाँच करनेके लिए आये, तब लेख लिखनेवाले सज्जनोंने यह उचित समझा कि कमिश्नरके सामने उस लेखका लेखक होना स्वीकार न करें। दाँव यह था कि उसका लेखकत्व बाबू माणिकचन्दजीके सिर मढ़ा जाये और कमिश्नर उनसे तथा ग़ैरसरकारी अध्यक्षवादियोंसे खूब नाराज़ होकर लौट जायँ। जब 'हितवाद'के लेखोंका लेखक-दल कमिश्नरसे मिल चुका और यह स्पष्ट मालूम हो गया कि उन्होंने 'हितवाद'का लेखक होनेसे अस्वीकार

कर दिया है, तब माणिकचन्दजीने मोर्चेबन्दी की। खण्डवेके चार-पाँच मित्रोंमें आधी रातके पश्चात्तक मन्त्रणा होती रही। यह निश्चय हुआ कि कमिश्नरको यह धारणा लेकर नहीं जाना चाहिए कि 'हितवाद' का लेखक कायर है और यह कि ग़ैरसरकारी म्युनिसिपल अध्यक्षके लिए उसके समर्थनमें शहरमें कोई वातावरण नहीं। इसलिए हम लोग जाकर उन लेखोंका लेखक होना स्वीकार कर लें, हालाँ कि हम उसके लेखक हैं नहीं। अतः कमिश्नरसे मिलनेके लिए उसके पश्चात् जितने लोग गये, उन सभीने बारी-बारीसे उन लेखोंकी जानकारी, उन लेखोंका लेखक होना स्वीकार कर लिया। और यह भी कहा कि वे लेख तो विचार और मन्त्रणापूर्वक लिखे गये हैं और ग़ैरसरकारी अध्यक्षका प्रश्न खण्डवाकी जनताका प्रश्न है, किसी एक व्यक्तिका प्रश्न नहीं। कमिश्नरने स्वीकार करनेवाले लोगोंके चरित्रकी भूरि-भूरि प्रशंसा की और सरकार द्वारा सहानुभूतिपूर्वक विचार करनेकी आशा व्यक्त की।

"इससे पहले एक घटना और हुई। खण्डवा म्युनिसिपैलिटीमें ग़ैरसरकारी अध्यक्षका आन्दोलन लगभग दो सालसे चल रहा था। एक बार म्युनिसिपैलिटीके सदस्योंमें ग़ैरसरकारी अध्यक्षका चुनाव नहीं होने दिया गया। बात यों हुई कि म्युनिसिपैलिटीमें पहले कुछ सदस्य सरकारकी ओरसे नामज़द हुआ करते थे। उनमें एक थे गवर्नमेण्ट हाईस्कूलके हेडमास्टर श्री कालेले। उन्होंने अपना मत उस चुनावमें ग़ैरसरकारी अध्यक्षके पक्षमें दे दिया। अतः सरकारने उनका नामीनेशन वापस ले लिया और उनसे कह दिया कि वे अपना समय शिक्षण-सम्बन्धी कार्योंमें ही दें और म्युनिसिपल सदस्यतासे व्यर्थ ही पढ़ाईमें बाधा क्यों डालें? अतः सरकारी समूहका एक सदस्य कम हो गया। जब दूसरी बार चुनाव हुआ तो ग़ैरसरकारी सदस्योंकी ओरसे पहली बार ग़ैरसरकारी अध्यक्ष चुना गया और इस प्रकार म्युनिसिपैलिटीमें सरकार-विरोधी प्रवृत्तियाँ कुछ कम हुईं। इन क्षणोंमें लोगोंके बहुत प्रयत्न करनेपर भी माणिकचन्दजी केवल चुने हुए

सदस्य मात्र रहे और उन्होने म्युनिसिपैलिटीका अध्यक्ष होना स्वीकार न किया। यहाँ तक कि उपाध्यक्ष होनेकी बात भी अथवा किसी भी पदको स्वीकार करनेकी बात उन्होंने न मानी। माणिकचन्दजीके स्वभावकी यह दूसरी खूबी थी।"

दलगत राजनीतिके पाठ

सार्वजनिक क्षेत्र भारतीय परम्पराके अनुसार उन व्यक्तियोंके हाथों रहा करता, जो विशुद्ध सेवाका व्रत लेकर चलते, उन्हें ही निर्विरोध जनताकी स्तुति और वन्दना प्राप्त होती। किन्तु १९०५से ही ब्रिटिश सत्ताके न चाहते हुए भी देशमें एक अवांछनीय विषमता जन-जीवनमें प्रविष्ट हो गई। व्यर्थका विचार-आग्रह लोकजीवनमें आकर्षणकी वस्तु हो गया, विशुद्ध सेवाके मूल्य गौण होते चले गये। साथ ही, दलगत राजनीतिका दानवी शैशव भारत-भूमिपर अपनी विस्मयकारी लीला खुल खेलने लगा। यह युग लाल-बाल-पाल (लाला लाजपत राय, बाल गंगाधर तिलक और विपिनचन्द पाल) का था। वे अपनी ओजस्विनी वाणी लेकर नयी क्रान्तिका सूत्रपात कर रहे थे और सरकार इस क्रान्तिकी हवाको प्रतिक्रिया और क्रीतदासोंकी हुल्लड़बाजीसे सन्तुलित करना चाहती थी। जब सन्तुलनकी जगह असन्तुलन ही बढ़ता दीखता था तो वह दमनपर उतारू होने लगती। किन्तु दमन तो दमन था और गीला चना था। तपिशसे वह खिलकर ही रह सकता था। और इसी तपिशने विचाराग्रहके प्रति भी सार्वजनिक ज़िद्द पैदा की। यही कारण है कि दमनके बावजूद लोग अपने-अपने दलके प्रति एक ज़िद्द क़ायम कर जीवित ही नहीं रहने लगे, सक्रिय भी बने रहे। माणिकचन्दजीकी सक्रियता भी ऐसी ही थी। वे साधु पुरुष थे, इसलिए उग्रवादिता उनके निकट नहीं थी। पर उन्होंने अपनी ओर पास जिन ज़िद्दी लोगों और तरुणोंका समूह एकत्र किया, उनमें माखनलाल भी एक था। माणिकचन्दजीके निकट रहकर माखनलालने दलगत

जीवनका प्रारम्भिक पाठ सीखना प्रारम्भ किया। क्रान्तिवादी तरुणोंकी संगतिमें वह केवल दलगत विचारोंका पोषण ही करना सीख पाया था।

'सुबोध-सिन्धु'में शक्ति पूजा लेखपर आपत्तिकी सतर्कता पुलिसकी ओरसे जो की गई, उसका दौर-दौरा सारे देशमें छाया हुआ था। उससे पहले १९०८–९ में लोकमान्य तिलक और श्री अरविन्दके लेखों व भाषणोंपर मुकदमे चलाये जा चुके थे। जबलपुरसे सप्रेजीने जो 'हिन्दी केसरी' चलाया था, उसमें उग्र लेख छपानेके कारण सरकारने सप्रेजीको भी जेल भेज दिया था और वहाँसे वे क्षमा-याचना माँगकर बाहर आ गये थे। पर अपनी क्षमा-याचनाके कारण वे बहुत ही दुःखी रहते थे। और मधुकरी माँगकर तपस्वियोंका-सा जीवन बिता रहे थे। ऐसी तनावपूर्ण स्थितिमें नये पत्रकारों या पत्रोंपर तो और भी तेज़ निगाहें रखी जा रही थीं। लेकिन लाल-बाल-पालके युगने जहाँ माखनलालको कोरा कमाऊ पूत न रहने दिया, वहाँ माणिकचन्दजीके साहचर्यने उन्हें अघोषित सार्व-जनिक कार्यकर्ता भी रहा-सहा न रहने दिया। अब यह स्पष्ट हो गया कि प्राइमरी पाठशालाका एक दीन-हीन 'पाठक' भर ही माखनलाल नहीं रह सकेगा। परिस्थितियाँ और आर्थिक स्थिति अनुरूप नहीं हैं तो क्या हुआ। अनुरूप साथी तो हैं। भारतीय राजनीतिका दावानल तो अनुरूप साथियोंके हाथों दहकने लगा था। मध्यप्रदेशमें माखनलालने भी अपने दोनों हाथ, दोनों क़दम इसी दिशा बढ़ा दिये····

केवल हाथ बढ़ानेसे या क़दम भरनेसे जीवनकी भट्टीका आवा नहीं पक जाया करता। उसके लिए पूर्वनियोजित मनोनुकूल नया वातावरण भी चाहिए। यह नया वातावरण बहुमुखी प्रवृत्तियोंके धनी माणिकचन्दजी जैनके पास सुरक्षित था। वे बहुत सुलझे हुए विचारोंके भाषणकर्ता थे। जब लखनऊमें अखिल भारतीय जैन सम्मेलनके वे सभापति चुने गये तो उन्होंने वहाँपर गर्जना की कि मेरी प्रार्थना है, विशाल हिन्दू समाजसे

जैन समाज अपनेको अलग रखनेकी मनोवृत्तिका परित्याग कर दे। हम यह अनुभव करें कि हम एक हैं। यह वह समय था, जब जैनियोंमें ही परस्पर-में सम्मेद शिखरजीके झगड़ेको लेकर लाखोंकी धनराशि खर्च की जा रही थी और समाजके मेलकी भाषामें बोलना अपने सिरपर बहुत बड़ा संकट मोल लेना था।

सार्वजनिक भाषणकर्तासे अधिक माणिकचन्दजी साहित्यिक वृत्तिके कुशल अधिकारी थे। आपने एक प्रकाशन-संस्था 'हिन्दी ग्रन्थ प्रसारक मण्डली' भी स्थापित की थी, जिसमें मिश्र-बन्धुओंके प्रथम दो महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ 'हिन्दी नवरत्न' और 'हिन्दी साहित्यका इतिहास' तथा आजके बिहारके शिक्षा मन्त्री श्री बद्रीनाथ वर्मा द्वारा अनुवादित रवीन्द्रनाथ ठाकुरकी गीताञ्जलि भी प्रकाशित की गई थी। यों काशीके प्रथम साहित्य सम्मे-लनमें माखनलाल एक दर्शकके नाते पहुँच गया था, पर लखनऊके सम्मेलनमें माणिकचन्दजी जहाँ अन्य युवकोंको अपने साथ लेते गये, वहाँ उन्होंने माखनलालको भी साथ लेना न भूला।

"माणिकचन्दजीकी निर्भीक मनोवृत्ति, राजनीतिक कुशलता, संकटमें काम आनेकी भावना, राजनीतिमें लड़ जाने और बाज़ीपर चढ़ा देनेकी क्षमता, स्थानीय मामलोंमें दत्तचित्त होनेकी लगन, धार्मिक सन्तुलनशीलता, जैन दर्शनकी श्रेष्ठताके प्रति सावधानी और हिन्दी साहित्यमें श्रेष्ठ साहित्यके प्रति उनके चाव, चयन, परिश्रम, सम्पत्तिके खर्च तथा लगातार साहित्य-सेवामें लगे रहनेकी लगनने मेरे मनपर ऐसा असर किया कि मैं रहूँ चाहे किसी दलमें, किन्तु मैं माणिकचन्दजीकी श्रेष्ठताका क़ायल हो गया। यद्यपि मुझे अपने पास खींचनेके लिए उन्होंने प्रारम्भमें अपने बच्चोंको पढ़ानेका उत्तरदायित्व भी मुझे सौंपा था और मालती तथा हरि मेरे पास पढ़ा करते थे, किन्तु अध्यापकके रूपमें मेरा वहाँ जाना मुझे पीछे मालूम हुआ—जिसे घटनाओंने सिद्ध किया, कि वह एक कारण मात्र था।"

माणिकचन्दजीने पत्रकारिताकी चाशनी की एक बूँद माखनलालकी

जिह्वापर रख दी थी। सप्रेजीके पत्रमें एक लेख लिखकर उसने ३५) रु० का प्रथम पुरस्कार जीता था। 'शक्तिपूजा' लेखपर पुलिस इन्स्पेक्टर रतनलालने जो दाँव खेला, उसने माखनलालके मनमें विपरीत प्रतिक्रिया ही उत्पन्न की। अब पाठकीमें क्या धरा था। पत्रकारिताकी दिशा ही उसने बढ़नेका एक निश्चय कर लिया। दोनों काम एक साथ नहीं चल सकते थे। एक सरकारी आँखोंके नीचे अस्तबली जीवनका विधान था, दूसरा स्वतन्त्र वाणी और मुक्त जीवनका विधान था। माखनलालने अध्यापकीसे त्यागपत्र देनेकी मनमें ठान ली।

त्याग-पत्र देनेसे पहले जो नयी भूमि पैर खड़े करनेके लिए चुनी गई, वह कालूरामजी गगराड़े द्वारा निर्दिष्ट हुई थी।

श्री कालूराम गगराड़ेका व्यक्तित्व

कालूरामजी विश्वासोंसे थियोसोफिस्ट थे और श्रीमती एनीबीसेएट उन्हें बहुत मानती थीं। वे साधुचरित्र व्यक्ति थे। रात-भर टाट-पट्टीपर पड़े रहकर जिस तरह वे कानूनकी किताबोंका अध्ययन करते, उसी तरह उपनिषद् आदि ग्रन्थोंका भी अध्ययन किया करते। जब वे खंडवामें वकील होकर आये, तो वे यहाँके पहले हिन्दी भाषी वकील थे। इसलिए अन्य भाषा-भाषी ऐसा कोई अवसर हाथसे नहीं जाने देते थे, जिससे कालूरामजी अपमानित न किये जा सकें। उन्हें अपमानित करनेके लिए अन्य वकीलों तथा उनके अवलम्बितोंने कालूरामजीका नाम 'कोरकू' रख छोड़ा था। कोरकू इस जिलेकी एक आदिम जाति है, जिसमें विद्या-बुद्धि और सभ्यताके तौर-तरीक़ेका अभाव माना जाता है। कालूरामजी अपने इस नये नामपर प्रसन्न थे।

श्री कालूरामजीमें दबंग वृत्ति थी। एक बार किसी अदालतमें वे किसी न्यायाधीशके सामने एक दरखवास्त पेश कर रहे थे। जजने, जो कि साम्प्रदायिक लोगोंसे प्रभावित था, कालूरामजीका मज़ाक उड़ाते हुए उस

दरख़ास्तको एक तरफ़ टालना चाहा। कालूरामजीने कहा कि श्रीमान् महोदय, आप न्यायाधीश हैं। और मेरी दरख़ास्तपर बादशाही टिकट लगा है। आप उसे पढ़नेके बाद भले ही दरख़ास्तको अस्वीकृत कर दें, किन्तु आपका कर्तव्य आपके लिए लाचारी है कि आप इस दरख़ास्तको पढ़ें और आपको इसे पढ़ना होगा। उनका यह कथन कलेक्टर और सेशन जज सबके पास गूँज गया और कालूरामजीके प्रति रहनेवाले व्यवहारमें सर्वाधिक सम्मानका भाव आ गया।

कालूरामजी अपनी मनोवृत्तिके ऐसे जाग्रत मस्तिष्कके व्यक्ति थे कि जिले और आस-पास जिलोंके सरकारी और ग़ैरसरकारी समारोहोंमें प्रत्येक शुभावसरपर उनके भाषण हुआ करते। यों जातिसुधार नामका अख़बार भी वे निकाल रहे थे। वे हिन्दी भाषाकी अत्यधिक उन्नति चाहते थे। किन्तु अपने जीवनकालमें उन्हें हिन्दीका अधिक अध्ययनपूर्ण अध्ययन करनेका अवकाश नहीं मिला था।

'टाइटनक' की जल समाधि

कि···१९१२ की १० अप्रैलको विश्व-क्षितिजपर, समुद्री-यात्राके इतिहासमें, एक अनभ्र वज्रपात हुआ, उसने समस्त दुनियामें एक तहलका मचा दिया। वह घटना ऐसी ही थी। ३३४६ यात्रियोंको लेकर अपने समयका सबसे बड़ा जलपोत टाइटनिक अमरीकाकी दिशा जा रहा था। १५ रोज़ पहले ही इसका डेढ़ करोड़का बीमा हुआ था। जब यह न्यू-फाऊण्डलैण्डके निकट पहुँचा, उस समय इसपर २३४० यात्री थे, जिनमें अधिकांश स्त्री और बच्चे थे। रात्रिमें समस्त साधनोंके होते हुए भी यह एक हिमखण्डसे टकरा गया। जिस समय यह डूबने लगा, उस समयकी घटना बड़ी ही हृदय-विदारक और इतिहासमें अद्वितीय है। यात्रियोंने तुरन्त नीचे प्राण बचानेवाली नावें डालकर उसमें सिर्फ़ स्त्रियों और बच्चोंको उतारा और शेष पुरुष डूबते हुए जहाज़पर ही वीरतापूर्वक खड़े रहे।

इनमेंसे अनेक पुरुषोंकी पत्नियाँ भी अपने पतियोंके साथ सती होनेके लिए, अविचलित जहाज़पर ही डटी रहीं। यों जो भीरु पुरुष थे, उन्होंने प्राण-बचाऊ नावोंपर ज़बरदस्ती उतरनेकी कोशिश की, उसके लिए छीना-झपटी भी की, झगड़ा किया या स्वयं हतोत्साहित होकर समुद्रमें कूदते हुए आत्महत्या कर ली। कुल मिलाकर १५-१६ सौ यात्री 'समुद्रास्तृयन्तु' हुए। अपने समयकी यह वीरोचित ढंगकी एक ही घटना थी, जो आज-तक नाविक क्षेत्रोंमें आदरके साथ स्मरण की जाती है।

इस असाधारण घटनाने जहाँ नाविक क्षेत्रोंमें उत्तरोत्तर समुद्र यात्राकी सुरक्षाके प्रति नये-नये सुधारोंको सम्भव किया, वहाँ इसके अन्तर्गत अपनी सहर्ष बलि देनेवाले पत्रकार-प्रवर श्री डब्लू. टी. स्टेडने विश्व-भरके पत्र-कारोंमें नया ही दोहन-मंथन मचा दिया। श्री स्टेड अपने समयके ऐसे प्रखर स्वभावके पत्रकार और सम्पादक थे कि उनकी तटस्थताका लोहा आज भी अपना उदाहरण दूसरा नहीं पा सका है। उन दिनों जर्मनी और ब्रिटेनमें घोर शत्रुता थी, लेकिन कैसर भी इस सम्पादकसे उसी मित्र-भावसे मिलता था, जिस प्रकार ब्रिटेनके राजनीतिज्ञ उससे मिला करते थे। किन्तु तटस्थतासे अधिक, साधारण वर्गके लोग उसे ईसाके वरदानसे लब्ध एक देवता मानते थे। उन्होंने किसी भी क्षण पत्रकारिताके ध्वजको संकुचित मनोवृत्ति या सीमित स्वार्थों या निजी दमकी भावनासे कलंकित नहीं होने दिया। जब वे अपने विचारोंके लिए जेल भेजे गये तो भी लोगोंने उनसे जेलमें भी अपना परामर्श लेना बन्द न किया। वे पत्रकारों-में एक परमोज्ज्वल, आदर्श मानसी मूर्ति थे। श्री वाईखाम स्टेड इन्हींके पिता थे।

भारतमें पत्रकार कलाके उन्नत आदर्शोंकी स्थापनाके लिए हिन्दी मासिकोंमें आचार्य महावीर प्रसादजी द्विवेदीने कठोर परिश्रम किया था और इन क्षणों तक भी वे कर रहे थे। उन्होंने 'सरस्वती' में पत्रकार कला पर अनेक लेख और टिप्पणियाँ भी प्रकाशित की थीं। यों भारतमें जो भी

पत्रकारिता थी, वह अधिकांशमें विदेशी सत्ताकी अनुगामिनी थी और उसीके हितोंका संरक्षण किसी-न-किसी रूपमें किया करती थी। 'सरस्वती' तकने सन् ११के राज दरबारपर अपना एक विशेषांक सरकारी भक्तिके प्रदर्शनार्थ निकाला था।

'प्रभा' के मुद्रण-प्रकाशनका संकल्प

इस विश्व-घटनाने मध्यप्रदेशमें एक-एक नया उद्रेक प्रस्फुटित किया। गगराड़ेजीने अंग्रेज़ी दैनिकोंसे इस घटनाका विस्तृत समाचार पढ़कर माखनलालको बताया और उसके मनमें यह इच्छा जाग्रत हुई कि भारतमें भी स्टेडके आदर्शोंकी परिकल्पनाके अनुसार ऐसा पत्र निकाला जाय, जो देशकी वर्तमान विषम परिस्थितिमें अधिकाधिक हितकामना सम्पादित कर सके। कालूरामजी स्वयं भी एक साहित्यिक पत्र निकालनेकी इच्छा मनमें धारे बैठे थे। उनके सामने आदर्श स्टेड महाशय थे ही। हिन्दीमें इस समय अकेला अच्छा मासिक 'सरस्वती' निकल ही रहा था। तय हुआ कि माखनलाल अध्यापकीसे त्यागपत्र दे और इस नये पत्रके सम्पादनमें सहयोग दे। अब अवस्था यह थी कि माखनलालको वेतनके १३) रु० मासिक मिल रहे थे और ट्यूशनोंसे उसे लगभग ५०) रु० और मिल जाते थे। मैट्रिकके विद्यार्थी हिन्दी पढ़ने घरपर ही आते थे। लेकिन अध्यापकीमें जो शक्ति व्यय हो रही थी, उसे शुद्ध रूपसे साहित्यिक कार्यमें व्यय करनेका उसे स्वयं उत्साह था। प्रारम्भमें सहायक सम्पादकके रूपमें उसका वेतन ३०) रु० मासिक दिये जानेकी बात ठहरी। श्री कालूरामजी गगराड़ेके नामसे ही डिक्लेरेशन लिया गया। पत्रका नाम 'प्रभा' रखा गया। सम्पादक भी कालूरामजी ही रहे। मुद्रण पूनाके चित्रशालामें होनेकी व्यवस्था हुई। काम यह जोखिमका था। मासिकोंकी बिक्री हिन्दी क्षेत्रमें सर्वथा नहीं थी। मध्यप्रदेशमें जो हिन्दीके नामलेवा थे, वे ग़रीब, निर्धन अध्मापक थे। विज्ञापनोंके बटोरनेमें जो कष्ट होता था, वह भुक्त-

भोगी ही जान पाता था। चिन्तनीय स्थिति एक यह भी थी कि खंडवा मुख्य नगरोंसे दूर, एक कोनेमें था। फिर भी गगराड़ेजीने उसमें निजी लागत झोंकनेका पक्का इरादा कर लिया।

माखनलाल सहायक सम्पादक बना

जब अध्यापकीसे त्यागपत्र देनेकी बात आई तो उस पिताके दिलपर क्या बीती, जिसने न जाने कितने कष्ट सहकर और कितने प्रयत्नोंके बाद इस प्रथम पुत्रको अध्यापक बनाया था, यह शब्दोंमें बताना कठिन है। अब उसका यह पुत्र २४ वर्षका हो चुका था। वह अपनी ज़िद्का पक्का है। जो उसने सोचा है, अपनी भलाई-बुराई सोचनेका अधिकार अब उसे दिया ही जाना चाहिए। उन्होंने पत्र पानेपर केवल इतना ही लिखा कि एक बार अध्यापकी छोड़नेके बाद दुबारा इस दिशा लौटनेकी बात मनमें मत लाना! श्री नन्दलालजी चतुर्वेदीके इस वाक्यमें उनकी गम्भीरता और उनके भविष्य-चिन्तनकी पद्धति बहुत ही तीव्र हो उठी थी।

पत्र निकलने लगा और उसका सारा कार्यभार माखनलालने अपने ऊपर सन्तोषप्रद रूपसे सम्हाल लिया। प्रथम अंक ७ अप्रैल १९१३ को निकला। उसमें सम्पादकीय नहीं था, केवल पत्रके निकालनेका उद्देश्य 'प्रभाका प्रादुर्भाव' शीर्षकसे इन संक्षिप्त शब्दोंमें दिया गया था : "अनेक विचारोंका सामना कर आज 'प्रभा' का प्रथम अंक पाठकोंकी सेवामें उपस्थित किया जाता है। इससे यह अनुमान हो सकेगा कि 'प्रभा' किस रीतिसे सेवा किया चाहती है। स्वर्गवासी महात्मा स्टेडने विलायतको आगे रखकर जो कुछ कार्य किया है, 'प्रभा' भी भारतको आगे रखकर उक्त महात्माकी अनुकूल कार्य प्रणालीका महदादर्श मानचित्र अपने सामने लटकाकर कार्य किया चाहती है। वह महात्मा अविश्वास पूर्ण, स्वार्थ-सम्पन्न पश्चिमके होश ठिकानेकर उसे विश्वासी न्यायी भेदभाव रहित तथा

परमार्थी होनेकी शिक्षा दे गया है। आशा है, हम अपने भारतीय बन्धुओं-की इसी प्रकार सेवा करनेकी कामनाको भारतीय बन्धुओंकी स्नेहभरी सहानुभूति पाकर पूर्ण कर सकेंगे।"

'प्रभा' के प्रारम्भिक पाँच-छः अंकोंमें महात्मा स्टेडका जीवन धारा-वाहिक रूपसे दिया गया है। प्रामाणिक जीवन न होकर भावुक हृदय लेखककी भावनाओंका प्रतिबिम्ब प्रस्तुत करते हुए भारतीय पाठकोंसे इसमें आग्रह किया गया है कि वे भी इस महात्मासे आदर्श लाभ करें। यह लेख माखनलालका लिखा हुआ है। इस लेखकी भाषा तात्कालिक मध्यप्रदेशमें बोली जानेवाली वह संस्कृतनिष्ठ भाषा है, जिसमें अभिव्यक्ति-का लालित्य कम-से-कम और साहित्य लिखनेका आग्रह सर्वाधिक है। एक भावुक युवककी कलममें जो अन्तर्विग्रह और स्वप्न-सम्पूर्तिका विवेक शब्द-समुच्चयके विस्तृत प्रांगणमें अपने दृष्टिपातकी परिधिका नया निर्माण कर रहा था, उसके लिए मतामतोंकी प्रियोक्ति ही प्रमुख थी, भाषाकी मंजा-वटका प्रश्न गौण था।

प्रथम वर्षसे ही प्रभाको अच्छे लेखकोंका सहयोग मिलने लगा, पर उसका अधिकांश लेखन-श्रम माखनलालने ही किया। यों, समूचे वर्ष किसी भी लेखके साथ उसका नाम कहीं नहीं है। वह तो 'श्रीगोपाल', 'भारत-सन्तान', 'कुछ नहीं', 'भारतीय', 'सुधारप्रिय', 'पशुपति', 'नीति-प्रेमी', 'एक विद्यार्थी', 'एक निर्धन विद्यार्थी', 'एक भारतीय प्रजा', 'एक नवयुवक', 'तरुण भारत', 'एक प्रान्तीय प्राणी', 'एक उच्च शिक्षित', 'एक भारतवासी', 'श्रीयुत् नवनीत', 'श्री विश्वव्यास', 'श्री चंचरीक', 'श्री शंकर' और एक भारतीय आत्मा' जैसे चित्र-विचित्र नामोंसे ही लेख लिखता रहा। इन नामोंसे लिखनेकी विवशता जो थी। पुलिसका हौल इस मध्यप्रदेशके लोगोंपर कम नहीं था। सरकारने पत्र निकालनेकी सरल सुविधाएँ अवश्य दे रखी थीं, पर लेखक स्वतन्त्रचेता लेखक बननेकी सुविधाओंपर उसका शिकंजा कस रखा था। यद्यपि यह साहित्यिक मासिक

पत्र था, लेकिन पुलिस इन्स्पेक्टर रतनलाल जैसे लोगोंसे बराबर ही साव-धान रहनेकी ज़रूरत थी। क्रान्तिवादितामें यह सिद्धान्त पहलेसे धर्म बना ही लिया गया था कि यशप्राप्तिसे सर्वदा दूर रहना और प्रशंसासे बचाकर अपनेको रखना। यह एक असह्य स्थिति थी कुल मिलाकर। लेकिन बीहड़ वनको उपजाऊ बनानेका दुस्साहस ऐसी ही असह्य स्थितिमेंसे जन्म लेता है।

इस समयतक 'सरस्वती' सर्वगुणसम्पन्न मासिक पत्रिका थी। लेकिन 'प्रभा' मध्यप्रदेशकी एक साहित्यिक जोत थी। जो जग तो गई थी, पर जिसे अबाध गतिसे आहुतिकी अधिकसे-अधिक आवश्यकता थी। इसमें सम्पादकीयके अतिरिक्त माखनलालने नीति-तत्त्व, समाज-तत्त्व, समाज-समीक्षा और समाज-सुधार जैसे मौलिक स्तम्भोंसे इस पत्रको और विभू-षित किया। इन स्तम्भोंमें जहाँ पाठकको एक स्फूर्तिप्रद प्रेरणा दिये जाने-का अनुष्ठान रचा जा रहा था, वहीं वे माखनलालके व्यक्तित्व-सूत्रोंका रहस्य भी प्रकट करते जाते थे। इन स्तम्भोंमें माखनलालके अध्ययनका क्रम-विकास सुरक्षित है और किन विचारोंका उसपर असर हो रहा था उसका कण-कण लेखा-जोखा संचित हुआ है।

जब 'प्रभा' के चार अंक निकल गये तो १९१३ की जुलाईकी 'सरस्वती' में आचार्य महावीर प्रसादजी द्विवेदीने 'प्रभा' की समालोचना करते हुए लिखा कि खुशीकी बात है, हिन्दीमें एक और सचित्र मासिक पत्रिकाका प्रादुर्भाव हुआ है। लेख सभी उत्तम हैं। पत्रिकाके रूप-रंग और लेखावलीको सुन्दर और उपयोगी बनानेमें इसके संचालकोंने यथा-शक्ति कोई बात उठा नहीं रखी। इसे हिन्दी-प्रेमियोंको अवश्य आश्रय देना चाहिए। महात्मा स्टेडके आदर्शको लेकर इसके सम्पादकने जो उद्देश्य सामने रखा है, उसे देखते यह 'रिव्यू ऑव रिव्यूज़' है। परमेश्वर गगराड़े महाशयको इस आदर्शको कार्यमें परिणत कर दिखानेकी शक्ति दे।

युग-पुरुषकी इस प्रशंसाके सन्दर्भमें मध्यप्रदेशकी शासकीय नीतिकी रिपोर्टमें सरकारने भी अपने प्रान्तके पत्रोंपर एक सरसरी निगाह फेंकते हुए प्रमुख पत्रोंमें 'प्रभा' की चर्चा करते हुए लिखा कि इसी वर्ष एक अन्य समाचार पत्र 'प्रभा' नामसे शुरू हुआ है, जो खंडवासे हिन्दी सचित्र मैगज़ीनके रूपमें निकलता है। यह एक उच्च स्तरीय साहित्यिक पत्रिका है और मुद्रण तथा अन्य व्यवस्थाओंकी दृष्टिसे यह प्रयास स्तुत्य है।

इस पत्रके सम्पादकीय भी माखनलाल ही ने लिखे। 'सरस्वती' जैसी पत्रिकाके सम्पादकीय यदि युगस्तरीय राष्ट्रभाषाकी शालीनताके मुँह बोले सुगन्धित पुष्प थे, तो 'प्रभा' के सम्पादकीय मध्यप्रदेशीय राष्ट्रभाषाके उस क्षितिजके साक्षी थे, जो पहली बार राष्ट्रीय स्तरपर सबको दीख पड़ा था। विना अंग्रेज़ीके अध्ययन, पठन-पाठन, माखनलालका यह प्रारम्भिक सम्पादन रुचिप्रद भाषाकी दृष्टिसे नहीं, अखिल भारतीय हितोंकी दृष्टिसे इतना अनुकरणीय हो चला था कि यदि मध्यप्रदेशकी परिस्थितियाँ फलप्रदा होतीं और अन्य हिन्दी मासिक भी इस प्रदेशसे निकलते तो वे निश्चय ही इस मासिकका अनुकरण करते।

'प्रभा' के जब छः अंक निकल गये, तो उसके सहकारी सम्पादक श्री माखनलालजी चतुर्वेदी 'एक भारतीय आत्मा' ने बम्बई बाज़ारकी पाठशालाकी १३) रु० मासिककी पाठकीसे १९१३ की २६ सितम्बरको त्यागपत्र दे दिया और अध्यापकीसे सदा-सर्वदाके लिए अपना नाता तोड़ लिया।

द्वादश परिच्छेद

मध्यप्रदेशके लोकप्रिय क्षितिजकी आसन्दी

व्यक्तित्वके क्षितिज उस निर्धूम अग्निकी लपटोंसे बनते हैं, जिसकी तहमें वह यज्ञ-पुरुष स्वयं ही अपने रक्तका ईंधन और हवि एक साँस अर्घ्यरूप भेंट करता जाता है। पर आत्माके क्षितिजकी बात निराली है, कथा निराली है, शान निराली है, तत्सम छटा निराली है और है निराली रूप-ज्योति। आत्माके क्षितिजके धूमिल रहनेपर भी व्यक्तित्वके क्षितिज कुछ दिनों तो अवश्य धूमधामसे चमकते हैं, पर उनकी अवधि अत्यल्प होती है। आत्माके क्षितिज ही जहाँ व्यक्तिके भूत और वर्तमान और भविष्यको एकाकार कर ज्योत्स्नामय हो उठते हैं, वही व्यक्तित्वके क्षितिज व्यक्तिका पथ प्रशस्त करते हुए प्रतिक्षण आलोकित रहा करते हैं। यही कारण है कि १९१३ में एक ग्रामीण पाठकने जब प्राइमरी पाठशालासे त्यागपत्र देकर, आशंकाओंके घटाटोपसे काले स्याह भविष्यकी दिशा, एक नये मोड़पर क़दम रखा, तो उस क्षण उसकी समस्त घटना-प्रियता, साधनाकी तन्मयतामें अभिभूत, अपनी आत्माके क्षितिजके प्रति ही ईमान-दार अधिक थी। वह व्यर्थके व्यक्तित्व-क्षितिजोंका भूखा नहीं था। उसकी भूख और उसकी एषणाएँ अब उस दीवाने जैसी थीं, जिसे मनमौजके अनुरूप घरकी चौखटसे बाहर जीवन बितानेकी महती कामना हाथ लग गयी हो। बालपनमें जो अपने झोपड़ोंकी चौहद्दीको लाँघनेमें विश्वास

करता रहा और जिसे गाँवोंकी नीरसतामें भी नयी घटनाओंका उपक्रम रचनेका कौशल सुलभ होता रहा, वह प्राइमरी पाठशालाकी अस्तबर्ली संकीर्णतामें भला कैसे साँस ले सकता था। अब माखनलाल हिन्दी-जगत्के 'पण्डितजी', 'श्री माखनलालजी चतुर्वेदी' के रूपमे, कविके रूपमें, राजनीतिक घटनाओंके समालोचकके रूपमें, सम्पादकके रूपमें और राजनीतिक प्रान्तीयताके अग्रणी कर्णधारोंके समकक्षकी हैसियतके साथीसे, सर्वपरिचित और पूर्वपरिचित व्यक्तित्वके रूपमें नाटकीय जनजीवनका गम्भीर पात्र था।

१९१३ के बीतते न बीतते माखनलालजी मध्यप्रदेश और भारतीय स्तरके अनेकानेक बड़े नामधारी पुरुषोंसे परिचित ही नहीं हो चले थे, उनके मित्र भी हो चले थे, गम्भीर परामर्श और मन्त्रणाके क्षणोंमें वे आवश्यक वन्दनीयता ग्रहण करने लगे थे।

'प्रभा' माखनलालजीके जीवनमें एक साथ ही अकल्पनीय पटाक्षेप और स्मरणीय नवीन दृश्यकी उद्भावना लेकर प्रकट हुई। इस पटाक्षेपमें उनका शैशव और कैशोर्य विस्तृत संपुट-सा हो गया। इस नये दृश्यमें माखनलालजी उस आधार भूमिपर विचरण करते दीखते हैं, जहाँ मध्यप्रदेश, उत्तर भारत और पूना जैसे घटनाबोझिल केन्द्रोंके लोकनायकोंकी पंगतमें रले-मिले वे व्यस्त सार्वजनिक बिता रहे हैं।

माणिकचन्दजी जैन और कालूरामजी गगराड़ेके चार हाथोंने माखनलालको 'प्रभा' के वास्तविक सम्पादकके दायित्वसे घेर दिया था। 'प्रभा'-ने शीघ्र ही माखनलालको पं० माधवरावजी सप्रे, गणेशशंकरजी विद्यार्थी, कामता प्रसादजी गुरु, महाबीर प्रसादजी द्विवेदी, महात्मा मुंशीरामजी, रायबहादुर पं० विष्णुदत्तजी शुक्ल जैसे उस युगके ख्यातिलब्ध लोकनायकोंका साहचर्य पुरस्कारमें सौंप दिया।

पं० माधवराव सप्रेके संरक्षणमें

पं० माधवराव सप्रे रायपुरमें राजद्रोहकी जेलयात्रासे क्षमा-याचनाके आधारपर जेलसे छूटनेके बाद संवर्तिका-रूप जीवन बिता रहे थे। किन्तु यह क्षमा-याचना उनके जीवनकी अनुल्लेखनीय घटना मात्र थी। सप्रेजी अब भी अपने प्रान्तके तपे-तपाये ज्वाल और संवर्मित पत्रकार थे। और थे राष्ट्रीय ज्ञानके गुरु द्रोणाचार्य। खंडवामें जब वे पाँच वर्ष पहले माखनलालजीसे मिलने पधारे थे, तभी उन्होंने सप्रेजीको पहली ही नज़रमें अपना गुरु मान्य कर लिया था। सप्रेजीका व्यक्तित्व ऐसा ही पुरुषार्थमय था। 'प्रभा' के निकलनेके बादसे माखनलालजीने अपने साहित्यिक जीवनकी शोभान्वित परिधियोंके विश्वसनीय पड़ाव और शिविर तैयार करने और खड़े करने शुरू कर दिये थे। अब खंडवा केवल पर्यटक पत्रकारका ऐसा केन्द्र रह गया था, जहाँ वह निश्चिन्त होकर विश्राम कर सकता था, अन्यथा रायपुर माखनलालजीके जीवनका वह दीक्षास्थल था, जहाँ वे भावी भीषण संग्रामका लोकनायकत्व करीनेसे ग्रहण करने लगे थे। सप्रेजी यदि माखनलालजीके अघोषित गुरु थे, तो माखनलालजी सप्रेजीके वे उत्तराधिकार थे, जिनमें उन्होंने अपने राजद्रोहकी हुंकार बहुत ही सुरक्षित रूपमें संजो दी थी और जिनको अपना उत्तराधिकार सौंपकर जैसे उन्होंने अपनी क्षमा-याचनाका प्रायश्चित्त कर लिया था। जब भी माखनलालजीको अवकाश मिलता, वे रायपुर जाते और सप्रेजीके पास ही रहते। साहित्यिक पथकी मंत्रणाएँ अपने गुरुसे ग्रहण करते और तदनुकूल कार्य करते। लेकिन माखनलालजीने सप्रेजीको भी यह नहीं ही बताया कि वे क्रान्तिवादी तरुणोंके दलमें सक्रिय तो नहीं, किन्तु विश्वसनीय सहयोगीके रूपमें बराबर अपने दायित्वका हिस्सा बँटाते हैं। सप्रेजीके निकट बैठकर वे मध्यप्रदेशीय राजनीतिका गुरुमन्त्र लेते रहे।

पर सप्रेजीके साथ माखनलालजीका विनोद एक विश्वसनीय मित्रके रूपमें सक्रिय रहा। इसी प्रसंगकी एक बात है।

"सप्रेजी हमको प्यार करते थे और इतना प्यार करते थे कि जिस दिन वे हमें विदा न करें और हमें चूमें न, उन्हें ऐसा लगता था कि जैसे आज उनके मनमें कहीं कमी है। जब वे लिखने बैठा करते थे तो उनका आदेश था कि हमें कोई दख़ल न दे। एक बार वे तो लिख रहे थे और मैं दूसरी ओर बैठा हुआ उर्दूके कुछ मिसरे तैयार कर रहा था :

> **महलका दरवाज़ा बन्द किये महफ़िलमें बैठे हैं**
> **बराबर ड्योढ़ीवानोंपर यही इज़हार आता है**
> **कोई कितना सताये, हरगिज़ न खोलना कुंडीको**
> **भला देखता हूँ फिर कौन-सा मक्कार आता है**
> **कहा हमने यह धमकी दीजिए इज़हारपरस्तोंको**
> **जो आशिक है वह साहब फाँदकर दीवार आता है।**

"व्यंग्यमें यह सप्रेजी पर ही लिखा गया था। पासमें सरवटे नामक एक मित्र बैठे थे। वे 'प्रभा' में 'देहाती गँवार' नामसे समालोचना आदि लिखा करते थे। उन्होंने ये पंक्तियाँ सप्रेजीपर ही लिखी देखीं और ज़बरदस्ती माखनलालजीसे यह काग़ज़का पुर्जा छीनकर सप्रेजीके हाथमें थमा दिया। सप्रेजीने पढ़ा। बस, फिर क्या था। सप्रेजीकी उस दिन हमपर काफ़ी डाँट पड़ी।"

प्रभामें सप्रेजीने भी अतिशय सहयोग दिया और अन्य महानुभावोंकी तरह उन्होंने भी उसमें 'त्रिमूर्ति' और 'माधवदास रामदासी' जैसे कृत्रिम नामोंसे रचनाएँ प्रेषित कीं। "पं० माधवराव सप्रे हिन्दी भाषियोंको बलवान् बनानेके सबसे बलवान् वृत्ति-साधक थे। सोते-जागते वे हिन्दी भाषा और हिन्दी भाषीको देशमें महान् बनाना चाहते थे। सम्भवतः जितनी ही मराठी भाषाकी आलोचना करते उतनी ही मुझमें मराठी भाषी सज्जनोंमें घुलमिल जानेकी वृत्ति पैदा होती। सप्रेजीने मेरे जीवनके कठोर परिवर्तनोंमें बहुत बड़ा भाग लिया है।"

काफ़ी दिनोंसे मध्यप्रदेशमें वैधानिक सुधारोंका प्रश्न चल रहा था। आख़िर ८ नवम्बर १९१३ को मध्यप्रदेशके लिए विधान-सभाकी स्थापनाकी घोषणा की गई। तुरन्त ही उसके चुनावके लिए सरगर्मियाँ प्रारम्भ हो गईं। रायबहादुर पं० विष्णुदत्तजी शुक्ल मध्यप्रदेशके गरमदलीय लोक नेता था। उन्होंने इस सभाके लिए खड़े होनेका निश्चय किया और उसी सिलसिलेमें वे खण्डवा भी पधारे। खण्डवा आनेसे पहले पं० माधवरावजी सप्रेने शुक्लजीके साथ आनेवाले एक सज्जनको पं० माखनलालजी चतुर्वेदीके नाम एक पत्र दिया कि इन्हें चुनावमें अधिकसे अधिक सहयोग देनेकी व्यवस्था करा दी जाय। माखनलालजीसे जो कुछ भी बन पड़ा, वही इन्होंने किया। माखनलालजी इस पहली ही मुलाकातमें विष्णुदत्तजी शुक्लसे अत्यन्त प्रभावित हुए। उन्हें विश्वास हो गया कि साहित्यिक मंचपर केवल विष्णुदत्तजी ही ऐसे व्यक्ति हो सकते हैं, जो मध्यप्रदेशके हिन्दी भाषी प्रान्तोंकी कल्याणकामनाको मूर्त स्वरूप दे सकते हैं। इसी यात्रामें विष्णुदत्तजीने माखनलालजीको अपना निकटका मित्र भी बना लिया। 'प्रभा' का जो वास्तविक सम्पादक था, उसका व्यक्तित्व ऐसा ही तत्काल स्वीकार करने योग्य जो था।

इस विधान सभाकी पहली बैठक १७ अगस्त १९१४ को प्रारम्भ हुई। इस सभाके एक निर्वाचित लोकप्रिय सदस्य पं० विष्णुदत्तजी शुक्ल भी हुए।

'प्रताप'-परिवारकी यशस्वी सदस्यता

१९१३ की एप्रिलमें खंडवासे 'प्रभा' निकली। इसी वर्षके अक्टूबरमें कानपुरसे श्री गणेशशंकरजी विद्यार्थीने 'प्रताप' साप्ताहिक निकाला। इससे पूर्व गणेशजी आचार्य महाबीर प्रसादजी द्विवेदीके पास सहायक सम्पादक रह चुके थे और कुछ दिनों उन्होंने श्रीकृष्णकान्तजी मालवीयके पास भी 'अभ्युदय' में पत्रकारकलाका अभ्यास पाया था। 'प्रताप' के ऊपर

जो परिचयात्मक पंक्तियाँ हैं, वे आचार्य महावीरप्रसादजी द्विवेदी हीकी लिखी हुई हैं।

जब 'प्रताप' निकला, उससे पहले माखनलालजी अनेक कविताओंका सर्जन कर चुके थे। 'प्रताप' के निकलते ही आपने एक कविता 'चेतावनी' शीर्षकसे 'एक भारतीय आत्मा' नामक लेखककी ओरसे उसमें प्रकाशनार्थ भिजवा दी। कविता यह थी :

अंगुली दिखा लो, या घिना लो, डर बता लो, डर नहीं,
बातें बना लो, सब छिना लो, क्या करें ? उत्तर नहीं।
पर विश्वके विश्वस्त पथको भाइयो ! भूलो नहीं,
उन कल्पनाओंमें वृथा—मानो ज़रा, फूलो नहीं।
देखो कहीं ऐसा न हो, सूर्यास्त हो क्षण मात्रमें,
दीखे न वह तेजस्विता, फिर इस तुम्हारे गात्रमें।

जिसको दिखाया आपने संसारमें सोता हुआ,
कर्तव्य-पथमें दीनता—संयुत पड़ा रोता हुआ।
बोता हुआ तम-वल्लरी, अपने उदय-उद्यानमें,
खोता हुआ, सिद्धान्तमय सर्वस्वको अज्ञानमें।
वह जागकर यह कह न बैठे—"मैं बड़ा मतिधीर हूँ—
मैं वीर हूँ, मैं वीर हूँ, मैं वीर हूँ, मैं वीर हूँ।"

ये जाति-जीवन-मार्ग-बन्धन तोड़ दो, मानो कहा
ये आर्य-अपयश-भाण्ड सारे फोड़ दो, मानो कहा
इन तीक्ष्णतर आक्षेप-तीरों का चलाना छोड़ दो
बँहके हुओंका मुख-अर्जा अब भी समय है, मोड़ दो।
"दैवोऽपि दुर्बलघातकः"—ऐसा न हो प्रतिकूल हो,
जिसको समझते ठीक हो, ऐसा न हो, वह भूल हो,

जातीयताका भाव देखो, है यहाँ जगने लगा,
प्रान्तीयताका पाप इनको छोड़कर भगने लगा।
"टूटे हुए वे प्रेम-बन्धन" प्रेमसे जुड़ने लगे,
भूले हुए सीधे पथोंकी ओर भी मुड़ने लगे।
हाँ नेत्र तो देखो, न देना दोष तुम पीछे हमें
प्रेमी हमारे हो, इसी से हम चिताते हैं तुम्हें।

है दीन भारतको जगाने आ चुकी अब भारती,
बढ़कर किया ही चाहते हैं कार्य विद्यार्थी व्रती।
ये ब्रह्मचारी धीर-धारी, आत्मत्यागी देख लो,
ये वीर नेता, शीघ्र-चेता, गुण-विजेता देख लो।
अवरुद्ध उन्नति-मार्ग मिलकर शीघ्र अपना खोल दो,
होकर हमारे साथ "भारतवर्षकी जय!" बोल दो।

गणेशजीने कविता पायी। कविताके साथ उन्होंने एक रहस्य भी पाया। कविता प्राण-प्रतिम कन्या-सी थी, तो लेखकका नाम ज्योतिर्मय वातायन भी साथ लाया था। ऐसा लगता था कि यह कवि अरक्षाकी आशंकाओंसे ग्रस्त, कहीं एकाकी जीवन बिता रहा है। गणेशजी परेशान कि इस कविसे साक्षात्कार कैसे किया जाय? खण्डवासे रचना आई है, पर कविका पता नहीं है। आखिर उन्होंने इसी नामका पत्र मारफ़त पोस्ट-मास्टरके पास भेजा और उसमें लिखा कि आप कानपुर कब आ रहे हैं।

पत्रका उत्तर तो देना ही क्या था, लेकिन इस निमन्त्रणमें जैसे दीर्घ स्नेह-सूत्र और आत्मीयताके डोरे तह कर रखे हुए आये थे।

कि लखनऊ-सम्मेलन आया। इसके अध्यक्ष पं० श्रीधर पाठक थे। यह सम्मेलन कालीचरण हाईस्कूलकी बिल्डिंगमें हुआ। इस हाईस्कूलके प्रधानाध्यापक बाबू श्यामसुन्दरदासजी थे। उन्हींके सद्प्रयत्नोंसे यह सम्मे-

लन हुआ था। सम्मेलन दशहरेपर न हो और उसकी अवधि बढ़ाई जाय, इस सम्बन्धमें माखनलालजीने कलकत्ताके 'भारतमित्र'में एक आन्दोलन छेड़ा। आप अपने लेखोंके नीचे 'एक साहित्य-प्रेमी' या एक 'भारतीय' लिखा करते थे। पर सम्मेलन तो दशहरेपर ही हुआ। इस वर्ष संयोग ऐसा कि दशहरेके साथ ही मुहर्रम भी सम्पन्न होना था। सम्मेलनके अवसरपर जब माणिकचन्दजी अनेकों तरुणोंको लेकर लखनऊ पधारे, साथमें उनके माखनलाल भी लिये गये। लखनऊमें 'भारतमित्र' सम्पादक श्री अम्बिकाप्रसादजी वाजपेयीसे उन्होंने भेंट की, तो उन्हें अपने बचावका एक सूत्र मिला और उन्होंने मंचपर माखनलालजीको पेश करते हुए कहा कि इन्हीं महोदयने सम्मेलनकी तिथियाँ बढ़ानेका आन्दोलन छेड़ा था, मेरा उससे कोई सरोकार न था। इस अवसरपर माखनलालजीने कोसेका फेंटा बाँध रखा था और कुर्तेपर धोती ही धारी थी। जब लोगोंने जाना कि यही महाशय खण्डवाकी साहित्यिक पत्रिका 'प्रभा'के वास्तविक सम्पादक हैं तो प्रायः सभी गणमान्य व्यक्तियोंने सहर्ष इनसे भेंट करनेमें रुचि ली और इनका मित्र होनेमें उत्साह प्रदर्शित किया।

अधिवेशनके बाद शामको सभी आगत सज्जन इमामबाड़ेकी ओर लपके जा रहे थे। मुहर्रमके कारण वह खूब सजाया गया था। शायद मंचपर गणेशजी दीख पड़े थे। एक रोशनीके खम्भेके नीचे माखनलालजी खड़े थे और उधरसे गणेशजी आ रहे थे। आपने उनको रोका, 'गणेशजी'! गणेशजी रुक गये और उन्होंने भी टोह ली, 'एक भारतीय आत्मा ?'

दो तरुण आत्माएँ आपसी भुजबन्धनमें कस गईं। दो नये मित्र आपसमें गुँथ गये। और लखनऊके इस भुजबन्धनने माखनलालजीका एक पैर सदा-सदाके लिए, आजीवन भरके लिए कानपुरमें ले जाकर टिका दिया। वे कहीं रहें, पर उनका एक पैर कानपुरमें ही रहना चाहिए। यह अनिवार्य विधान उनके जीवनमें रहस्यमय तरीक़ेसे गणेशजीने रोप दिया!

'एक भारतीय आत्मा' से साक्षात्कार होनेके बाद गणेशजी खण्डवा आये। गणेशजी आयुमें माखनलालजीसे तीन वर्ष छोटे थे, फिर भी उनका व्यक्तित्व कर्मरत और प्रेरक द्युतिसे लबालब था। कुछ अपने ऊपर माखनलालजीका अधिकार लिया, कुछ माखनलालजीके ऊपर अपना अधिकार गणेशजीने दिया। घरपर माखनलालकी पत्नीने इस अति सरल और कोलाहलमें जीवित रहनेवाले मौनी साधकका भरसक आतिथ्य किया। पर गणेशजीका यह गुण कि जैसे वे अतिथि होकर भी अपना आतिथ्य ही इस तरुण दम्पतिके बीच चर्चित कर गये हों।

गणेशजीने भी 'प्रभा'में कुछ लेख लिखे, लेकिन वही छद्म नामसे। आपने 'श्रीयुत् सत्येन्द्र' और 'श्री आदित्य' नामसे अनेक रचनाएँ प्रेषित कीं। उधर 'प्रताप'में माखनलालजीने भी तिलककी गरम दलीय राजनीति-के समर्थनमें अनेक लेख लिखे छद्मनामोंसे। यद्यपि ये लेख सामाजिक विषयोंपर ही होते। आपने 'श० श० श०' और 'ल. त्र. ज्ञ.' और 'भारतवासी' नामसे ही ये लेख लिखे। छद्मनामसे लिखना इसलिए ज़रूरी था कि खण्डवामें बैठकर माखनलालजी तो एकदम विशुद्ध साहित्यिक रोल खेल रहे थे। लेकिन उनका जीवनमें सबसे प्रिय रोल तो गरम दलीय राज-नीतिमें उग्र लेख लिखना था और वह पुलिसकी आँखोंसे बचनेके लिए इसी रूपमें हो सकता था कि छद्मनामसे ही लिखा जाय।

जब कि इस अवस्थातक आते-आते श्री मैथिलीशरण गुप्त और श्री जयशंकर प्रसाद प्रभृति कवियोंने खुला जीवन बिताते हुए न जाने कितना साहित्य लिख लिया था और वह प्रकाशमें आ चुका था। लेकिन एक माखनलालजी थे कि जिन्हें छद्मनामसे लिखनेकी तोहमत सिरपर उठाते हुए अपने साहित्यको अधिकांशमें अप्रकाशित रखनेकी विवशता ही मनमें सतर्क प्रहरी-सी प्रतिक्षण खड़ी रखनी पड़ती थी। फिर भी जयशंकर-प्रसादजीने अपनी मृत्युसे कुछ ही दिन पहले यह स्वीकार किया था, "मैंने

और माखनलालजी चतुर्वेदी दोनोंने प्रायः एक साथ ही खड़ी बोलीकी कविता लिखना प्रारम्भ किया था।''

शीघ्र ही गणेशजी दूसरी बार खण्डवा आये। इस अवसरपर माखन-लालजी बम्बई गये हुए थे। वहाँपर लार्ड सिनहाके सभापतित्वमें एक राजनीतिक परिषद् हो रही थी और उसका आँखों देखा सान्निध्य प्राप्त करनेके लिए माखनलालजीको बम्बई जाना ज़रूरी लगा। गणेशजी घरपर ठहरे। श्रीमती ग्यारसीबाई चतुर्वेदीने अपने पतिकी अनुपस्थितिमें गणेश-जीका आतिथ्य किया। पर वे तो निकटस्थ आत्मीय थे अब। बातचीतके दौरानमें गणेशजीने माखनलालजीकी सभी वस्तुओंका तीव्र दृष्टिसे निरीक्षण किया और उनकी पत्नीके सहयोगसे वह देवदारूकी छोटी पेटी भी सामने ला रखी, जिसमें एक तीन पैसेका बन्द ताला लटका हुआ था और उसी-में माखनलालजीकी अप्रकाशित कविताएँ बन्द पड़ी थीं। ताला तोड़ा गया और उसमे जितनी भी कविताएँ असूर्यम्पश्या-सी थीं, उनको अपनी जेबके हवाले किया। इसी पेटीमें वह पांडुलिपि भी थी, जो एक नाटक था 'कुली-प्रथा' और जिसे लक्ष्मणसिंहजी चौहानने लिख छोड़ा था। वे इन दिनों आगरा-कालेजमें पढ़ते थे, पाण्डुलिपिपर ही चौहानजीने अपनी यह प्रथम कृति माखनलालजी चतुर्वेदी को 'समर्पण' की हुई थी। गणेशजीने यह पांडुलिपि भी अपने हवाले की। जब तक माखन-लालजी लौटें, गणेशजी कानपुर लौट चुके थे।

जब माखनलालजी बम्बईसे खण्डवा लौटे तो उन्होंने घरका हाल देखा। देवदारूकी पेटीका ताला टूटा हुआ पाया और समस्त रचनाओंको अनुपस्थित पाया। गणेशजीकी इस भावाभिव्यंजनकी क्षमतापर माखन-लालजी गद्‌गद हुए विना न रहे।

अब कविकी पत्नीने कविको आड़े हाथों लिया। बोलीं, "भाई साहबने आपकी उन सभी हरक़तोंकी पोल खोल दी है, जो आप कानपुरमें बैठकर करने लगे हैं!"

"अजी, कौन-सी पोल खोल दी है? कौन-सी हरकतें हम किया करते हैं?"

"भाई साहब सब बता गये हैं। वे आपकी एक-एक पोल खोल गये हैं।"

"लेकिन एक-आध मालूम तो हों!"

"बस, मुझे तो सभी मालूम हो चुकी हैं।"

गणेशजी पत्नीके भ्राता बनकर घरमें पारिवारिकताका जो शहद भरा कटोरा छोड़ गये हैं, तो माखनलालजीने महसूस किया कि यह तो जीवनका एक अनिर्वचनीय अनुभव है। पारिवारिक स्तरपर आजतक पितासे लेकर अन्य जितने भी व्यक्ति आये, वे इस तरह तो न आये कि उनकी हलकी-सी यादसे आँखोंके आँसूतक छलक आयें...

फिर तीसरी बार जब गणेश खण्डवा आये, तो माखनलालजीने पत्नीके सामने ही भोजनकी थालीपर बैठनेके समय पूछा कि आप मेरे पीछेसे मेरी कानपुरकी क्या-क्या पोल खोल गये हैं, जो इनको (पत्नीको) सभी मालूम हो चुकी हैं।'

पहले तो गणेशजी इस नये आरोपसे, और एक अकल्पनीय बूझ पहेलीसे बहुत सकपकाये। फिर जब उन्होंने कविकी प्रियाके इस उपालम्भमें निहित विनोदका आनन्द लिया, तो खूब ही हँसे और उस दिन सुबहसे शामतक सारा घर आनन्दकी घड़ियोंसे तरंगायित हुआ रहा।

ग्यारसीबाईने अपनी बलि दी

पर गणेशजी खंडवासे जैसे ही विदा हुए, श्रीमती ग्यारसीबाई चतुर्वेदीकी शारीरिक अवस्था दिनों-दिन बिगड़ने लगी। उन्हें चुपके-चुपके यक्ष्माने अपनी दाहक गिरफ्तमें कर लिया था और वे कुछ ही दिनोंकी मेहमान थीं। वे वीर पुत्री थीं कि उन्होंने अपनी मृत्युसे कुछ दिनों

पहले तक किसीको सूचना तक न दीं कि वे अन्दर ही अन्दर खोखली हो चुकी हैं।

जब तक अबोधा पत्नीको लौकिक चेतना न मिली, अल्हड़ पतिसे झगड़ा करनेमें और सदा ही उपेक्षा बरती जाने वाली उदासीनतामें उनका अन्तस् छलनी हुए जा रहा था। उधर प्रतिक्षण यह आशंका अलग खाये जा रही थी कि पतिकी करतूतोंके कारण किसी भी क्षण पुलिस उन्हें गिरफ्तार कर सकती थी। और पतिने जब पत्नीकी ओर ध्यान देना शुरू भी किया तो अपना अध्यापकपन ज़बरदस्ती उसके कोमल मस्तिष्कपर लादना शुरू कर दिया।

अबोधा ग्रामवधूमें खिन्नता और कुढ़नका घुन लगता जा रहा था। कि गंगाबहन और अन्य तरुणी छात्राओंके प्रति उसकी ईर्ष्याभावनाने इस घुनको और भी भीषण प्रतिक्रियाकारी बना दिया। रात-दिनका रहा-सहा चैन भी मन-मानससे जाता रहा।

पर वे क्षण भी आये, जब अपने गुण-कौशलसे पत्नीने पतिको अपने वशीभूत किया। पर यह सुख ज़्यादा दिन न चला। सास और पड़ोस—मुहल्लेकी बड़ी-बूढ़ियोंकी तानेज़नीकी वह शिकार बना दी गई। हर क्षण जैसे वह कोसे जानेकी ही पात्री रह गई थी।

समझदारीका पत्नीत्व जब मातृत्व ग्रहण करनेके लिए सक्षम हुआ, तो ग्यारसीबाई एक कन्याकी माता बनी, पर वह कन्या कुछ ही दिन जीवित रह सकी और अपनी अभागिनी माताको आँसू बहानेके लिए छोड़ कर उसकी गोद सूनी कर चलती बनी। वह वर्ष इसी तड़पन, सिहरन, त्रास और कुढ़ते रहनेमें बीता।

रात-दिन सासके सामने घरका काम-काज, फ़ुरसत पाओ तो न समझमें आनेवाले पतिके चित्र-विचित्र कामोंमें अपनी शक्ति खर्च करना या अँधेरी रातमें उसके साथ घूमने जाना····न कि अध्यापकीसे त्यागपत्र देनेके बाद घरकी आर्थिक स्थितिमें जैसे कहीं सेंध लग गई। जो कमाई ट्यूशनों-

से हो रही थी, वह भी बन्द हो गई। निर्व्याज साहित्य-सेवामें और सम्पादकीके अभिमानमें पति तो बाहर फूले नहीं समाते थे, पर घरमें पत्नी कठोर ग़रीबीमें अपनी समस्त सुखद आशाओंपर ठंडी-ठंडी साँसोंके तुषारपात और गरम-गरम आँसुओंके दाहक तापसे सूखनेकी सीमाओंका अन्त नहीं पा रही थी। और जब 'प्रभा' एक वर्ष चलनेके बाद बन्द हो गयी, तो जो रहे-सहे ३०) रु० सहकारी सम्पादनके वेतनके एवज़में मिलते थे, वे भी मिलने बन्द हो गये और नौबत यहाँ तक आ पहुँची कि घरके जेवर बेच-बेचकर घरकी रोटियाँ खाई जाने लगीं। नववयस्का पत्नी अपने जेवर बेचनेके लिए जब बाध्य की जाती है,तो मानो वह अपने समस्त अस्तित्वको ही मिट्टीमें मिला देनेके लिए मज़बूर की जा रही है। ग्यारसीबाईके जीवनमें बस अब कोरा हाहाकार ही रह गया। सास थी कि घरकी समस्त विपत्तियोंका कारण केवल बहूको मानती थी। पतिने अपनी कमाईका सुख तो कुछ दिया ही नहीं था। अब रहा-सहा प्रकाश भी सामनेसे अस्त हो गया।

घरमें उपवासकी परिस्थितियाँ उफन पड़ीं। छोटे भाई-बहन पिताजी-के पास भिजवा दिये गये। किन्तु ग्यारसीबाई एक कुलशीला वधू थी। उसने अपने अन्दरकी बाहर कभी प्रकट न होने दिया। पति-सेवा और सास-सेवामें कोई अन्तर न आने दिया। पर अन्तर तो यक्ष्माने ही जब पैदा कर दिया, उस समय वे क्या करतीं? अवस्था यह आ गई कि रुग्णा पत्नीने खाट पकड़ ली। पर खाट पकड़नेपर ग्यारसीबाईने पतिके लाख कहनेपर भी यह स्वीकार न किया कि श्वसुरको उसकी बीमारीकी सूचना दी जाय। सास अपने किसी रिश्तेदारके विवाहमें भाग लेने गई हुई थीं। दूसरे इन्हें इसीलिए न बुलाया कि रोगिणी बहू सासके सामने ज़बरदस्ती काम-काज न करने लगे और शय्याग्रस्त पत्नीके सामने सासकी अधिकार-भावनाएँ कहीं उग्र रूप धारण न कर लें। बाबईमें ग्यारसीबाईकी माँको जब पता चला कि उसकी बेटी बहुत बीमार है तो

जाता था। लेकिन इस अंककी टिप्पणीमें माखनलालजीने अपने शोक-सन्तप्त हृदयकी विचार-धाराका मनोमन्थन ही लिपिबद्ध किया है--

"परम दुःख है, जिस तरफ़ दृष्टि डालते हैं, दुःख ही दुःख दीखता है। सोचते हैं, सुनते हैं, समझते हैं, परन्तु निश्चय नहीं बँधता। विदित नहीं होता कि यह करुणा-क्रन्दन किसे सुनावें। जिस तरफ़ दृष्टि डालते हैं, संसारकी निस्सारता, शून्यता और भयंकरताके सिवाय कुछ भी नहीं दीखता। प्रभो अहा, जिसे देखकर ध्यानियोंको ध्यानस्थ रहते-रहते ज्ञानियोंको विश्व-विजय करनेकी शक्ति प्राप्त थी, वह प्रकाश हमसे दूर क्यों रक्खा गया है। हमें जड़-बुद्धि यह माननेके हेतु बाध्य कर रही है कि तुम भी अपना जीवन मशीनके समान बना डालो। क्या इसका कहना मान लें जगदात्मन्, हमारा स्वभाव उच्छृंखल, अविश्वासी, अकर्मण्य, विषयी, छली और नपुंसक हो गया है। हमारा स्वभाव मानवीय रचनाके बिलकुल विपरीत हो गया है, हम यह नहीं कहते कि हमारा उद्धार करो, हमें बचाओ, हमारे पापोंको क्षमा करदो, हमारी हीनतापर परदा डालकर उसे उच्चताके रूपमें परिणत करदो, हम नहीं चाहते कि हमारे सिरपर आप संसारकी विजयका सेहरा बाँध दो, हमारे गौरवके नगारे देशान्तरोंमें बजवा दो, हमें दानवसे देव बना दो। नहीं, हम कहते हैं, हम अनुरोध करते हैं कि हमपर कष्टों, आपत्तियों, दुःखोंकी वर्षा करो और उनके सम्हालनेकी भरपूर शक्ति दो। प्यारे सुवर्णकार, हमें ख़ूब तपा लो, ठोक लो और पीट लो, परन्तु देखना, हमें दृढ़ता दिये बिना न रहना। उसे पाकर हम आपके आनन्ददायी उपहारोंका ठीक-ठीक उपयोग ले सकेंगे, कठिनाइयोंको सहनेका यत्न कर सकेंगे।

"हमें हमारी शक्ति एवं कर्तव्य क्रम-सूचीके अनुसार जो चाहो देते चले जाओ। कायरता किस कक्षाका अपराध है। आचरणहीनताकी गणना किन पापोंमें की जाती है? कठोरताके प्रतिफलमें क्या देना चाहिए? अन्य नियमोंपर चलनेवालोंको क्या मिलना चाहिए? कर्तव्यकी

हत्या करनेवालोंको कौन-सा फल मिलता है ? धर्मके झूठे दलाल बननेसे कौनसा सौभाग्य प्राप्त होता है ? कपटकी कराल कृपाणसे, अपने कृपा-कारियों तकका वध कर डालना किसे पानेकी चेष्टा करना कहलाता है ? जीवनकी बूँदोंका नाश करना किस यातनाका अधिकारी होना है ? बस दीजिए, वे ही सब आपत्तियाँ हमें दीजिए, जो हमारे अपराधोंका ईश्वरीय दण्ड हो। हमारा हृदय चाहे घबड़ाये, चाहे सौगन्धें खावे और चाहे नाश हो जावे, परन्तु हम माँगेंगे एक बार अवश्य। माँगेंगे और अनुरोध पूर्वक माँगेंगे केवल अपने अपराधोंका दण्ड और वह देना पड़ेगा, संसारसे नीचता उठा देनेके लिए, कायरोंसे विस्तृत विश्वको ख़ाली कर देनेके लिए, पाखण्डकी पोल खोल देनेके लिए, नपुंसकोंका अस्तित्व शून्य कर देनेके लिए, और पत्थरोंको घर्षण कर सच्चा रत्न, तथा सुवर्णको तपाकर सच्चा सुवर्ण बना देनेके लिए, अवश्य देना पड़ेगा। वह हमारी वस्तु है, हमारा पहला कर्तव्य, हमारा प्रारम्भीय धर्म उस प्यारी वस्तुको प्राप्त करना है। दीजिए, अवश्य दीजिए, हमारे अपराधोंका दण्ड हमें दीजिए।

"दूर हो, बहुत दूर हो, न जाने कितनी दूर हो। तभी तो हमारा यह चपल और मलिन मन बहक कर कहता है कि 'किसे मालूम, हो या नहीं हो,' हम कहाँ ढूँढ़ें, कहाँ जावें, किससे कहें। कौन सुनता है ? हाँ, बस जानते हैं, और दयासागर कहानेवाले प्रभु, यदि किसी अपराध लगनेका भारी भय हो, तो मान भी लेते हैं, कि 'तुम हो', परन्तु 'कहाँ हो' देव सत्य मानिए, हम यह नहीं जानते।

"शीघ्र ही कहो, कहाँ हो ?

"बहकी हुई बुद्धि और भी बहका चाहती है। दयानिधे, शीघ्र बताओ। यदि दूर हो तो पास आकर बताओ। अच्छा, वहींसे सही, जहाँ हो, वहींसे सही, परन्तु बताओ, शीघ्र बताओ।

"तुम चुप हो। तुमने मौन धारण कर लिया है। क्या न बताओगे? क्या हमें संसारकी पथरीली चट्टानोंसे यों ही टकराना पड़ेगा? हानि नहीं, हम चट्टानोंके सामने खड़े रहेंगे, मरते दम तक अड़े रहेंगे, पर बताओ, शीघ्र बताओ, तुम कहाँ हो?

"सुनते हैं, वेद तो नेति नेति कहते थे। वेदके शोधकी गहरी बुद्धिका तो हमारे पास अभाव है। पुराणोंमें एक समुद्र ही हिलोरें ले रहा है। वहाँ बड़ा बाज़ार लगा है। वह भी हमारे सामर्थ्यसे बाहरका ही कार्य्य दीखता है। ईसाको एक ज्योतिके रूपमें दिखायी दिये थे। मुहम्मदने भी प्रकारान्तरमें उसी रूपमें देखा। यों प्रत्येक जगह ज्योतियोंका वाला है। महात्मा बुद्धने आपको अपने भीतर ही देखा। वहाँ भी कुछ ज्योति ही होगी। परन्तु हम कहाँ जायँ? किससे कहें, क्या करें? दयानिधे, कहो, केवल एक ही बार कह दो कि तुम कहाँ हो, और कितनी दूर हो? क्या निकट हो ही नहीं? बिलकुल दूर ही हो? तुम फिर न बोले? हाय, सुना न होगा, दयानिधे, तुम हमसे बहुत दूर हो क्या? अनुमानसे, ज्ञानसे, विचारसे, सबसे ही दूर हो क्या?

"मिल जाओ। केवल एक बार मिल जाओ। देखो, सूर्य और चन्द्र एक बार मिलते हैं। अग्नि और पानीका भी संयोग हो जाता है। शीत और उष्ण भी आपसमें मिलकर वसन्त बना डालते हैं। सब आपसमें मिलते हैं। अपने विरोधी स्वभावको सब छोड़ देते हैं। दयानिधे, आपका स्वभाव तो विरोधी नहीं है। प्यारे, निर्दय नहीं, कठोर दयालु! यह कौन जान सकता है कि आपका स्वभाव क्या और कैसा है? कैसे भी हो, पर एक बार मिल जाओ। हठीले हरि एक बार, केवल एक ही बार, मिल जाओ। दयासागर! मैं तुम्हें एक आशीर्वाद दूँगा, नहीं नहीं क्षमा करो…मैं प्रणाम करूँगा, और फिर बड़े प्रयत्नसे, प्रथम, अपने कर्तव्यहीनताके भयंकर पापको तुमपर चढ़ाकर, फिर एक बार नेत्र भर

कर तुम्हें देखूँगा और फिर अपने आपको भी तुम पर तुम्हारे साढ़े इकतीस करोड़ अंशोमें बँटे हुए, विराट स्वरूपके एक अंग पर चढ़ा दूँगा।

—'कुछ नहीं'।"

जब सर्वगुणसम्पन्ना, कुलशीला, पतिपरायणा पत्नी चिरनिद्रामें समाधिस्थ हो गई तो हर क्षण उसकी उपेक्षा करनेवाले माखनलालजीको पत्नी-अभावका होश आया। उस अमूल्य पत्नीका मूल्य मालूम हुआ। कवि जब अन्यत्र प्रियजनोंकी मृत्यु पर केवल मरसिया पढ़नेका अधिकार सँजोये बैठा था। उसने एक कविता लिखी और लिखकर अपने गोपनमें ही कहीं छिपा कर रख भी दी। पर इस कविताको यहाँ प्रकाश दिया जाना अत्यन्त आवश्यक है। कविता यह है :

"भाई छेड़ो नहीं मुझे, खुल कर रो लेने दो
यह पत्थर-सा हृदय आँसुओंसे धो लेने दो
रहो चैनसे तुम्हीं मौजके मंजु महलमें
मुझे दुखोंकी इसी झोपड़ीमें सोने दो
कुछ भी मेरा हृदय न तुमसे कह पायगा
किन्तु फटेगा, फटे बिना क्यों रह पायगा
सिसक सिसक सानन्द करूँगा मैं श्री-पूजा
बहे कुटिल यह सुक्ख दुक्ख क्यों बह पायगा
वारूँ सौ सौ श्वास एक प्यारी उसास पर
क्या है जीवन प्राण दैवके इस विलास पर
हटो हटो जो बने तुम्हारा कार्य चलाओ
बलि होने दो मुझे इसी अटपटे घाट पर
पूजाके ये पुष्प गिरे जाते हैं नीचे
विवश अश्रुके स्रोत कहो किससे पथ सींचे ?

दिखलाती क्षणमात्रमें न आती प्यारी प्रतिमा
यह दुखिया किस बहाने उसे भूतलपर खींचे ?
यह कैसा निश्चय का मेरा समझौता है
मेरा बल हर लिया और बलिका न्यौता है
मैं न्यौता स्वीकार करूँगा कठिन पन्थका
मातृभूमि हो सुखी, भले पन्थी रोता है।"

सहस्रों ही भारतीय ललनाएँ असमय कालकवलित हो जाती हैं। पर श्रीमती ग्यारसी बाई चतुर्वेदीने अपनी इस समयकी बलियात्रापर विदा होकर हिन्दी साहित्यको एक अप्रतिम देनका नया परिच्छेद खोल दिया। उनकी बलिने माखनलालजीकी आँखें खोल दीं। और माखनलालजीने अपनी पच्चीस वर्षीय भरी तरुणाईमें पत्नीकी इस असह्य बलिके प्रति एक सौगन्ध खाई। यह सौगन्ध दूसरा विवाह न करनेकी थी।

आज ग्यारसीबाई नहीं है। पर माखनलालजीके काव्यमें उन्हींका मधुरतम व्यक्तित्व अपनी वाणीका कूजन करता है। अपनी विदा लेकर उन्होंने अपने पतिको देशके बलि पन्थपर निर्द्वन्द्व जूझनेके लिए निश्चिन्त कर दिया। यह जूझना कठोर साधनामें खो जानेसे कम नहीं था। माखन-लालजीकी कठोर साहित्यिक साधनाको फलवती बनानेके लिए इन पंक्तियों-का लेखक उस वन्दनीया रमणी ग्यारसीबाईजीको अपनी श्रद्धाञ्जलि समर्पित करता है।

२५ वर्षकी अवस्था भारतीय परिवारमें एक युवकके लिए पुनर्विवाहके निमित्त आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य समझी जाती है। शास्त्रोंमें इसका विधिवत् निर्देश है। पिण्डदान और उत्तराधिकारका क्रम सुरक्षित रखनेके लिए इसे आवश्यक समझा जाता है। माखनलालजीके पिताजी और माताजी अपने इस वयस्क पुत्रका दूसरा विवाह भला करनेके लिए लाला-यित क्यों न रहते ? यहाँ तक कि स्वर्गीया ग्यारसीबाई चतुर्वेदीकी माताजीने भी अपने जामातासे आग्रह किया कि वह दूसरा विवाह करनेकी स्वीकृति

भर दें, मैं स्वयं दूसरी बहू अपनी मर्ज़ीकी लाऊँगी। उधर गणेशशंकरजी भी हर अवस्थामें यह लाज़िमी समझते थे कि एक अव्यवस्थित जीवन बितानेवाले युवकके घरमें व्यवस्थाकी मर्यादाओंको नियमित करनेवाली कुलशीला पत्नी अवश्य चाहिए। माखनलालजीका दूसरा विवाह तो सारी दुनिया चाहती थी। लेकिन माखनलालजीके जीवनमें तो दूसरा विवाह न करनेकी जो उठी हुई उँगली थी, वह बराबर उनकी आँखोंके आगे उठी रही। यह उँगली उनके सुखी दाम्पत्य-जीवनमें ही एक घटनाको लेकर उठी थी।

"उन दिनों पिताजी हरदा तहसीलके नयागाँवमें शिक्षक थे। उनकी यह तीव्र इच्छा थी कि उनके तीन-चार शिष्योंको किसी प्रकार अंग्रेज़ीका शिक्षण हो जाय। मैं उन दिनों खण्डवामें प्राइमरी पाठशालाका शिक्षक था ही। पर 'प्रभा'के कार्यमें व्यस्त रहनेसे मैंने अध्यापकी छोड़ दी थी। फिर भी मेरा पूरा परिवार मेरे साथ ही रह रहा था। एक बार जब माँ नयागाँव चली गईं, तब मेरे पास रहनेवाले पिताजीके तीन शिष्योंमें एक बीमार हो गया। यह बच्चा नया गाँवके राजपूत परिवारका था, जो नयागाँवके ज़मींदारसे ही सम्बन्धित था। किन्तु जो अत्यन्त ग़रीबीसे और अत्यन्त परिश्रमसे पढ़ रहा था। मेरी पत्नी और परिवारको सब बच्चोंमें वही बच्चा बहुत प्रिय था। बच्चेकी अवस्था उस समय कोई बारह वर्षकी थी। पत्नीकी उम्र कोई १६ वर्षकी थी। पत्नीने बार-बार मना किया कि इन बच्चोंको घरमें न रखा जाय। पर मैं अपनी ज़िद्‌पर था। पिताजीकी इच्छाओंको पूरी करना मैं अपना धर्म मानता था, चाहे हमें उसमें हज़ार असुविधाएँ हों।

"एक दिन जब उस बच्चेको बुख़ार बहुत बढ़ा, तब खण्डवाके उस समयके एकमात्र डाक्टर हसनअलीको मैं बुला लाया। उन्होंने दवा दी, जिससे बच्चेको दस्त होने लगे। उस बच्चेको पत्नी ख़ूब ही सम्हाल रही थी। और उसकी तीमारदारीमें किसी तरहका अन्तर नहीं आने दे रही थी।

एक दिन जब उसे दस्त हुआ तो मैं नाक दबाकर घरसे बाहर भाग गया। पर पत्नी उन दस्तोंको साफ़ करनेमें ही लगी रही।

"ख़ैर, वह बच्चा स्वस्थ हो गया। अब पत्नीने उसे दुबारा घर भिजवा देनेकी जिद् ठानी। मुझे गुस्सा आ गया और मैंने कह दिया कि लड़का है और मेरे साथ रहता है। तुम्हारे बापका क्या खाता है?

"वह अन्दर चली गई और रोटी बनाने लगी। मैं जब रोटी खाने बैठा तो देखा कि उसकी दोनों आँखें लाल थीं। मुझे देखते ही उसकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा फिर बहने लगी। मैंने पूछा कि आख़िर इस रोनेका कारण क्या है? वह लड़का अगर हमारे साथ रहता है तो उससे तुम्हें हानि क्या है? वह बोली कि ऐसी बात नहीं है। उस दिन वह बीमार पड़ा, उसे दस्त हुआ तो आप नाक दबाकर बाहर भाग गये। अगर उसका बाप होता तो वह ऐसा नहीं करता। हम लोग उसके माँ-बाप बनने योग्य नहीं हैं।

"वह दिन है कि आज दिन है, मैं लड़के-बच्चोंकी सार-सम्हालसे नहीं घबराता। अपनी पत्नीकी एक दिनकी बातने मेरे जीवन-भरके स्वभावका निर्माण किया है। जब दूसरे विवाहकी बात आई तो मेरे मनने माननेसे इनकार किया कि इतनी अच्छी पत्नी मुझे दुबारा मिल सकती है। उसके साथ दाम्पत्य बिताते हुए जीवनमें आनन्द अधिक, कर्तव्य-की बात कम रही। पर उसके निधनके बाद मुझे जीवनके आनन्द गौण मालूम होने लगे, कर्तव्यकी बात अधिक। इसी कारण दूसरे विवाहका प्रश्न मैंने फिर किसीके आग्रहसे, यहाँतक कि गणेशजीके आग्रहसे भी स्वीकार नहीं किया

त्रयोदश परिच्छेद

'प्रभा' का गति-अवरोध और राजनीतिका निमन्त्रण

राष्ट्रीयता अभयप्रदायिनी बुद्धिधात्री रही है। रवीन्द्रनाथ टैगोरने लिखा है कि जो समग्रताके साथ विच्छेद लाती है, वही व्यर्थता लाती है। भारतीय राष्ट्रीयताका सर्वोपरि गुण यह रहा है कि इसका उत्तेजन उन हाथों सम्पन्न हुआ, जो अंग्रेज़ी शिक्षासे अनुप्रमाणित व अनुप्राणित हुए। उन्होंने ही अराजकता और सामाजिक संघर्षके बीच राष्ट्रकी चेतना-को बलवान् बनानेका, देशको एक शृङ्खलामें अन्तर्मुखी बनानेका, देशकी समष्टिको शुभ्र करनेका, देशकी खण्ड-खण्ड अपवित्र खण्डहरताके बीच शुचिताकी उच्च प्राचीरें चिननेका प्रभंजन उत्पन्न किया है। यह इसीलिए कि अंग्रेज़ीमें, उसके शासकवर्गके गोपनीय विश्वासोंके अनुरूप कि अंग्रेज़ी हर भारतीयको भारत-विरोधी बना देगी, भारत जैसी सनातन भूमिपर मुक्तिकामी जनसमुदायमें विरोध-जन्य आत्मविपर्ययताके बीज वपन करनेका साहस तक न था! अंग्रेज़ी भारतकी समग्रताके साथ भारतवासियोंका सम्बन्ध विच्छेद करनेकी क़ूवत लेकर यहाँ नहीं आयी थी। वह पूतना राक्षसी बन ही नहीं सकती थी, क्योंकि वह तो विश्व-भाषा बननेकी मृदु आलोक-भुजाएँ लेकर जन्मी थी। किसी भी भाषाने अपना विश्वधर्म किस क्षण नहीं निबाहा है?

मध्यप्रदेशमें राष्ट्रीयताका अधिकांश ताना-बाना वकील और बैरिस्टर लोगोंके हाथों साधा जा रहा था। अंग्रेज़ीका चश्मा पहनकर भी, उनमें-से कुछ लोकमतकी क्वाँरी जिजीविषाको ठिठकी हुई, खुले आकाशके नीचे धूप-बारिशमें असहाय बैठी हुई देख रहे थे। तभी तो राष्ट्रका जीवनरथ नहीं चल रहा था। लेकिन माखनलालजी पहले, अनेकमें-से गिने-चुने, कर्म-मुखर वास्तविकताओंकी विद्रोहात्मक भावस्थितिके पारखी, तेज़ीसे आगे बढ़ते हुए ऐसे ग्रामीण व्यक्ति थे, जिनके पास अंग्रेज़ी शिक्षा नहीं थी, लेकिन जिनके पास जनताके बीच उनकी आवाज़को सुननेकी जन्मजात शक्ति थी और जो अपने प्रदेशकी आवाज़को दूसरों तक पहुँचानेकी अकूत सम्भावनाएँ लेकर मञ्चपर जाते थे। जिस विश्वास-को अंग्रेज़ी सत्ता भयभीत होकर देखती थी, उसी विश्वासकी व्यापक मधुरिमाके दर्शन माखनलालजीकी वाणीमें कार्यरत लोकनायकोंको मिले और उन्होंने अपने बीच उनका सहर्ष स्वागत किया। उच्च शिक्षितोंके बीच इस एक ग्रामीण व्यक्तिकी सरलता, विनय और स्नेहकी गरिमा मुकुल-जड़ित बन्दनवार-सी प्रिय हुई। इसमें आश्चर्यकी बात कहीं नहीं थी। माखन-लालजी मध्यप्रदेश-जैसे हिन्दी प्रान्तके स्वीकृत नेता जो होने वाले थे।

सन् १५ राष्ट्रीय इतिहासमें बहुत ही महत्त्वपूर्ण वर्ष था। इस वर्ष बाल गंगाधर तिलक जेलसे छूटे थे। उन्होंने जेलमें अपने अंग्रेज़ी ग्रन्थ 'ओरियन' का संशोधीकरणकर उसका संशोधित नाम 'वैदिक क्रोनोलोजी' रखा था और उसीके साथ मराठीमें 'गीता दर्शन' जैसा प्रकाण्ड पांडित्य-पूर्ण ग्रन्थ लिखा था। उनके जेलसे छूटते ही राष्ट्रकी गरम-नरम दलीय शक्तियाँ पुनः एकजूट होनेके लिए खुले मैदानमें उतर आयी थीं। विश्व-युद्ध शुरू हो चुका था और उसकी विभीषिकाएँ देशमें महसूस होने लगी थीं। किन्तु विभिन्न क्षेत्रोंकी गतिविधियाँ देशमें अपनी सही दिशाओंमें आगे बढ़ रही थीं। इस वर्ष षष्ठ हिन्दी साहित्य सम्मेलन लाहौरके स्थानपर प्रयागमें सम्पन्न हुआ।

सन् १५ ने माखनलालजीको प्रान्तीय क्षितिजपर एक अधिकारपूर्ण मान्यता दी ।

'प्रभा' के निमित्त, उसकी हितकामनाके आयोजनार्थ माखनलालजी उच्चस्तरीय सम्पर्क स्थापित करनेमें रातदिन एक कर रहे थे और उसके लिए उच्चस्तरीय लेखोंको प्राप्त करनेमें उन्हें अत्यधिक सफलता भी मिलने लगी थी। अपनी घर-गिरिस्तीके सुखोंकी बाज़ी भी उन्होंने 'प्रभा' को प्राणदान देनेके लिए लगा दी थी पर हिन्दीका मासिक तो हिन्दीका मासिक था। वह तो तभी जीवित रह सकता था कि लोग उसे हथेलियोंपर खड़ा-कर स्वागत करें और अगर उसे बैठायें तो अपनी पलकोंपर ही बैठायें। अन्यथा हिन्दीका मासिक इतनी कोमल जातिका प्राणी कि छुई-मुईकी तरहसे मुरझा जाय। यह वह युग था, जब हिन्दीका मासिक मध्यप्रदेश जैसे निमाड़ी-बुन्देली-मराठी और अन्य-अन्य जनबोलियोंके क्षेत्रोंमें लोगोंकी मुलायम हथेलियों और सुन्दरतम लालसाओंकी आतुरतामें व अपलक पलकोंके अभावमें दम तोड़ने लगता था।

'प्रभा' यों कहनेको सारे देशके हिन्दीभाषियोंके लिए निकली थी, पर उसमें अकेले मध्यप्रदेशके हिन्दीभाषियोंमें बैठकर दीर्घजीवनकी फल-प्राप्तिकी सम्भावना एक और कारणसे सम्भव नहीं हो पा रही थी। कोई भी सशक्त हिन्दी प्रेस आस-पास ऐसा नहीं था, जो अपना सबसे प्रिय सहयोग इस हिन्दी मासिकको दे पाता। पूना जैसे दूरस्थ नगरसे यह छपकर आती और उसमें प्रायः ही हर मास अप्रिय विलम्ब हो जाता। निजके प्रेसकी चिन्ताने गँगराड़ेजी और माखनलालजीको बेहाल कर दिया और निपट परिणाम यह निकला कि प्रेसकी अव्यवस्थाओंके कारण फरवरी १९१४ में 'प्रभा' के प्रथम वर्षके १२ अंक निकल जानेके बाद इस हिन्दी मासिकका प्रकाशन उस समय तकके लिए स्थगित करना पड़ा, जब तक कि प्रेसकी कोई सुनिश्चित व्यवस्था न हो जाय।

मध्यप्रदेशमें दूसरा समर्थ हिन्दीका प्रेस था नहीं। और इसी चिन्तामें दिन बीतने लगे। गँगराड़ेजी यद्यपि अपनी आयका एक अच्छा भाग इस मासिकमें खपा चुके थे, फिर भी वे इसे जीवित रखनेके यत्नमें थे। जब १९१४ के दशहरेके अवसरपर गणेशजीसे माखनलालजीका प्रथम साक्षात्कार हुआ और इस साक्षात्कारमें 'प्रभा' के नवोत्थानके लिए जैसे खंडवाकी अशक्त शक्तियोंको एक सुयोग मिला। गणेशजी जब खंडवा आये और यहाँ विचार-विमर्श हुआ तो उन्होंने कानपुरमें अपने प्रताप-प्रेससे इस मासिकको दुबारा जीवित करनेका प्रण किया। लेकिन जब माखनलालजीकी पत्नीका देहान्त भी बिना अग्रिम सूचना दिये हो गया, तब गणेशजीको यह और आवश्यक लगा कि उनकी समर्थ शक्तियों-को एक दिशामें सक्रिय रखनेके लिए 'प्रभा' का पुनः प्रकाशन किया जाय। उनकी पत्नीने 'प्रभा' के लिए ही तो अपनी बलि दी थी। उस बलिका मूल्य अब इसी रूपमें चुकाया जा सकता था। ग्यारसीबाईजीके निधनसे सबसे अधिक दुःखी गणेशजी ही हुए थे। खंडवाकी शक्तियाँ भी प्रतापकी शक्तिसे मिलकर इस मासिकको दुबारा चलानेके लिए नये तौरपर उत्साहित हुईं और १९१५ के मार्चसे 'प्रभा' के द्वितीय वर्षका प्रथम अंक पूर्ववत् साज-सज्जाके साथ निकला।

स्थान परिवर्तनमें अनेक अभावोंकी पूर्ति हो गई। पूनासे यह ठीक है कि एक सचित्र हिन्दी साप्ताहिक निकलता था, लेकिन उससे अधिक सशक्त मासिक निकालनेकी शक्ति उस नगरमें नहीं थी। कानपुर इन क्षणोंमें साहित्यिक प्रवृत्तियोंका एक ज़बरदस्त गढ़ था। आचार्य महावीर-प्रसादजी द्विवेदी पहलेसे ही जुहीमें अपना निवास बनाये हुए थे। अन्य व्यक्तित्व भी यहाँ विद्यमान थे। कानपुरके निकट ही आगरा था, जो पिछले ४०–५० वर्षोंसे हिन्दीकी प्रवृत्तियोंका मुख्य केन्द्र था। इस समय तक प्रयाग और काशी प्रधान साहित्यिक केन्द्र नहीं हुए थे। लखनऊ सम्मेलनमें माखनलालजीने हिन्दीके कोटिके विद्वानोंसे परिचय प्राप्त कर

लिया था। गणेशजी स्वयं एक हिन्दीकी प्रबल संस्था थे और उनके माध्यमसे 'प्रभा' को और भी सरस अभिनव सामग्री मिलने लगी थी। इसी आकर्षणने प्रथम वर्षके कलेवरसे दूसरे वर्षकी 'प्रभा'में एक स्पष्ट अन्तर व्यक्त कर दिया।

पहला अन्तर दूसरे वर्षके प्रथम अंकका सम्पादकीय 'कर्मपथमें पदारोपण' है। इससे पूर्व केवल सम्पादक लिखित टिप्पणियाँ ही निकलती थीं। एक वर्षके अनुभवोंसे माखनलालजीको व्यावहारिक सम्बल ही मिला था। आपके इस सम्पादकीयमें, जिसे आपने 'श्रीगोपाल' नामसे लिखा था, आपकी जीवटकी भाषा और आपके सम्मोहित विचारोंमें परस्पर ग्रन्थित ऊर्मियोंका सम्मोहन दर्शनीय है। शेलीने लिखा है, "मेरे चरण अग्नि मेघोंमें देते हैं भर" कुछ इसी प्रकारके तारक-अंकित क्षितिजपर चन्द्रातपसे तप्त भाषा-मेघकी कोमल गर्जना इस सम्पादकीयमें पहली बार नर्मदाकी सहस्र धाराओं-सी प्रवाहित हो उठी। इस सम्पादकीयमें सर्वात्मवादी कल्पनाशीलता है। लोकोन्मुख समवेदनाके सीमान्त क्षितिजसे क्षितिज छूकर चौमुख बोल बोलते हैं—

'प्रभा'की सेवाका वह हिस्सा, जो उसने पैदा होनेसे उस दिन तक की, जिस दिन उसका सिर आपत्तियोंकी कठोर चट्टानके नीचे दबाया गया, आज हमारी आँखोंके सामनेसे एक बार गुज़रता है। और वही ऐसे समयमें, जब हम अपने आदर्शपर आँखें जमाकर, भविष्यके कामोंकी कठिन कल्पनाओंके अरण्यसे अपनेको विचरते देख रहे हैं। कालकी गति, कार्य-क्षेत्रकी परिस्थिति, समयकी आवश्यकता, सार्वजनिक उपयोगिता, नैतिक मानदण्ड आदिकी दृष्टिसे हम इस बातके लिए विवश हुए हैं कि कर्मपथकी अनेक कठिनाइयोंको जानते और समझते, देखते और विचारते हुए भी हम 'प्रभा'की सेवाके लिए अधिक और नई तैयारीसे, अधिक उद्योग और उत्साहसे, अग्रसर हों।

"हम मानते हैं कि हमसे कमज़ोरियाँ हुई हैं और हमारा हृदय यह स्वीकार नहीं करता कि रस्म अदा करनेका रोग लगाकर हम उनपर पर्दा डालें। पर हाँ, हम यह भी अनुभव करते हैं कि हमसे होनेवाली कमज़ोरियाँ जानबूझकर नहीं हुईं और इन कमज़ोरियोंके कारणोंसे हमारे आदर्श, उद्देश्य और कर्तव्यका कभी कोई सम्बन्ध नहीं रहा। वे हमारे देशकी वायुके पददलित अंगसे पैदा हुई थीं, और अब हमारा कर्तव्य होगा कि हम उनसे सावधान रहनेके मार्गमें, अपना पैर किसी प्रकार पीछे न पड़ने दें।

"प्रादुर्भावके पहिले दिन हमने अपना कठिन मार्ग थोड़ेसे शब्दोंमें बताया था। हम अपने मार्गपर दृढ़ हैं और हमारा विश्वास है कि भारतवर्षकी आत्माके सन्देशोंको, भारतीयोंकी आभामें, उज्ज्वल और ज्वलन्त रूपमें पहुँचानेमें हम दृढ़तापूर्वक लगे रहेंगे। विश्वके अस्तित्वको कायरताकी झपटसे बचानेमें, हम जिस मज़बूतीसे अपने प्राण लगाना अपना पवित्र कर्तव्य समझते हैं, हमारा यत्न होगा कि हम उसमें त्रुटि न होने दें। जिस उज्ज्वल अन्धकारमें, जिस तमोमय प्रकाशमें हम खड़े हैं, वहाँ हमारे कानोंपर एक सन्देशा आता है। उसका भाव है—'अपने भविष्यत्की गाड़ीकी मज़बूतीमें सन्देह मत करो। बलकी विशेषताको समझो, और एक जाज्वल्यमयी जागृतिके साथ, मृत्युके मुँहको कुचलते हुए, अपने उत्तरदायित्वका स्मरण रखकर पशुताको पृथ्वीपरसे हटा देनेवाली शान्तिकी ओर, धीरे-धीरे क़दम बढ़ाओ।' हम इस पवित्र सन्देशको आदरसे ग्रहण करके कर्मपथमें दृढ़तापूर्वक पदारोपण करते हैं। निश्चित प्रणालीके अनुसार 'प्रभा' जिस तराजूपर श्रद्धासे पवित्र वस्तुको तौलेगी, ठीक उसी तराजूपर, उसी श्रद्धासे, 'महा अपवित्र वस्तुको भी तौलना वह अपना धर्म समझेगी। क्योंकि सम्भव है, ढीलनेवाली पवित्रताके कमज़ोर कलेजेमें पापोंका पिण्ड निकले, और इसके विरुद्ध अपवित्रताके किसी बाजूपर, परम शक्तिका कोई पवित्र सन्देश लिखा हो। धर्मके उठाईगीरोंके लिए,

हमारे पास जो शस्त्र होगा, वही उनका भी आदर करेगा, जिनका नाम होगा 'धर्मके सत्यानाशी।' धर्म हमारे पथकी पूज्य और पवित्र वस्तु होगी, परन्तु, इस मार्गमें हम किसीके माने नियमोंके गुलाम न होंगे। हमारा ईश्वर एक होगा, और वही होगा सारे संसारका ईश्वर! समाजकी कमज़ोरियों और मूर्खताओंके पुरोहितोंसे, और समाजके अस्तित्वको मिटाकर, सुधारवादकी ओटमें, पापोंके विश्वामित्र बन बैठनेवालोंसे हम एक घातक शत्रुकी अपेक्षा अधिक सावधान रहेंगे। विचारको दल डालने और स्वाधीनताको कुचलनेवाले साहित्य-महर्षियोंसे लगाकर देशके भविष्यत् को गन्दा करनेवाले ओछे उत्साही साहित्य-सेवियों तक हमारी प्रणाली एक रहेगी। और इस दर्वाजेपर, जिस सज्जनतासे, हर एकको फूलोंपर लेटनेका अवसर मिलेगा, समय आनेपर, तीखे काँटे उसी तेज़ीसे उनका स्वागत करेंगे। सन्निपातके रोगीकी-सी आवाज़ें, दुर्बलताके उद्गार, गन्दगीसे भरी गालियाँ और नीचतासे भरे हुए प्रहार आदि बातें हमारी उपेक्षा और घृणाकी वैसी ही सामग्री होंगी, जैसी गुरुडम। हम कमज़ोरियोंके शत्रु होंगे, पर कमज़ोर हमारे होंगे और हम उनके। हमारे अस्तित्व तक उनसे हमारी सहानुभूति होगी और प्रत्येक क्षेत्रमें हमारी आँखें यह देखनेके लिए भटका करेंगी कि उनपर कहीं अन्याय न हो रहा हो। हमारी दृष्टिमें सब भारतीय एक होंगे और हमारा बल इस काममें खर्च होगा कि हम भारतीयोंके समूहोंको विराट् रूपमें सम्मिलित देखें। हमारी बहिनों और माताओंपर होनेवाले अत्याचारोंपर हमारा लक्ष्य होगा, पर साथ ही हम अनेक भाषा-भाव, वेश, भोजन, शिक्षा और दीक्षामें भारतीयताकी रक्षा करनेवाली देवियोंके रूपमें उपासक होंगे। हमें उनकी पवित्रताकी रक्षाका उतना ही स्मरण रहेगा, जितना अपने कर्तव्यकी रक्षाका। हम उनका सीता और सावित्री, तारा और पद्मिनीके रूपमें स्वागत करेंगे, न कि क्लियोपेट्रा या केथराइनके रूपमें। हमारी आँखोंमें वे घूमेंगे भोले-भाले भाई, जो निरक्षर होकर भी हमारे अन्नदाता हैं और जिनकी गाढ़ी

में उनके विगत तीन-चार वर्षोंका लेखन एक नई सांस्कृतिक विकासकी क्रीड़ास्थली पा गया। माखनलालजीके शैशव और कैशोरसे सम्बद्ध प्रकृतिकी लाडली भूमि अब उसकी लेखनीमें ऐसे विशाल तटोंसे आवर्त हो गई, मानो सम्राट् समुद्रगुप्तके साम्राज्यको अपने दक्षिणमें महाकान्तार-की अचल सीमारेखा प्राप्त हो गई हो।

'प्रभा'के प्रथम वर्षके अंकोंके लेखोंकी भाषामें और दूसरे वर्षके अंकों-की भाषामें अन्तर है। यह तो बहुत स्पष्ट है कि प्रथम वर्षमें जैसे लक्ष्य येनकेन प्रकारेण नियमित समयपर अंक निकालना होता था। अब सम्पा-दनकी शालीन प्रौढ़ता सभी लेखोंपर, वांछनीय अधिकार-वृत्तिके कारण, हावी होने लगी है। दूसरे वर्षकी भाषा और शैली एकदम मँजी हुई, व्याकरण-सम्मत तथा उद्गारानुरूप है। ऐसा लगता है कि जैसे दूसरे वर्ष भी यथार्थमें लेखकोंका सहयोग उतना नहीं मिला, जितना चाहिए था। और, किसी एक व्यक्तिको ही अंक भरनेका श्रम करना पड़ा है। यह श्रम शुद्ध रूपमें माखनलालजीका है। फिर भी दूसरे वर्षमें हिन्दीके आन्दोलनको अग्रसर करानेका, तरुणाईमें नई आशाएँ फूँकनेका, सार-गर्भित हिन्दुत्वको (जो सीमित अर्थोंसे दूर, राष्ट्रकी व्यक्तिवादी समग्रताका ही पर्याय था!) सोचने-समझनेका और विदेशोंके सन्तोंकी जन-हिताय जीवनीका आदर्श प्रस्तुत करनेके लिए विशेष प्रयत्न किया गया है। इस मासिकको देखकर तात्कालिक मध्यप्रदेशके जाग्रत मानसको सामने पानेमें बड़ी मदद मिलती है। इस मासिककी पृष्ठभूमिमें मध्यप्रदेशके व्यापक जन-जीवनमें जिन स्वप्नोंको साकार करनेके लिए जिस विशिष्ट सम्पादक-द्वयने (दूसरे वर्ष भी प्रधान सम्पादक श्री कालूरामजी गँगराड़े ही रहे) एक दीर्घ योजना बनाई थी, वह कालान्तरमें कितनी तथ्यपूर्ण रही, यह देखकर इन दोनों व्यक्तियोंके प्रति मध्यप्रदेशमें ही नहीं, अन्यत्र भी श्रद्धामय वातावरण तैयार हो गया। माखनलालजी तो जैसे इन्हीं योज-

नाओंके बहिरंगोंको अतरङ्गोंके अनुरूप करनेका मौलिक प्रयास करने स्थिर भावसे बैठ गये हैं।

'सरस्वती' और 'प्रभा' ये दोनों हिन्दी मासिक ('मर्यादा'की और 'लक्ष्मी' आदि हिन्दी मासिकोंकी बात यहाँ रहने दें) अपने युगके दो पूरक दृष्टिकोणोंका प्रतिनिधित्व करते हैं। 'सरस्वती' के माध्यमसे आचार्य महावीरप्रसादजी द्विवेदी विशुद्ध साहित्यिक व शिक्षाधारित जनहिताय संस्कृतिपर लगे अंकुशोंसे पाट मार्गको प्रशस्त करनेमें लगे थे। 'प्रभा' के माध्यमसे माखनलालजी उस राष्ट्रीय और सामाजिक चेतनाकी घायल साँसोंका पोषण करनेमें लगे थे, जो मरण-विनाशसे घिरी अबोली और बावरी-सी बनी हुई थी। 'सरस्वती' अध्ययनशील साहित्यकी प्रेरक थी, 'प्रभा' राजनीतिक आन्दोलनके क्षणोंमें प्रेरक वाणीका शङ्ख बजानेमें विश्वास करती थी।

माखनलालजीका नाम भी श्रीकालूरामजी गँगराड़ेके साथ सम्पादक-स्थानमें श्रावण और भाद्रपद, विक्रमी १९७२ से दिया जाने लगा। पर उन दिनों मासिक पत्रोंकी बिक्री प्रायः अधिक नहीं होती थी, इसलिए दो वर्षोंका कठोर घाटा सहा नहीं गया और प्रभाका प्रकाशन दूसरे वर्षके १२ अंकोंको निकालकर बन्द कर दिया गया।

वैष्णववाद और विद्रोह

१८५७ देशकी खण्ड-खण्ड इषण्याको एकसूत्रमें पिरो गया। यह एकसूत्रता १८५७ के बादके वर्षोंमें इस तरह सूत्रबद्ध हुई कि देशके नवजागरणके समय विदेशीयताका सारा ज़ोर भी उसे विशुद्ध भारतीयतासे विलग न कर सका। यह एकसूत्रता थी वैष्णव परम्परा।

२० वीं शतीके प्रारम्भिक शब्दोंमें साहित्य, काव्य, राजनीति और अन्य आत्मापरक नवोत्थान वैष्णव परम्पराकी ज़मीनपर अपने पैर इसीलिए टिका सका, क्योंकि वही एक ऐसी ज़मीन थी, जिसपर खड़े होकर

देशने घनघोर कालिमाके दिनोंमें अनाहूत आशंकाओंके गर्तमें गिरनेसे त्राण पाया था। यह ज़मीन २०वीं शतीके सर्वथा नये प्रकाशमें भी अपनी चित्त-भोग वृत्तिको नवीनसे नवीन रूपमें, हाथों-हाथ, समूचे देशको दिये जा रही थी। इसी ज़मीनपर खड़े होकर देशकी नई सामाजिकता और राजनीति अपने उज्ज्वल भविष्यके सुरक्षित मार्गोंकी योजना बनानेमें सुखचैन पा सकी। तिलक और गांधी और गोखले और एक हाथमें गीता लेकर दूसरे हाथमें पिस्तौल थामनेवाले क्रान्तिवादी भी और अंग्रेज़ी शिक्षित और प्रभावित नये कविगण भी इसी वैष्णववादिताको अपना कठोर कवच बनाकर जनजीवनमें लोकमान्यता पानेमें सफलता ग्रहण कर रहे थे।

दोनों वर्षोंकी 'प्रभा' में माखनलालजीका जितना भी सम्पादन और लेखन है, वह कुल मिलाकर उनके उस परिपक्व विचार-दुग्धका विलोडन है, जिसमें स्वस्थ वैष्णववादिताके दधिका पुट लग चुका था। इसी विलो-डनसे निःसृत नवनीतने माखनलालजीको आगेके वर्षोंमें गाँधीवादी राजनीतिके क्षेत्रमें अग्रणी राजनीतिज्ञ बनानेकी सामर्थ्य सँजोई थी। गाँधीवादी राजनीति भी इसी कारण समग्र देशकी राजनीति बन सकी, क्योंकि इसी वैष्णववादितामें निहित उसकी श्वासें अपनी प्राणवायु खोज पाई थीं।

इस प्रसंगमें मेरी जिज्ञासाका समाधान करते हुए एक दिन माखन-लालजीने कहा, "मुझसे कोई पूछे कि आखिर तुम्हें यह वैष्णववाद ही क्यों पसन्द आया तो मैं कहूँगा कि यह वैष्णववाद भी विद्रोह है। विद्रोहके साथ एक बात यह है कि आजका विद्रोह कलकी समाज-रचना बनाता है और परसों वह रूढ़ि हो जाता है। मैं जिस समयके वैष्णववादकी चर्चा करता हूँ, उस समय तक वह रूढ़ि हो चुका था। जो विष्णु क्षीरसागरमें लक्ष्मीसे अपने पैर दबवाता पड़ा रहा, वह यदि अन्नोंके लिए और दीनोंके लिए परिश्रम करने लगता है, तो वही स्वरूप समाजके सामने रखा जाना

वांछनीय था। क्योंकि महान् अल्पके लिए काम करे और धनवान् ग़रीब-की सहायता करे—यह बात आवश्यक थी। लेकिन जो लोग रूढ़िवादी थे, वे वैष्णववादकी कट्टरतामें ही विश्वास करते थे और उसमें किसी तरहका अन्तर होने देना नहीं चाहते थे। फिर भी वे जो यह चाहते थे कि हिमालयके सिरपर पानी पड़कर बर्फ़के रूपमें चमकता हुआ खड़ा है, उसे उसी रूपमें चाहते हैं, तो हम तो यह चाहते थे कि उस बर्फ़के नीचे ऐसी आग दहका दी जाए जो उस बर्फ़को बहाकर नीचे ले आये और वीरान भूमिको उर्वरा बना दे!

"मैं तो वैष्णववादको वही मानता हूँ जो आजका तरुण चाहता है। पहले धर्म ही समाजका नियमन करता था, इसलिए धर्मके अन्दर विद्रोह हुआ और यह वैष्णववाद उस विद्रोहको लेकर आगे बढ़ा। उसके बाद गद्दियाँ समाजका नियमन करने लगीं और उस हालतमें इन गद्दियोंके खिलाफ़ विद्रोह होने लगा। आज प्रजासत्ताके युगमें, जैसा कि इन डैमोक्रेसियोंके युगमें हो रहा है, लोकनेता समाजकी रचना करने लगे हैं तो इन नेताओंके ख़िलाफ़ विद्रोह हुआ करेगा। इसी तरह जैन और बौद्ध-धर्म हिन्दू समाज व्यवस्थाके विरुद्ध विद्रोह है—जो कि रूढ़ बन जानेके कारण आज अपने पुनर्नियन्त्रण और पुनर्जागरणमें यत्नशील हैं। समाजमें आनेवाले इस समस्त विद्रोहोंके प्रति मेरे मनमें स्वाभाविक प्यार है। मेरे सामने जब भारतीय समाज रचनाका नक़शा बनने लगता है तो वैष्णववाद और जैन धर्म भारतीय विद्रोहीके लिए, यही क्यों—यदि ध्यान दें तो विश्वके विद्रोहीके लिए भी दो जुड़वा माँ-जाये भाई नज़र आते हैं। वैष्णव किसीको कष्ट नहीं देगा, अपने पर जो चाहे कष्ट उठा ले। अहिंसा हिंसा नहीं करेगी। वैष्णवका विष्णु क्षीरसागरमें नहीं, मानव बनकर अवतार धारणकर आता है। भले ही वह आकाशसे उतरकर आता हो। और जैनका तीर्थंकर मानवमें-से ही विकसित होकर खड़ा हो जाता है। यह कैसे हो सकता है कि आकाशके ऊपरसे लटककर

पृथ्वीपर आया हुआ अवतार और पृथ्वीमें-से विकसित हुआ तीर्थंकर जब-जब विद्रोहीके रूपमें आया है, तब-तब विश्वके मानव-मूल्योंको श्रेष्ठ-तर और कोमलतर ही बनाने आया है। और समाजको जब-जब उसने घुमाव दिये हैं, तब-तब इतिहासने उसे अपने पुराण वस्तु-संग्रहालयमें तथा समाजने उसे रीतियों, रिवाज़ों, रूढ़ियों और जीवन-नियमोंमें उतारा तथा उत्सव और त्योहारोंमें उसका प्रकटीकरण किया। उसे लेकर व्यक्तिने अपने चरित्र, व्यवहार और ईमानका नियमन किया। मुझे तो समस्त सूक्ष्म और ज्ञानकी देन चाहे वह धर्मग्रन्थोंमें हो या उनसे बाहर, विद्रोह-की देन-सा लगता है।

"विद्रोह तो उसके ख़िलाफ़ होता है, जिसके हाथमें शक्ति-संचय होता है। मानव रूढ़िकी अपेक्षा शक्तिसे अधिक लड़ता है। बिल्लीके रास्ता काट जाने अथवा छींकनेकी रूढ़िके ख़िलाफ़ दौड़-धूप नहीं की जाती। किन्तु नौकरीकी एक जगह ख़ाली होनेपर पाँच सौ दरख़ास्त आती हैं। मनुष्यको जीनेकी शक्ति चाहिए। शक्तिको जीवन चाहिए और जीवनके लिए सम्पूर्ण शक्ति चाहिए। वह शक्तिको देवता बनाकर उपा-सना करता है। वह उसे नारी, नर्तकी या प्रेयसी नहीं, जगन्माता भी कहता है। किन्तु भारतवर्षमें जगन्माताका इतिहास देखिए। उनके साधारण परिणयसे लगाकर जीवन तक वे कहीं उड़ाई गईं, कहीं वन-वासमें रखी गई हैं। कहीं महायुद्ध हुए हैं। कहीं वरको देखकर माँ-बापने दुःख मनाया है। कहीं बड़ेसे बड़े सिंहासनोंने उस शक्तिको सिंहासनपर नहीं बैठने दिया है। और, कहीं द्रौपदी जैसी परम शक्तिशाली किन्तु अत्यन्त असफलको भी जीवन बिताना पड़ा है। परिणामतः विद्रोह शक्तिके आसपास मँड़राया। विद्रोह शक्तिको प्राप्त करनेके लिए ही हुए हैं। ग्रन्थ, पन्थ, रूप, रुपया इनपर जितने आरोप हुए हैं, उनके पीछे शक्तिप्राप्तिका कभी उज्ज्वल और कभी अनुज्ज्वल इतिहास है। इसीलिए

वांछनीय था। क्योंकि महान् अल्पके लिए काम करे और धनवान् ग़रीब-की सहायता करे—यह बात आवश्यक थी। लेकिन जो लोग रूढ़िवादी थे, वे वैष्णववादकी कट्टरतामें ही विश्वास करते थे और उसमें किसी तरहका अन्तर होने देना नहीं चाहते थे। फिर भी वे जो यह चाहते थे कि हिमालयके सिरपर पानी पड़कर बर्फ़के रूपमें चमकता हुआ खड़ा है, उसे उसी रूपमें चाहते हैं, तो हम तो यह चाहते थे कि उस बर्फ़के नीचे ऐसी आग दहका दी जाए जो उस बर्फ़को बहाकर नीचे ले आये और वीरान भूमिको उर्वरा बना दे!

"मैं तो वैष्णववादको वही मानता हूँ जो आजका तरुण चाहता है। पहले धर्म ही समाजका नियमन करता था, इसलिए धर्मके अन्दर विद्रोह हुआ और यह वैष्णववाद उस विद्रोहको लेकर आगे बढ़ा। उसके बाद गद्दियाँ समाजका नियमन करने लगीं और उस हालतमें इन गद्दियोंके खिलाफ़ विद्रोह होने लगा। आज प्रजासत्ताके युगमें, जैसा कि इन डैमोक्रेसियोंके युगमें हो रहा है, लोकनेता समाजकी रचना करने लगे हैं तो इन नेताओंके खिलाफ़ विद्रोह हुआ करेगा। इसी तरह जैन और बौद्ध-धर्म हिन्दू समाज व्यवस्थाके विरुद्ध विद्रोह है—जो कि रूढ़ बन जानेके कारण आज अपने पुनर्नियन्त्रण और पुनर्जागरणमें यत्नशील हैं। समाजमें आनेवाले इस समस्त विद्रोहोंके प्रति मेरे मनमें स्वाभाविक प्यार है। मेरे सामने जब भारतीय समाज रचनाका नक्शा बनने लगता है तो वैष्णववाद और जैन धर्म भारतीय विद्रोहीके लिए, यही क्यों—यदि ध्यान दें तो विश्वके विद्रोहीके लिए भी दो जुड़वा माँ-जाये भाई नज़र आते हैं। वैष्णव किसीको कष्ट नहीं देगा, अपने पर जो चाहे कष्ट उठा ले। अहिंसा हिंसा नहीं करेगी। वैष्णवका विष्णु क्षीरसागरमें नहीं, मानव बनकर अवतार धारणकर आता है। भले ही वह आकाशसे उतरकर आता हो। और जैनका तीर्थंकर मानवमें-से ही विकसित होकर खड़ा हो जाता है। यह कैसे हो सकता है कि आकाशके ऊपरसे लटककर

पृथ्वीपर आया हुआ अवतार और पृथ्वीमें-से विकसित हुआ तीर्थंकर जब-जब विद्रोहीके रूपमें आया है, तब-तब विश्वके मानव-मूल्योंको श्रेष्ठतर और कोमलतर ही बनाने आया है। और समाजको जब-जब उसने घुमाव दिये हैं, तब-तब इतिहासने उसे अपने पुराण वस्तु-संग्रहालयमें तथा समाजने उसे रीतियों, रिवाज़ों, रूढ़ियों और जीवन-नियमोंमें उतारा तथा उत्सव और त्योहारोंमें उसका प्रकटीकरण किया। उसे लेकर व्यक्तिने अपने चरित्र, व्यवहार और ईमानका नियमन किया। मुझे तो समस्त सूझ और ज्ञानकी देन चाहे वह धर्मग्रन्थोंमें हो या उनसे बाहर, विद्रोहकी देन-सा लगता है।

"विद्रोह तो उसके ख़िलाफ़ होता है, जिसके हाथमें शक्ति-संचय होता है। मानव रूढ़िकी अपेक्षा शक्तिसे अधिक लड़ता है। बिल्लीके रास्ता काट जाने अथवा छींकनेकी रूढ़िके ख़िलाफ़ दौड़-धूप नहीं की जाती। किन्तु नौकरीकी एक जगह ख़ाली होनेपर पाँच सौ दरख़ास्त आती हैं। मनुष्यको जीनेकी शक्ति चाहिए। शक्तिको जीवन चाहिए और जीवनके लिए सम्पूर्ण शक्ति चाहिए। वह शक्तिको देवता बनाकर उपासना करता है। वह उसे नारी, नर्तकी या प्रेयसी नहीं, जगन्माता भी कहता है। किन्तु भारतवर्षमें जगन्माताका इतिहास देखिए। उनके साधारण परिणयसे लगाकर जीवन तक वे कहीं उड़ाई गईं, कहीं वनवासमें रखी गई हैं। कहीं महायुद्ध हुए हैं। कहीं वरको देखकर माँ-बापने दुःख मनाया है। कहीं बड़ेसे बड़े सिंहासनोंने उस शक्तिको सिंहासनपर नहीं बैठने दिया है। और, कहीं द्रौपदी जैसी परम शक्तिशाली किन्तु अत्यन्त असफलको भी जीवन बिताना पड़ा है। परिणामतः विद्रोह शक्तिके आसपास मँड़राया। विद्रोह शक्तिको प्राप्त करनेके लिए ही हुए हैं। ग्रन्थ, पन्थ, रूप, रुपया इनपर जितने आरोप हुए हैं, उनके पीछे शक्तिप्राप्तिका कभी उज्ज्वल और कभी अनुज्ज्वल इतिहास है। इसीलिए

जब शक्तिशालीके सामने मस्तक झुकानेसे इनकार करनेवाला व्यक्ति, समूह या राष्ट्र मिल गया तो या तो उसका सर्वनाश कर दिया गया या संसारको उसके सामने मत्था झुकाना पड़ा।

"वैष्णविज्म मेरे लिए एक प्रार्थना है। जो व्यक्तिसे, व्यक्ति-बिन्दुसे, प्रेम-बिन्दु तक (विनोबाके शब्दोंमें) सीधी खड़ी रेखा बनकर रही है। और जब प्रार्थना ही करनी है तो अपना-पराया, हरा-पीला, गोरा-काला, बुरा-भला क्या देखूँ ? मैं वैष्णविज्मके लिए दूसरा रूप यह भी मानता हूँ कि मानवपूर्णता एक भयंकर असत्य है। वह भी कोई समाज होगा, जिस दिन मानवके लिए काम न रह जाये ? अभाव न हो, जिसपर कि प्रार्थनाएँ मस्तक झुकाती हैं, भुजाएँ श्रमका सन्तुलन साधती हैं और मानव-पीढ़ियाँ बलि होनेके साधन जुटाती हैं ? अभाव मनुष्यकी रागात्मक प्रवृत्तियोंके जागरणका प्रभातकाल है। रूढ़ मानवता अभाव देखकर रो उठती है। मौलिक मानवता उल्लास और आँसू दोनों ही अभाव पाकर हरी-हरी हो उठती हैं। वृक्षकी डालियाँ काटो, वह सौगुना हरा हो उठेगा, फैल उठेगा, रुकावटोंमें मार्ग बना उठेगा। मानव, मानव-संस्था अर्थात् जीवन-संस्थाको अभाव दो और उसे लाख-लाख गुना बढ़ता हुआ देखो। इसलिए पूर्णताकी माँग अपूर्णताका अनोखा बचपन है। वैष्णव यदि अपने कृष्णको एक व्याधके द्वारा मरता हुआ देख सकता है, एक गांधीको किसीकी पिस्तौलसे मरता हुआ देख सकता है तो वह कैसे इतना नास्तिक हो सकता है कि मानवमें पूर्णताका आभास देख सके ? रुकावट, आनन्दकी रुकावट, संयमकी रुकावट रसका बल प्रदान करती है और रसका बल कोटि गुणशाली होनेके लिए अभावकी दिशाओं चल पड़ता है—इसीका नाम साहित्य है। इसीका नाम भक्ति है।

> वृन्दावनके राजा हैं दोऊ श्याम राधिका रानी,
> चारि पदारथ करत मजूरी मुक्ति भरत जहँ पानी।

"यह पूर्णताएँ जहाँ मज़दूरी करने लगें, वहीं तो मानव-विकास सम्भव है।

स्वामी रामतीर्थ इसी भावनासे कह उठे :

> **बरगें हिनासे जाके कहूँ अपने दिलकी बात,**
> **शायद कि रफ़्ता-रफ़्ता लगे दिलरुबाके हाथ।**

"इसीलिए अभाव किसीके भयसे नहीं, किसीके राज्यत्वकी प्राप्तिके लिए नहीं, किन्तु मानव-विकासके लिए मनुष्य परम शृङ्गारिक, परम अभौतिक, परम कोमल वास्तविकता है। हाँ, जो मानवको अभाव देकर यह कहता है कि वह मानवताके लिए सिंहासन, धन या शक्तिके दुर्गपर खड़ा होकर ईश्वर बाँट रहा है, अभावके रूपमें मानवता उसीको गोली मारती आती है। उसीके ख़िलाफ़ विद्रोह करती आई है। और समस्त विद्रोहोंके सन्तुलनमें यही धार्मिक महत्ता मौजूद है।

"वेदान्तने जब विश्वको भागत्याग-लक्षणा दी, जब जैनिज्मने स्याद्वाद दिया, जब वैष्णविज्मने भक्तभावनके हाथमें मज़दूरी दी, जब पुरुषार्थने कलाको समर्पण दिया तभी अभावने अपना मूल्य जाना। अभाव भगवान्‌की कीर्ति है! और बलिदानकी मूर्ति!!

"मनुष्यके अभावको चुनौती मिली कि वह निर्माणकी तरफ़ चला। अभावको चुनौती जब नहीं मिलती तो वह निर्माणको याद नहीं करता।

> **निरंजन बावरी वे अँखिया जरि जाय,**
> **जो साँवरो छाँड़ि निहारत गोरो।"**

२५-२६ वर्षकी अवस्था तक [illegible] स्वामी रामतीर्थ, स्वामी विवेकानन्द, रामकृष्ण परमहंसका गम्भीर अध्ययन कर लिया था। संस्कृत साहित्यका अभ्यास वे करते ही रहते थे, इसीलिए उनका मौलिक चिन्तन जन-हितायका विवेक पा सका था। वैष्णववाद जैसे रूढ़ किन्तु

युग-पुरातन रससे सराबोर विषयको वे निर्माण और विद्रोहकी भाषामें सोचनेका अधिकार पा गये थे।

उक्त कथनमें माखनलालजीने जैनधर्म और उसके स्याद्वादकी भी चर्चा की है। खण्डवा प्राचीन जैन-शिल्पका प्रमुख स्थान रहा है। जैनियोंका आज भी यहाँ एक शोभनीय मन्दिर है। माणिकचन्दजी जैन प्रभृति सज्जनोंके सम्पर्कमें माखनलालजी स्याद्वादसे बहुत ही प्रभावित हुए और आज भी हैं। इसीलिए एक बार जब खण्डवामें जैनधर्म सम्मेलन हुआ तो आपने उसमें भाषण करते हुए जैनमूर्तियोंकी कलात्मक व्याख्या इस कोटिकी की थी, कि श्रोतागण बादमें कहने लगे कि सारे सम्मेलनमें बस भाषण तो केवल माखनलालजी जैसे अजैनका ही हुआ था।

'प्रभा' ने बन्द होकर भी मध्यप्रदेशके लिए अखिल भारतीय साहित्यिक जगत्में अनेकानेक अधिकार सुरक्षित कर दिये। सन् १५ के अन्तिम सप्ताहमें षष्ठ हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयागमें बाबू श्यामसुन्दर दासजीके सभापतित्वमें सम्पन्न हुआ। इस सम्मेलनमें मध्यप्रदेशके दो प्रतिनिधि रायबहादुर पं० विष्णुदत्तजी शुक्ल और पं० माखनलालजी चतुर्वेदी उपस्थित थे। इन्होंने सप्तम हिन्दी साहित्य सम्मेलन जबलपुरमें निमन्त्रित किया।

इस सम्मेलनकी प्रकाशित रिपोर्टमें लिखा है।

"१६ दिसम्बरको, इसके पश्चात् मध्यप्रदेशकी ओरसे रायबहादुर पं० विष्णुदत्त शुक्ल बी० ए० ने सम्मेलनको जबलपुरमें निमन्त्रण दिया और १६ वाँ यह प्रस्ताव पास किया गया कि आगामी सम्मेलन जबलपुर-में किया जाय।

"इसके स्वीकृत होनेपर 'प्रभा' के सहकारी सम्पादक पं० माखनलाल जी चतुर्वेदीने मध्यप्रदेशकी ओरसे सम्मेलनको धन्यवाद दिया।"

राजनीतिक मंचपर पहला सार्वजनिक भाषण

प्रथम विश्वयुद्ध शुरू हो चुका था। लोकमान्य तिलकके जेलसे छूटनेपर मध्यप्रदेशके नवयुवकोंमें नवीन उत्साहका संचार हो गया। इस उत्साह और परिवर्तनका लाभ उठानेका प्रयत्न किया गया और प्रदेशमें गरम व नरम दलमें जो मतभेदोंकी दरार थी, उसे पाटनेका निश्चय हुआ। श्री जी० एस० खापर्डे, डा० मुंजे और पं० विष्णुदत्त शुक्ल गरम विचारों के प्रतिनिधि थे। दोनों विचारधाराओंके प्रतिनिधियों-को एकत्र करनेके लिए १६, १७, १८ नवम्बरको नागपुरमें राजनीतिक परिषद् हुई।

"चूँकि मैं सेठ डिग्रीलालकी पत्नी गंगा बहनसे राखी बँधवा चुका था, इसलिए मैं उनका साला हो चुका था। सेठजी इस बातसे दुःखी थे कि मैंने अख़बारकी सम्पादकी या सार्वजनिक जीवन जैसा पेशा अख्तियार किया है। पर अपने सालेके साथ वे कुछ न कुछ विनोद किया करते थे।

"एक बार नागपुरकी पोलिटिकल कान्फ्रेन्समें शामिल होनेके लिए मैं खण्डवासे गया। उस समय मैं 'प्रभा' का सहकारी सम्पादक था। मेरे साथ खण्डवाके मेरे मित्र वकील सदाशिव कृष्ण वैशम्पायन भी थे, जो सप्रेजीके मित्र थे और जिनके यहाँ आकर ही सप्रेजी ठहरा करते थे। पत्नीका देहान्त हो चुका था, इसलिए जानेसे पहले मैंने गंगा बहनसे अपना विस्तरा तैयार कर देनेके लिए कहा। किन्तु सेठ डिग्रीलाल अपनी विनोदवृत्तिसे चूकनेवाले नहीं थे। अतः वे मेरे बिस्तरे और सामानकी तैयारीमें खुद हिस्सा बँटाने लगे। उन्होंने ऊन के बहुत बढ़िया बाघम्बर मेरे ओढ़नेके लिए रख दिये। धुली चादरका गद्दा लगा दिया और एक ओवरकोट भी उसके साथ रख दिया। उन दिनों आजकलकी तरह ट्रेनमें जाते ही बिस्तरा खोल लेनेकी मेरी आदत नहीं थी। न मैं ऊँची श्रेणियों-

में यात्रा करता था, अथवा कर सकता था, तीसरे दर्जेका यात्री था। अतः जाड़ा लगते हुए भी मैंने बिस्तरा नहीं खोला। किन्तु जब भुसावल पर ट्रेन बदलनेके बाद जाड़ा अधिक लगने लगा तब मैंने बिस्तरा खोल लिया। और ओवरकोट एक तरफ़ रख दिया। नागपुर स्टेशन पर जब बिस्तरा बाँधा तो ओवरकोट पहननेके लिए बाहर रख लिया। ज्योंही मैं बाहर निकलने लगा, और ओवरकोटकी जेबमें हाथ डाले तो देखता क्या हूँ, ओवरकोटकी एक जेबमें तो मकईकी लाई भरी हुई थी और दूसरी जेबमें एक बड़ी-सी चिलम ! और इसी जेबके नीचे तम्बाखू और चिलममें लगानेके लिए गोली सुआफी भी रखी हुई थी !!

"मैं इस बातपर इतने ज़ोरसे क्रोधित हो उठा कि यदि सेठ डिग्रीलाल वहाँ होते, तो मैं उनपर ज़रूर झुँझलाता। इस सारे क्रोधके बीचमें हँसी भी कम नहीं आ रही थी। परन्तु अब चिन्ता यह थी कि इस मकईकी लाई और इस चिलमको अब जल्दीमें मैं कहाँ छोड़ूँ। मैं सेकेण्ड क्लास वेटिंगरूमके बाथरूममें गया और आइनेके स्टैण्ड पर जो काफी चौड़ा था, डिग्रीलाल जी के दोनों स्मारक वहीं रख दिये, और जल्दीसे स्टेशनके बाहर चला आया...

"आज चालीस-पैंतालीस वर्षके बाद भी लगता है कि उन दिनों युगको मस्त बनाये रखनेके लिए लोग अपना कितना विनोदी स्वभाव बनाये हुए थे।

"गरम दलके संचालक डा० मुंजे इस परिषद्के प्रधान मन्त्री थे और नरम दलके नेता तथा इस युगकी धारासभाके गैरसरकारी अध्यक्ष सर गंगाधर राव चिटनिस उस समय इस राजनीतिक परिषद्के स्वागताध्यक्ष थे। गरमदलकी ओरसे श्री मोरोपन्त अभ्यंकर, डा० चोलकर तथा हमारे समस्त राष्ट्रीय मण्डलने भाग लिया। नरमदलकी ओरसे सर विपिनकृष्ण बोस, महाराजा भोंसले, डा० हरिसिंह गौड़ आदि सज्जनोंने भाग लिया। राष्ट्रीय लोगोंको सूचना थी कि वे बड़ी तादादमें उस परिषद्में पहुँचे।

इस परिषद्के अध्यक्ष मेरे परम माननीय मित्र और हिन्दी मध्यप्रदेशके (महाकोशलके) नेता रायबहादुर विष्णुदत्तजी शुक्ल दोनों दलोंके विश्वास-भाजनके नाते अध्यक्ष मनोनीत हुए।

"इस राजनीतिक परिषद्में स्वदेशीपर मेरा पहला भाषण हुआ। वही प्रथम सर्वप्रान्तीय राजनीतिक परिषद् थी। जो प्रतिनिधि आये हुए थे, वे सादे कपड़े पहने हुए थे, किन्तु जो मंचपर विराजमान थे वे सबके सब विलायती कपड़ोंमें सुसज्जित थे। उन दिनों मैं धोती, पाँवमें पम्प शू पहने, बदनपर बिना कालरका लंबा कोट डाले, गलेमें लंबा रूमाल दायें-बायें लटकाये और सिरसे कोसेका फेंटा बाँधे हुए था। जब स्वदेशीपर मैं बोलने खड़ा हुआ तब मैंने कहा, 'सभापतिजी, मेरे भाषण करनेकी वेदीका मुँह बेचारे प्रतिनिधियोंकी तरफ़ है, जो सब मोटे-झोटे कपड़े पहने हुए हैं, जिनके विलायती होनेमें सन्देह है। किन्तु मचपर जो सज्जन विराजमान हैं, उन महापुरुषोंके सबके सब कपड़े विलायती नज़र आ रहे हैं। इसलिए भाषण-मञ्चका मुँह प्रतिनिधियोंकी तरफ होते हुए भी स्वदेशी अपनानेके लिए मुझे प्रार्थना तो इन्हीं सज्जनोंसे करनी होगी, जिनकी सम्मिलित रायने विषय निर्वाचिनीमें मुझे इस प्रस्तावके समर्थन करनेकी आज्ञा देकर कृतार्थ किया है। उन्हींसे मेरी प्रार्थना है कि सबसे पहले तो स्वदेशीको आप ही लोग अपनायें।"

"इस कथनपर सभाने तालियाँ बजाईं। उनमें अधिकतर ज़ोरदार तालियाँ मञ्चके ही लोगोंने बजाईं। ज्योंही मैं भाषण देकर प्रतिनिधियोंमें बैठनेके लिए जाने लगा, त्यों ही अपनी डिबियामें-से नास सूँघते हुए पूज्य पं० माधवरावजी सप्रे मेरे साथ थे और सबसे पहली बधाई 'हित-वाद'के तत्कालीन सम्पादक श्रीमान् नटेश अप्पाजी द्रविड़ने मुझे दी और कहा कि शाबाश, यह साहस बहुत कम लोगोंमें होता है। मुझे उन्होंने हितवाद-कार्यालयमें भी आमन्त्रित किया। मैं दूसरे दिन वहाँ गया

भी और सर्वेण्ट आफ इण्डिया सोसाइटीके पुस्तकालयको देखकर पहली बार मैंने जाना कि राजनीतिपर इतने अधिक ग्रन्थ लिखे जा चुके हैं !

"उस समय द्रविड़ साहबका प्रोत्साहन मेरे लिए वरदान हो गया। यद्यपि द्रविड़ साहबके इस उत्साहसे अत्यधिक गर्वित पूज्यवर सप्रेजी हो रहे थे। वे बहुत ममतासे मुझसे अनेक प्रश्न पूछ रहे थे। उसके पश्चात् नागपुरमें रहने तक और खण्डवा लौटनेके लिए नागपुर स्टेशन लौटने तक मेरे खाने-पीने और रहनेकी पूर्ण व्यवस्था सप्रेजीने अपने हाथमें इस तरह ले ली कि इच्छा रहते हुए भी मैं अपने मित्रोंके साथ न रह सका। हाँ, मैंने अपने मित्र वैशम्पायनजीको अपने साथ ही ले लिया। हम सप्रेजीके साथ माधवरावजी पांध्येके यहाँ ठहरे थे। राष्ट्रीय मण्डलकी बैठकोंमें मुझे प्रायः नित्य ही दिनमें कभी एक बार और कभी दो बार डा० मुंजे साहबके यहाँ जाना पड़ता था, जहाँ हमारे राष्ट्रीय मण्डल अथवा अन्य सदस्योंका मिलन हुआ करता था। राष्ट्रीय मण्डलमें डा० चोलकरकी दृढ़ता और बैरिस्टर अभ्यंकरकी फक्कड़ आदतसे मैं भविष्यके वर्षों में बहुत प्रभावित होता रहा हूँ।"

दीर्घ स्मृतिकी चपल द्युति

आयु बढ़ती जाती है, जीवन नित्य नये रास्तोंपर बढ़ता जाता है, तरुणाईकी दृष्टि नई मञ्ज़िलोंको पार करती नहीं अघाती। इस गतिमें जो बालपनका लगाव है, वह जैसे भूली याद भी नहीं रहता। पथिकका मोह उससे हल्की तौरपर भी नहीं बना रहता। पर माखनलालजी बीहड़ पथके पथिकोंमें शामिल होकर भी, अपनी किशोरावस्थाके संगी-साथियोंपर पुराना अधिकार जतानेमें कभी संकोच न कर सके।

यही सन् १५ सिरपर था। अनेकानेक घटनाओंमें उलझे रहकर भी माखनलालजी अपनी गोपनीय रसपूरित जीवन-साधनामें दत्तचित्त थे।

कुछ क्रान्तिवादी कानपुरसे आये हुए थे और उन्हें शरणगाहकी आवश्यकता थी।

"...और, कुछ दिन मुझे भी आश्रयस्थल चाहिए था। मैं अपने संगियोंके साथ चारखेड़ासे हरदाके मार्गमें उड़ा चला गया उस गाँव तक, जहाँ नर्मदीका पतिगृह था—वही नर्मदी जो मेरी स्मृतिमें सुरक्षित थी, जिसकी बहनको साँपने काट लिया था। वह स्मृतिमें तारिका-द्युति-सी जैसे मुझे भयंकर अँधियारेमें आगे बढ़नेके लिए एक झीनी रेखा दिये जा रही थी। नर्मदीके घर आगे हम जा खड़े हुए। नर्मदीके पति बीमार थे और वह अपने बच्चोंमें अत्यधिक व्यस्त थी। ज्योंही ऊँचा फेंटा बाँधे हुए उसने हम लोगोंको देखा तो पहले वह सहमी, उसके पति भी बेचैनसे हुए। किन्तु बादमें नर्मदीने मुझको पहचान लिया। हम लोगोंने उसीके यहाँ धरना दी। कुछ मिठाई आई। हमने खाई। उस समय भी वह मुझसे बहुत अधिक बात करना चाहती थी, किन्तु उसका मानसिक धरातल बदल चुका था। अब नर्मदीके लिए उसके बच्चे ही सब कुछ थे।

"वेदान्तके इस भागत्यागलक्षणाके इस कौशलको देखकर मैंने नर्मदी से कहा, 'हम लोग अभी रातको चले जायेंगे।'

"उसने कहा, 'मैं क्या जानूँ। उनसे पूछो।' और अपने पतिकी ओर इशारा किया। पर फिर बिना मेरे आगे ठहरे, यह भी बोलती गई कि तुम नहीं जा सकोगे!

"उसके पतिने हमारे चले जानेकी सूचना पाकर, शायद पत्नीका संकेत पानेके बाद, हमें रातको तो नहीं, कमसे कम सुबह जानेका आग्रह किया। बल्कि उसने यह भी कहा कि उसके खेतकी कटनी हुई है, कल खेतमें उत्सव होगा और मैं भी उसमें अपने साथियोंके साथ शामिल होऊँ। पर हम रातको वहाँ अधिक देर न रुके। रातको चल ही दिये। नर्मदीका आग्रह बना रहता तो भी हम न रुकते। वहाँ हमारा रुकना

किसी भी क्षण उसके पतिपर पुलिसका कड़ा अंकुश ला सकता था····
शायद उसके पति हमारे उस समयके कार्य और लक्षणोंको जानते तो वे
खुद ही हमें अपने यहाँ न रोकते। चलनेसे पहले, हमने अपना सामान,
जो बहुत गुप्त था और जिसमें पिस्तौल, बम आदि थे, नर्मदीके यहाँ रखा,
जो शायद १४ महीने वहीं पड़ा रहा।

"चारखेड़ा स्टेशनपर मैंने अपने साथियोंको विदा किया और स्वयं
नया गाँव चला आया। इस समय तक पिताजी मसनगाँवसे बदलकर
नयागाँवके स्कूलमें बदलीपर आ चुके थे।

"इसके बाद शायद मेरा और नर्मदीका कोई साक्षात्कार नहीं
हुआ!"

माता और पिताका तपोबल

१९१५ में कुछ समयके लिए खण्डवामें फिर चार वर्ष बाद, प्लेग
फैली। पिछली बार तो माखनलालजी प्लेगकी अवधिमें खण्डवामें ही
रहे थे, लेकिन इस बार यह आवश्यक हो गया कि स्थानका त्याग करें।
आपके साथ कानपुरके पं० शिवनारायणजी मिश्रके भाई श्री शिवमोहन
मिश्र, गंगराड़े परिवारके श्री परशुरामजी गंगराड़े और श्री आनन्दीलालजी
मेहता तथा एक अन्य युवक और थे।

पत्नीका निधन पिताको किसी प्रकारकी सूचना दिये विना हुआ था।
अध्यापकी छोड़नेका कारण सम्पादकी था, पर अब 'प्रभा' बन्द हो जानेसे
सम्पादकीका आधार भी समाप्त हो चुका था। आयकी जीविकाका साधन
अब कुछ नहीं रह गया था। इन परिस्थितियोंमें पिता-पुत्रका सम्बन्ध
क्या था? श्री नन्दलालजी चतुर्वेदी तथा श्रीमती सुन्दरीबाई चतुर्वेदी अपने
शेष परिवारको शान्त मन, शान्त हृदय उसी वेतनसे परवरिश कर रही
थीं, जो घरमें अध्यापकीके नामपर १२-१४ रुपयेके रूपमें आ रहा था।
किन्तु वेतनका प्रश्न इस दम्पतिके समक्ष कभी भी प्रधान नहीं रहा।

दोनोंके हृदयकी विशालता ही सदा मुखर होकर ग्रामवासियोंको श्रद्धाभावसे अवनत किये रहती थी। इस अल्प वेतनसे ही यह चतुर्वेदी-परिवार गाँवके और दूरवर्ती गाँवोंके ग़रीब विद्यार्थियोंको भी अपने निवासपर ठहराकर उन्हें विद्या-दानका आयोजन किये जा रहा था। एक विद्यार्थी जाता था, और दूसरा बुला लिया जाता था।

यह दम्पति इन दिनों नयागाँवमें रहता था।

"माँ पर मेरा और मेरे मित्रोंका बोझ न पड़े, यह सोचकर मैंने एक अलग टप्परमें डेरा डाला और भोजनादिका प्रबन्ध भी अपनी ही सीमित व्यवस्था से वहीं ही कर दिया।

"एक सप्ताहके पश्चात् जब मैं अपने घर बैठा हुआ था, तब मेरे माता-पिता कुछ इस तरहकी बातचीत करते देखे गये कि ग़रीब होनेके कारण हम दो चार सौ व्यक्तियोंका भोजन तो नहीं करा सकते, इस जीवन-में शायद करा भी न सकें। किन्तु एक अवसर हमको मिला है कि तीन-चार व्यक्तियोंका भोजन हमारे यहाँ हो जाया करे, तो यह पुण्य हमारा पुत्र हमें नहीं मिलने देना चाहता।

"मैंने माँको समझाया कि पिताजीका वेतन बहुत कम है और तुम-पर भी कार्योंका बोझ अधिक पड़ जायगा।

"पिताजी एकदम बोले कि मेरे वेतनकी चिन्ता तो तुम्हें नहीं करनी चाहिए। ग़रीब होनेके कारण तुम मेरी सद्भावनाको चुनौती दे रहे हो !!

"और माँ रूठकर बोल उठी अपनी निजी बोलीमें कि जद आपणा टाबर ही पुन्य मिलबा रे रस्ते आपणे आड़ो आवे तो आपां तगदीरने दोस दियाँ, ई सपूतने काईं बोल्याँ।

"मेरी उम्र काफ़ी बड़ी हो चुकी थी। पर मेरी आँखोंमें आँसू आ गये। बस, उसी दिन पिताजीने मेरी स्वीकृतिके विना ही मेरे मित्रोंसे जाकर कहा कि भैया, ग़रीबी गुजरान चून-भूसी हमारे घर ही लिया करो।

अलग भोजन क्यों बनाते हो। आखिर तुम्हारा पण्डितजी भी तो वहीं भोजन करता है।

"इनमेंसे एक मित्र अपना भोजन स्वयं हाथसे बनाते थे, इसलिए उनको छोड़कर शेष मित्रोंको माँके हाथका ही बना भोजन अब मिलने लगा। मेरे उन मित्रोंके रहन-सहनकी व्यवस्था और भोजन परोसनेके समय मैं अपनी माँको देखता था। जैसे तो वे साक्षात् घर आये भगवान् के विभिन्न रूपोंकी ही परोसगीरी कर रही हों।"

प्रथम साहित्यिक कृति 'कृष्णार्जुन युद्ध' नाटक

जबलपुरमें सम्मेलनकी तैयारियाँ होने लगीं। खण्डवाके साहित्यिक प्राण पं० माखनलालजीके मित्रोंने जिन्होंने उनके संग-साथ नाटक लिखे और खेले थे, निश्चय किया कि इस सम्मेलनके अवसर पर एक नाटक खेला जाय। तय हो गया तो अब यह तय करना बाक़ी रहा कि क्या खेला जाय। तो दूसरी बात यह तय हुई कि माखनलालजी ही इस अवसरके लिए एक साहित्यिक नाटक लिखें और यह भी तय हुआ कि माखनलाल जी ही अपना पूरा समय इस नाटककी तैयारीमें दें। और सबसे अन्तिम बात यह भी तय हुई कि नाटककी तैयारी खण्डवामें ही हो, बस सम्मेलनके अवसरपर सारा दल जबलपुर जाकर नाटक खेल आये। खण्डवाकी साहित्यिकताका इससे बड़ा प्रतिनिधित्व ऐसे प्रतिनिधि साहित्यिक पर्व पर और हो भी नहीं सकता था।

माखनलालजीने नाटक लिखनेका दायित्व ग्रहण कर लिया और वे नाटक लिख भी लेना चाहते थे। रामलीलाओंके प्रकरण अपने निरावरण युगका मनोविनोद कर सकते थे। अब मनोविनोदका बौद्धिक स्तर मध्य-प्रदेशका कितना है, आगत साहित्यकारोंको उस नाते यही तो दिखाना है कि उसका बहिरंग परिश्रम और बुभुक्षाका एक शुष्क क्रममात्र ही नहीं है, उसके निजत्वमें किंकिणिशिंजनासे मुखर लास्यके रेशमी डोरोंसे झूला

झूलते हुए हृदयकी रुनझुन भी मध्यप्रदेशके घर-घरमें है और हिन्दी जल्दीसे-जल्दी इस प्रदेशमें अपने रंगोंका अभिराम उत्सव किस प्रकार रचेगी, वह इस नाटकको देखकर सब समझ लेंगे, आश्वस्त हो जायँगे।

लेकिन दैनन्दिन जीवनमें माखनलालजी अब विभिन्न नगरोंमें निमन्त्रित किये जाने पर भाषण देने भी जाने लगे थे। इधर जबलपुर सम्मेलनके निमित्त धन संग्रहका कार्य भी सप्रेजी के साथ यात्रा करते हुए आपको करना पड़ रहा था। इसी बीच एक नगरमें एक हरिजन परिषद्-का आयोजन हुआ और आप सप्रेजी के साथ वहाँ भाग लेनेके लिए पहुँचे। एक धनी ज़मींदार परिवारमें आप सप्रेजीके साथ ही अतिथि बने। दिनमें भाषण हुआ, इसके बाद परोसगीरी। रातको अवकाशके समय आप अपने 'कृष्णार्जुन युद्ध' नाटक लिखनेमें दत्तचित्त थे।

यौवनके पुष्पाभिषेककी पवित्र कहानी

रातका समय था। चारों ओर नीरवता छाई हुई थी। दूसरा प्रहर बीत चुका था। छतके कमरेमें दरवाज़ा यों ही बन्द था। नाटकके पात्र अपने संवाद आत्मगोपनको भेदकर माखनलाल जीकी लेखनीपर एक धार बहा रहे थे, लेकिन मानसमें शामकी परोसगीरीके दृश्य रह-रहकर आँखोंके आगेसे गुज़र रहे थे…जब नीचे आतिथेयके बैठकखानेमें आगत अतिथियोंके लिए भोजन परोसा गया, तो परिवारके अन्य १५-१६ व्यक्ति भी बैठे। परोसगीरी चार-पाँच वयस्क बालाओंने की। एकदिन पहले सप्रेजीके साथ माखनलालजी यद्यपि यहाँ आकर ठहर चुके थे और कल भी भोजन इसी प्रकार किया गया था, लेकिन उस समय कोई चिन्ताका विषय उत्पन्न नहीं हुआ था। पर आज सायं तो परोसने वालियोंमें जैसे होड़ लग गई थी और रह-रहकर वे सभी माखनलालजी की ही थाली पर विशेष प्रीतिमें जिज्ञासा करने लौट-लौटकर आती थीं। अन्य भोजन करनेवाले व्यक्ति इस अनपेक्षित व्यतिक्रम पर चौंके विना न रहे। सप्रेजी

अपने युगके महामानव रूप थे, उनकी सतर्क दृष्टि माखनलालजी पर प्रतिक्षण रहने लगी थी। दम साधे वे शान्त भावसे यह प्रीतिभोजका अकल्पनीय प्रकरण अपनी आँखों देख रहे थे और चिन्तामें अधीर हो रहे थे। पर अपनी अधीरताको लेकर वे असहाय थे। माखनलाल रूप-रंग और भरी तरुणाईमें कर्मकौशलके फलभोगसे शुक्लेन्दुवत् बने हुए, इतने गौरवर्णके युवक थे कि अपने आसपास अनुपम सौन्दर्यका संचरण अनायास कर उठते थे। माखनलालजीने स्वयं भी परोसगीरीकी यह अति-शयता महसूस की और संयतभावसे आँखें नीची किये भोजन करते रहे। भोजन करनेके बाद वे सीधे अपने छतवाले कमरेमें चले आये। लालटेन जलाई और लिखने बैठ गये। कितने प्रहर बीते, इसका ध्यान तक न रहा।

कि सायँ-सायँ करती रातमें गहन निस्तब्धताको किसीने भंग किया। कोई दरवाज़ा खटखटा रहा है। लेकिन इस तरह खटखटा रहा है कि जैसे इस आहटकी मृदु नम्र सूचना केवल अन्दर बैठा हुआ व्यक्ति ही पाये, मकान-में उसकी गूँज होकर भी न हो पाये। यह दस्तक विचित्र सूचना लेकर उपस्थित हुई, तो माखनलालजीने अपनी जेब घड़ी देखी। इस समय रातके दो बजकर कुछ मिनट हुए थे। निश्चय ही सप्रेजी इस तरह आहट देने वाले नहीं हैं। परेशान और संदिग्ध भावमें माखनलालजीने द्वार खोला। और द्वार खोलते ही माखनलालजी को पसीना आ गया।

द्वारपर कुलशीला ललना खड़ी थी। उसने भी सोत्साह आज शाम-की परोसगीरीमें भाग लिया था। उसकी कमनीय देह-भंगिमाको रूपायित करनेवाली अलंकारिक क्षमता बरबस ही अभिपुष्प निकुंजकी अभिज्ञा हाथों-हाथ देती लगती थी। द्वार खुलते ही वह आगे आई और द्वारमें क़दम रखकर उसने अपने हाथों द्वार बन्द कर लिया। किसी तरहका असंयत भाव-मन्थन उसके चेहरेपर नहीं था। धीरोदात्त नायिका-सी वह युवती कुछ कहे, इससे पूर्व माखनलाल जीने कहा, "मैं तो मिशनरी हूँ।

अपने कामपर आया हूँ। इसलिए मुझसे इस समय रातमें बातचीत करनेका कोई अर्थ तो है नहीं।"

युवतीने दृढ़ स्मितिसे कहा, "क्यों, क्या आपका पुरुषत्व मुझसे बात-चीत करनेसे डरता है?"

माखनलालजीके लिए जन-जीवनमें यह पहला अवसर था, इस तरह-की प्रभूत अतीन्द्रियताका सामना करनेका यह पहला मौक़ा था। फिर भी साहसकर कहा, "जी हाँ, डर लगता है, मैं यहाँ हिन्दी साहित्य-सम्मेलनके कामसे आया हूँ। दुनिया भरकी आयँ-बायँ-शायँके लिए तो मैं यहाँ आया नहीं हूँ।"

उस शीला ललनाकी केंचुली जैसे उतरने लगी और वह समर्थ युवती-के रूपमें प्रकट हुई। बोली, "फिर आपने दुखियोंकी सहायताका अपने व्याख्यानमें जो स्वांग भरा था, ऐसा आपलोगोंको नहीं करना चाहिए।"

माखनलाल एक ग्रामीण युवक और जिसे शहरी शिक्षिताओंसे बात-चीतका स्पर्श तक न हुआ हो। कविता जिसने की तो स्वान्तःसुखाय। यों दर्प-आरूढ़का संवादका सत्य जो उसे आँखोंके सामने हाथ लगा तो वह इस नाटकीयतासे बेचैन हो उठा। फिर भी विनम्र भद्रताके नाते कहा, "आप जाकर सोइए। और जो कुछ बात आपको मुझसे करना है, सुबह आकर कीजिए।"

रात्रिका जागरण जिस युवतीका अपने लक्ष्यको पहुँचमें कर चुका हो, उसके लिए निःसन्देह इस तरहका आग्रह बहुत ही खोखला था। उसके सुन्दरतम ओष्ठोंसे उत्तर निःसृत हुआ, "ओः आपने तो दुनियाको अक्ल देनेका ठेका ही ले लिया है।"

अब माखनलालको कुछ सूझ नहीं रहा था कि वह क्या कहे? कि जैसे कुछ कहनेकी यथोचित अक्ल अब युवतीने अपने आँचलसे निकाल-कर माखनलालको दी और आगे बोली, "रातका समय है। मेरे लिए

न सही, तो दूसरे लोगोंके जाग जानेके भयसे तो ज़रा धीरे बोलें, तो भी काम चलता है।"

स्पष्ट था कि बात इसी समय होनी है और यह डरपोक माखनलाल-को मारक थपेड़े-सी गहरी लताड़ पिलाई गई थी। अब माखनलाल अस-हाय था। और उस कमरेके एकान्तमें यह वह क्षण था, जब उसका अधिकार किंकर्तव्यविमूढ़-सा सुन्न हो चुका था। फिर भी विवश कहा, "सुनाए आप अपनी तक़लीफ़, कौन-सी है ?"

सँपेरेके सामने जैसे ताज़ा सर्पने आत्मसमर्पण कर दिया हो, असह्य विद्रूपमें युवतीने उदीयमान नाटककार माखनलालसे प्रश्न किया, "क्यों ? क्या सचमुच मनुष्यत्व लौट आया ?"

निश्चय ही कमरेका यह तीक्ष्णबुद्धि शशिमुखी आगन्तुक विद्वान् है। बहुपठित भी है और अपने आशयका अंकुश माखनलालके प्रचण्ड नायकत्व पर चलानेकी दक्षता लेकर ही दृढ़भावसे यहाँ आई है। उसके हर तानेसे माखनलाल रह-रहकर झुँझला रहा था और उसके हर व्यंग्यसे बात करनेका नया सलीका भी अंजुलियों भरते पी रहा था। इस नये व्यंग्यसे अनाहत, अनवतप्त माखनलालने कहा, "आप कुर्सीपर बैठिए। मैं पलंगपर बैठता हूँ। हाँ, अब कहिये।"

कुर्सीपर सामने बैठे हुए संतप्त शकुन्तलाके प्रतिमानने संक्षेपमें बताया कि वह इण्टर पास है। उसके पति विलायतसे आई० सी० एस० होकर आये थे। कोई डेढ़ साल हुए उनका स्वर्गवास हो चुका है। उसके पास अब १० हज़ारकी पूँजी है। और फिर बहुत ही सलीकेसे कहा, "आप मुझसे विवाह कर लीजिये।"

व्युत्पन्नमति माखनलालका जाग्रत दार्शनिक उसी सलीकेसे बोल उठा, "मैं तो छः क्लास पढ़ा हुआ हूँ।"

युवतीकी आवाज़में अनपेक्षित तुर्शी घुल गई। प्रश्न कर उठी,

"क्या विवाहसे पूर्व कोई ऐसा थर्मामीटर लगाकर देखा जाता है, जिसमें दोनोंकी विद्याओंका तापमान नापा जाय ?"

माखनलालने अपना दूसरा तर्क दिया, "किन्तु, मेरेसे विवाहकर आपकी यशवृद्धि तो होगी नहीं।"

क्या लचर तर्क था ! तरुणीने अपना अकाट्य तर्क उत्तरमें दिया, "अभी तक मेरी यशवृद्धि शुरू ही कहाँ हुई है, जो और होगी !!"

यही आध घण्टे तक कमरेके एकान्तमें बद्ध तरुण-तरुणीका संलाप हुआ। युगोंसे ऐसे संलाप होते आये हैं। पर इस संलापमें माखनलालका युगउद्बोधक व्यक्तित्व अपने इस तर्कपर अविचलित रहा कि तरुणीको अपने धनको किसी सार्वजनिक कार्यमें लगाना चाहिए, और यह कि उसे स्वयं भी सार्वजनिक क्षेत्रमें उतर आना चाहिए। देशकी बहनोंमें वह जागृतिका सन्देश फैलाये और इस तरह अपने स्वर्गगत पतिकी पवित्र स्मृति में राष्ट्रीय जागरणका व्रत लेकर जीवित रहे। कुछ अनमनी, कुछ असन्तुष्ट, कुछ आक्रोशसे व्यथित तरुणी चुपचाप अँधेरेमें नीचे वापस लौट गई।

माखनलालजी इस एकांकीके बाद 'कृष्णार्जुन युद्ध'के कथोपकथन सब भूल गये। दिमाग़के कैन्वासपर एक भी ऐतिहासिक पात्रने अपनी बात कहनेसे इन्कार कर दिया। केवल जो जीवित यात्री अपने कथोपकथन उसे अयाचित कण्ठस्थ करा गई है, वे ही संवाद रह-रहकर दिमाग़में गूँजने लगे और पुनः-पुनः अपने विद्रूपसे उसे बेचैन करने लगे। लालटेन बुझाकर वे भी बाहर आये और अपने नीचेके कमरेमें सोने चले। लेकिन नीचेके कमरेमें घुसते ही सप्रेजीने उन्हें रोका और पूछा कि यह छतपर जो युवती तुमसे बात कर रही थी, सो क्या बात कर रही थी ?

हाय, सार्वजनिक जीवनका यह कैसा अंकुश है कि एक अपरिचिता तरुणीने प्रणय-बन्धनका प्रस्ताव अभी एक क्षण पहले सामने रखा है

और उसे अपने गुरुके सामने सारा भेद खोलना होगा। माखनलालजी ज़रा झिझके तो सप्रेजीने इतना स्नेह जताया कि माखनलालजीने सारे संवाद और प्रतिसंवाद दुहरा दिये। लेकिन सप्रेजी तो संवाद प्रारम्भ होनेसे पहले ही बगलके अँधियारे कमरेमें आकर छिप गये थे और सारी वार्ता सुन चुके थे। जहाँ माखनलालजीने किसी बातको छोड़नेकी कोशिश की तो तत्काल ही सप्रेजीने जैसे सूत्रधारकी तरह याद दिलाते हुए कहा कि और यह भी तो कहा था।

माखनलालजीको स्वीकार करना पड़ा कि हाँ, यह भी कहा था। सारी घटना सुनकर सप्रेजीने अपने इस होनहार और भविष्यकी एकमात्र आशा रूप शिष्यका मन ही नहीं टटोला, स्नेहसे बरबस आग्रह किया कि वह इस युवतीका प्रणय स्वीकार कर ले। लेकिन सप्रेजीकी जैसे यही आज्ञा स्वीकार नहीं की जा सकती। माखनलालजीने इस आग्रहको स्पष्ट शब्दोंमें माननेसे इन्कार कर दिया।

दिनमें उस युवतीके दर्शन नहीं हुए। परोसगीरीके समय भी वह अनुपस्थित रही। लेकिन रातके समय वह पुनः प्रकट हुई।

यही आध घण्टा वह और बैठी और उसने माखनलालजीके स्नेहाग्रहको स्वीकार कर लिया कि वह अपनी निजी धनराशिसे एक कन्या-पाठशाला स्थापित करे और जो धनराशि उसमें कम पड़े, उसका संचयन करे और इस तरह देशकी एक बड़ी समस्याका समाधान करनेमें अपनी मानवी मूर्तिका यथार्थ योगदान दे…

जबलपुरमें साहित्यिक समारोह

"साहित्य सम्मेलनकी स्वागतकारिणीकी बैठक जबलपुरमें हो रही थी। रायबहादुर श्रीविष्णुदत्तजी शुक्ल और मध्यप्रदेशके अन्य व्यक्ति भी उपस्थित थे। जब मैं भाषण करनेके लिए खड़ा होता, तब मैं कहते-कहते बीचमें ही कहता, 'समझे कि नहीं?'

पूज्यवर सप्रेजी इस कमीकी ओर कभी साधारणतः और कभी क्रोधी होकर मेरा ध्यान आकर्षित किया करते। स्वागतकारिणीकी बैठकमें मेरा भाषण हो रहा था। मैं कह रहा था कि अखिल भारतीय साहित्य-सेवकोंका स्वागत मध्यप्रदेशमें हम किस प्रकार करें? भाषण जब बहुत रंगपर आ रहा था और लोग उससे अत्यन्त प्रसन्नसे लगते थे, तभी मेरे मुँहसे निकल गया कि 'समझे कि नहीं?'

'अपनी नासकी डिबियामेंसे नास सूँघते हुए पूज्य सप्रेजी धीरेसे उठे। सब लोगोंका ध्यान उनकी ओर चला गया। मैंने भी भाषण करना बन्द कर दिया। वे बोले, 'सभापतिजी महाराज, हम तो नहीं समझे!'

जब मैं डेरेपर लौटकर आया तो मैं अत्यन्त दुखी था। सप्रेजीके पास ही मैं ठहरा हुआ था। घरपर मैंने उनसे और उन्होंने मुझसे कुछ नहीं कहा, अबोले ही रात गुज़र गई। उन्होंने दूसरे दिन प्रातःकाल उठते ही मेरे खिन्न चेहरेपर दृष्टि गड़ाते हुए कहा, 'क्रान्ति, साहित्य-सम्पादन, सामाजिक सुधार और न जाने क्या-क्या झमेले अब तुमने अपने सिर उठा रखे हैं। मैं तो तुझमें जहाँ कमी पाऊँगा, उसका उपचार इसी कलकी तरह करूँगा।'

कहनेकी आवश्यकता नहीं कि फिर 'समझे कि नहीं' कहनेकी आदत-को लौटनेका अवसर नहीं मिला।"

इस अधिवेशनके अध्यक्ष श्री रामावतार शर्मा थे। स्वागताध्यक्षका पद मध्यप्रदेशके साहित्यिक जगत्‌की बागडोर थामनेवाले और सम्मेलनको जबलपुरमें निमन्त्रित करनेवाले पं० विष्णुदत्तजी शुक्लने ग्रहण किया। सम्मेलनके पूर्ण होनेपर खण्डवाके नाटक-दलने 'कृष्णार्जुन युद्ध' प्रस्तुत किया। अभिनयकी दृष्टिसे यह पहली साहित्यिक कृति थी, जिससे पहले किसी भी अन्य कृतिको सम्मेलनोंके अधिवेशनोंमें इससे अधिक गौरव और इससे अधिक प्रशंसात्मक सफलता नहीं मिली थी। साहित्यिक

विषयवस्तुके लिहाज़से शीघ्र ही यह नाटक भारतका सर्वाधिक लोकप्रिय नाटक सिद्ध हुआ और निकट भविष्यमें ही इसकी ६०,००० प्रतियाँ देखते-देखते बिक गईं। यही नहीं, यह नाटक अकेले मध्यप्रदेशीय साहित्यिक क्षितिजकी निधि न रहा, आगामी वर्षोंमें इसका अभिनय न केवल अन्यान्य मध्यप्रदेशीय नगरोंमें ही दुहराया गया, उत्तरप्रदेश और बिहार और पंजाब जैसे प्रान्तों—जहाँ नाटकोंका अपना एक निजी अनुकरणीय आदर्श रहा है—में भी इस नाटकको स्मरणीय मंच-टैकनीकमें एक नये गुणकी अभिवृद्धि करनेका श्रेय प्राप्त हुआ।

सम्मेलनपर खेले गये इस नाटकपर आगत साहित्यकार बहुत ही प्रसन्न हुए। नाटकके लेखक पं० माखनलालजी चतुर्वेदीको एक स्वर्ण-पदक भेंट किया गया। आगामी वर्षोंमें जिन्होंने हिन्दीका राजनीतिक नेतृत्व ग्रहण किया, वे ही थे इस स्वर्ण-पदकके दाता श्री (स्व०) रविशंकरजी शुक्ल।

नाटकोंके इतिहासमें अपने युगका प्रतिनिधित्व करनेकी दृष्टिसे 'कृष्णार्जुन युद्ध'[1] अभूतपूर्व कृति बनी। यह पहली साहित्यिक कृति थी, जो मंच-कलाकी गेय और अभिनेय मानकी वस्तु शीर्ष स्थानपर मान्य की गई।

---

१. 'कृष्णार्जुन युद्ध नामक एक पुस्तक बँगलामें भी लिखी गई है और इस नामसे एक पुस्तक श्रीनरसिंह चिन्तामणि केलकरने मराठीमें भी लिखी है। मराठीकी पुस्तकमें चित्रसेन गन्धर्वको अधिक महत्त्व दिया गया है और इसी कृतिमें औपनिवेशिक स्वराज्यकी भी चर्चा है।

'कृष्णार्जुन युद्ध' नाटक माखनलालजी की सबसे पहली प्रकाशित पुस्तक है और इसमें आपने नारदको महत्त्व दिया है। नारदको ग़रीबका रूप देना माखनलालजीकी मौलिक सूझबूझ थी। नारदके चरित्रचित्रणमें माखनलालजीके इस युगके राजनीतिक विचार पढ़े जा सकते हैं। वे

मैथिलीशरण गुप्त और माखनलाल चतुर्वेदी

१९१६ के दिसम्बर के अन्तिम सप्ताहमें लखनऊमें कांग्रेसका अधिवेशन हुआ। यह एक राष्ट्रीय समारोह था और इसमें देशके दूरस्थ भागोंसे सभी चेता व्यक्ति आये थे। माखनलालजी भी लखनऊ गये। वेश वही ठेठ ग्रामीण। लखनऊके इधर आपको एक ज़रा अक्खड़ शीलके विद्यार्थी मिले। उन्होंने इस ग्रामीणसे बात करनेके बहाने पूछा कि कहाँसे आ रहे हो?

माखनलालजीने स्मित भावसे कहा, "खण्डवासे।"

विद्यार्थी इस नगरका नाम सुनकर ज़रा जिज्ञासु बना। पूछा, "खंडवा से तो 'प्रभा' छपती है न?"

"हाँ, छपती है।"

"माखनलालजी चतुर्वेदीको जानते हो?"

"क्यों नहीं, वे तो बड़े प्रसिद्ध आदमी हैं। उनको सभी जानते हैं।"

"तुम वहाँ क्या करते हो?"

"मैं 'प्रभा'के कार्यालयमें एक क्लर्क हूँ।"

उसके बाद अन्य बातें हुईं। और लखनऊ कांग्रेसमें यह विद्यार्थी भी माखनलालजीके साथ ही अधिकांश समय रहा, लेकिन दोनो कुछ

कितने परिपक्व थे और जनतामें वे कितने लोकप्रिय हो सकते थे, यह तो इसी बातसे जाना जा सकता है कि आपकी यह पहली पुस्तक ही आपको अखिल भारतीय प्रसिद्धि दे गई।

इस नाटककी सबसे बड़ी विशेषता इसका मनोविनोदी अंश है। उसे देखकर श्रोताओंका साहित्यिक स्तरपर कितना मनोरंजन नहीं होता। माखनलालजीका विनोदी अंश इस कृतिके बाद अत्यल्प रूपमें भी, आज ४० वर्षसे ऊपर होने आये, साहित्य-जगत्में पुनः प्रकाशित नहीं हुआ है।

समय तक न जान सके कि उनमेंसे एक भावी राष्ट्रीय कवि पं० बालकृष्ण शर्मा नवीन हैं और दूसरे 'प्रभा'के क्लर्क-रूप 'एक भारतीय आत्मा' श्री माखनलालजी चतुर्वेदी हैं।

कि इसी लखनऊ कांग्रेस के पण्डालके बाहर दो श्रेष्ठतम कवियोंका सम्मिलन हुआ। पं० बालकृष्ण शर्मा नवीन लिखते हैं[1]।

"दिसम्बर मास, जाड़ेकी सन्ध्या, कांग्रेस पण्डालके बाहरका एक शिविर। पुण्यश्लोक गणेशशंकर विद्यार्थी, बंधुवर शिवनारायण मिश्र, मैथिलीशरण गुप्त और कुछ अन्य जन। गुप्तजी लाल पाग बाँधे थे। मैं और पं० माखनलालजी चतुर्वेदी उस शिविरकी ओर बढ़े जा रहे थे, जहाँ उपर्युक्त मण्डली थी। माखनलालजीने भी सर्वप्रथम कांग्रेसके अवसर-पर ही गुप्तजीके दर्शन किये। जब माखनलालजीसे दद्दा (गुप्तजी) का परिचय कराया गया, तो माखनलालजीने उन्हें विनीत प्रणाम किया। दद्दाने स्नेहसे उन्हें हृदयसे लगा लिया। मैं दूर खड़ा था। जब माखनलालजी लौटकर आये, उन्होंने भरे हृदय और भारी कण्ठसे मुझसे कहा, 'आज मैंने अपने गुरु बाबू मैथिलीशरण गुप्तके चरणस्पर्श किये।'

मैं अवाक्। अरे, क्या वे लाल पाग बाँधे ही गुप्तजी हैं। और, तब मैंने [illegible] अटकल लगाई। मैंने माखनलालजीसे कहा, 'महाशय, यदि गुप्तजी आपके गुरु हैं, तो फिर आप निश्चय ही 'एक भारतीय आत्मा' हैं।

माखनलालजी मेरे मुखकी ओर देखते रहे। बोले, 'एँ-एँ—यह तुमसे किसने कहा ?'

बात यह थी कि उन दिनों पूज्य दादा 'एक भारतीय आत्मा'के नामसे कविता लिखा करते थे। पर, उनका नाम किसीको ज्ञात नहीं था।

---

१. राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रन्थके द्वितीय खण्डकी भूमिका।

सो, अस्मदादि पंडित बालकृष्ण शर्माने यह तीर छोड़ दिया। दादा बिचारे! न निगलते बने, न उगलते। बोले, 'तुम्हें कैसे ज्ञात हुआ कि मैं एक भारतीय आत्मा हूँ?'

मैंने कहा, 'देखिए, दो और दो चार होते हैं न?'

वे बोले, 'पहेली मत बुझाओ और ठीक-ठीक बताओ?'

मैंने कहा, 'बात यों है कि मैं आपकी 'प्रभा'का ग्राहक हूँ। मैंने दो मास पूर्वकी 'प्रभा'में एक कविता 'एक भारतीय आत्मा'की पढ़ी थी। वह कविता श्री मैथिलीशरण गुप्त पर थी। उसमें गुप्तजीका स्मरण गुरु-रूपमें किया गया था। सो, आज मैंने यदि कविताके लेखकको गुरु-चरणोंमें नमित होते जान लिया तो क्या बड़ा तीर मारा?'

पूज्य माखनलालजी बोले, 'तुम बड़े विचित्र हो!'

वार्तालाप मेरे और माखनलालजीके बीच, कुछ इसी तरहका हुआ था। चालीस वर्ष उस बातको हो गये।"

नवीनजीने जैसा स्वीकार किया है, इस संवादमें बहुत कुछ वह तथ्य नहीं है, जो होना चाहिए। माखनलालजीके यदि गुरु हो सकते थे तो महावीर प्रसादजी द्विवेदी, जो मैथिलीशरणजीके भी गुरु थे। पर महावीर प्रसादजी द्विवेदीको गुरुभावमें माखनलालजीने कभी नहीं लिया। उनके जीवनमें एक ही गुरु रहे हैं और वे हैं पूज्यवर माधवरावजी सप्रे। माखन-लालजीकी ओरसे मैथिलीशरणजीको अपना गुरु मानना निस्संदेह तुककी बात नहीं है। मैथिलीशरणजी और माखनलालजीकी आयुमें केवल एक वर्षसे भी कम कुछ मासका अन्तर है। दोनों ही इस आयुमें अपना अपना कृतित्व प्रस्तुत कर रहे थे। हमउम्र युवकोंमें गुरु-शिष्यका भाव सम्भावना-से भी परे होता है। मैथिलीशरणजीने व्रजभाषामें लिखना शुरू किया था। उनको हिन्दीमें लिखनेकी आज्ञाएँ मिलीं आचार्य महावीरप्रसादजी द्विवेदीसे। इस समय तक मैथिलीशरणजीने भी लिखा, वह महावीर-प्रसादजीकी आज्ञासे और उनकी निर्दिष्ट मार्गरेखाओंके अनुरूप लिखा

था। किन्तु माखनलालजीका जीवन हिन्दीके इतिहासमें स्वतन्त्र मौलिक लेखन और युगमें उस वाणीको शंखनादकी तरह गुञ्जित करनेके लिए स्मरण किया जायगा, जिसका साहस महावीरप्रसादजी द्विवेदी जैसे सम्पादकप्रवरके पास भी नहीं था। मैथिलीशरणजी राष्ट्रभारतीको विशाल जनसमूहकी गेय वाणी काफ़ी वर्षोंके बाद बना सके, तो माखनलालजीने उससे कहीं व्यापक स्तर पर हिन्दी गद्यको जो राष्ट्रीय चिन्मयता, बोधदृष्टि, आधुनिक युगकी श्रद्धाका अनुशासन और ज़बरदस्त अभिव्यक्तिका प्रामाणिक रसप्रवाह दिया है, उसका लेखा-जोखा अभी हिन्दी-साहित्यमें किया जाना बाक़ी है। जिस प्रकार भेड़ा-घाटकी संगमरमरी चट्टानें अपने लालित्यपूर्ण अंग-सौष्ठवसे नर्मदाके जलमें रस-संचारोद्दीपन करती रहती हैं, उसी तरह माखनलालजीकी काव्यात्मक अनुभूतियाँ उनके काव्य और उनके गद्यमें समान रूपसे चिद्विलासमय हो गयी हैं। एक शब्दमें कह दिया जाय, जिस सीमारेखा तक महावीरप्रसादजी द्विवेदी और मैथिलीशरण गुप्तके संयुक्त हाथ अपनी सशक्त व युगनिर्माणकारी सामर्थ्य पहुँचा सके हैं, उसी सीमारेखासे आगे अकेले माखनलालजीकी दीर्घ बाहें नये तरुण भारत की भद्र संस्कृतिका मानसक्षेत्र चिनती चलती हैं और अपने शब्दोंकी पराकाष्ठाको न सिर्फ़ स्वयं छूती हैं, बल्कि समूचा हिन्दी साहित्य भी उसे उसी तरह छूने लगता है। मैं कहूँगा, यदि आधुनिक हिन्दी काव्यके प्रथम नीर भरे श्यामल घनके रूपमें मैथिलीशरण हैं, तो इन बरसनेवाले बादलोंकी प्यासे-अतृप्त प्राणियोंमें हर्षकी लहर फैला देने वाली घन-गर्जना माखनलाल चतुर्वेदी हैं। मैं यह भी कहना चाहता हूँ कि माखनलालका महा पराक्रम उस पगडण्डीमें है, जो उन्होंने अपने पैरों चलकर अपने हाथों निर्मित किया है। और उनका वाक्संयम उन पंक्तियोंमें है, जो उन्होंने सबसे बड़े स्वार्थोंकी तिलांजलि देकर लिखी हैं!

इसीलिए गणेशशंकरजीने एक बार भरी सभामें कहा था कि राष्ट्रके भविष्यकी भाषा तो माखनलाल देगा!

एक इस दृष्टिसे भी देखें। मैथिलीशरणजीके जीवनमें होकर भी किसीके लिए गुरु होना कभी नहीं रहा। उनका जीवन मौजमें बीता है, महावीरप्रसाद द्विवेदीकी आज्ञाओंको शिरोधार्य करनेमें बीता है! हिन्दी साहित्यमें वे कभी किसीके गुरु नहीं रहे, न इष्ट रहे। जब तक १९२० गुज़रा, हिन्दी साहित्यमें एकदम नये खूनकी पौध आई है और उसने अपना ही मार्ग निश्चित किया है। मैथिलीशरण सदैव वन्दनीय इसलिए रहे हैं, कि उन्होंने महावीरप्रसादजी द्विवेदीके साहित्यिक आश्रमके मुख-कवि बनकर, महावीरप्रसाद द्विवेदीके 'चरणानुचर' होकर जो कार्य किया है, वह उसी तरहसे दुस्साध्य है, जिस तरह किसी कण्टकाकीर्ण वनघोर जंगलसे एक राजमार्ग न केवल निश्चित कर देना, बल्कि उसका अपने हाथों निर्माण भी कर देना। तरुण, जाग्रत और घुटनियों नहीं, बल्कि तरुणोचित तीव्र गति चलने वाले भारतका मार्ग इसी जंगलमेंसे गुज़रने-वाले राजमार्गसे आगे था।

इसी दृष्टिसे हम माखनलालजीको देखें। बिना शिक्षा, बिना सेठपुत्र (जैसे कि मैथिलीशरण थे) जैसे आरामप्रद साधनोंको पाये, एक हतभाग्य ग्रामपुत्र और होश आने पर मात्र १०) रु० मासिकपर गुज़र करनेवाले दीन-हीन व्यक्तिने अपनी पत्नीकी बलि देकर, अपने परिवार-की बलि और अपने पिताकी बलि देकर मध्यप्रदेशसे 'सरस्वती'के समकक्ष मासिक निकाला, मध्यप्रदेशके राजनीतिक और साहित्यिक क्षितिजपर अग्रणी लोकनायक बनकर गाँव-गाँव घूमा, पुलिसकी हथकड़ियोंसे जो सदा ही बाल-बाल बचता फिरा। जिसने पुत्र-एषणाकी पूर्तिके लिए मैथिली-शरणकी तरह तीन विवाह न कर प्रथम पत्नीके निधनके बाद, कौमार-जीवनका व्रत लिये न जाने कितने तरुणोंका निर्माण किया! पारिवारिक सुखोंसे त्यक्त, जिसने सदैव केवल सार्वजनिक लक्ष्यबोधका ही उपभोग करनेमें अपने जीवनकी सार्थकता समझी और जो राष्ट्रकी बलिवेदी पर बलिपंथीके रूपमें जीवनकी एक-एक साँस बिताता हुआ पत्रकारिता, गद्य-

था। किन्तु माखनलालजीका जीवन हिन्दीके इतिहासमें स्वतन्त्र मौलिक लेखन और युगमें उस वाणीको शंखनादकी तरह गुञ्जित करनेके लिए स्मरण किया जायगा, जिसका साहस महावीरप्रसादजी द्विवेदी जैसे सम्पादकप्रवरके पास भी नहीं था। मैथिलीशरणजी राष्ट्रभारतीको विशाल जनसमूहकी गेय वाणी काफ़ी वर्षोंके बाद बना सके, तो माखनलालजीने उससे कहीं व्यापक स्तर पर हिन्दी गद्यको जो राष्ट्रीय चिन्मयता, बोधदृष्टि, आधुनिक युगकी श्रद्धाका अनुशासन और ज़बरदस्त अभिव्यक्तिका प्रामाणिक रसप्रवाह दिया है, उसका लेखा-जोखा अभी हिन्दी-साहित्यमें किया जाना बाक़ी है। जिस प्रकार भेड़ा-घाटकी संगमरमरी चट्टानें अपने लालित्यपूर्ण अंग-सौष्ठवसे नर्मदाके जलमें रस-संचारोद्दीपन करती रहती हैं, उसी तरह माखनलालजीकी काव्यात्मक अनुभूतियाँ उनके काव्य और उनके गद्यमें समान रूपसे चिद्विलासमय हो गयी हैं। एक शब्दमें कह दिया जाय, जिस सीमारेखा तक महावीरप्रसादजी द्विवेदी और मैथिलीशरण गुप्तके संयुक्त हाथ अपनी सशक्त व युगनिर्माणकारी सामर्थ्य पहुँचा सके हैं, उसी सीमारेखासे आगे अकेले माखनलालजीकी दीर्घ बाहें नये तरुण भारत की भद्र संस्कृतिका मानसक्षेत्र चिनती चलती हैं और अपने शब्दोंकी पराकाष्ठाको न सिर्फ़ स्वयं छूती हैं, बल्कि समूचा हिन्दी साहित्य भी उसे उसी तरह छूने लगता है। मैं कहूँगा, यदि आधुनिक हिन्दी काव्यके प्रथम नीर भरे श्यामल घनके रूपमें मैथिलीशरण हैं, तो इन बरसनेवाले बादलोंकी प्यासे-अतृप्त प्राणियोंमें हर्षकी लहर फैला देने वाली घन-गर्जना माखनलाल चतुर्वेदी हैं। मैं यह भी कहना चाहता हूँ कि माखनलालका महा पराक्रम उस पगडण्डीमें है, जो उन्होंने अपने पैरों चलकर अपने हाथों निर्मित किया है। और उनका वाक्संयम उन पंक्तियोंमें है, जो उन्होंने सबसे बड़े स्वार्थोंकी तिलांजलि देकर लिखी हैं!

इसीलिए गणेशशंकरजीने एक बार भरी सभामें कहा था कि राष्ट्रके भविष्यकी भाषा तो माखनलाल देगा!

एक इस दृष्टिसे भी देखें। मैथिलीशरणजीके जीवनमें होकर भी किसीके लिए गुरु होना कभी नहीं रहा। उनका जीवन मौजमें बीता है, महावीरप्रसाद द्विवेदीकी आज्ञाओंको शिरोधार्य करनेमें बीता है! हिन्दी साहित्यमें वे कभी किसीके गुरु नहीं रहे, न इष्ट रहे। जब तक १९२० गुज़रा, हिन्दी साहित्यमें एकदम नये खूनकी पौध आई है और उसने अपना ही मार्ग निश्चित किया है। मैथिलीशरण सदैव वन्दनीय इसलिए रहे हैं, कि उन्होंने महावीरप्रसादजी द्विवेदीके साहित्यिक आश्रमके मुख-कवि बनकर, महावीरप्रसाद द्विवेदीके 'चरणानुचर' होकर जो कार्य किया है, वह उसी तरहसे दुस्साध्य है, जिस तरह किसी कण्टकाकीर्ण घनघोर जंगलसे एक राजमार्ग न केवल निश्चित कर देना, बल्कि उसका अपने हाथों निर्माण भी कर देना। तरुण, जाग्रत और घुटनियों नहीं, बल्कि तरुणोचित तीव्र गति चलने वाले भारतका मार्ग इसी जंगलमेंसे गुज़रने-वाले राजमार्गसे आगे था।

इसी दृष्टिसे हम माखनलालजीको देखें। विना शिक्षा, विना सेठपुत्र (जैसे कि मैथिलीशरण थे) जैसे आरामप्रद साधनोंको पाये, एक हतभाग्य ग्रामपुत्र और होश आने पर मात्र १०) रु० मासिकपर गुज़र करनेवाले दीन-हीन व्यक्तिने अपनी पत्नीकी बलि देकर, अपने परिवार-की बलि और अपने पिताकी बलि देकर मध्यप्रदेशसे 'सरस्वती'के समकक्ष मासिक निकाला, मध्यप्रदेशके राजनीतिक और साहित्यिक क्षितिजपर अग्रणी लोकनायक बनकर गाँव-गाँव घूमा, पुलिसकी हथकड़ियोंसे जो सदा ही बाल-बाल बचता फिरा। जिसने पुत्र-एषणाकी पूर्तिके लिए मैथिली-शरणकी तरह तीन विवाह न कर प्रथम पत्नीके निधनके बाद, कौमार-जीवनका व्रत लिये न जाने कितने तरुणोंका निर्माण किया! पारिवारिक सुखोंसे त्यक्त, जिसने सदैव केवल सार्वजनिक लक्ष्यबोधका ही उपभोग करनेमें अपने जीवनकी सार्थकता समझी और जो राष्ट्रकी बलिवेदी पर बलिपंथीके रूपमें जीवनकी एक-एक साँस बिताता हुआ पत्रकारिता, गद्य-

लेखन, हिन्दी भाषण-कला, काव्य और रचनात्मक क्षेत्रोंमें केवल शीर्ष-स्थानीय ऋजुभाव ही मौनभावसे वितरित करता रहा···

नवीनजीके उक्त संस्मरणमें एक ही सत्य है। मैथिलीशरणजीकी तरह माखनलालजीने भी ब्रजभाषामें कविताएँ लिखना प्रारम्भ किया था। 'सरस्वती'से और विशेष रूपसे उसमें महावीरप्रसादजीके हाथों-हथेलियों उठाये हुए मैथिलीशरणजीके काव्यसे यह प्रेरणा उन्हें जरूर मिली कि हिन्दीमें ही कविताएँ लिखना श्रेयस्कर है। उन्होंने अपनी इस प्रेरणाके प्रति अप्रमत्त ईमानदारीसे उक्त 'पुष्पांजलि' कवितामें गुप्तजीको प्रणाम किया है। उसमें कहीं भी उनको गुरु रूपमें याद नहीं किया गया है। माखनलालजी जैसे वैष्णववादी कवि मैथिलीशरण भी रहे हैं। जब सन् ३६ में गाँधीजीके हाथों गुप्तजीको अप्रकाशित पांडुलिपि रूपमें एक साधारण कोटिका ग्रन्थ उनके सम्मानार्थ दिया गया था, तब गुप्तजीने गाँधीजीको संबोधित करते हुए अपने भाषणका शीर्षक 'प्रणाम' ही रखा था। माखनलालने अपने समकक्ष हमउम्र गुप्तजीको जो प्रणाम किया है, वह उनके चरित्रकी महानता है, संस्मरणीय सदाशयता है, पगडण्डीपर आगे चलने वालेके प्रति एक आत्मीय निष्ठा है।

पुष्पांजलि* कविता इस प्रकार है :

१

जो धीर मति, गम्भीर गति धारी, सुकवि सम्मान्य हों;
  जो ज्ञानमें, ध्रुव ध्यानमें, यश मानमें भी मान्य हों;
गुण-गानमें जगदीशके जिनको लगा पाते सदा;
  उद्धारके कर्तव्य सूचक गीत जो गाते सदा;

---

* भाग १, फाल्गुन शुक्ल १, १९७०, २५ फरवरी, १९१४, संख्या १२।

यह चपल मन जिनको हृदयमें ढूँढ़ने अविराम है;
उन वीर पुंगव, राष्ट्र-कविको यह अनन्त प्रणाम हैं।

२

जिनकी कृपासे मन अनेकों धारणा धरता रहे;
कर्तव्यकी निर्मल करोड़ों कल्पना करता रहे;
आवेशकी अगणित अनोखी भावना भरता रहे;
दुर्गुण गणोंको मारता, सत्कार्य पर मरता रहे;
मेरे लिए इस रूपमें अभिराम जो श्रीराम हैं,
सत्कर्म विजयी उन सुकविको कोटि-कोटि प्रणाम हैं।

३

जो भारती पद हंसके रस-पूर्ण मानस ताल हैं;
साहित्य सर अरविन्द पय जल विलग राज मराल हैं;
साफल्यके शुचि शृंग पर चढ़ते समुद निरशंक हैं;
अन्याय, अघ, अविचारको यों दे रहे आतंक हैं;
जिनका हृदय निश्छल प्रभामय पूर्णतर निष्काम है;
सत्कर्म विजयी उन सुकविको कोटि-कोटि प्रणाम हैं।

४

वे पार्थ हैं, उनने, अहा! दुर्जय जयद्रथ वध किया;
हैं व्यवस्थापक सुकवि, 'पद्य-प्रबन्ध', उत्तम कर दिया।
कन्दर्पके रस-रंगमें भी भंगुका शुभ ढंग कर;
है अब दिखाया काव्यका सन्मार्ग भावी उच्चतर।
साहित्यके सन्तापहारी साधु, जो मति-धाम हैं;
सत्कर्म विजयी उन सुकविको कोटि-कोटि प्रणाम हैं।

५

बागीश्वरी सुत जान कर वात्सल्य युत रहती जहाँ;
　　　　है भव्य भारत-भारती भागीरथी बहती जहाँ;
अभिराम शोभा धाम श्रीवर रामके जो भक्त हैं,
　　　　श्री मैथिली पदशरणमें भी गुप्त ही अनुरक्त हैं;
उन पर, सदन, तन, मन तथा जीवन, सभी कुछ दान हैं,
　　　　उस सरलताकी मूर्तिको अगणित अशेष प्रणाम हैं।

"एक भारतीय आत्मा"

लम्बी बीमारी और कानपुर व इन्दौरमें चिकित्सा

पत्नीके निधनपर व्यक्तिगत रूपसे जब गणेशशंकरजी खण्डवा आये, तब औपचारिक सहानुभूतिके बाद हुई बातचीतोंमें माखनलालजीने गणेशजीके सामने अपने क्रान्तिवादी तरुणोंको सहायता देने सम्बन्धी अपने गुप्त कार्योंका रहस्य खोल दिया। गणेशजीने इस रहस्यको जानकर माखनलालजीके प्रति अपनी घनिष्ठ आत्मीयता ही दी। वे स्वयं निरन्तर देख रहे थे कि यद्यपि क्रान्तिवादी तरुणोंको असंख्य आपदाएँ घेरे रहती हैं, पर वे चरित्रके कितने खरे हैं। यह दूसरी बात है कि उनके हाथों राष्ट्रकी गतिविधिमें उल्लेखनीय प्रकम्प नहीं आया, पर उनके कामको दुतकारने या दुरदुरानेके पहले यह ज़रूरी है कि अपनी सामर्थ्य भर उनके मार्गको अवश्य सुगम कर दें। आर्थिक शक्तियोंके अभावके कारण उनके सभी स्वप्न कारगर नहीं हो रहे थे। माखनलाजीके दायरेमें बंगाल और अन्यत्रसे आनेवाले तरुणोंकी आर्थिक सहायता की तो जाती थी, पर वह होकर भी जैसे अतृप्त-सी रह जाती थी। माखनलालजीके इस पारिवारिक संकटमें, उनकी प्रियतमा पत्नीके निधनमें, गणेशजीने एक ही सान्त्वना माखनलालजीको दी कि अब वे इस प्रकारके चिन्तनीय और कष्टसाध्य आयोजनोंसे फुर्सत पायें और अपनी शक्तियाँ अन्य आवश्यक कार्योंमें

लगाते रहें। क्रान्तिवादी तरुणोंको आर्थिक सहायता देनेका कार्य कानपुरसे यथासाध्य होता रहेगा !

१९१६ जब समाप्त हुआ, तब अधिकतर व्यक्ति लखनऊमें ही थे। लखनऊसे लौटकर कुछ समय माखनलालजी गणेशजीके साथ ही रहे। कानपुरमें जब गाँधीजी पधारे, तब माखनलालजी गणेशजीके ही साथ थे।

"उन दिनों जब रूसी विचारधाराके क्रान्तिकारियोंने भी प्रतापके प्रांगणमें प्रवेश किया, तब पहले तो यही निश्चित किया गया कि उनकी भी भरपूर मदद की जाय, किन्तु सन् १९१७ की फरवरीमें जो बैठक बिन्दकी-में हुई, उसमें गणेशजी और शिवनारायणजी दोनों सम्मिलित हुए तथा यह सन्देश लेकर लौटे कि रूसी प्रतिक्रियाओंके साथ एकदम बह जानेकी अपेक्षा यह आवश्यक है कि हम उनके कार्योंको देखें और प्रतीक्षा करें।

"गणेशशंकरजीके कार्यकी विशेषता यह थी कि जो लोग विशुद्ध क्रान्तिके उपासक थे, उनकी भी कानपुर शहरमें सहायता की जाती थी। जो सरकारी नौकरीमें रहकर देशसेवाके प्रति जागरूक थे, उनकी सुधि लेना भी गणेशजीने अपने कन्धोंपर ले रखा था। उन दिनों प्रताप-कार्यालय न होकर प्रताप-परिवार था और छोटेसे चपरासी रामेश्वरसे लेकर दशरथजी तक मानो सब एक ही कड़ीमें निबद्ध थे। लगता था कि 'प्रताप' की देशसेवा ही उसमें काम करनेवालोंका वेतन है और वेतन लेते समय मानो प्रत्येक भयभीत रहता था कि वह ज़रूरतसे ज्यादा को हाथ न लगाये। उन दिनों युक्तप्रान्तके लेफ्टिनेण्ट गवर्नरके यहाँ 'प्रताप' और गणेशशंकरजीकी जो (गुप्त) फाइल बनी हुई थी, उसमें नीले निशानोंसे जो लिखा गया था, उन नीले निशानोंकी जानकारी देशभक्तिके सूत्रोंसे 'प्रताप' के पास पहुँच जाया करती थी। जिस अदासे देशकी शक्तियोंके वफ़ादार होकर गणेशशंकर जी कानपुरमें खड़े होते थे, लगता

था कि मानो हिन्दीकी पत्रकारिता और त्याग-परम्पराका अद्भुत इतिहास बन रहा है।

"धनिक शक्तियाँ जब भी 'प्रताप'पर हावी होतीं, गणेशजी स्पष्ट कहते, 'मैं किसी भी मूल्यपर 'प्रताप' को और 'प्रताप' के द्वारा गरीबोंकी शक्तिको पराजित नहीं होने दूँगा।' यही कारण है कि उत्तरप्रदेशके सार्वजनिक जीवनके व्यक्ति तथा संस्थाएँ 'प्रताप' को अपनी रक्षाका बल तथा प्राणसंचारक मानती थीं।

"इसी स्थलपर मुझे गणेशजीका एक कथन और याद आ रहा है, जो उन्होंने इसी विषयको बहुत ही मार्मिक शब्दोंमें गूँथते हुए कहा था, 'मानव अभागेकी एक विचित्र आदत है। जबतक सूरजकी किरणें उसे प्रकाश देती हैं, वह सूरजको भूले-सा रहता है। किन्तु जब वह अपने साथ नहीं रहता, तब वह सूरजके अपमानकी परवाह किये बिना छोटी-सी टिमटिमदानीको सूरजका स्थान दे देता है।'

"कि, मैं १९१७ में इसी फरवरी मासके बाद जब कानपुरसे लौट कर आया तो बीमार पड़ गया। इस समयतक पिताजी मसनगाँवसे बदलकर नयागाँव आ चुके थे। यह गाँव भी गंजाल नदीके किनारे ही है। मैं यहीं नयागाँवमें बीमार होकर चला गया।

"जहाँ गाँवमें एक बैलगाड़ी निकालना कठिन हो जाता है, वहाँ सात महीने तक मेरी दीर्घ बीमारीमें, पिताजीको खबर दिये बिना, एक बैलगाड़ी रोज़ टिमरनी (निकटस्थ रेलवे स्टेशन) जाती रहती, जिसमें मेरी दवाओंका सामान भी टिमरनीसे आता रहता। यह सारा सामान रेल द्वारा कानपुरसे गणेशजी भिजवाते थे। और मुझसे मिलने आनेवाले लोग भी जिस गाड़ीमें बैठकर टिमरनी स्टेशनपर उतरकर नयागाँव आते रहते। उन दिनों खण्डवासे श्री कालूरामजी गंगराड़े, और स्कूल-कालेजके कितने ही वे विद्यार्थी भी, जो मुझसे हिन्दी पढ़ चुके थे, या मेरे विषयमें कुछ जानकारी रखते थे, मुझे देखनेके लिए नयागाँव पहुँचते रहते थे। और,

गाँवके लोग विशेषतः पटेल छतरसिंह, कुंजीलालजी पटवारी तथा जाट, राजपूत, जादन तथा अन्य जातियोंके लोग आगन्तुकोंकी तरह तरहसे आव-भगत करते थे। मेरी इस गाँवकी बीमारीमें मेरे क्रान्तिवादी तरुणोंकी सहायता करनेका भार गणेशजी और शिवनारायण मिश्रने अपने कन्धोंपर ले लिया था।

"भाई गणेशशंकरजी तथा पं० शिवनारायणजी मिश्र, पं० किशोरी-दत्तजी वैद्य शास्त्री तथा उनके संग आनेवाले सज्जनोंको नयागाँवकी इस सहानुभूतिपूर्ण वृत्तिपर बहुत अचम्भा होता। वे इसका कारण अपने प्रताप-परिवारके बीमार लेखकको समझते। किन्तु जब उन्हें यह मालूम हुआ कि यह प्रभाव तो पिताजीका—स्थानीय एक स्कूलमास्टरका है तब उन्हें बहुत आश्चर्य हुआ। गणेशजीके रहते हुए तहसीलदार पाण्डे भी कदाचित् शाला-भवनमें एक बार आये थे। तब गणेशजीने पिताजी जैसे स्कूलमास्टरके गाँव भरमें फैले हुए प्रभावकी चर्चा करते हुए उनसे कहा था, 'ऐसा भी स्कूलमास्टर हो सकता है, यह तो हमारे लिए एक आश्चर्य-की बात है!'

"१९१८ के प्रारम्भमें भाई गणेशशंकरजीकी आज्ञासे पं० शिव-नारायणजी मिश्र मुझे नया गाँवसे आकर कानपुर ले गये। साथमें वैद्य-राज किशोरीदत्तजी शास्त्री भी थे। उस समय मेरा स्वास्थ्य बहुत ही खराब था। जब पिताजी मुझे पहुँचानेके लिए टिमरनीके रेलवे स्टेशनपर आये, उस समय उनकी आँखें कह रही थीं कि उन्हें मेरे बीमारीसे अच्छे हो जानेकी कितनी अधिक चिन्ता है। शिवनारायणजीके अत्यन्त आग्रहसे मेरी माँ मेरे साथ कानपुर आईं। उस समय ब्रजबाबू (सबसे छोटे भाई) बहुत छोटे-से साथ थे। बदहज़मीकी इतनी यन्त्रणा मुझे होती थी कि मैं गन्नेका रस पीते भी डरता। नित्य सन्ध्याको ज्वर हो आता था। जब मैं कानपुर पहुँचा, तब प्रताप-प्रेसमें ठहरा।

"उन दिनों प्रतापके सम्पादनका क्रम यह था कि चाहे चिट्ठी-पत्री हो,

चाहे लेख या कविताओंका चयन हो, चाहे समाचारोंका संकलन हो, पूरा स्टाफ मिलकर एक टेबलपर बैठ जाता था और 'प्रताप'की तैयारी होती जाती थी। उस समय मुझे प्रतिक्षण लगता था कि मैं मेरी बीमारीके कारण 'प्रताप'के होते हुए कार्यमें बहुत बड़ी बाधा हूँ। किन्तु गणेशजी-ने तो आगरा कालेजसे मुझे देखनेके लिए आये हुए डा० लक्ष्मण सिंह चौहानको कानपुर ही ठहरा लिया था यह कह कर कि एक चौबीस घण्टे ध्यान देनेवाला व्यक्ति मेरी देखरेखके लिए चाहिए। उस समय वैद्यवर किशोरीदत्तजी शास्त्री, आचार्य रामेश्वरजी शास्त्री, आचार्य कन्हैयालालजी जैन शास्त्री तथा डा० मुरारीलालजी और सबसे अधिक डा० जवाहरलाल-जी मुझे अच्छा करनेमें लग गये।

"माँ मेरे साथ चली आई थीं और बहुत दुःखी रहती थीं। वे जब भी गंगास्नानको जातीं, गंगामैयासे अपने पुत्रके आरोग्यके लिए अभ्यर्थना किया करतीं। मेरा वज़न लगभग ६८ पौंड घट गया था। चिरंजीव बाल-कृष्ण शर्मा 'नवीन' उन दिनों माँको आनन्दित करनेके लिए उन्हें तरह-तरहकी बातें सुनाया करते थे और गणेशजी बार-बार माँके पास भोजन किया करते। तथा तरह-तरहकी कहानियाँ कह-कहकर माँका मन बहलाया करते थे।

"उन दिनों विक्टर ह्यूगोकी 'नाइनटी थ्री' नामक उपन्यासिकाका अनुवाद उनके हाथों चल रहा था। गणेशजीको जब अवकाश मिल जाता, तब विना समय और विना नियमके गणेशजी उसका अनुवाद कराने लगते थे। वे बोलते जाते और कोई लिखता जाता। कभी-कभी वे स्वयं पुस्तक लेकर बैठते और लिखनेका काम भी वे स्वयं ही करते। उन दिनों गणेशजी च्यवनप्राशका भी सेवन करते। यह शायद वैद्यवर रामेश्वरजीके आदेशसे था। प्रताप-कार्यालय यद्यपि एक ओर सी. आई. डी.के भयंकर आक्रमणोंके बीचमें था, किन्तु नगरके लोगोंकी श्रद्धा अभूत-पूर्व थी। सरकारी और धनिक शक्तियाँ यद्यपि प्रतापकी शक्तियोंकी

आलोचनाका कोई अवसर खाली नहीं जाने देती थीं, किन्तु 'प्रताप' दिन दूनी रात चौगुनी उन्नतिकी ओर अग्रसर होता चला जा रहा था।

इसी बीच मुझे देखनेके लिए इन्दौरके (स्व०) डा० सरजू प्रसाद-जी चतुर्वेदी प्रताप-प्रेसमें आये। वे किसी कार्यवश लखनऊ आये थे और लौटते समय मुझे देखते ही उन्होंने गणेशजीसे निवेदन किया कि गरमीकी ऋतुमें इन्दौर कुछ ठंडा रहता है, अतः वे मुझे इन्दौर ले जाने की आज्ञा दें। गणेशजीने आज्ञा तो दी, किन्तु यह कह कर कि यदि दो महीनेमें इन्दौरमें लाभ नहीं हुआ तो वे पुनः चतुर्वेदीजीको कानपुर वापस भिजवा देंगे।

"मैं जब छः महीने बाद कानपुरसे खंडवा लौटा, तब सन्ध्याको आने वाला मेरा ज्वर जा चुका था। किन्तु लाख प्रयत्न करने पर भी मैं अनाज को हाथ नहीं लगाता था। तब शरीरमें रक्त आये तो कैसे ?

"कानपुरमें उन दिनों ज़ोरका प्लेग पड़ा हुआ था और नन्हें-से ब्रजभूषण उन दिनों प्रताप-प्रेसके दरवाज़ेपर जाकर प्लेगसे मरनेवालोंकी गिनती अन्दर आकर कभी मुझे और कभी माँको सुनाया करते थे, 'बाई, अब आठ हो गये।....बाई, अब तेरह हो गये...।'

"जब छः महीने तक मेरा वज़न न बढ़ा और वह इसलिए कि मैं भोजन नहीं करता था, तब यद्यपि मेरे कानपर कुछ नहीं आने दिया जाता था, किन्तु यह मैं देख रहा था कि सब लोग बहुत निराश हैं।

"जब मैं इन्दौरके लिए कानपुरसे रवाना हुआ, तब गणेशजी मेरे नाटक 'कृष्णार्जुनयुद्ध' की छपाईमें व्यस्त थे। कदाचित् वे दो चीज़ें कर लेना चाहते थे। एक तो 'कृष्णार्जुनयुद्ध' नाटक छप जाय, और दूसरे जो 'प्रभा' खंडवामें बन्द हो गई थी, कानपुरसे फिर से प्रकाशित होने लगे। जब मैं कानपुरसे चला, तब गणेशजीने मुझे स्टेशन पर आश्वस्त किया कि 'प्रताप' की शक्तियाँ सर्वथा और सदैव मेरे साथ रहेंगी।

"उसी समय ठा० लक्ष्मणसिंह चौहानने अपना एक सालका कालेज-

का पढ़ना छोड़कर इन्दौरमें मेरे साथ रहना तय किया। जब हम लोग खंडवा पहुँचे, तब मैं चल-फिर नहीं सकता था। मुझे लगता है कि यह १९१८ का एप्रिल था। इस हिसाबसे मैं कदाचित् १९१७ की जुलाईके बादके किसी महीनेमें कानपुर पहुँचा था।

"अब माँको तथा ब्रजबाबूको मैंने पिताजीके पास नयागाँव भेज दिया और मेरी बहन कस्तूराबाई अपनी दो नन्हीं-नन्हीं बच्चियोंको लेकर इन्दौर गईं। पिताजी उन्हें स्वयं पहुँचाने गये थे। वे कुछ महीनों मेरे पास थे भी। मैं इन्दौरमें स्टेशनके पास ही सरकारी धर्मशालाके एक कमरेमें ठहरा, जिसके कमरे उन दिनों डाक बँगलेकी तरह प्रशस्त थे, तथा बीमारके रहनेका कमरा अलग, भोजन बनानेका कमरा अलग तथा अन्य लोगोंके रहनेके कमरे अलग थे। मैंने दो भाग ले रखे थे। एक भागमें पिताजी, मेरी बहन, तथा एक कमरेमें मैं रहता था और मेरी देख-रेख डा० लक्ष्मणसिंह किया करते थे। उन दिनों हमलोग लगभग दस थे, जो इन्दौरमें रहा करते थे। उन्हीं दिनों पं० बनारसीदासजी चतुर्वेदी तथा श्री सम्पूर्णानन्दजी इन्दौरके डेली कालेजमें प्रोफेसर थे और सम्पूर्णानन्दजीके तो पहली बार मुझे वहीं दर्शन हुए। भाई बनारसीदासजीने तो बिस्तरे पर ही मुझे काम सौंप दिया, जिसमें डा० सरजूप्रसाद साथ थे कि इन्दौरमें महात्मा गाँधीके सभापतित्वमें होनेवाले हिन्दी साहित्य सम्मेलनके अधिवेशनमें आनेवाले लेखोंकी लेखमालाका मैं सम्पादन कर दूँ। खैर, मैं तो क्या करता, सब कुछ तो भाई बनारसीदासजी तथा डाक्टर साहबने किया था। किन्तु हसनकी गाड़ी, हुसैनके बैल और बन्देकी ललकारकी तरह मैं भी एक साझीदार हो गया और लेखमाला प्रकाशित हो गई। उधर 'कृष्णार्जुनयुद्ध' की भी प्रति इन्दौरमें ही सबसे पहले मेरे पास आई और गणेशजीके पत्रसे मालूम हुआ कि मेरी बेजोड़ पाण्डुलिपियों परसे उस ग्रन्थको छपने योग्य बनानेका सारा परिश्रम और सारा कलात्मक उद्योग डा० लक्ष्मणसिंह

चौहानने किया था। इसी बीच मेरे बीमारीसे उठते, 'प्रभा' का प्रथम अंक भी कानपुरसे नये सिरेसे प्रकाशित होकर भी मुझे मिल गया।

"मैं इन्दौरमें था, पर मुझपर पूरा नियन्त्रण तो कानपुरसे गणेशजी-का चल रहा था। इन्दौरमें मेरे स्वास्थ्यलाभके सम्बन्धमें एक विचित्र घटना घटी। अपनी वैष्णव भावनाके अनुसार तो मैं इसे भगवान्का अनुग्रह ही मानता हूँ। जब धारगाँवके ठाकुर बाघसिंहजी मुझे देखनेके लिए इन्दौरकी धर्मशालामें पधारे, तब उनके साथ एक ठाकुरसाहब और आये। बाघसिंहजीने मुझे बताया कि नर्मदाके इसपार या उसपार जाने वाले क्रान्तिवादी तरुणोंकी रक्षामें बाघसिंहजीको उन ठाकुरसाहबसे बहुत सहायता मिलती है। हमारे कठोर नियमोंके अनुसार मैं उस समय चुप रहा। आगन्तुक ठाकुर साहबने, जिनका नाम मैं भूल-सा गया हूँ, और जहाँ तक मैं याद करता हूँ, उनका नाम हुकुमसिंह था, उन्होंने मुझे एक नुसखा बताया कि नारियलकी गिरिका तेल रोज़ निकाला जाय और छटाँक भर दूधमें दस-दस बूँदसे नित्य प्रारम्भ किया जाय। जब दूध बढ़ने लगे तो उसे बढ़ने दिया जाय। उन्होंने दावा किया था कि उनके काकाको अनेक व्याधियाँ होते हुए भी इस तेलने उनको पुनर्जन्म प्रदान किया है और वे ७० वर्षकी अवस्थामें भी घोड़ेपर चढ़कर शिकार खेलने जाने लगे हैं। मैंने डाक्टर साहबसे सलाह की। डाक्टर सरजूप्रसादजीने तुरन्त कहा कि इसे एकदम शुरू कर दिया जाय। इसे लेते ही मेरे स्वास्थ्यमें दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति होने लगी और १५ दिनोंके पश्चात् मैं अन्न खाने लगा। इस अचानक सुधारकी ख़बर मिलते ही गणेशजी तथा कानपुरके अन्य मित्रोंने आकर मुझे देखा। मैं उन दिनों मूँगकी खिचड़ी खा रहा था। मैंने गणेशजीसे निवेदन किया कि अब मेरी पिस्तौल मेरे पास भिजवा दीजिए।

"मैं उन दिनों बड़ी मुश्किलसे एक-दो फर्लांग घूम पाता था। किन्तु गणेशजीने मानो वैज्ञानिक दृष्टिसे कदाचित् मेरे पास मेरी दोनों पिस्तौलोंको

लौटा देनेका उचित अवसर देखा और देखते-देखते एप्रिलके महीनेमें (१९१९) में तौला गया तो साढ़े चार महीनोंमें मेरा वज़न २८ पौण्ड बढ़ गया था। और मैं सभी कामकाजोंमें हाथ बँटाने लगा था। तो भी मुझे कमज़ोरी थी।

"कदाचित् १९१९ के एप्रिलकी ही बात है। खण्डवाकी परोपकारिणी संस्थाका वार्षिक उत्सव था। मैं इन्दौरसे आकर इसी भवनमें ठहरा। इस शिक्षण-संस्थाका मैं प्रधान मन्त्री था। मेरी बीमारीसे पहले इसके भवनकी नींव रखी जा चुकी थी। इन्हीं दिनों खण्डवामें प्रान्तीय राजनीतिक परिषद् हो रही थी। लोकमान्य तिलकके अनन्यहृदय-मित्र वयोवृद्ध श्री जी. एस. खापर्डे महाशय इसके सभापति थे।

"इन्हीं क्षणोंमें मध्यप्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलनका भी तीसरा अधिवेशन खण्डवामें हो रहा था। इसके सभापति रायबहादुर पं० विष्णुदत्तजी शुक्ल थे। मालवीयजीके साथ शुक्लजीने भी वायसरायकी इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौन्सिलकी सदस्यतासे रौलेट एक्टके विरोधमें त्यागपत्र दे दिया था। मध्यप्रदेशकी हिन्दीभाषी जनतामें शुक्लजीके इस कार्यके प्रति अद्भुत श्रद्धा और सात्त्विक अभिमान जाग्रत हुआ था। उन्हीं दिनों खण्डवा निवासियोंने यह बात सोची कि इस राजनीतिक परिषद्में शुक्लजीका इस तेजस्विताके लिए अभिनन्दन किया जाय।

"किन्तु चूँकि वाइसरायकी कौंसिलके सदस्य श्री खापर्डे महाशय भी थे और उन्होंने त्यागपत्र नहीं दिया था, इसलिए उन्होंने शुक्लजीके सम्मानको अपने लिए अपमानजनक समझा। गुस्सेमें उन्होंने यहाँतक कहा कि यदि विष्णुदत्तजी शुक्लका सम्मान किया जायगा तो मैं इस पण्डालमें आग लगाकर खण्डवा छोड़कर चला जाऊँगा।

"ज्योंही इस हलचलकी खबर शुक्लजीको लगी, वे दौड़कर आगे बढ़े और उन्होंने राजनीतिक परिषद्में मित्रोंको समझाया कि खापर्डेजीकी

आज्ञाके अनुसार ही सब कार्य हो, क्योंकि देश-सेवाके लिए उनके त्यागको हमारी पीढ़ी नहीं भूल सकती। इस तरह बात शान्त हो गई।

"इसी अवसरपर शुक्लजीको लेकर एक दूसरी घटना भी घटी। जब पं० विष्णुदत्तजी शुक्लका जुलूस खण्डवा शहरमें घुमाया गया, तब उस विक्टोरियाको स्वयं ठा० बख्तावरसिंहजी हाँक रहे थे। ठा० बख्तावर सिंहजी मेरी अनुमति लेकर आनरेरी मजिस्ट्रेट बन चुके थे। यदि मेरा बस चलता और मुझे मालूम होता कि ठा० बख्तावरसिंहजी उस विक्टोरियाको हाँकनेवाले हैं, तो सारी परिस्थिति देखकर मैं उन्हें अवश्य रोका होता, क्योंकि ठा० बख्तावरसिंहजी उत्तरप्रदेशसे गणेशजीके भेजे हुए तथा बंगालसे आनेवाले क्रान्तिवादियोंकी रक्षाका भार लिये हुए थे। उन्हींकी ज़मींदारियोंके गाँवोंमें तथा आसपासके गाँवोंमें नर्मदाके तटपर क्रान्तिवादी ठहराये जाते थे। शुक्लजीके रौलट एक्टके विरोधमें इस्तीफ़ा देनेके कारण जहाँ समस्त हिन्दी प्रान्तके मध्यप्रदेशमें शुक्लजी अनभिषिक्त नेता हो गये, तहाँ गाड़ी हाँकनेके कारण ठा० बख्तावरसिंहजीकी आनरेरी मजिस्ट्रेटी छीन ली गयी और उनके परिवारको मिलनेवाली दो सौ रुपयेकी पेन्शन रोक दी गयी। इस पेन्शनके रुकनेका सबसे बड़ा खतरा चूँकि उस समय देशभक्तिको भोगना पड़ा, इसलिए उस पेन्शनका रुकना न केवल बख्तावरसिंहजीके परिवारके लिए बुरी बात हुई, किन्तु वह सारे परिवारके लिए बुरी बात हुई। तत्काल ही नर्मदाकी सीमापर बख्तावरसिंहके गाँवोंमें रहनेवाले बहुतसे तरुणोंको अन्यत्र भिजवाना पड़ा और कुछको अण्डरग्राउण्ड खण्डवा, बुरहानपुर और उसके आसपास रखना पड़ा।"

उपसंहार

१६१६ में माखनलालजीके पूर्वार्द्ध जीवनकी अन्तिम पंक्तियाँ लिखने आया। शैशव और कैशोर्यके बाद जो वयःसन्धि एक पुरुषको पृष्ठानुगामी पेचीदगियोंको तौलनेके निमित्त अनगढ़े और अनबूझे पत्थरके बटखरे सौंप जाती है, उसकी तुलाईमें या तो उसका व्यक्तित्व तुल जाता है, या उसका व्यक्ति ही किसीकी नीलामीकी बोलीमें बिक जाता है। पुरुषकी वयःसन्धि उसके होशकी ऐसी ही तेजोभंगकारी होती है। किन्तु माखन-लालजी एक सस्ते मनुज नहीं थे। वे भाग्यविधायक परिस्थितियोंकी लगाम थामे १६१६में ही एक ऐसे कर्मक्षेत्रमें कूद पड़े, जिसने मध्यप्रदेशकी सीमाओंका चतुर्मुखी निर्माण किया।

निरन्तर चार वर्षोंतक, अध्यापकी छोड़नेके बाद, १६१३से लेकर १९१६ तक, विभिन्न कार्यक्रमोंमें दीवानेसे, शिरोधार्य की हुई समस्याओंको चौरंग उड़ाते हुए, हर घड़ी हर प्रहर वे यात्रा किये जा रहे थे। तीसरी श्रेणीकी यात्राएँ भारतीय रेलोंमें शरीरकी हड्डियोंके जोड़ आसानीसे खोल दिया करती हैं। इन यात्राओंने और कठिन परिस्थितियोंमें साँस लेनेने आख़िर उन्हें पूरे दो वर्षों तक बीमार किये रखा।

लेकिन यह बीमारी जैसे मानसिक विश्राम और सन्तुलित चिन्तनकी

दिशामें तेजस्कर सिद्ध हुई। और माखनलालजी दीर्घ बीमारीसे उस कर्म-पथ के पदारोपणको ही हाथमें थाम बैठे, जिसका एक काल्पनिक स्वप्न उन्होंने 'प्रभा' के द्वितीय वर्षके प्रथम अंकके सम्पादकीयमें लिखते समय देखा था।

१६१६ में काशी विश्वविद्यालयमें इतिहास-प्रसिद्ध आयोजन हो रहा था और उसमें देशके प्रसिद्ध महाराजागण भी उपस्थित थे, पर उसमें सबसे बड़ा व्यक्ति तो गाँधीजीके रूपमें उपस्थित था। गाँधीजीका भाषण सुनकर सारे महाराजागण अपने-अपने स्थानसे उठकर चले गये थे। इसी स्थलपर गाँधीजीने देशके क्रान्तिकारियोंको सम्बोधित करते हुए पहलेसे ही निमन्त्रित किया था कि आजतक वे मेरी बात सुननेके लिए अपने साथ पिस्तौल लाना नहीं भूले हैं। लेकिन अब वे मेरे पास आते समय अपनी पिस्तौलें लानेका कष्ट न करें। विना पिस्तौल ही आयें और देखें कि मैं वही काम करता हूँ, जो उनका अभीप्सित काम है। उनके इस निमन्त्रण-पर सभी गम्भीर चिन्तक क्रान्तिकारी अपनी पिस्तौलें घरपर ही छोड़कर गये थे। इनमेंसे एक गये माखनलालजी भी, सीधे-सादे वेशमें, कोसेका फेंटा बाँधे हुए। काशी पहुँचकर माखनलालजीने गाँधीजीकी बातें बड़े ध्यानसे सुनीं और निश्चय किया कि कार्य रूपमें अब वही कार्यक्रम स्वीकार करना है, जिसे गाँधीजी अपनायेंगे। किन्तु पूरी तरहसे गाँधीजीके भाषणने माखनलालजीको आश्वस्त नहीं किया था। फिर भी १९१९में प्रकट रूप-से माखनलालजी अपने सशस्त्र क्रान्तिके विचारोंकी सक्रियतासे विश्राम लेकर गाँधीजीकी राजनीतिमें संगी-यात्री हो गये।

इधर संगी-यात्री होनेका और गाँधीजीकी राजनीतिको मन-वचन-धर्म-के रूपमें निभानेका सुअवसर भी तत्काल ही हाथ आ गया। यह कोरा सुअवसर ही नहीं था। सम्पूर्ण मध्यप्रदेशमें गाँधीजीके कार्यक्रमोंका उद्घोष प्रसारित करनेका बीहड़ दायित्व सरमाथे लेना था।

तृतीय मध्यप्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन पं० विष्णुदत्तजी शुक्लके सभापतित्वमें सम्पन्न हो चुका था। उसमें अन्य प्रस्तावोंके साथ एक प्रस्ताव यह भी पास किया गया था कि मध्यप्रदेशके हिन्दी प्रान्तोंसे एक हिन्दी पत्र निकलना चाहिए। यह प्रस्ताव १९१९ के एप्रिलमें ही पास हुआ था। जब जुलाईतक कोई धनिक शक्ति इस प्रस्तावके अनुरूप आगे नहीं आयी, तब पं० विष्णुदत्तजी शुक्ल, पं० माधवरावजी सप्रे और उनके विश्वासपात्र संगी-साथी होनेके नाते माखनलालजीने यह काम अपने हाथमें लिया।

"तैयारीमें कितना समय लगा, यह तो इसी बातसे मालूम हो जायगा कि १९१९ की जुलाई या अगस्तमें मैंने 'कर्मवीर' का डिक्लेरेशन ले लिया और सब साधनोंको एकत्रित करते हुए जबलपुरसे १९२० की ११ जनवरीको 'कर्मवीर' हिन्दी साप्ताहिक निकल भी गया।"

'कर्मवीर' शब्दका भी अपना इतिहास है और उसके जन्मकी कहानी उन क्षणोंकी तीव्र प्रत्युत्पन्नमतिकी साक्षी है, जब गाँधीवादी राजनीतिज्ञके रूपमें माखनलालजी मनसा-वाचा-कर्मणा एक नया ही ध्वज हाथमें थाम कर आगे बढ़ने लगे थे।

इन दिनों मराठीमें 'केसरी' निकलता था। हिन्दीमें 'सरस्वती' था और कानपुरसे 'प्रताप' चलता था। इन नामोंमें जो सदाशयता थी, वह आधुनिक जीवनके लक्ष्योंकी द्योतक नहीं थी। हम जैसे हुँकार धारण कर भी पराङ्मुखी त्राटक योग-साधना-सी कर रहे थे। हिन्दी पत्रकारिताके क्षेत्रमें पहली बार इस नामकरणकी समस्यापर और उसके प्रति बरती जानेवाली उदासीनतापर माखनलालजीने गम्भीर चिन्तन किया और आखिर इस अन्तिम निर्णय पर पहुँचे कि जब गाँधीवादी विचारधाराका पत्र ही निकालना है तो उस जोखिमके साथ यह आपदा भी खुलेआम और ले ली जाय कि नाम भी किसी ऐसे लोक नायक जीवित व्यक्तिके पर्यायके अनुरूप ही रखा जाय जो राष्ट्रको अधिकतम नव-प्राण देनेकी तपस्या कर रहा हो।

प्रारम्भमें झिझक बहुत रही, क्योंकि इस शब्दमें अतिसाहसिकताकी ध्वनि निकलती थी। पर आखिर इसीको रखे जानेका निश्चय रहा, क्योंकि इन दिनों मोहनदास कर्मचन्द गाँधी जनजीवनमें कर्मवीर मोहनदास कर्मचन्द गाँधी कहलाते थे। इसी गाँधीजीकी विशेषण पदीय अभिव्यक्तिको मध्य-प्रदेशीय जनजीवनमें नवीन क्रान्ति उत्पन्न करनेके पवित्र उद्देश्यसे नये साप्ताहिकका नाम 'कर्मवीर' रख देना माखनलालजीके ही व्यक्तिगत साहस का काम था।

यह रौलेट एक्टके आतंकवादका युग था। लोग राजनीतिक समाचारपत्र निकालना जेलमें सांघातिक यंत्रणा उठानेसे कम नहीं मानते थे। जब [illegible] इस पत्रके निकालनेका विचार लिये, स्वास्थ्यलाभके क्षणोंमें इस संबन्धमें निकटस्थ मित्रोंसे परामर्श करते रहते थे, तभी उनके एक मित्रने यह सलाह दी कि डिक्लेरेशनकी अर्जीमें अगर यह लिख दिया जाय कि यह पत्र केवल रोजी-रोटी कमानेके लिए ही निकाला जा रहा है, तो बहुत ही सुविधासे डिक्लेरेशन मिल जायगा।

माखनलालजीने यह सुना। सुनकर उन्हें मार्मिक यन्त्रणा पहुँची। केवल रोटी कमानेके लिए क्या अब यह शरीर शेष रहा है, या यह तरुणाई पकी है? आपका कवि तिलमिला उठा। तत्काल ही आपने एक कविता लिखी :

फिसल जाऊँगा, ललचा रहे,
तुम्हारी आज्ञा है मत हटो।
लिये वे दण्ड-भेद कस रहे,
और तुम कहते हो मर मिटो।
आपदाओंके जीवन-प्राण
घूरते हैं मुझे भगवान।
जहाँ खुल पड़ती ज़रा ज़बान
बनाते काँटों वाला स्थान।

पापसे मिलती हो तो देव
नहीं देशभक्तिकी चाह,
कहो, व्याकुल हूँ, कैसे करूँ ?
बताओ, परम मुक्तिकी राह ।

माखनलालजीके उत्तरार्द्ध जीवनका यह नया क्षितिज इस कविताके रूपमें ज्योत्स्नामय हुआ था। इस कविताके लेखनसे और 'कर्मवीर'के प्रकाशन-क्षणोंसे उनके जीवनकी वह तूफ़ानी कहानी प्रारम्भ होती है, जो हिन्दीके सभी श्रेष्ठ उपन्यासोंसे कहीं अधिक बुलन्द है। वह कहानी लंबी है; रोमांचक है, पवित्र है, इतिहासको गौरवान्वित करनेवाली है। हम प्रतीक्षा करें, वह भी शीघ्र ही हमारे हाथोंमें सुलभ हो सके। वन्दे-मातरम् !!

परिशिष्ट

धर्म-तत्त्व

['प्रभा'में धर्म-सम्बन्धी अनेक टिप्पणियोंको श्रीमाखनलालजी चतुर्वेदीने अपनी २४ वर्षकी अवस्थामें लिखा था। इन्हीं टिप्पणियोंकी आधार-शिलाओं पर १९१३ से उनका काव्य हिन्दीमें सर्वप्रथम छायावादी स्वरूप ग्रहण ही नहीं करने लगा था, व्यापक स्तर पर वह हिन्दीमें छायावादका अग्रतम प्रकाशमान लक्ष्य-स्तम्भ भी था, जिसने अन्य शीर्षस्थ कवियोंको छायावादी बननेके लिए खुला निमन्त्रण देना प्रारम्भ कर दिया था। केवल ४ टिप्पणियाँ हम यहाँ उद्धृत कर रहे हैं।]

विविध विचार

धर्म-तत्त्व : १*

एक समय वह था जब हमें नियमितता, स्वास्थ्य सुधार, गुणज्ञता, रहन-सहन तथा आचरणशीलता आदि सब गुण सद्धर्म-सेवनसे प्राप्त थे, किन्तु आज वैसा नहीं है।

अब हम स्वार्थी होकर न्यायी बननेका, आलसी होकर सुधारक बनने-का, विश्वासहीन होकर सत्यवादी बननेका तथा नीचे, विकारवर्द्धक, पुराने तथा मलिन विचारोंमें अधिक रहकर पूज्य बननेका ढकोसला गढ़कर धर्म-का असली तत्त्व भूल जाते हैं।

यदि हमारा सबसे पहिला आज कोई ईश्वर-प्राप्ति सूचक धर्म है तो वह सदाचरण है, जिसकी नींव ब्रह्मचर्य है। किन्तु उसकी दशा हमारे यहाँ कैसी है, उसे कौन नहीं जानता? सदाचरणशील ही आस्तिक तथा ईश्वरभक्त है। जगदात्माके दिखाऊ भक्त आज भारतवर्षके प्रत्येक गृह-की शोभा बढ़ा रहे हैं। वे धर्मके शत्रु हैं।

हाँ, क्या हमारे कर्तव्यनिष्ठ, दृढ़प्रतिज्ञ, श्रद्धालु, धीर एवं वीर पूज्य पूर्वजोंको यह स्वप्नमें भी स्मरण था कि हम किसी समय आचार्य, उपा-ध्याय, माननीय, अग्रगण्य आदि कई उपाधियोंको धारण करके, अनेक शास्त्रोंके ज्ञाता तथा निरीक्षक होकर, तथा जगद्गुरु बननेके अभिलाषी होकर भी 'ईश्वर'को केवल अक्षर-विशेषोंसे बना हुआ नीरस शब्दमात्र समझेंगे?

ईश्वरका नाम आजकलके भोजनभट्ट मूर्खानन्दको विज्ञापनका काम देता है। हमारा अधिकांश भोला समाज इन सुबुद्धिके शत्रुओं तथा धर्म-घातकोंको महात्मा समझता है। इन्हीं जगद्गुरु बननेके लोभी नर-दानवों

---

* भाग १, चैत्र शुक्ल १, १९७०, ७ एप्रिल, १९१३, संख्या १।

द्वारा चोरी आदि बुरे कर्मोंका प्रचार हो रहा है। क्या हमारा समाज कृपा-पूर्वक इस ओर लक्ष्य देवेगा ?

—'नवनीत'

धर्म-तत्त्वः २*

निःशक्त, साधारण बातोंमें दृढ़प्रतिज्ञ नहीं होंगे, तो कठिन 'धर्म' के मार्गमें क्यों कर दृढ़प्रतिज्ञ हो सकते हैं ? पूज्यताका सिक्का नहीं, वह मूर्खताका परदा है, जो हम छोटे मस्तिष्कपर डालकर अपनेको बड़े प्रमाणित करनेका नीच प्रयत्न करते हैं, भारतीय ही क्यों, संसार भरके धर्मके तत्त्वोंमें वीरता, साहस और दया, जागृति, आन्दोलन और शान्तिकी विश्व-विजय-कारिणी शक्ति भरी है। संसारमें जो कुछ करता है धर्म करता है। जब वह पूजनीय वस्तु हमारा 'धर्म' कही जा सकती थी, जो इस परिवर्तन-शील संसारसे ईश्वरके सिंहासनके निकट पहुँचनेमें समर्थ थी, तबकी दशा सोचिए। आज हमने अपना क्या धर्म मान रक्खा है ? आज भारत-वासियोंको वेद, राम, महावीर, मुहम्मद, ईसा, बुद्ध आदिके माननेवाले कहना, मानो उन महापुरुषोंकी आत्माओंको कलंकी बतानेकी चेष्टा करना है।

स्वामी, तुम्हारी आज्ञाओंको पालनेके समय नाश होने तक भी, हमारी ओर कृपा-सूर्यकी एक भी किरण भेजनेकी दया न करो। हमें, सहायक नहीं चाहिए, हमें खरीदी हुई धार्मिकता और माँगी हुई नपुंसक पवित्रता नहीं चाहिए। हम चाहते हैं, कि दिन भर आपके सामने बैठे न रोते रहें, प्रत्युत कर्म करते हुए आपकी आज्ञाका पालन करते हुए आपका स्मरण बनाये रहें। तेजरूप, आजानबाहु, हमें सहायता न दीजिए, हमें सहारा

---

* भाग १ मार्गशीर्ष शुक्ल १, १९७०, २९ नवम्बर, १९१३, संख्या ९।

न दीजिए, हमपर कृपा भी न कीजिए, हमें 'धर्म' के पालनकी केवल शक्ति दीजिए।

—श्रीयुत्
'कुछ नहीं'

धर्म-तत्त्व: ३*

मैं तुझे चाहता हूँ। तुझपर प्यार करता हूँ। परन्तु, मेरे प्यारमें, ध्यान रख, हलाहल भरा है। यदि तू भूलकर मेरी ओर आ गया, तो बचनेका प्रयत्न करने पर भी, काला हुए बिना नहीं रहेगा। मैं—ज्ञानरूपी जो आजकलका ज्ञान है और यथार्थमें अज्ञान है, आगसे जला हुआ हूँ, अभी भी जल रहा हूँ, और न जाने कब तक जलूँगा। ये स्तोत्र और संहिताएँ, ये नेचर और प्रार्थनाएँ, ये पूजन और अर्चनाएँ, मुझे भार रूप हो गई हैं। यह शास्त्रार्थ और विवाद लीला, यह आस्तिक और नास्तिकपन, यह तर्कशास्त्र, इतिहास और ब्रह्मज्ञान, मैं सच कहता हूँ, मुझे नरककी ओर ले जा रहा है। भाई, मेरी ओर मत आ। मेरे मनमें ऊँचे बनने और प्रशंसित होनेकी हविस है, मेरे वचनोंमें साधुताके उपदेश हैं और मेरे कार्य्योंमें कायरता और कपट भरा हुआ है। तू इसे नहीं जानता, मैं जानता हूँ। इसलिए कहता हूँ कि तू मेरे पास मत आ।

तू मेरी भक्ति क्यों करता है? मेरी अभ्यर्थना क्यों करता है? मेरे सुखोंकी चिन्ता क्यों करता है। मेरे सन्मुख अपनी नम्रता क्यों प्रकट करता है? सब कुछ देकर भी मेरे पापी शरीरकी क्यों रक्षा करता है? सोच तो, यह तू बुरा कर रहा है। साँपको दूध पिला रहा है, सिंहको अपना मांस खिला रहा है। तुझे नहीं ज्ञात कि तू क्या कर रहा है। पर जब तू, मेरी भक्ति करते-करते 'मैं' बन जायगा, पढ़ा-लिखा पशु हो जायगा, तब पछ-तायगा, और अपने इस अलौकिक आनन्दके लिए ललचायगा। पर, वह

* भाग २, आषाढ़ संवत् १९७२, संख्या ४।

आनन्द कहाँ पायगा? नहीं नहीं। जब तक तू, तू न बन जायगा, आनन्द न पायेगा। इसीलिए, मैं हाथ जोड़कर कहता हूँ कि तू 'तू' बना रह। "मैं" बननेकी लालसा मत कर। मुझे पूजनेकी अपेक्षा, पत्थर मारकर निकाल दे, और मेरी अर्चना करनेकी अपेक्षा मेरे मार्गमें, तीखे-तीखे काँटे बिछा दे। ऐ अमृत, तू ज़हर मत हो, ऐ बर्फ, तू आग मत हो, हे हृदय तू पत्थर मत हो। तू 'तू' ही रह, 'मैं' मत बन, बस ठहर, इधर न आ।

देख, मैं 'तू' बना चाहता हूँ। जबतक मैं ऐसा न कर लूँगा, इसी आगमें जलता रहूँगा। जिस समय, मेरे काँधेपर हल होगा, सिरपर पगड़ी होगी, और पीठपर खद्देका पिछौड़ा होगा, उस दिन, सच मान, मैं इन्द्रकी गद्दीकी ओर उतनी ही घृणासे देखूँगा जितनी घृणासे मैं आज अपने जीवनको देख रहा हूँ। पर उतनी ही देरमें तू "मैं" मत बन। मेरे आदर्श, मेरे सामने रह। मैं तुझपर अपने आँसुओंके फूल चढ़ाऊँगा, और तुझे अपने इस पत्थरके हृदयमें बैठाऊँगा। और, यदि बीच हीमें, "तू" मैं न बन गया तो, मैं "तू" होकर, हे जगत्की आत्मा! तू हो जाऊँगा। तेरे चरणोंमें लिपट जाऊँगा। मेरी बात मान और ठहर। तू मेरा ईश्वर है।

'कुछ नहीं'

धर्म-तत्त्व ४*

वह खड़ा था, मैं उसकी ओर देख रहा था। वह चलने लगा, मैं भी उसके साथ-साथ चला। वह जा रहा है, और उसकी चिन्ताशील मुद्रासे यह भी दीखता था कि वह किसी स्थानको जानेका निश्चय कर चुका है। मेरा तब भी कोई निश्चय नहीं था, और न अब भी है।

---

* भाग २, आश्विन संवत् १९७२, संख्या ७।

हम चलते रहे। वह मेरी ओर एक बार भी न देखता था। मैं उसकी ओर छुपी हुई आँखोंसे देख लेता था। वह प्रत्येक दिशाकी ओर बड़ी सावधानीसे देखता था। जब बाईं ओर देखता था, तब मार्ग, झाड़, पत्थर, खेत और सुदूरतक विस्तीर्ण आकाशके साथ उसे मैं भी दीख पड़ता जाता था। पर मैं उसके सिवाय किसी भी दिशाको न देख रहा था। वह वनमें मानो अपनी रक्खी हुई वस्तुओंको सँभालता जाता था। नीचे ऊपर हर तरफ़ उसकी प्यारी दृष्टि फिरती थी। मैं ठोकर लगनेपर नीचे देखता था और काँटा लगनेपर पाँव सँभालता था। मुझे ज्ञात नहीं, मैं क्यों उसके साथ हो गया था और क्यों उसे देखना मुझे अधिक प्यारा लगता था।

वह झाड़ोंसे लिपट जाता था और 'प्यारे पिता' कहकर ज़ोरसे रो देता था। मैं उसे देखकर कभी चिढ़ जाता था और कभी हँस देता था। वह हरी-हरी घासपर लेट जाता था और 'माँ-माँ' कहकर पागल-सा हो जाता था। मैं उससे डरने लगता था और उसके मस्तिष्कपर विश्वास नहीं करता था। उसे पागल समझता था। वह छोटे-छोटे पौधोंको चूमता था और उनके आस-पास अपना कपड़ा लपेट देता था, और कहता था 'भाई, मैंने इसे बहुत दिन घसीटा, अब तुम पहिनो।' मैं सोचता था, यह चैतन्य नहीं, जड़ है, जो जड़को चैतन्य मान रहा है। वह ज़ोर-ज़ोर-से गाता था, गाता क्या था, किलकारियाँ मारकर बकता था। मैं स्तब्ध था। वह ज़ोरसे रो उठता था। मैं चौंक पड़ता था। वह खिलखिलाकर हँस पड़ता था। मैं भी उस समय मुसकरा उठता था।

वह फिर चल पड़ा। मैं भी चला। एक गम्भीर गर्जना सुन पड़ी। उसकी त्यौरी चढ़ी, वह घूरकर इधर-उधर देखने लगा। मैं बहुत डर गया। कुछ गाय-बैलोंका समूह भागता था। वह उसी ओर चला। वह एक नालेके इस किनारे था। एक गायका बछड़ा नालेके उस किनारेसे भागता निकला, पैर फिसल गया, बछड़ा ज़ोरसे गिरा। वह तुरन्त गहरे

पानीमें उतर गया। बछड़ेको सँभाला,वह पाँव फटकटाने लगा, उसने उसका पाँव निकाला। बाहर खड़ा किया। वह खड़ा हो सकता था। उसने उसे कन्धेपर रखा। बछड़ेकी माँ रुक गई थी। वह मारने झपटी। उसने उसे पुचकारा। थोड़ी ही देरमें वह भयंकर आवाज़ निकट सुनाई दी, मैं एक वृक्षपर चढ़ गया। वह बछड़े सहित घूमता रहा। बछड़ेकी माँ साथ थी। व्याघ्र निकट आ गया। मेरा हृदय थर-थर काँपकर वृक्षपर रोने लगा। व्याघ्र गायपर झपटा, मैं सुध भूलने लगा था। पर यह क्या? वह व्याघ्रके पास जाने लगा। मेरी ज़बान बन्द थी। पर मैं सोचता था, वह मृत्युके मुँहमें जाता है। व्याघ्रकी ओर उसने तीखी दृष्टिसे देखना प्रारम्भ किया। वह निकट आकर खड़ा हो गया। यह वैसा ही देखता रहा। व्याघ्र खड़ा रहा। उसने व्याघ्रकी ओर हाथ फैलाया। वह आकर बछड़ेको चाटने लगा। गाय इधर खड़ी थी। सुहावना तपोवन सम्मुख था। इसके बाद क्या हुआ, मुझे ज्ञात नहीं।

—श्री 'कुछ नहीं'

श्री माखनलाल चतुर्वेदीके कैशोरकालीन सामाजिक विचार*

समाज-समीक्षा : १ †

समाजके विचारोंको पूर्णतासे पालनेके हेतु, समाजके श्रेष्ठांश स्त्री जातिके सुधारका प्रयत्न शीघ्र ही होना चाहिए। कर्मवीरों एवं कर्मवीराओं-के हेतु यह कार्य कठिन है। अब शीघ्र ही कार्यमें लगकर दिखाना चाहिए कि हम जीवित जातियोंमें गिने जाने योग्य हैं।

---

*'प्रभा' के स्थायी स्तम्भ 'समाज-समीक्षा' और 'समाज-सुधार' के अन्तर्गत निम्न टिप्पणियाँ लिखी गयी थीं।

† भाग १—संख्या ३।

स्त्री जाति, स्वतन्त्र विचार क्यों नहीं कर सकती ? पुरुष जातिकी नीचता एवं अन्यायके कारण। यहाँ पुरुष जाति अपने स्वार्थकी सीमाका उल्लंघन कर चुकी है। अब हमारे भाइयोंको ज़रा चेतना चाहिए तथा अपनी माताओं, बहिनों एवं गृह-लक्ष्मियोंकी स्वतन्त्र सम्मति देने योग्य विद्या देनेका एवं अपनी स्वार्थभरी इच्छाओं तथा आवश्यकताओंको कम करनेका प्रयत्न करना चाहिए।

यह देखते हृदय व्याकुल हो जाता है कि अभी हम कुरीति-समर्थन एवं कुरीति-वृद्धि-सहायता नामक भयानक दोषोंसे छुटकारा नहीं पा सके। उस ओर न हमारा पूर्ण प्रयत्न ही है, न इन दोषोंके द्वारा नाश हुए हमारे समाजकी दशापर हमें दया है। हमारे संकीर्ण हृदयोंकी दशाका चित्र खींचनेके हेतु भारती शब्द दिया नहीं चाहती।

स्वर्गवासी महात्मा स्टेडको कठोर कारावासका दण्ड भोगना पड़ा था। नीच, दुराग्रही, विलासी एवं आलसियोंकी नीचतासे व्याकुल होकर उन्होंने बालिकाओंकी वेश्यावृत्तिपर विकट आन्दोलन किया था। बड़े-बड़े धनी, मानियों तथा इज्ज़तदारोंको स्टेडके आन्दोलनके कारण मानहानिका दण्ड भोगना पड़ा था। उसने बड़े-बड़े घरोंकी दृढ़तापूर्वक जाँचकर उनके हाल ज्यों-के-त्यों प्रकाशित कर दिये थे। आंग्ल समाजमें वह समय एक महत्त्वका समय माना जाता है। इसी दृढ़ता एवं सत्यप्रियतासे उसे जेल जाना पड़ा था।

क्या हमारे समाजमें भी कोई ऐसे सपूत हैं, जो कुरीतियोंके रोकनेमें, प्राण न्योछावर करनेका बीड़ा उठाकर, बाल-विवाह प्रथाके रोकनेमें, जीवन समर्पण करते हुए, भारतको शक्तिहीन, गुणहीन तथा गौरवहीन होनेसे बचावें ?

प्यारे भारतीय बन्धुओ, तुम्हारे प्रेम, सहायता, दया, सहानुभूति आदोलन एवं कर्मवीरताकी वर्तमान समाज आवश्यकता दिखाकर मानों मन ही

मन व्याकुल हो रहा है। उस पर दया करो। समाजके प्रत्येक अंगमें रोग लग गया है। समाजको जीवित रखनेके अनुभवी प्रेमियो, उत्तम औषधोपचारका शीघ्र ही प्रबन्ध कर समाजको मरनेसे बचाओ।

हमारे कुछ भाई अनुकूल समयको सोच कर कार्य कर रहे हैं, हमें उनका प्रेमपूर्वक साथ देना चाहिए। समाजके पुराने सम्बन्धोंको तोड़कर नये बनाना चाहिए। कूप-मंडूक बननेसे क्या होगा? जातीय जीवनमें ठोकरें खाकर सर्वनाश। यह बीसवीं शताब्दी है, आओ, इसकी आवश्यकताकी पूर्तिपर एक बार विचार करें। पुराने झगड़े छोड़ो। उन्हें क्यों लिये बैठे हो। घृणाके बीजोंको जला दो। कार्य सिद्धिके बाधक पहाड़ीको नेपोलियनके समान चूर-चूर कर डालो। उठो, कार्य करनेका समय अपनी दुर्दशा देख कर हमें सर्वनाशका श्राप देने हेतु उद्यत हो रहा है।

सुधार विचार

भारतको 'सुधारवादियों'की आवश्यकता है, जिन लोगोंमें कुछ विवेक बुद्धि है, वे इस बातको स्वीकार करनेमें संकोच नहीं करेंगे। संसारके इतिहासपर विचार करने वाले इस बातको निःसंकोच स्वीकार करते हैं। हमारे यहाँकी कुछ संस्थाएँ, जो अपनेको सुधार-साकारिणी दिखानेका प्रयत्न करती रहती हैं, जो कुछ कर रही हैं, वह कुछ नहींके बराबर ही कहना चाहिए। क्योंकि व्यक्ति-संगठन कार्य, बृहद् रूपमें ही शोभा देता है। सूक्ष्मरूपमें नहीं।

सुधारका अर्थ प्राचीनताको एक दम त्याग देना ही नहीं है। सुधारका अर्थ है बिगड़ी हुई प्रथाओंको ठीक करना, जो मार्गपर आ सकती हों, जो कार्यके योग्य हों, उन्हें संसारमें चिर-जीवित रखनेके उपाय करना, तथा जो व्यर्थ हैं, भ्रमसे एवं दुराग्रहसे चलाई गई हैं या चलाई जा

रही हैं, उनका निर्भयतासे प्रतिकार करना तथा उनके नाशका निरन्तर प्रयत्न करना।

जिस प्रकार रोग ग्रस्तकी बात और हठपर ध्यान न दे, रोग नाशनार्थ औषधि देना ही अभीष्ट है उसी प्रकार समाजके कुछ पागल अंशके व्यर्थ पुकारनेपर ध्यान न दे, हमें अपना कार्य, धीरता एवं वीरतासे करते ही जाना श्रेयस्कर है।

प्राचीन समय और था, यह समय और है। उस समयकी आवश्यकता हमारे पूर्वजोंने पूरी की, इस समयकी आवश्यकता हमें पूर्ण करनी चाहिए। इस प्रकार साहसी बनना चाहिए। यह कितनी बुरी बात है कि पिता जब तक जीवित रहे तब तक भी कुटुम्ब पोषण करे और जब मर जाय तब पुत्रोंके लिए ऐसी सम्पत्ति छोड़ जाय, जिससे उन्हें कुछ न करना पड़े, वे केवल अपने पिताके रक्खे हुए कोषमेंसे खर्च करते रहें। हतवीर्य पुरुष ऐसे पक्षका समर्थन भले ही करें, कर्मवीर तो कभी न करेंगे। क्या हम कुछ नहीं कर सकते? नहीं, हमारी कठिनाइयोंपर हमें ही विजय प्राप्त करनेमें प्रयत्न करना चाहिए।

सुधारकर्ताओंको यह बात प्रतिक्षण ध्यानमें रखना चाहिए कि हम कोई भी कार्य प्रशंसाके हेतु नहीं, केवल समाजोद्धारके हेतु करते हैं, इसमें हमें जितने कष्ट, जितनी यातनाएँ, जितना अपमान, जितना दण्ड एवं जितनी कठिनाइयाँ भोगनी पड़ें, उन्हें हम धीरतापूर्वक सहेंगे। तभी वे विजयी हो सकेंगे, अन्यथा नहीं।

समाज-समीक्षा : २*

महाराजा बड़ौदाकी योग्य कन्या, गुणशीला 'इन्दिरा'का पाणिग्रहण, एक होटलमें, कूचबिहार नरेश कुमार, वर्तमान कूच-बिहार नरेशके

---

* भाग १, संख्या ५।

तक नहीं बतलाया जाता : इन पवित्रता और श्रेष्ठताकी डींग हाँकनेवालोंसे पूछा जाय, कि इन दानवीय कर्म और झूठी आराधना वालोंकी जाति यदि रसातलको न जाय तो कौन-सी जाति जाय ?

और भी, उस बालकको काशी पढ़ने भेजनेका पाखण्ड किया जाता है। पुत्र ज्यों-के-त्यों मूर्खराज बने रहते हैं। कई महाशय समयकी गतिको मस्तक झुकाते हुए, अपनेको समाज हितचिन्तक दिखानेकी चेष्टा करते हैं, परन्तु अवसर पड़नेपर उनके हृदयका पता लग जाता है। वे स्वतः ही उन दुर्गुणोंके प्रवर्द्धक देखे जाते हैं। ईश्वर उन्हें सुबुद्धि दे।

सुधार विचार

उन वीरोंके रुधिरमें विद्युत्की महान् शक्ति विद्यमान है, जो इस समय नवयुवक दशामें हैं। उनकी ओर हम बड़ी आशा-भरी आँखोंसे देख रहे हैं। हमारे यहाँ नवयुवक पद बड़ी कठिनाईसे ३० वर्ष तककी अवस्था-वाले व्यक्तिको मिल सकता है, परन्तु अपनेको उच्चताके शिखरपर माननेवाले देशोंमें प्रायः ५० वर्ष तककी अवस्थाके व्यक्ति भी नवयुवक पदके अधि-कारी बने रहते हैं। नवयुवक क्या नहीं कर सकते ? देशकी अन्तर्नलिकाएँ नवयुवकके गुण गानेमें अपनी शक्ति खर्च किया करती हैं। समाजके सब अङ्ग अपनेमें नवयुवकोंको देखकर प्रस्फुरण हुआ करते हैं। सम्पूर्ण विचार शक्ति उन्हें अपने सर्वस्वका उच्च अधिकारी बनानेकी चिन्ता किया करती है, परन्तु शोक ! जब कि यह देखा जाता है कि अमुक नवयुवकके हृदयमें सुधार विचारोंका अभाव है। वह 'सुधार' के सिद्धान्तोंको न मानने-वाला है, सुधार सुललित वाटिकाका पोषक विज्ञ माली न होकर मूर्ख माली है। तब सबके सब उस पुरुषको, नवयुवक होते हुए भी, नपुंसक मानने लगते हैं।

पाखण्डी पण्डितोंकी हमें परवाह नहीं और न भट्टाचार्यका हमें भय है। निस्सत्त्व क्षत्रियोंकी, जो आज भी बन्धु विरोधी होकर समाजका सर्व-

नाश कर रहे हों, हमें आवश्यकता नहीं है। दुराचारी तथा पाखण्डी, स्वार्थी एवं मूर्ख महाजनोंसे भी हमारा कार्य नहीं चल सकता। सेवा धर्मके तत्त्वोंकी मूल चर्मसेवी शूद्रोंके भी हम न रहनेके दिन देखनेकी ही प्रतीक्षा कर रहे है, हमें केवल कर्मवीर चाहिए, वह चाहे किसी भी जाति-का हो। यदि उसमें सुधार विचारोंका महासागर लहरा रहा है तो अवश्य ही वह आदर्श नररत्न है।

बन्धुओ! अपनेको नीच मानकर, भारत रत्नगर्भाको उचित वस्तुओं-के पानेका अनधिकारी न समझो। जो जलवायु उच्चोंने सेवन किया है, वही उच्च बननेवालोंने किया है। जिस भारतमाताकी गोदीमें तुम खेले हो उसीमें वे भी खेले हैं। यदि तुममें गुणों तथा विद्याओंका अभाव है, तो वह केवल तद्विषयोके चिरवियोग तथा अनभ्याससे है। अभ्यास करो, अव-श्य ही विजयी होओगे। तुम गुणी, विद्वान्, कला कुशल, सब कुछ होओगे। प्रयत्न करनेसे क्या नहीं होता? क्या महाकवि महात्मा तुलसी-दासजीका यह कथन कभी भी अन्यथा हो सकता है?

अतिशय रगड़ करै जो कोई।
अनल प्रगट चन्दन ते होई॥

बस, उठो, तुम भी हमारे ही समान हो, हमारे ही हो, हम भी तुम्हारे हैं। बस, प्रयत्नकी देर है, घर्षण चाहिए, इस कमीको पूर्ण करो कि—

'त्वमेवाहं न संशयः'

—'सुधार प्रिय'

सुधार विचार

विवाहकी उच्च प्रथा प्रायः नीच रूप धारण कर चुकी है। विवाह माता-पिताओंकी रुचि-पूर्तिके हेतु किया जाता है। बालकोंका उससे क्या सम्बन्ध है, यह कभी नहीं सोचा। शोक! जिस स्त्रीके साथ जिस पुरुष-का विवाह होगा, उसे गौण नहीं सम्पूर्ण अंशोंमें अनधिकारी बनाकर,

अपने मनकी मौजके अनुसार, सन्तानोंका विवाह कर डालना, मूर्खता और विवाहका पाखण्ड नहीं तो क्या है ?

लड़का विवाहके समय कुछ भी नहीं समझा जाता, उसे नियमोंके मूर्खतासे बनाये हुए नियमोंके कड़े बन्धनमें कस कर, प्रायः मौन कर देते हैं अथवा उसका विवाह ऐसी अवस्थामें कर देते हैं कि जब वह बिलकुल बालक रहता है। विवाहमें विद्या, गुण और स्वरूप आदि उच्च बातोंकी प्रधानता न मिलकर केवल अविचारियोंकी रुचि-पूर्तिको ही प्रधानता मिलती है।

विवाह निश्चित करनेका अधिकार पिताको और उसके साथियोंको है, रूप और गुणोंको पसन्द करनेका अधिकार पिताको है, वधू विद्या पढ़ी हुई है या नहीं, इस बातपर विचार करनेका अधिकार पिताको है, कन्याके पिताके साथ, आनन्दपूर्वक ठहरावादि करनेका अधिकार पिताको है, विवाहका निश्चित रखना या तोड़ देना और विवाह होने देना या प्रथम ही उन विचारोंको चूर-चूर कर देनेका अधिकार भी पिता ही को है। ऐसी दशा सोच कर दुःखके साथ कहना पड़ता है, कि उस 'वधू'के साथ विवाह करनेका भी अधिकार पिता ही को है, वही अपनी इच्छाओंकी परिपूर्ण तृप्ति कर ले।

गुड़ियोंके विवाहके समान, विवाह करनेके पक्षपातियोंसे देश भरा पड़ा है। बेचारा 'वर' उस अवस्थामें, जब कि उसका विवाह किया जाता है, यह जानता ही नहीं कि यह सब पाखण्ड क्यों हो रहा है। वह तो उस दशामें अजान बालक होनेके कारण, माता-पिताकी इच्छाके अनुकूल ही फिर चाहे वह इच्छा पापोंसे परिपूर्ण, गन्दे विचारोंसे भरी हुई, और नीचताका शुद्ध स्वरूप ही क्यों न हो चलनेवाला रहता है। उस बालकको यह स्मरण ही नहीं रहता, कि 'प्रेम', 'विवाह', 'वर', 'वधू' 'पिता', 'माता', 'श्वसुर', 'सासु', 'हितकारी', 'अहितकारी', 'पोषक' 'नाशक', 'अनुकूल', 'प्रतिकूल', 'जीवन', 'मरण', और 'उद्धार', 'सर्व-

नाश'का अर्थ क्या है। जैसे बकरे-बकरियाँ निर्दयतासे कसाईके हाथो बेंच दिये जाते हैं, वैसे ही बालक-बालिका माता-पिताओंके द्वारा मूर्खतारूपी मौतके हाथों बेंचे जा रहे हैं।

यह बीसवीं शताब्दी है, अब तो ज़रा सम्भल कर उठ-बैठना चाहिए। पिताओंको सोचना चाहिए, कि उन्हें बालक और बालिकाओंकी दुर्दशा करनेका कोई अधिकार नहीं, नरककी कठिन यातना उन्हींको भोगनी पड़ेगी, जो अपने सन्तानोंके जीवनको यों दुःखमय बनावेंगे। अब कुप्रथाओंको त्याग देना चाहिए और अपनी विषमय और मूर्खता प्रसूत लालसाओंको पूरी करनेकी चेष्टा नहीं करनी चाहिए। हे परमपिता परमात्मा, आप अपनी कृपाका वह प्रकाश, जो दुःख, दुर्गुण, दुरिच्छा और दुर्बलताका नाश कर देता है, हमारे समाजके मैले और अन्धकारपूर्ण हृदयमें शीघ्र पहुँचाइए।

हमारे कहनेका यह अर्थ नहीं है, कि सम्पूर्ण बालक-बालिकाएँ माता-पिताके विरुद्ध हो जायें और मनमाना करने लगें, परन्तु हम यह स्पष्टतासे कहते हैं, कि जो माता-पिता बुद्धि और विद्यासे शून्य हों, जो बाल-विवाहके पक्षपाती हों, जो समयकी गतिसे अनभिज्ञ हों, जो वृद्ध होकर भी, अपनी इच्छाओंको पूरी करनेमें बालकोसे गये बीते हो रहे हो, जो 'प्रेम' शब्दको, उसकी महत्ता और उसकी अवहेलनासे होने वाले भयंकर परिणामोंको न सोच सकते हैं, जो पैसेके दास होकर बालक-बालिकाओंको भेड़-बकरियोंकी तरह बेंच कर उस नीच धनसे धनवान् हुआ चाहते हों, जो सूखा बड़प्पन पाकर सम्पूर्ण गुणोंपर पानी फेर देना चाहते हों और जिनको समयके परिवर्तनका बिलकुल ज्ञान न हो, उन्हें बालक-बालिकाओंका विवाह करके उनकी दुर्दशा करनेका कोई अधिकार नहीं।

तो फिर व्याह कैसे होंगे? क्या "सुधारक" संसारके व्याह कर देनेका ठीका लेते हैं? नहीं, माता-पिताओंको अपनी संतानके विवाह सम्बन्धके समय शिक्षा, वय, गुण, रूप, शील, व्यवहार, प्रेम और रुचिमें 'वधू'

और 'वर'की परीक्षा कर लेनी चाहिए। तभी गार्हस्थ्य जीवनका सच्चा सुख मिल सकेगा। बुद्धिमान् पुरुषोंसे सम्मति लेकर और खूब सोच-समझकर विवाह सम्बन्ध करना चाहिए। यह कभी भी न भूल जाना चाहिए, कि विवाह सम्बन्धकी यथार्थता "वर" और "वधू"के आपसीय प्रेमपर अवलम्बित है।

समाज-समीक्षा : ३*

सामाजिक जीवनकी दुर्दशाकर, भारतवर्षको मूर्खताके गढ़ेमें डालनेवालोंने दिखाऊ धर्मकी निकम्मी जंजीरसे समाजको बाँध डाला है। कदाचित् वे इसीको धर्मप्राणताका स्वरूप समझते हों। परन्तु अब यह बन्धन टूट रहा है। शीघ्र ही आवश्यकतानुकूल सामाजिक बन्धनोंको रखनेवाले नवयुवकोंका दल सामयिकताका साथ देनेके लिए, सामाजिक रंगमंचपर, उपस्थित होगा। इस नकली धर्मप्राणताकी बीमारीकी अवधि अब बिलकुल थोड़ी रही है।

इसके पृष्ठपोषकोंको अब भी सँभल जाना चाहिए। संसार, सामयिकताके सम्मुख उनकी कुछ भी परवाह नहीं करेगा। देशकी आवश्यकताके प्रवाहस्वरूप नवयुवक अब उनके इस बालुकाके नकली क़िलेको नष्ट-भ्रष्ट किया ही चाहते हैं।

समाजकी व्यवस्थाका अधिकार आजकल समाजके मूर्ख अंशके हाथोंमें रहता है, तभी विचित्र घटनाएँ देखनेका अवसर आता रहता है। देशकी आवश्यकताओंपर विचार करना प्रायः दुस्साध्य हो रहा है। यह हमारे सामाजिक जीवनका ही प्रताप है कि, हण्टरोंकी मार खाकर प्राण देनेवाले अफ्रिका प्रवासी बन्धुओंको कुछ न देकर, मूर्खों और मुफ्तखोरोंको दान दिया जा रहा है। वे नीच, धर्मके दलाल, कहाँ हैं, जो अपने 'पौ बारह' करते समय, हज़ारों तरहके भय दिखा, समाजका सर्वनाश कर

---

* भाग १ संख्या ७।

डालते हैं। आज उन्हें यह दिखाना चाहिए, कि भारतवर्षके लूटे हुए धनका कितना भाग प्रवासी भाइयोंकी सेवाके हेतु रख छोड़ा गया है, या उनके 'निर्मल' उपदेशोंको पाकर कितने भारत सन्तान अपने भाइयोंकी सहायतापर कटिबद्ध हुए हैं।

हमारे प्राणप्यारे भाइयोंके प्रवासी भारतवासियोंके कष्टका केन्द्र-स्थल दक्षिण अफ्रिका है। पर यह भी स्मरण रखना चाहिए कि हमारी कीर्ति-का केन्द्र-स्थल भी वही होगा, क्योंकि आज हमारे कर्तव्यका केन्द्र-स्थल भी वही है। क्या समाजको यह विदित है, कि कष्ट, कर्त्तव्य और कीर्तिके केन्द्र-स्थल अलग नहीं हुआ करते। सबका स्थान एक ही होता है। यह भी स्मरण रखना चाहिए, कि समाजकी योग्य आन्दोलनकारिणी शक्ति कम होते ही, वहीं, कष्टसे कर्तव्यपर दृढ़ रहकर बनाया हुआ, कीर्तिका क़िला क्षणभरमें नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है। शक्तिहीन समाजको हरएक समाज लातोंसे कुचल डालता है और उसके जीवन-कार्यमें दासत्व और भीरुता ही रह जाते हैं। परन्तु शक्तिवान्, उद्योगी और पवित्र समाजको संसारके सब समाज मस्तक झुकाते हैं। उस समाजका मस्तक अन्यायके प्रतिकूल आन्दोलनकी शक्तियोंसे भरा रहता है। 'गाँधी' इसी बातके आदर्श हैं।

समाजको चाहिए कि वह सद्विचारों और अनुकूल आदर्शोंकी पूर्ति-का सहायक बना रहे, मर न जावे। यह समय बड़ा ही विचित्र है। उसे इस समय, दूर देशोंमें पड़े रहनेवाले अपने अंगोंपरसे क्षण भर भी अपनी दृष्टि न हटानी चाहिए। समाजके प्रत्येक व्यक्तिको यह प्रश्न यों हल करना चाहिए, कि यदि दक्षिण अफ्रिकामें मैं होता तथा यदि मैं श्रीयुत् गाँधीके कष्टोंको देखता हुआ, वहाँ कष्टोंको भोगता होता, तो मेरे हृदयमें भारतवर्ष-से सहायता पानेकी कैसी इच्छा जाग्रत होती? जब मैं विदेशमें रहकर, कष्ट भोगता रहता, तब मेरा विशाल देश क्या मुझे इस प्रकार भूल जाता, जिस प्रकार कि मैं गाँधी और प्रवासी दुःखी भारतवासियोंके दुःखो-

को भूल रहा हूँ। और क्या सहायताके समय मेरा समाज इस प्रकार संकीर्णतापूर्वक मौन होकर बैठ जाता, जिस प्रकार कि मैं बैठा हुआ हूँ? नहीं, मुझपर समाज प्राण दे देता। वह आकाश-पाताल एक कर डालता। मेरे लिए, गोखले भीख माँगता, समाचार पत्रोंका दल मेरे कष्टोंके गायन गाकर अपनेको पवित्र करता। कर्मवीर वृद्ध ही नहीं, किन्तु युवक और बालकतक भी कष्टसे कमाई हुई रोटीमेंसे, दरिद्र होते हुए भी, मेरे हेतु, आधी रोटी भेजता। जो समाज मुझपर इस प्रकार कृपा कर सकता, क्या मैं उसके हेतु कुछ कर रहा हूँ?

यह ठीक है, कि सम्पत्ति फेंकनेके हेतु नहीं है। उसे लुटाओ मत, परन्तु दानका सुसमय पाकर छिपाओ भी मत। यह वह समय है, जब हम अपने द्रव्यका सदुपयोग कर सकते हैं। आज भक्तिपूर्वक, गाँधी सहित, कई लाख भारतवासी देवताओंपर, जो कष्टकी ज्वालामें जल रहे हैं, कुछ चढ़ाओ। यह सोचो, कि उन्हें क्या चाहिए और वे क्या चाहते हैं?

यदि तुम दरिद्र हो, तो दान देना गुरुकुलके बालकोंसे सीखो, जिन्होंने अपना दूध और घी छोड़कर, शीघ्र ही सहस्रों रुपये एकत्र कर लिये। यदि तुम साधारण दशाके व्यक्ति हो, तो अपनी कमसे कम दो दिनकी आय, मरते हुए बन्धुओंके हेतु, अफ़्रिका भेजना स्वीकार करो और यदि तुम धनाढ्य हो, तो यही समय है, कि जब तुम समाजकी सच्ची सेवा कर सकते हो। संकीर्णता न कर, कर्मवीर गाँधीका योग्य रीतिसे पूजन करो।

वह तीसरे दर्जेका दानी है, जो धनका दान कर समाजकी सेवा करता है। उसे दूसरी कक्षाका दानी समझो, जो समाजके हेतु अपना मन दान कर चुका हो। उसे प्रथम कक्षाका दानी कहना चाहिए, जो निस्संकोच अपना तन दानमें दे रहा हो। परन्तु उसे दानवीर कहना चाहिए, जो अपना तन, मन और धन दानमें दे चुका हो। वह समाजका भूषण है अथवा वह मनुष्योंमें देवता ही है, जिसने अपना तन, मन और धन

समाजके लिए अर्पण कर दिया हो। क्या समाज दानकी प्रथामें अपनेको योग्य बताकर, अपने देवताको पहिचान सकेगी ?

यह प्रश्न हिन्दू और मुसलमानोंका तथा पारसी और ईसाइयों आदिका नहीं है। यह प्रेम, बन्धुत्व और भारतवर्षका प्रश्न है। इसे संकीर्णतासे नहीं, उदारतासे हल करना पड़ेगा। और इसे हल करनेमें हमीं भारतवासी ही अधिकारी हैं। आओ, गले मिलें और प्रेमसे कहें, कि अपना गाँधी, अपने लाखों भाई और अपनी बहिन श्रीमती गाँधी तथा अपनी बहिन बीबी शेखमहताब सहायता चाहती हैं। चलो उठो, इन्हें भरपूर सहायता दें। हमारा गौरव, हमारी जातीयता और हमारा सच्चा अभिमान इसीमें है। क्या हम इतना भी भूल गये, कि यह जीवन-मरणका प्रश्न है।

क्या तुमने भारतवासियोंके बारेमें, अपने लार्डके उन शब्दोंको सुना है, जो उन्होंने मद्रासमें कहे हैं। सामाजिक दृष्टिसे उनपर विचार करो। देखो, वे शब्द यही हैं :

"हालमें आपके भारतवासियोंके अफ्रिका प्रवासी भाई इस विषयमें स्वतः भिड़ गये हैं, और जिन नियमोंको वे अनुचित और द्वेषपूर्ण समझते हैं, उनका 'निष्क्रिय प्रतिरोध' करने लगे हैं। इस विषयमें हम अवश्य उनसे सहमत हैं। उन्होंने नियम भंग करनेके दण्डको अच्छी तरह जानते हुए भी, उन दण्डोंको सहनेके लिए पूर्ण साहस और धैर्यसे नियमोंको भंग किया है, और वे भंग करनेकी इच्छा रखते हैं। इन सब विषयोंमें उनसे भारतको गम्भीर जाज्वल्य सहानुभूति है। और केवल भारत ही की नहीं, किन्तु उन लोगोंकी भी, जो मेरे जैसे भारतीय न होनेपर भी, यहाँके लोगोंसे सहानुभूति रखते हैं।"

क्या तुम उस व्यक्तिको जानते हो, जो मद्रासका लार्ड विशप है।

दो। विचारसे देखनेपर मालूम होता है कि तुम्हें संकीर्ण विचारोंने दबा रक्खा है। तुम कुछ भी नहीं किया चाहते। जो समय तुम्हारे सामने उपस्थित है, उसीसे सन्तुष्ट रहना चाहते हो, परन्तु इससे बढ़कर कायरता नहीं है।

क्या किसी अन्यायको न्याय और दुष्कर्मको सत्कर्म तुम इसलिए कहनेकी चेष्टा कर रहे हो, कि जिससे तुम्हें लोग बुरा न कहें चाहे इस बुरी दशामें सब कुछ बिगड़ जाय, पर तुम उसपर ध्यान नहीं देना चाहते। क्या तुम्हारी धारणा हो गयी है, कि भाग्यवादियोंका अस्तित्व भी संसारको मानना चाहिए। यदि ऐसा है, तो बहुत बुरी बात है।

उठो, कुरीतियोंके तथा बिगड़ी हुई रीतियोंके सुधारकी प्रतिज्ञा कर कार्य करें। कर्तव्य मार्गमें प्राण दिये विना न बनेगा। कायरोंकी तरह जी चुराना और बिगड़ी हुई प्रथाओंको चुपचाप स्वीकृत कर लेना, क्या कोई ऐसा वैसा अपराध है, क्या तुम्हें यह विदित नहीं कि इस अपराधके करने हीसे भारतवासी अत्याचार और कुरीतियोंकी उस भयंकर साँकलमें जकड़कर बाँध दिये गये हैं, जिससे कि देशका प्रायः सर्वनाश ही हो रहा है।

कुरीतियोंका दमन करना ही चाहिए। चाहे वे फिर सभ्योंकी चलाई हुई हों, चाहे असभ्योंकी। चाहे उनका समर्थन करनेवाले बिगड़े हुए बाबू हों, चाहे नीच वृत्तिके भट्टाचार्य।

कुरीतिके समर्थकोंकी कीमत कुरीतिसे भी बहुत थोड़ी है। यदि कुरीतियोंके हेतु हम काँटे हों तो उनके समर्थकोंके हेतु हमें भयंकर शूल हो जाना चाहिए। बस, इसीमें कल्याण है।

एक सुनने लायक सन्देशा है, सुनिये, कहते हैं, श्रीमान् लार्ड कारमाइकेलके साथ कूचविहारकी नई महारानी श्रीमती देवी इन्दिरा नाचीं। पश्चिमीय लोगोंमें ऐसे नृत्य-कौतूहल अकसर हुआ करते है। अन्य महारानियाँ नाचना नहीं जानतीं, इसे क्या कहना चाहिए, दुर्भाग्य या सौभाग्य?

—'सुधार प्रिय'

समाज समीक्षा : ४*

कुरीतियोंको दमन करनेका कार्य कलके लिए न छोड़ो। यह पक्का स्मरण रक्खो कि समयरूपी दूध पीकर इन भयंकर साँपोंका विष बढ़ रहा है। इनमें नाशक प्रकृतिकी मात्रा भी बढ़ रही है। समाजके इन सच्चे शत्रु आत्माओंको नाश करनेमें प्राणपणसे भिड़ जाओ। उठो, समय व्यर्थ मत खोओ। यह संसार तुम्हारी ओर घृणा और अपमानकी दृष्टिसे देख रहा है।

जब तुम किसी कुरीतिको समाजसे हटाना चाहते हो तब उसके द्वारा होने वाले दुदृश्योंके प्रमाण एकत्र कर लो। और फिर उसकी निरुपयोगिताकी मीमांसा कर डालो। समाजमें, ऐसे मिले रहो, जैसे दूधमें पानी। समाजके सच्चे हृदयोंपर यह बात जमा दो कि तुम उसके अनन्य हित-चिन्तक हो और उसके लिए, सब कुछ त्याग देनेके लिए प्रस्तुत रहते आये हो। तुम समाजके सच्चे साथी बनो और कुरीतिके गढ़ेमें गिरते समय इसे चेता दो। पर उद्दण्डता और विवादपूर्णतासे नहीं, शालीनता और नम्रतासे। यदि समाजसे इस कार्यमें तुम्हें अपमान या अर्थहानि ही हो तो, इसे तुम लाभ ही समझो। तुम अपने आयका साधन किसी अन्य उपयोगी स्थानको बनाओ और व्ययका साधन समाजको। इस रीतिसे प्रत्येक कुरीतिके पैर उखाड़ना कठिन नहीं है।

—'एक भारतीय'

सुधार विचार

सुधार करनेका पाखण्ड करना बिलकुल सरल बात है; परन्तु यथार्थ सुधार करना बहुत कठिन कार्य है। उसके लिए शरीरमें पूरी सहनशक्ति और अनर्थोंके प्रतिवादकी उत्कट भावना होनी चाहिए। इसके बिना कार्य नहीं चल सकता। यों सूखे सुधारवादी बन जानेसे संसारको कोई

* वर्ष २ संख्या १।

कुछ भी लाभ नहीं पहुँचा सकता। प्रत्येक आदमी अपनेको सुधारक समझ बैठता है; परन्तु क्या उसे यह बात मालूम है कि सुधारके सिद्धान्तोंका प्रचार करना और तलवारकी धारपर खेलना एक समान है।

हम एक ऐसे व्यक्तिको जानते हैं जो सुधारवादी है। परन्तु शिक्षाके सिद्धान्तोंपर उसे बिलकुल ध्यान देते नहीं देखते। वह कदाचित् यह नहीं जानता अथवा यह जानकर भी नहीं मानता, कि देशके विधाताओं बालक-बालिकाओंके सुसंस्कारोंपर ध्यान देना सुधारका एक भारी अंग है। जब बालक-बालिकाओंका जीवन बिगड़ गया तब उन पर न्योछावर किया हुआ करोड़ों मन स्वर्ण भी, श्मशानकी चिताकी भस्मसे अधिक मूल्यका नहीं समझा जा सकता।

"सुधार" विचारोंको कार्य रूपमें परिणत करनेवालोंको शास्त्री, भट्टाचार्य और साहित्याचार्य होनेकी आवश्यकता नहीं है; और न उन्हें पदवीधर, सभ्य और ग्रेजुएट होनेकी ज़रूरत है। उन्हें समाजप्रिय, दूरदर्शी, सहनशील, दृढ़ संकल्प, दुःखभोगी और समयकी गतिके ज्ञाता होनेकी आवश्यकता है।

केवल कहने हीसे सुधार नहीं हो जाता। मनके लड्डुओंसे भूख नहीं भागती। कार्यकारी ही कुछ सुधार कर सकते हैं। उन्होंने समय-समयपर सुधार भी किया है। सुधारवादियोंके सच्चे आदर्श हैं भगवान् श्रीकृष्ण। समय और देशकी आत्मा जानती है कि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने सुधार मार्गमें क्या-क्या किया। यदि कोई अकारण अशांति या अपवित्रता ले, तो यह उसकी भूल है। सुधारकारियोंमें उच्छृङ्खलता होना उनका लड़कपन प्रकट करता है कि निन्दाकी वृत्ति यह सूचित करती है कि सुधारकर्ता स्वयं निन्दाके योग्य है। उसकी घृणा यह बताती है कि यह बुराइयोंके सम्मुख लड़नेमें असमर्थ है। अशान्तिसे सुधारककी मानसिक दुर्बलता प्रकट होती है कि अपवित्रतासे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि यह

सुधारक नहीं, आलसी और नपुंसक है। जो संसारकी उन्नति स्वरूप, सुरीतियोंकी सीढ़ियोंको भी, उन पर चढ़नेमें निर्बल होकर, तोड़कर या तुड़वाकर, संसारको आपत्तियोंमें डालनेका पाप अपने शिरपर लिया चाहता है, वह सुधारवादी "महामूर्ख" नहीं तो कौन है।

—'सुधार प्रिय'

समाज समीक्षा : ५*

हमारा सामाजिक जहाज़ आज-कल बड़ी भयंकर अवस्थामें है। उसे देखकर हम कठिनाईसे भावी कार्योंका निश्चय कर सकते हैं। और वह निश्चय भी हमारी सफलताके समीपवर्ती अंशों तक ठीक ठहरेगा, यह कहा नहीं जा सकता। हमारे गति और परिवर्तनका क्षेत्र बहुत ही संकीर्ण है बिलकुल छोटा है। उस परिमित अवस्थामें उस समाजके कुछ कटीले और अंगनाशक नियमोंकी जंज़ीरमें रहकर, भारतीयोंको, बड़ी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है। यद्यपि सब नियम बुरे ही नहीं हैं, उनका प्रभाव समाजपर बुरी तरह पड़ चुका है। उन नियमोंकी कर्कशतामें समाजके तत्त्वका मानों नाश हो रहा है।

विदेशीय सामाजिकताके अन्ध अनुकरणका समय भी यही है। निर्णय-कारिणी बुद्धिका ह्रास होते ही हमारे समाजका जोशीला किन्तु अज्ञानी दल पश्चिमीय सभ्यताकी ठीक नक़ल उतारनेकी कोशिशमें लगा है। क्यों न हो मौलिकताका सर्वनाश कर देनेवालोंको नकल ही एक आधार है। वही उनका जीवन, प्राण और सर्वस्व है। आज जिधर आँख उठाकर देखिए उधर ही, समाज एक नये रंगसे रंगा जा रहा है। इस "नारद मोह"की सूरता पर ही हमारा देश फूला फिरता है। वह आर्ष सिद्धान्त-पर हरताल फेरनेकी चिन्तामें है। कदाचित् उसका यही विश्वास है कि

---

* वर्ष २ संख्या २।

पश्चिमीय देशोंकी सभ्यताकी भागीरथी ही हमारे पूर्वजोंका उद्धार करनेमें पूर्णरूपसे समर्थ हो सकेगी। जब, एक सभ्यताके शिखरपर चढ़ी हुई जातिके, सम्पूर्ण बर्त्ताव, नक्शेकी तरह सामने लटक रहे हैं, 'तब व्यर्थ परिश्रम कर सामाजिक नियमोंकी छानबीन कौन करे, नक़ल कर लेना ही अच्छा है। परन्तु यह अविचार है विचार नहीं। जो जाति अपनी स्वतः की कोई सभ्यता नहीं रखती वह जाति ही नहीं। हाँ हम यह मानते हैं कि आर्ष युगकी सम्पूर्ण बातें सामयिकताका साथ न देंगी परन्तु स्मरण रखिए, आपको भारतीय ही बनना होगा, पूर्व, पूर्व ही रहेगा, वह पश्चिम न हो सकेगा। उसको पश्चिम बनानेकी चेष्टा करना निरी मूर्खता करना है।

हाँ, माना। आपको पश्चिमका राजनीति विज्ञान और सामाजिक विज्ञान बहुत बढ़ा-चढ़ा मालूम होता है, और वह बढ़ा है भी। परन्तु प्रथम "विज्ञान" शब्दकी आन्तरिकताको सोचिए। आप विज्ञानके तत्त्वों को ले सकते हैं, जो एक ईश्वरीय सम्पत्ति है, परन्तु किसी देशकी चाल-ढाल और रीति-रिवाज़ चुरा लेनेके आप अपने समाज सिंहको, थोड़े दिनोंमें आजसे भी गई बीती दशामें प्रतिकूलताके कठोर पींजड़ेमें बन्द पावेंगे। बाह्य प्रकृतिपर दृष्टि डालिए, वह क्या सिखाती है। यह ठीक है कि वर्षा सब देशोंमें होती है, परन्तु आषाढ़से आश्विन तक नहीं, बसन्त सब दूर होता है, परन्तु, एक ही समयमें सब दूर न हुआ है, न होता है और न प्रयत्न करने पर हो ही सकता है।

हमारे सिद्धान्त हमारे ही हों, हाँ, परिवर्तनकी देशको आवश्यकता है, वह अवश्य किया जाय। उसमें ज्ञानका ढकोसला मढ़नेवालोंकी पुकारको आप भले ही न सुनें, पर यह न भूल जाइए कि आप जितना श्रम, जितना प्रयत्न और जितना परिवर्तन कर रहे हैं, वह भारतीय समाजकी सभ्यताके विचारसे।

सबसे प्रथम, समाजके उन बन्धनोंको तोड़िए, जो मध्यकालीन मूर्खता या आपत्तिके समय उसने बना डाले हैं। ऐसा करनेके लिए आप कर्कशतासे कार्य न लीजिए। समाज बिलकुल निर्बल दशामें है। उससे प्रेमपूर्वक कार्य लीजिए। समाजमें सन्निपातका रोग न फैलने दीजिए। होशियारीसे कार्य करना प्रारम्भ कीजिए। समाजके नवयुवकोंपर दृष्टि रखिए। उनके हृदयमें आनेवाले विचार ही समाजके सच्चे नियम हैं। ऐसा न कभी आप समझिए और न उन्हें समझने दीजिए। प्रथम नवयुवकोंको एवं कार्यकारियोंको समाजकी आन्तरिक दशाका अनुभव कराइए, फिर कार्य करने दीजिए। समाज संस्कारका कार्य अधीरता और उच्छृङ्खलतासे न होगा, वह साहस और गम्भीरतासे होगा। यह भी न भूल जाइए कि "समाज सुधारके कार्यमें नवयुवक वह कार्य करेंगे जिसे देखकर संसार चकित हो जायेगा।" परन्तु उसके हेतु समाजके हितचिन्तकोंको प्रथम भारी प्रयत्न करना होगा।

—'भारतीय'

सुधार-विचार

एक वर्ष व्यतीत हो गया। दूसरेका प्रारम्भ हो गया। ऋतुराज वसन्त अपनी नवीन छटा दिखाने लगा। शीतका वह दुःखदायी दृश्य, रात्रिकी वह मदोन्मत्तता और अन्धकारकी वह उच्च बननेकी हविस अब कहाँ है। वह देखिए, वृक्षोंने अपने प्राचीन भारको छोड़ नये वस्त्र पहिन डाले हैं। वे हरे-भरे और मनोहर दीखते हैं, इससे उनके शरीरकी सुन्दरता, वे फूले फले दीखते हैं, इससे उनके मनकी सुन्दरता तथा वे सुगन्धी एवं रसीले लगते हैं। इससे उनकी आत्माकी विशेषता बोधित होती है। यों मनोहरा वृक्षराजि, ललित लतिकाओंको लपेटे हुए, फूली हुई झूल रही हैं, संसारमें मानो अनोखापन आ गया है।

क्या भारत भूमिकी भी यही दशा है? क्या भारत हृदय वाटिकाएँ भी इसी प्रकार फूल और फलसे लदी हुई हैं। क्या सचमुच शीतका

दुःखदायी दृश्य हट गया। रात्रिका विस्तार घट गया और अन्धकारका अत्याचार कम हो गया। सोचिए, मानसिक विचारोंमें गहरे उतर जाइए। ज़रा खोज कीजिए। क्या यथार्थ ही हमारा हृदय वसन्त हो गया।

यह कुछ भी नहीं हुआ। इस वर्ष केवल भार ढोना ही हाथ रहा। सुधारके स्वाधीन विचार देशके मस्तिष्कमें पैदा नहीं हुए। मरे हुए भारतीय मर्दोंमें तेजस्विता नहीं आयी। पुराने और नीच विचारोंका प्रवाह अब भी वैतरणीकी भाँति बहकर भारतवासियोंको अपने गर्भमें रखे हुए है। सभा समाजोंमें लोगोंने अपने गले फाड़ डाले और टेबलोंको तोड़ डाले। परन्तु भारतके कठोर हृदयोंपर उसका परिणाम विशेषताके समेत अनुकूल नहीं हुआ? 'हाय-हाय' की पुकारसे आज भी देशका कोना-कोना दहल रहा है। दुखी हृदयोंकी अपरिमित राशि अभी परिमित भी नहीं हो सकी। जहाँ दृष्टि डालते हैं, वहाँ कुरीतियोंकी आपत्तियोंके बादलोंको निर्भयतासे गरजते और समाज मयूर समूहपर निर्दयतासे बरसते पाते हैं। हाहाकारकी पुकार अब भी कानोंके परदे फाड़ना चाहती है, कि गत १९७० के विक्रमीय वर्षमें हम कुछ दृढ़तासे कर सके।

वह देखिए, बाल विवाह अभी हमारा सर्वनाश कर ही रहा है। गुड़ियोंकी शादी की जा रही है, सत्यके सिद्धान्तोंका नाश किया जा रहा है। दूसरी ओर वृद्ध विवाह भी बन्द नहीं है। वृद्ध बधिकों द्वारा रुपयोंसे ख़रीदी हुई गौ स्वरूपिणी कन्याएँ, अब भी, अपने निर्दय पिताओंके अत्याचारसे अकुलाती हुई बुरी तरह रो रही हैं। एक तरफ़ कच्चे वीर्यके लड़के और बुड्ढोंके मर जानेसे हमारी विधवा बहिनोंका अनुकूल दल खड़ा आँसू बहा रहा है। और वह भी चुपचाप नहीं है। समाजको सर्वनाशका दुश्राप-सा दे रहा है। यदि हम अपनी गिनती भेड़-बकरियोंकी तरह दूसरोंसे न कराकर खुद करते, तो हमें हमारी विधवा बहिनोंकी बढ़ी हुई और व्याकुलकारिणी विशेष संख्याका सहज ही पता लग सकता।

और भी, आज दहेज बन्द नहीं है। समझदार लड़के जामाता बनकर लोगोंके दरवाज़ोंपर बिकनेमें संकोच नहीं करते। बालिकाएँ इस कुप्रथाके भयसे पिताओं द्वारा निर्दयतापूर्वक जन्मते ही मारी जा रही हैं। कई प्राण त्याग रही हैं और कई कठोर कामके कराल पुष्प बाणोंका लक्ष्य बनकर, कोई प्रकट और कोई गुप्त रूपसे, वेश्या बन रही हैं।

शिक्षाका क्षेत्र संकीर्ण ही है। हमारे यहाँ की स्त्री लेखिकाओं और सम्पादिकाओंका हाल प्रायः बुद्धिमान और अनुभवी लोगोंसे छिपा नहीं है। स्त्रियाँ पुरुषोंसे लेख लिखाकर सम्पादिका और लेखिका बननेमें अपना गौरव समझ रही हैं। तिसपर भी उनकी संख्या गिनी चुनी है।

नैतिक भूलें भी अभी हमसे हो रही हैं। हम, सामयिकताके सोचनेमें, असावधान बनकर भारी मूर्खता कर रहे हैं। नैतिक क्षेत्रमें हमारा बर्त्ताव निन्दनीय हो रहा है। हम गहरा सोचना नहीं जानते। हम अपने गौरवको आप पहिचानना भी नहीं जानते। जातीयतासे हम दूर हैं। भारतीयता हममें नाम मात्रको ही है।

और ब्रह्मचर्य, इसकी आशा तो बहुत ही बुरी है। हाय, भारतवर्षका रुधिर यों ही फेंका जा रहा है। उसका कोई उपयोग नहीं। आचरणशीलता हमारे बालकोंसे कोसों दूर बसती है। वे यह जानते ही नहीं कि वीर्यरक्षा कहते किसे हैं। कालेजके उच्च शिक्षितोंसे लगाकर साधारण पाठशालाओंतक भारतीय सपूतोंकी दशा एक-सी ही है। ऐसी दशामें कैसे कहा जा सकता है कि हमारी उन्नति हुई, हमारा सुधार हुआ।

यह सब ठीक है। अवश्य ही कठिनाइयोंके कठोर क़िलोंको हम फोड़ नहीं सके। फूटके भयानक फन्दोंको हम तोड़ नहीं सके। कूटनीतिके हेतु 'विषसे विष उतरता है', इस रीतिका हम अभी अवलम्बन नहीं कर सके। बुराइयाँ, यथार्थ ही अपनी-अपनी दूकान लगाये एवं दलालोंको साथ लिये भारत विश्व बाज़ारमें अब भी दुर्गुणों और दुर्व्यवहारोंका विष तथा दुर्वृत्तियोंकी मदिरा निर्भयतासे वेंच रही हैं।

यह सब कुछ हो रहा है, तो भी यह कोई नहीं कह सकता कि हमने कुछ नहीं किया। सुधार मार्गमें हमारा नम्बर शून्य नहीं रहा। हममेंसे दस हज़ारमें एकने अपनी दशापर विचार करनेका यत्न किया और उनमेंसे सौमें एकने प्रायः अपने विचारोंको कार्य रूपमें परिणत करनेकी चेष्टा भी की। यद्यपि हमने अपना कार्य निर्बलतासे बढ़ाया, परन्तु बढ़ाया अवश्य। सुधारके मार्गमें हमने एक पैर आगे रखा, यह बिलकुल सत्य है। इस वर्ष, हम, कमसे कम, सुधार प्रासादकी अगणित सीढ़ियोंमेंसे, एक सीढ़ी अवश्य चढ़े।

इतना कम चढ़ना हमारे हेतु अच्छा नहीं हुआ। हमें स्मरण रखना होगा कि हम साढ़े इकतीस करोड़ हैं। और इसी विचारसे आगे बढ़ना होगा। उठिए, प्राण दानकी—आत्मदानकी प्रतिज्ञा कर सुधारके धवल गिरिपर चढ़नेकी दृढ़ता, निर्भयता एवं नियमतासे चेष्टा करें। आइए, आचार और व्यवहारके रूपमें, सुधारका दूसरा कठिन पाठ पढ़नेकी चेष्टामें प्राण समर्पण करें। इसीमें सार है। यही श्रेष्ठ सिद्धान्त है। इसीने कई जातियोंको उन्नतिके शिखरपर चढ़ाकर अग्रगण्य बना डाला है। संसारका इतिहास इस बातका साक्षी है। उठिए, सुधार कीजिए, अब विलम्ब करना और मरना समान है। —'सुधार-प्रिय'

सुधार-विचार

क्यों चिन्तित हो? क्या तुम्हारे किये कुछ नहीं होता? होगा, थोड़ा धैर्य धरो। अधीरता, यद्यपि तुम्हारे उत्साहकी द्योतक है, किन्तु यह कार्योंमें विघ्न डालनेवाली है। उससे बचो। चिढ़ो मत और चिढ़ाओ भी मत। जो होगा, शान्तिसे होगा। परन्तु अपने हृदयको जाग्रत रखो और कुरीतियोंपर आक्रमणकी बाजुओंको सोचते रहो।

निराश क्यों हो? क्या गालियाँ खानी पड़ी हैं, या प्रहार सहने पड़े हैं? यह सब कुछ चुपचाप सह लो। तुम अपनी टेकके कट्टर मत रहो, केवल उद्देश्यके पक्के रहो, निराशाको हटाओ। असफल होने पर

तो, सच्चे सुधारकके हृदयमें बल आता है, वह अपने कर्मक्षेत्रमें दृढ़ता-पूर्वक उसी दिन कूदता है। निराश होओ तो उसी दिन, जिस दिन संसार-में तुम्हारे करने योग्य कोई कार्य न रहे। कठिनाइयोंसे निराश होना कायरता है।

पर देखो तुम भूल रहे हो। जिस बातका सुधार तुम संसारमें किया चाहते हो, उसे अपने घरसे ही प्रारम्भ क्यों नहीं करते? तुम्हें, अपने पथपर स्वयं ही दृढ़ता-पूर्वक चलना चाहिए, फिर परिवर्तन होनेमें विलम्ब नहीं है। केवल उपदेशसे कुछ परिवर्तन नहीं होता, आदर्श सामने रख देनेकी ज़रूरत है। यदि तुममें आत्मिक साहस नहीं, तो व्यर्थ है तुम्हारा इस मार्गकी चट्टानोंसे यों सिर टकराना। संसार कार्यको देखता है, बातोंको नहीं, वह कामोंमें सुधार चाहता है, बातोंमें नहीं। उठो, सुधार प्रथम घर हीसे शुरू करो। फिर सब कुछ हो जाएगा।

—'सुधार प्रिय'

नीति तत्त्व

स्पष्ट बातें सुन लेनेका ज़माना गया। अब नवीन युगका प्रारम्भ हो गया है। युगके साथ नीति भी बदल गई है। शब्दोंकी व्याख्या और मन्त्रोंके अर्थ ही नहीं, जीवनकी व्याख्या और आदमियोंके अर्थ तक बदल गये हैं। भला और बुरा सदा रहा है, और कदाचित् सदा रहेगा किन्तु, आजका अद्भुत परिवर्तन कर्मपथपर अँधेरा डालता है। माना कोई किसीका मित्र नहीं, और न शत्रु ही है। व्यवहार ही मित्र और शत्रुकी सृष्टि किया करता है। परन्तु, इस सृष्टिको बिलकुल खिलौना बना डालने-की भी तो आवश्यकता नहीं है।

दो मनुष्य आपसमें एक दूसरेसे मिलते हैं, मिलते ही, दोनों ओरसे विचार उठते हैं 'किस तरफ़से झपट करें'। यदि उस झपटकी भूलको समझकर एक हृदयको दुःख हुआ, उसने वैसा करना उचित न समझा, किन्तु यह उचित समझा कि मैं, उस भूल या पापके करनेसे अपने भाईको

भी रोकूँ, और उसने स्पष्ट कह दिया कि "ऐसा न करो। अपने बीचमें घातके विचार अच्छे नहीं। संसारके नियम, हृदय और मन इससे विचलित हो जाएँगे। यदि तुम ऐसा करना नहीं छोड़ना चाहते तो लो, मैं तुम्हें ऐसा करनेसे रोकनेकी चेष्टा करता हूँ।" बस, सारा खेल बिगड़ गया। हृदयका भेद मिल जाने पर, दूने बलसे अत्याचार बढ़ने लगा। प्रथम कुछ बातें प्रकट हो जाती थीं, अब सब छुपे-छुपे होने लगीं। ऊपरसे दिखाया जाता प्रेम, पर भीतर जलती वैरकी ज्वाला। बर्तावमें मीठापन आगया, किन्तु, उस मीठेपनमें विष मिलाया गया। लोग कहने लगे अजी यह बड़ा खराब है इसे चीनी खाते बुखार चढ़ता है।

दूसरे भाईने भी यही सोचा। "विषकी औषधि विष है" यह पंक्ति कानोंमें गूँज उठी। उसने इस कार्यमें तैयारी प्रारम्भ की। प्रेम और सहानुभूतिका स्थान वैर और द्वेषने ले लिया। बन्धुत्वने, विश्वसे जुदाई लेनी प्रारम्भ की। संसारमें चमक-दमक अवश्य बढ़ी, पर साथ ही व्याकुलता भी।

यह सच्चे हृदय अपनी दृढ़ता न छोड़ें, वे अपने भाईको चिताते, और अनुचित करनेपर उसका हाथ पकड़ते रहें तो विश्वका भला हो। परन्तु इससे भी अधिक पवित्रता और प्रेमका संचार तब हो, जब अपने भाईके प्रहारके सम्मुख धीरतासे दूसरा भाई खड़ा रहे। उसे बुरा करने दे, पर उसीके सम्मुख वह भला करता चला जाय। उसके उपायोंमें किसीका नाश न लिखा हो। वज्रोंको आने दे, दृढ़ रहे। वज्रोंका कार्य लगना है, और उसका कार्य है उन प्रहारोंको सहते हुए भी शान्तिसे अपने पवित्र पथमें आगे बढ़ना। मार्ग कठिन और प्राणनाशक-सा दीखता है, परन्तु उच्च और विद्वेषरहित है। विश्वके विरोधीसे विरोधी हृदयोंको मिला देने वाला है।

भगवान् बल दें, हम लोग इसी प्रकार विश्व-बन्धुत्वकी स्थापना करनेमें कृतकार्य हों।

—'नीति प्रेमी'

श्री माखनलाल चतुर्वेदी द्वारा लिखित—
—'प्रभा' के विशिष्ट सम्पादकीय और लेख†

स्फुट प्रसंग*

भारतकी लिपि

सुनते हैं, विलायतमें यह प्रश्न छिड़ गया है कि भारतमें कौन-सी लिपि प्रचलित हो। यही नहीं, यहाँतक सुना गया है कि रोमन लिपि इसके उपयुक्त मान भी ली गयी है। विदित नहीं होता कि इस कार्यसे कौन-सा लाभ सोचा गया है। ग्रियर्सन साहबकी, हाँ-में-हाँ मिलानेकी बात सुन, हमें आश्चर्य नहीं। ग्रियर्सन विचारे यहाँके कुलियों, किसानों तथा व्यापारियोंका हाल क्या जानें? स्मरण रहे, इस कार्यकी गड़बड़से समाज-को दुख होगा। भारतकी यदि कोई एक लिपि हो सकती है तो यह नागरी लिपि ही हो सकती है। हम सरस्वती सम्पादकके नोटसे सहमत होते हुए यह स्पष्ट कहे देते हैं कि इस प्रकारका प्रयत्न अनीति तथा अल्पज्ञताका उदाहरण होगा।

कई पश्चिमीय विद्वानोंकी, जिन्होंने इस बातका अनुभव लिया होगा, यदि वे पक्षपात न करेंगे, तो हमारी सम्मति स्वीकृत न करनेका कोई अन्य कारण न होगा।

राष्ट्रभाषा

राष्ट्रभाषाके गौरवकी रक्षाके हेतु अब हमें बैठे मुँह न देखना चाहिए। व्यर्थके झगड़ोंसे हानिके सिवाय लाभ नहीं है। अतएव उन्हें छोड़कर

---

† ये लेख उन्होंने अपनी २५ वर्षकी आयुमें लिखे थे।

* भाग १, चैत्र शुक्ल १, १९७०—७ एप्रिल १९१३, संख्या १।

यह सोचना चाहिए कि इस सम्बन्धमें वर्षमें कितना कार्य होता है। हम साहित्य सम्मेलनसे प्रार्थना करते हैं कि वह एक ऐसी रिपोर्ट प्रति वर्ष पेश करे कि अमुक प्रदेशने राष्ट्रभाषाकी आवश्यकताको इतने ग्रन्थों द्वारा पूर्ण किया। तथा भारतमें अमुक विषयपर ग्रन्थ प्रकाशित करनेका अमुक प्रदेशका ही पहिला प्रयत्न रहा। इस प्रकार कार्य होनेसे प्रति वर्ष यह तो विदित हो जायगा कि राष्ट्रभाषाके कर्मवीर पुत्र कौन हैं तथा अकर्मण्य कौन?

मध्यप्रदेश और राष्ट्रभाषा

मध्यप्रदेश साहित्य संसारमें अवनतिकी अन्तिम सीढ़ीपर है। अन्य प्रदेश उसे ऊपर चढ़ानेकी सत्कामनासे प्रयत्न कर रहे हैं। किन्तु मध्य-प्रदेशकी कुम्भकर्णी छूटनेका समय अभी निकट विदित नहीं होता। मध्यप्रदेशके शुभचिन्तकोंको इस ओर ध्यान देना चाहिए, नहीं तो, कुछ दिनोंके पश्चात् पछतानेके सिवाय कुछ भी हाथ न रहेगा।

स्फुट प्रसंग*

१. कूटनीति

कूटनीति, एक भयंकर विष है, जिससे सारे संसारके सद्गुण केवल दिखाने मात्रको रह जाते हैं। उनका प्राण निकल जाता है, केवल शरीर रह जाता है, वे गुण मुर्दा हो जाते हैं। कूटनीति बड़ी सुन्दरतासे प्रेमका नाश कर देती है। कूटनीति, बनावटी गुणवान् बननेका, एक भारी साधन है। कूटनीतिका दूसरा नाम 'कपट' भी हो सकता है। सरलताकी भक्षक कूटनीति ही है। उस मनुष्य, समाज, जाति, देश एवं राष्ट्रको दुःखदायी ही समझना श्रेयस्कर होगा, जो कूटनीतिका सहारा लेकर कार्य करता है।

आज हमारे यहाँ भी इसकी वृद्धि हो रही है। इस गुणके धुरन्धर

---

* मास १, वैशाख शुक्ल १, १९७०, ७ मई, १९१३, संख्या २।

आज यहाँ भी दिखाई दे रहे हैं। उनकी चालाकीकी चालसे चाहे सारे संसारको दुःख हो, परन्तु उनके दुष्ट हृदयोंमें करुणा कहाँ ? नम्रताके नीरस शब्दोंका आडम्बर करते हुए उन्हें भय भी नहीं मालूम होता। संसारके सद्गुरु बननेका एकमात्र साधन मानो वे इसी कपट चतुराईको ही समझते हैं। उनके बनावटी हृदयसे निकले हुए आडम्बरीय गुण गर्भित, किन्तु यथार्थमें, विषमय उद्गारोंका मूल, साधारण मनुष्योंकी समझमें नहीं आता। सरल हृदय-व्यक्ति उन्हें महापुरुष मानकर श्रद्धा एवं भक्ति दिखाते हैं, किन्तु वे यह नहीं जानते कि इन भयंकर सर्पोंके देशमें फिर उद्धार नहीं। उन अद्भुत विज्ञोंकी सभ्यता एवं कार्य साधकता, इसी छल-नैपुण्यमें दिखाई देती है। शोक तो यह है कि, इन मनुष्य समाजके दिखाऊ हितकारियोंने कुछ भोले समाजको अपने मायाजालमें डालकर बड़ी दुर्दशा करनेका निश्चय कर लिया है। इनके बनावटी हृदय, सरलता, सत्यता एवं श्रेष्ठताके मूल तत्त्वोंकी ओर जाना ही नहीं चाहते। सम्पादक, सुधारक एवं नेताओंके द्वारा यह दुर्गुण, हमारे प्रेमपूर्ण संसारको बड़ी निर्दयतापूर्वक, अपनी विचित्र लीला दिखा रहा है। इन महात्माओंका यह शस्त्र बड़ा दुःखदायी हो रहा है। इनकी कार्यदक्षतापर ध्यान देकर ज्यों ही मनुष्य इन्हें आदर्श मानकर सरल हृदयतासे संसार क्षेत्रमें आगे बढ़नेको तैयार हो जाते हैं, त्योंही इनका यह भयानक शस्त्र, उन प्रेमी प्रारम्भक कर्मवीरोंके हृदयोंपर लगता है। वे यह देखकर व्याकुल होने लगते हैं कि जिसे हम आदर्श मानते हैं, वह सरलता, नम्रता एवं प्रेम दिखाने मात्रको रहता है और धोखेबाजीको ही कार्य-साधकता समझता है। वह प्रेमी नहीं, भयानक शत्रु है; वह मानव नहीं, मानव रूपमें दानव है; तब वे पछताते हैं, घबराते हैं और अपनी शीघ्र कार्यकारिणी बुद्धिकी निन्दा करने लगते हैं।

यूरप इस भयानक दुर्गुणका जन्मस्थल है। वहाँ अब इस दुर्गुणने यौवन प्राप्त कर लिया है। राष्ट्रोंतकपर अब इसने अपना पूरा अधिकार

कर लिया है। एक दूसरेको अपना मित्र एवं प्रेमी कर दिखाऊ सन्धिका नीच प्रस्ताव अपने बीचमें रखकर बड़ी निर्दयतासे, विश्वासघातकी चरम सीमा दिखाते हुए यूरप-निवासी एक दूसरेके नाशपर तैयार हो रहे हैं।

क्या उन भारतीय विद्वान् हृदयोंकी सेवामें यह प्रार्थना स्वीकृत होगी जिन्हें इस दुःखदायी अस्त्रके प्रयोगका नैपुण्य प्राप्त हो चुका है। हम अत्यन्त नम्र होकर उनके चरणोंमें प्रार्थना करते हैं। वे समाजपर दया करें।

२. सम्पादकोंकी अनबन

सम्पादक, देश जीवनके उत्थान मार्गको, स्पष्टतासे दिखलानेवाले हैं। उनके द्वारा समाज बहुत कुछ कर चुका है और बहुत कुछ करेगा। प्रजाके प्रतिनिधि एवं राजाके मन्त्री बनकर सम्पादक यथार्थ हीमें हमारे भाग्योंका उचित निर्णय करके अपनी योग्य योग्यताका परिचय देते हैं। जब उनकी लेखनी किसी कुप्रथाके नाशके हेतु उठती है, तब अत्याचा-रियोंमें खलबली मच जाती है, कुरीति समर्थकोंकी आशापर तुषार पड़ जाता है एवं उन्नतिप्रिय लोगोंमें कार्य करनेका विचित्र विद्युत्प्रवाह संचारित होने लगता है। सभ्य देशोंके वे प्राण हैं। सभ्य बननेके अभिलाषी देशोंके जीवन जहाज़को चातुर्यसे चलानेवाले कप्तान हैं। अनेक विद्वान् एकांगी-यतासे अपने विषय तथा कार्यके पूर्णकर्ता और दक्ष समझे जाते हैं, परन्तु सम्पादक संसार भरके विकटसे विकट कार्यों एवं विषयोंकी बाजुओंको बड़ी गम्भीरता, नीतिज्ञता एवं बुद्धिमत्ताके साथ देखता है। वैद्य या डाक्टर एक ही औषधिका एक ही समयमें कई मनुष्योंपर प्रयोग कर नहीं सकते। 'भिन्न प्रकृति' का रोग उनके मार्गका बाधक बन बैठता है। वे ऐसे समयमें सोच भी नहीं सकते कि हम इस आयी हुई विपत्तिका सामना कैसे करें। इसके सिवाय वे (वैद्य या डाक्टर) अपनी कृतिपर विश्वास नहीं रखते और न सर्वथैव प्रयत्नपूर्ण ही होते हैं; परन्तु एक सम्पादकके

सामने जब यही घटना आकर उपस्थित हो जाती है, तब, वह समाजपर बड़ी विचित्रतापूर्ण दृष्टि डालकर समाजके रोगोंके मर्मको समझता है और सम्पूर्ण समाजके हेतु असंख्य मनुष्य समूहके हेतु एक ही उचित औषधि निर्धारित करता है। उसका औषधोपचार सरल नहीं होता, समाजकी संक्रामक एवं भयानक बीमारियोंमें भी वह सर्वदाकी भाँति दृढ़तासे प्रयत्न करता रहता है। कठिन समस्या देखकर वैद्य घबड़ाता है और सम्पादक प्रसन्न होता है; वैद्य समझता है कि इसकी प्रकृतिपर अब मेरी ओषधियाँ असर नहीं पहुँचा सकतीं, परन्तु सम्पादकको अपनी ओषधियों-पर कभी अविश्वास नहीं होता। उसकी (सम्पादककी) ओषधियाँ सदैव सारगर्भित एवं कार्यकारिणी बनी रहती हैं, वह बड़ा विचित्र कार्यकर्ता है। उसकी अद्‌भुत कार्यशक्तिको रोकनेवाले विघ्नोंके पहाड़ भी युक्तियोंकी कठिन ठोकरोंसे चूर-चूर हो जाते हैं। वह वीर कठिन आपदाओंमें भी न डरता है, न घबड़ाता है और न सहायकोंकी परवाह करता है। करोड़ों जनसमूहसे भरा हुआ समाज, एक तरफ़ विरोधी बनकर खड़ा रहनेपर भी वह, दूसरी तरफ़ अकेला ही, बड़ी दृढ़ता, उत्सुकता, आत्मपरीक्षकता तथा कार्य-साधकतासे, विना भयभीत हुए, दया, नम्रता एवं प्रेमपर अपने उद्देश्यको अवलम्बित कर, अड़ा रहता है। अन्तमें, वह शुभ दिन अवश्य ही आता है, जिस दिनसे, 'सफलता' कर्तव्य शूर हृदयमें जयमाला डालकर कृतज्ञताकी मौन प्रार्थना करती हुई, सहयोगिनी होकर, उसे कार्य करनेमें दूना उत्साही बना देती है।

ससय-समय पर सम्पादकोंके अद्‌भुत कार्योंने हम लोगोंको अपना भक्त तथा कृतज्ञता-प्रकाशक बना लिया है। किन्तु शोक, जब हम यह देखते हैं, कि कोई-कोई सम्पादक कहलानेवाले महानुभाव अपने आप पर ही विजय प्राप्त नहीं कर सकते, वे मानसिक विकारोंके प्रवाहोंमें बहकर समाजपर बुरी तरह टूट पड़ते हैं, वे समय-समनपर विद्वेषके फफोले फोड़ने हीमें अपने कर्तव्यकी इति समझते हैं, वे अपने उच्च

पदको घमण्डी बनकर कलंकित करते हैं, उनके वाक्यों एवं आचरणोंमें अन्तर रहता है, वे विद्वद्वरिष्ठ कहलानेके प्रयत्नमें पड़कर अपना समय एवं शक्ति यों ही खर्च करते हैं, वे अपने प्रतिपक्षीपर नीचतासे धावा करते हैं, वे अपने क़लम-कुठारसे करोड़ों सच्चे सहृदय एवं विद्वान् भाइयों के हृदय दुखानेमें कुछ पाप नहीं समझते, वे समयकी अनुकूलता तथा अपने पदके गौरवकी रक्षा नहीं कर सकते, वे कार्य यथार्थता दर्शित करनेके हेतु नहीं करते, किन्तु केवल अपने पक्षके मनुष्य-समूहको रिझानेके हेतु, उसमें प्रशंसा पानेके हेतु तथा मनुष्य समाजपर अपना सिक्का जमानेके हेतु करते हैं; उनकी बुद्धि पक्षपात, जातीयद्वेष, समानताद्वेष, परोदयमें डाह आदि साधारण दुर्गुणोंका शिकार हो जाती है, उनका हृदय हर्षित होनेके हेतु, कार्य-सफलताका मार्ग-प्रतीक्षक न होकर, आत्म प्रशंसा हीमें सन्तोष मानता है, वे अपने हृदयमें मनुष्य भाइयोंके प्रति निश्छल होकर बन्धुत्व नहीं रखते, उनके विचारोंपर संकीर्णताका साम्राज्य रहता है तब, हम साधारण मनुष्योंको बड़ा दुःख होता है। सौ दुर्गुणोंके द्वारा होनेवाली, उनकी दुर्दशासे नहीं; वरन्, उनके द्वारा की जानेवाली समाजकी भावी दुर्दशाके भयसे।

परन्तु वश क्या है? हमारे सम्पादकाचार्य महोदयगण किसीकी सुननेवाले हैं? समाजके सर्वनाश होने तक विद्वेष दानव उन्हें कैसे छोड़ सकता है? तब, उनमें आशा ही क्या, एवं उन्हें जीवित माननेका व्यर्थ आडम्बर ही क्यों? अतएव अभी "जो जो बीते; वह भोगना" इस शब्द-समूहको ही समाज अपना सहायक समझे कब तक? जब तक ईश्वर उसे योग्य सम्पादक नहीं देता, तब तक। यथार्थ ही उस समाजको हतभागी कहना चाहिए जिसे भाग्योंका उचित फैसला करके अनुकूल कार्य दिखानेवाले सम्पादक नहीं मिले। राष्ट्रभाषा हिन्दीके कुछ सम्पादक श्रेष्ठतामें अद्भुत अवश्य हैं, परन्तु उनकी कृतियाँ सन्तोषके योग्य कहाँ?

सम्पादकोंके पारस्परिक बर्तावके मानचित्र, उनके "पत्रों" द्वारा हमारे सामने प्रतिदिन, प्रतिसप्ताह तथा प्रति मास लटकते हैं; उस समय जो-जो दुर्दृश्य हम देखते हैं उनसे हमारी कठिनाइयोंका अन्त निकट नहीं दिखाई देता। यद्यपि वे अपनी बातें बड़ी पालिसीसे लिखते हैं, तो भी प्रकारान्तरसे वे शीघ्र ही प्रत्यक्ष रूपसे विदित होकर समाजमें दुर्गुणों तथा दुर्बलताओंका बीज बोती हैं।

३. मध्यप्रदेशकी आवश्यकता

यदि सोचा जाय तो मध्यप्रदेशको राष्ट्रभाषाके प्रचारमें उन कठिनाइयोंका सामना न करना पड़ेगा जिन कठिनाइयोंका सामना अन्य प्रान्तोंको करना पड़ा है और करना होगा। मध्यप्रदेशकी प्रान्तिक बोलियों पर अन्य भाषाओंका जो राष्ट्र-भाषाके विकास-मार्गकी बाधक कही जाती हैं असर नहीं पड़ा है। मध्यप्रदेशका वह बालक, जिसने हिन्दी भाषामें कुछ दिन शिक्षा पायी है, विना अन्य भाषाओंका आश्रय लिये शुद्ध हिन्दी बोल सकता है। यदि मध्यप्रदेश ध्यान दे, तो "साहित्यकी उन्नतिके हेतु अन्य अप्रासंगिक भाषाओंकी ही आवश्यकता है" यह व्यर्थ सिद्धान्त उसे स्वीकृत न करना पड़े। भाषाओंके मार्गमें अभी मध्यप्रदेश किसी विशेष अन्य भाषाका दास नहीं है। यह अत्यन्त सन्तोषका विषय है।

अब साहित्य सम्मेलनको उदारतापूर्वक इस ओर ध्यान देना चाहिए। यहाँ शीघ्रता और सरलतासे राष्ट्रभाषा अपनी राजधानी स्थित कर सकती है, क्योंकि किसी-न-किसी रूपमें यहाँ उसका अधिकार है, मध्यप्रदेशके निवासी उसे मातृभाषा कहकर पुकारते हैं। मध्प्रदेशके निवासी उस दिनकी प्रतीक्षा कर रहे हैं जिस दिन राष्ट्रभाषापर अपनी प्यारी मातृभाषाकी यथार्थ विजय-दुन्दुभी घर-घर बजने लगे।

मध्यप्रदेशकी उन्नतिके दोषी यहाँके भाषा-प्रेमी हैं। शोक तो यह है कि "उन्हें अन्य प्रदेशोंमें पहुँचते ही कार्य करनेकी शक्ति आ जाती

है किन्तु मध्य प्रदेशमें आते ही उनकी कार्य-कारिणी शक्ति सो जाती है। दुर्भाग्य है इस दीन मध्यप्रदेशका जो उसे ऐसे अगुआ मिले। यदि अगुओंका ध्यान इस ओर विशेषताके साथ फिरा तो हम नम्र भावसे उनको बधाई देनेके हेतु उद्यत हैं। राष्ट्रभाषाके सम्मेलनके मंत्री महाशयका ध्यान इस प्रदेशकी ओर खींचना भी इस नोटके लिखनेका उद्देश्य है।

४. अधिकारपर बलिदान होनेवाली आंग्लस्त्रियाँ

यह बात समाचार-पत्रोंमें सब लोग पढ़ चुके हैं कि आंग्लस्त्रियाँ अधिकारके हेतु क्या-क्या कर रही है। बड़े-बड़े महापुरुषोंको, मंत्रियोंको, तथा उनके पक्षके विरोधियोंको मार रही हैं; निर्भय होकर अपने पक्षके व्याख्यानोंसे देशको दहला रही हैं; राज-प्रासादोंको तथा विरोधियोंके भव्य प्रासादोंको बड़ी निर्दयतासे जला रही हैं। ग्रीष्म, शीत, वर्षा ये तीनों ऋतुएँ मानो इनके लिए संसारमें हैं ही नहीं। कहाँतक कहें, प्राणतक देनेमें भी ये आगापीछा नहीं सोचतीं। सारा यूरप इन महिलाओंकी अद्‌भुत कार्य-कृतिको बड़ी विचित्रता एवं विचार पूर्णतासे देख रहा है। आज सारा इंग्लैण्ड एक ओर है और दूसरी ओर "वे"। यद्यपि यह कहा नहीं जा सकता कि इन महिलाओंके परिश्रमके उपहारमें ईश्वरने भावीके गर्भमें कौनसे सुखदायी पदार्थ छुपाकर रखे हैं, तो भी यह कहा जा सकता है कि संसारके आन्दोलनकारियोंकी ये आदर्श देवियाँ हैं। कठिन आन्दोलन कर संसारके छक्के छुटाकर, प्राण तक देनेपर उतारू रहना इन महिलाओंके हाथका खिलौना हो रहा है। किसे विदित था कि ये कोमल कमलके फूल वज्रकी चोटोंको सहकर संसारको विश्वासका पाठ पढ़ानेमें गुरु बनेंगे। सच है—

> "वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।
> लोकोत्तराणां चेतांसि को नु विज्ञातुमर्हसि॥"

५. भारतकी विधवाएँ

इस नोटको लिखनेके समय जब हम यह सोचते हैं कि, दूसरे देश हमारी दशापर क्या कहेंगे, तब हमारी आँखें नीची हो जाती हैं। परन्तु जब हमारा ध्यान उच्चताके मार्गके वास्तविक तत्त्वोंपर जाता है, तब हम व्यर्थ प्रशंसाका आडम्बरपूर्ण ढोल नहीं पीटना चाहते।

भारतकी विधवा बालिकाओंकी जो संख्या प्रकाशित हुई है, उसे देखकर सच्चे भारतीय भाइयोंका कलेजा जल रहा होगा। परन्तु इस दुर्गुण समर्थनकी बीमारीने हमारी दशा बहुत बुरी कर दी है। यहाँ सुनता कौन है? सब अपनी-अपनी तानमें मस्त हैं। इन हमारी कई लाख बहिनोंकी क्या दुर्दशा होगी, इसका किसीको ध्यान नहीं। जब ये यौवन दशामें दुराचरण द्वारा हमारी कीर्ति-पताका फहरावेंगी तब सारा संसार तालियाँ पीटेगा। परन्तु हम तो उच्च आस्तिक ठहरे, ऐसे गन्दे विषयपर कैसे ध्यान दे सकते हैं? चाहे बहिनें कुलटा भले ही हो जायँ, धन्य है हमारे शील-को। कहाँ हैं वे वीर जो इन प्रथाओंको रोकनेके हेतु कमर कसकर खड़े हैं? उनकी ओर ये कई लाख विधवा दुःखिनी बहिनें बड़ी करुण दृष्टिसे देख रही हैं। वे उठें, इन भारतमाताकी दुःखिनी बालिकाओंका उद्धार करें।

नेताओंको उन्नतिकी पुकार मचाने दो, गुरु बननेकी बीमारीवालोंको गुरु बनने दो, आस्तिकोंको शुद्ध आस्तिक बने रहने दो, निर्दयोंको निर्दयता करने दो, आलसियोंको सोने दो एवं निन्दकोंको पुकारने दो। उत्साही वीरो, उठो, अपने मूर्ख भाइयोंमें मिल जाओ। उन्हें शिक्षाके तत्त्व सरलता और बारीक़ीके साथ शीघ्र समझाओ। बालिकाओंकी व्यवस्थाकी यथार्थ सूचना उन भोले भाइयोंको दो। यदि ऐसा न करोगे तो तुम्हारी 'भारतीयता' नाम ही भरको शेष रह जायगी। तुम्हारे आस्तिक बन्धु तो इस ओर ध्यान न देंगे, हाँ, दस वर्षके बाद यह संख्या दूनी अवश्य कर

देंगे, जिससे कन्याएँ और तुम, उनकी दयापर, यावज्जीवन रोते रहोगे। बस, वे अपनी कर्तव्यवीरता इसी प्रकार दिखावेंगे।

कर्मवीरो, बस, तुम्हीं अपने जीवनवारिधिसे एक ठण्डी लहर उठा कर दुखी हृदयोंको शीतल करो। उनका दुःख दूर करो। तुम्हारे प्रयत्नोंके विजयी होनेका सुखदायी समय आ चुका है। विधवा बहिनोंके शिक्षिता होनेका तथा उनके दुःखी जीवनको शान्ति मिलनेका उद्योग करो। स्मरण रखो : "सच्चे कार्य साधक एवं उत्साही वीरोंके परिश्रमके पुरस्कार हो के हेतु ईश्वरने 'विजय' को पैदा किया है।"

एक मुसलमान बन्धुका संस्कृत-प्रेम

हमें यह जानकर बहुत ही हर्ष हुआ कि हमारे एक मुसलमान भाईने एम० ए० तक संस्कृत पढ़कर एक छात्रवृत्ति पायी है। छात्रवृत्ति ४००रु० महीने की है। आप जर्मनीमें संस्कृतके 'साहित्याचार्य' होनेके हेतु जावेंगे। आपका नाम है 'मुहम्मदशाह विदुल्ला' एम० ए०। आपने बी०ए० पास होनेके समय, विश्वविद्यालयसे 'सम्मान योग्य' विद्यार्थी कहलानेका सौभाग्य प्राप्त किया है। इस अनुकूल परिश्रमपर हम आपको बधाई देते हैं। आप इस विषयमें प्रायः पहिले ही मुसलमान सज्जन हैं। आशा है, इस प्रकार, संस्कृत साहित्यका प्रचार होनेपर अपनी आपसी महत्ताको, हिन्दू और मुसलमान ये दोनों जातियाँ, समझेंगी। मुसलमान और ईसाई बालकोंको जो छल-छिद्र त्यागकर 'देश-हितैषी' बनना चाहते हों, जो यथार्थ ही भार-तीय कहलाना चाहते हों, तो मिस्टर मुहम्मदशाह विदुल्लाको आदर्श मानना चाहिए। मि० मुहम्मदशाहसे भारतवर्ष बहुत कुछ आशा रखता है। यदि वे भारतपर ही अपनी मुसलमानियत स्थिर रख सके हों, तो उन्हें हमारी इस प्रार्थनापर ध्यान देना चाहिए।

स्फुट प्रसंग*

१. मौलिक और अनुवाद

यह विवादग्रस्त, किन्तु आवश्यक, विषय गत कुछ महीनोंमें अपने पैर राष्ट्रभाषा-सेवियोंमें फैला चुका है। 'सरस्वती' में, किसी व्याजसे 'मर्यादा'में और 'सद्धर्म प्रचारक' में, हम इस विषयमें समयानुसार कुछ पढ़ चुके हैं। हम तो इसीको 'सौभाग्यकी बात' समझते हैं, जो यहाँ राष्ट्रभाषा-भाषियोंमें मौलिक और अनुवादके प्रश्नको हल करनेका अवसर तो आया।

राजनीतिके स्वत्वोंका जटिल प्रश्न जिस प्रकार राजनैतिकोंके प्राणोंमें विद्युत् देशका संचार कर देता है, समाजके कुरीति केन्द्र स्थल बन जानेपर जिस प्रकार सुधारवादियोंको सुधारपर प्राण देनेकी सूझती है, पूजा और अर्चनाके तत्त्वोंके प्रचार द्वारा खगोल, भूगोल, प्राणी एवं वनस्पति शास्त्रके कार्योंमें, गड़बड़ पड़नेका डर मानकर, वैज्ञानिकोंको जैसे पाखण्डी विचारोंके नाशका कार्य करनेका प्रण करना पड़ता है, नैतिक नैर्बल्यकी शरण लेकर अविश्वास, अश्रद्धा, मूर्खता, विचारलाघवता एवं विकारबाहुल्यके समय जब उच्चताकी दृष्टिसे, यथार्थमें धार्मिककी, "परमपिता पर विश्वास के तत्त्वोंको, करोड़ों दुःख झेलकर भी, जैसे प्रचार करना पड़ता तथा अपना ही आदर्श संसारके सम्मुख रखकर संसारको एक भयंकर भूलसे बचाना पड़ता है बस, ठीक उसी प्रकार साहित्य-सेवियोंको मौलिक और अनुवादकी उत्तमताके प्रश्नपर विचार करना, मेरी समझमें आवश्यक होगा।

प्रतिभाशील मस्तकोंकी जहाँ कमी नहीं रहती वहाँपर प्रश्न आप ही हल हो जाता है, कि मौलिक उत्तम है या अनुवाद; परन्तु ऐसे समाजमें, जहाँ प्रतिभाशील मस्तकोंकी प्रायः कमी है या अभाव-सा ही है वहाँ

---

*भाग १, श्रावण शुक्ल १, १९७०, ३ अगस्त १९१३, संख्या ५।

किसी प्रकार अनुभवकी महत्ता मिल जाना बिलकुल सरल है। यथार्थमें मौलिकता जीवित विचार है और अनुवाद उसकी छाया। बहुत गहरे न जाकर, केवल इतने हीसे संतोष मानना यहाँ श्रेयस्कर होगा कि संसारके सब विचार, जो आज तक विश्वरूपी कोशके पत्रोंकी शोभा बढ़ा रहे हैं, मौलिक ही थे। उन्हींका आज हम कई रूपोंमें उपयोग कर रहे हैं। उन्हें अब हम अपने हृदयोंमें अनुवादित कर रहे हैं। इस गुण-प्राप्तिमें हमें हमारा गौरव मानना चाहिए, जिसके कि वे विचार हैं, जिसकी प्रतिभा-शक्तिने विद्वत्ताके गहरे महासागरमेंसे उन विचार-रत्नोको ढूँढ़ निकाला है। निस्सन्देह वे ही पुरुष-पुंगव, जिनमें गहरेसे गहरे विषयोंकी विचार-माला स्वतन्त्र निकल सकती है समाजके मान्य और साहित्यके जीवन-धन हैं। हमारे इस कहनेका उद्देश्य यह नहीं है कि अनुवाद कोई वस्तु ही नहीं। जिन महानुभावोंने बहुतसे ग्रन्थ अनुवादित कर संसारकी सेवा की है, उनके साथ कृतघ्नता नहीं की जा सकती और न सत्यका इस प्रकार संहार ही किया जा सकता है। सच तो यह है कि जिस जातिकी साहित्य-ज्ञता उन्नत, किन्तु बाल्यावस्थामें रहती है उस जातिके पास गम्भीर एवं स्वतन्त्र विचार प्रथक बहुत ही थोड़े रहते हैं, वह जाति दृढतापूर्वक सब विषयोंमें अधिकार नहीं रखती। बाल्यावस्थाके प्राप्त हुए बालकके समान उसे अन्य जातियोंसे विचार लेकर अपनी त्रुटिकी पूर्ति करनी पड़ती है। प्रत्येक विषय पहिले सीखना पड़ता है, सो भी केवल एकको नहीं, वरन् समाजके कई मनुष्योंको। फिर पीछे उनमें उस विषयका एक प्रतिभाशाली पण्डित पैदा होता है। जब तक गणित शास्त्रके तत्त्वोंका खूब प्रचार न हो जाय तब तक समाजमें स्वतन्त्र गणितज्ञोंका प्रायः अभाव ही रहेगा; परन्तु गणित शास्त्रके तत्त्व लोगोंके हृदयमें आते ही, गणित-शास्त्रके तत्त्वाणुओं-का पिण्ड स्वरूप, एक ऐसा महात्मा पैदा होगा, कि जिसके गणित-शास्त्र-के सच्चे एवं स्वतन्त्र विचारोंका संसार यावज्जीवन ऋणी बना रहेगा।

जब तक ऐसा नहीं किया जायगा तब तक समयकी आवश्यकताकी

पूर्तिके आने-जानेका रास्ता, इस प्रकार, अनुवाद द्वारा साफ़ न किया जायगा तब तक मेरी साधारण समझमें स्वतन्त्र विचार वाला मौलिक लेखक प्रायः पैदा न होगा। पहिले किसी प्रकारके विचारोंको समाजमें दूसरे राष्ट्रोंसे लेकर ही फैलाना चाहिए। इस प्रकार समाज समुद्रकी गम्भीरता एवं जड़ताको होमकर, सारे समुद्रको हिला डालनेवाला, उसमें तरंगोंका प्रचार कर, उसको महत्ताका सिक्का संसारमें जमानेवाला, किसी स्वतन्त्रविचारी पूर्णचन्द्रका शीघ्र ही उदय होगा।

इस मेरे कहनेका यह मतलब है कि जिस विषयके मौलिक लेखककी समाजको आवश्यकता है, उस विषयके विचारोंको समाजमें फैलाइए। समाजके हृदयोंमें उसकी उपयोगिता जमा दीजिए बस, मौलिक लेखक पैदा ही होगा। यद्यपि अनुवादकर्ता लेखकको कम कष्ट उठाना पड़ता है, तो भी उसे उस नये विषयके प्रचारका कार्य बड़ी सावधानीसे करना पड़ता है। विषयकी पूर्णता, अनुकूलता, सरलता और सर्व-प्रियतापर ध्यान देना पड़ता है। यथार्थ ही इस महा परिश्रमके हेतु अनुवादक प्रशंसाका पात्र है, उसके परिश्रमको हम व्यर्थ नहीं कह सकते। यद्यपि उन विचारोंकी उन्नतिके धन्यवादके अधिकांशका अधिकारी उसका मूल लेखक ही रहेगा, तो भी समाजपर अनुकूल एवं अद्भुत दया करनेका अधिकारी अनुवादक है। वह उस विषयमें अपने समाजका एक बड़ा भारी हितकारी है।

सारांश यह, कि मौलिक लेखकके पीछे अनुवादक ही का आसन दूसरा नम्बर पावेगा और शब्द-शास्त्रके धन्यवाद शब्दोंका अधिकारी होगा; परन्तु केवल वही अनुवादक, जिसने कि सबसे प्रथम अपने साहित्य समाजको ऐसे ग्रन्थ-रत्नोंके विचारोंसे परिचित कराया है, कि जिनकी उपयोगिता है और महत्ताको समाजकी आत्मा मान्य करती है। वे अनुवादक छिछोरे हैं, जो समयको न सोचकर रात-दिन अनुवाद हीमें अपना जीवन सड़ाकर, साहित्यमें कूड़ा करके भरते रहते हैं, ऐसे

अनुवादकोंके अच्छे ग्रन्थोंको भी घृणाकी दृष्टिसे देखना उच्च साहित्य-सेवियोंको उचित ही नहीं, वरन् अवश्य करणीय है। जिस प्रकारके साहित्य या विषयसे हमारा समाज परिचित हो चुका, उस विषयका अनुवाद केवल अनुवादकी मानसिक निर्बलता एवं रुचि-पूर्तिका ही परिचायक है। साहित्य समाजको अपने सच्चे "अनुवादक"के परिश्रमको महत्ता स्वीकार करना चाहिए और उसी विषयका मौलिक लेखक मिलनेके लिए साहित्य समाज तथा "अनुवादक" दोनोंको जगदीश्वरसे प्रार्थना करनी चाहिए। संसारकी अनिवार्य उन्नतिपर दृष्टि रहनेवाले महानुभाव इस विषयको सरलतासे समझ सकेंगे।

मैं कह नहीं सकता कि इस विषयमें कितने विद्वान् सहमत हैं। हाँ, यह कहा जा सकता है कि मैं इस विषयकी ठीक-ठीक मीमांसा नहीं कर सका।

स्फुट प्रसंग ❀

१. कर्मवीर गाँधी

जो लोग भारतवर्षमें रहते हैं उन्हें कर्मवीर गाँधीका परिचय देनेकी कुछ आवश्यकता नहीं है। वे देशके माननीय पुरुषोंमेंसे एक हैं। अफ्रिकामें भारतवासियोंपर क्या-क्या बीत रही है, यह आप लोग सब सुन ही चुके हैं। रोमांचकारी उन समाचारोंको (जिनमें भारतवासियोंको, आफ्रिकन लोगों द्वारा, हंटरोंसे पीटने, जेलोंमें ठूँसे जाकर भूखे मरने, ४५ रुपयेका टैक्स न देनेपर नाना प्रकारकी विपत्तियाँ सहने, खानोंको जेल बनाकर उनमें भारतवासियोंको भर देने, गाँधीके अपार कष्ट भोगने और भारतवासियोंके असहाय रूपसे रहने, भूखे मरने और 'त्राहि-

❀ भाग १, आश्विन शुक्ल १, १९७०, १ अक्टूबर, १९१३, संख्या ७।

त्राहि' पुकारनेके समाचार भरे हुए हैं) दुहरानेकी आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। यदि हमारी सीमासे बाहरकी राजनैतिक दशापर हम दृष्टि न डालें, तो भी सामाजिक दृष्टिसे कहना पड़ेगा, कि हमारा समाज बहुत ही बुरी दशामें है। हमारे देशभक्त गाँधी वहाँके डेढ़ लाख भारतीयोंके अगुआ हैं। वे दक्षिण अफ्रिकामें अपार कष्ट भोग रहे हैं। उनकी आत्मा बड़ी बलवान् है। वे धीर और वीर हैं। हमारा अनुरोध है कि देशवासी अपने इस देशबन्धुके जीवन-वृत्तान्तको पढ़ें और अपने बन्धुओं-के कष्टोंका अनुमान करें। हिन्दी भाषामें अभ्युदय प्रेससे, गाँधीका जीवन-चरित मिल सकता है। उसका मूल्य केवल आठ आना है। पुस्तकका नाम है "कर्मवीर गाँधी"।

हम कर्मवीर गाँधीका एक चित्र इस प्रभाके पाठकोंको भेंट करते हैं।

२. हमारे चीफ़ कमिश्नर

मध्य प्रदेशके चीफ़ कमिश्नर श्रीयुत आनरेबुल सर वेन्जामिन राबर्ट-सन के० टी० सी० एस० आई० सी०आई०ई० महोदय एक योग्य अनुभवी एवं वयोवृद्ध व्यक्ति हैं। आप बड़े विचारशील एवं दयालु हैं। गत वर्ष हम आपसे मिलकर आपका परिचय पा चुके हैं। आप भारतवर्षपर प्यार करते हैं। आप हमारे श्रद्धाभाजन हैं।

आप भारतवासियोंपर किये जानेवाले अत्याचारोंकी जाँच करने दक्षिण अफ्रिकाको गये हैं। उदार और प्रजावत्सल लार्ड हार्डिंगके आप प्रतिनिधि हैं। आशा है, कि आप भारतवासियोंके दुःखोंकी योग्य जाँच कर, भारतवर्षके व्याकुल हृदयोंसे कृतज्ञता ज्ञापन करनेका समय आने देंगे। हम आपके कार्यकी ओर आशा भरी दृष्टिसे देख रहे हैं।

पाठक, उक्त महाशय, उस त्रिकुटी (तीन आदमियोंके कमीशन) में शामिल नहीं हैं, जो दक्षिण अफ्रिकामें भारतवासियोंकी जाँच करनेके

लिए रक्खी गई है। आप भारत सरकारके स्वतन्त्र प्रतिनिधि होकर गये हैं।

३. जातीय झगड़ोंका उत्तरदातृत्व

किसी भी देशकी दशा तबतक ठीक रहती है जबतक कि उनकी देखभाल कर दर्दोंकी औषधि करनेका अधिकारी बननेवाला चुप होकर न बैठ जाय। एकका इस प्रकार बैठ जाना ही यह सिद्ध करता है कि वह अन्तःकरणसे चाहता है कि जातियोंमें द्वेषकी आग भड़के और असन्तोषकी आँधी अपना कार्य परिपूर्णतापर पहुँचा दे। वह भी एक दिन होगा कि जिस दिन झगड़ोंका परिणाम भयंकर होगा और उन चिड़ीमारोंको ही इस प्रकारके अपराधोंकी सम्पूर्णताके उत्तरदाता बनना पड़ेगा। क्या वह जाति अपनेको बहुत गुणगौरवपूर्ण समझती है जो मूर्खतासे द्वेषकी आगमें कुछ नीति और मूर्खताकी फूँकें मारकर, उसे प्रज्वलित कर रही है? उसे स्मरण रखना होगा कि दूसरी जाति भी पत्थरकी इमारतको जलानेके समय अग्निकी भयंकर ज्वालाओंको सँभालनेमें समर्थ है और उसे अपने कपूरसे बने हुए शुद्ध, पवित्र, उजले और सुगन्धित वस्त्रको बहुत सावधानीसे बचाना चाहिए, जिसमें सदैव, सबसे प्रथम आग लग जानेकी शंका है और प्रायः सदैव उसीमें प्रथम आग लगती रही है। जिसका साक्षी संसारकी गत शताब्दियोंका इतिहास है। हाँ, माना जा सकता है, कि पत्थरके मन्दिरोंमें बैठी रहनेवाली जाति पत्थर हो चुकी हो, परन्तु नहीं, जो किया जा रहा है, और इसे कौन कह सकता है, कि वह जाति, अपनी सम्पूर्ण आत्मशक्ति और उच्चता खोकर, निरी पत्थर हो चुकी होगी।

यह भी सोच लेना चाहिए, कि हम (भारतवासी) धर्मप्राणता दिखाते समय कितने दर्जेका पागलपन करने लगते हैं और इस पागलपनसे लाभ उठानेवाली श्रेणी इस समय, हमारे मध्यमें पड़कर, कैसे-कैसे सुन्दर सन्देशे हमारे हेतु भेज रही है। हम उस समय अपनी मूर्खताकी चरम

सीमा दिखाने लगते हैं। हमारा वह विचार, कि "पवित्र ईश्वरके सामने हम सब जातियाँ समान हैं", न जाने कहाँ चला जाता है।

यूरपको धर्मके विषयमें भारतवासियोंके उपाध्याय बननेकी आवश्यकता नहीं। वह धर्मके विषयमें अभी निरा नादान बालक है और उसकी धार्मिक मूर्खता कभी-कभी भारतवासियोंके जले हृदयोंपर नमकका काम कर जाती है। भारतवासी अब प्रतिदिन, धर्मकी ओटसे अधर्म करनेके लिए कमर कस रहे हैं। उनके छोटे-छोटे कार्योंसे प्रति वर्ष धार्मिक मूर्खताका पता लगता है। वे धर्मको जानते हैं; पर तो भी अधर्मको करने लगते हैं। भारतीय झगड़ोंमें हमें तीन बातें विशेषतासे देखनेको मिलती हैं—

१. जातिकी जड़ प्रकृति और सहनशीलताके रूपमें हतवीर्यता।

२. जातिकी मूर्खता और अपना झूठा सिक्का जमानेकी चेष्टा, अपनी मूर्खताका द्वार खुला पाकर उसमें विना विचारे घुस जाना।

३. जातिका अनुचित हस्तक्षेप, झगड़ालू जातिके मूर्खताके दरवाज़ोंको खोल देना और उसके द्वेषके मैदानको विस्तृत कर अपने अधिकारका दुरुपयोग करना।

कुछ मनुष्योंका समूह, चिन्ता और विचारमें सम्पूर्ण समय बिताकर अन्तमें जातियोंकी मुठभेड़का दुर्दृश्य अपनी आँखोंसे देखनेका अवसर आने देता है और अवसर आनेपर अपने पक्षवालोंमें मूर्खतापूर्वक दहाड़ने लगता है।

एक और भी चिन्तित और कार्यकारी समूह है, जिसकी अभी चलती नहीं। उस समूहके व्यक्ति सोचा करते हैं, कि यह, भाइयोंका नाश कर, जातिको रसातलमें पहुँचा देनेवाला, कुकृत्य किस प्रकार बन्द हो और लड़ते समय वाह-वाह कहनेवालोंका दल कैसे नाश हो।

स्फुट प्रसंग*

प्रताप

कानपुरमें भी अब जातीय जीवनका संचार हुआ। यद्यपि वहाँ साहित्य-सेवियों और विद्वानोंकी कमी नहीं है, तो भी, हमें विदित नहीं कि, वहाँके साहित्य-सेवी जातीय जीवन फूँकनेके हेतु सामयिक साहित्य द्वारा कुछ अनुकूल प्रयत्न कर रहे हैं। 'प्रताप' नामक साप्ताहिक पत्र अब यहींसे प्रकाशित होने लगा है। इसके सम्पादक हैं श्रीयुत गणेशशंकर विद्यार्थी। यही महाशय गत वर्ष, कुछ दिन, 'अभ्युदय' का सम्पादन-भार भी सँभाल चुके हैं!

'प्रताप' की सम्पादन शैली अच्छी, बहुत कुछ अनुकूल है। हम इस सहयोगीकी उन्नति हृदयसे चाहते हैं। जिस निष्पक्षपात और निर्भय नीति-से 'प्रताप' अपने संकटाकीर्ण एवं कठिन मार्गमें चल रहा है, उसे देखकर उसके सम्पादककी प्रशंसा करनी पड़ती है। 'प्रताप' मानो मृत 'हिन्दी केसरी' और 'कर्मयोगी' का सगा भाई है। परन्तु अनुकूलता और समय-की गतिपर इस पत्रकी दृष्टि है और अत्यधिक रखनेकी प्रार्थना है कि संसार कर्मयोगी मण्डल है। इसपर कर्मयोगके सिद्धान्तोंको अधिक दिन तक निबाह कर जागृति और शान्तिके घोड़ोंसे अपने कर्म-पथपर, धर्म-रथ चलाकर भारतवर्षके गौरवकी रक्षा करनी चाहिए। 'प्रताप' अपना उद्देश्य एक छन्द द्वारा यों व्यक्त करता है।

'जिसको न निज गौरव तथा निज देशका अभिमान है।
वह नर नहीं, नर पशु निरा है, और मृतक समान है॥'

---

* भाग १, मार्गशीर्ष शुक्ल १, १९७०, २३ नवम्बर, १९१३, संख्या ९।

स्फुट प्रसंग *

१. धार्मिक विचार-विभिन्नता

भारतवर्ष धर्म-प्राण देश है। यहाँ छोटी-छोटी बातोंमें भी धर्म बाधाकारी होता है। भारतवर्षमें प्रायः अब धर्मके प्रयोगोंका विपरीत अर्थ होने लगा है। धर्मकी आड़ लेकर या धर्मकी दुहाई मचाकर हम संसारमें होनेवाले अनेक उपयोगी कार्योंको रोक देते हैं। धर्मको अपने स्वार्थ एवं दुर्विचारोंकी ऐसी सामग्री बना डालते हैं, कि जिसका कुछ ठिकाना नहीं। ज़रा-ज़रा-सी बातोंमें विना परिणाम समझे, धर्मका नगारा बजने लगता है। भारतवर्षमें शत्रुताका बीज बोनेका तो मानो धर्मने ठीका ले लिया है। कोई कलें और कारख़ाने इसलिए नहीं बनवाता, कि उससे पृथ्वीमें रहनेवाले छोटे-छोटे अनेक प्राणी जो भूखों मर जाते हैं। उनकी रक्षा करना वह अपना धर्म समझता हो। किसीने अपना जीवन राष्ट्र-निर्माणके कार्यसे जुदा इसलिए रक्खा है कि धार्मिक होनेके कारण उसे समय नहीं मिलता। कोई किसी जातिके साथ इसलिए सम्बन्ध नहीं रखता, कि वह जाति अपवित्र और म्लेच्छ है और वह अपनी जातिको परम पवित्र समझता है। एक जाति गो-वध और ऐसे ही कुकृत्य, नीचतापूर्वक संसारके मनुष्योंका दिल दुखानेको, इसलिए करती है, कि ऐसा करना उसका धर्म है। यदि वह ऐसा न करेगी तो धर्मसे गिर जायगी। किसी जातिने ठान लिया है, कि दूसरे धर्मवालोंसे प्रेमसे भाषण नहीं करना चाहिए, क्योंकि ऐसा करना अपने धर्मको नाश करना है। एक वह भी समय था कि जब बलिदान करना एक भारी मनुष्य-समूह अपना धर्म समझता था। आज अधिकतर उसका भारी अंश ऐसा नहीं करता। इन धार्मिक

---

* भाग १, पौष शुक्ल १, १९७०, २८ दिसम्बर, १९१३, संख्या १०।

उलझनोंमें, [illegible] रहनेवालोंमें कहाँतक उत्तमता है, सो कहा नहीं जा सकता; परन्तु बना डाली गयी एक संसारका नाश करनेवाली वस्तु। भारतवर्षमें धर्मने एक बीमारीका रूप धारण कर लिया है। प्रत्येक मनुष्य उस रोगसे रोगी देखा जाता है। ऐसे बहुत ही थोड़े व्यक्ति हैं, जो धर्मके तत्त्वोंको समझते हों। परन्तु ऐसोंकी कमी नहीं है जो धर्मके नामपर अन्याय, अधर्म, अनीति, अत्याचार और मूर्खताके सहायक हैं। जो अपने धर्मके झूठे ढकोसलेसे उद्धारके मार्गोंको कठिन और प्रेमके प्रश्नोंको जटिल बना डालते हैं। यद्यपि उनके सब शस्त्र छिन चुके हैं। बाहरी और दिखाऊ शस्त्रतक भी उनके पास नहीं छोड़े गये, तथापि वे अपने असली और अमली धर्मके शस्त्रको जिससे विजय प्राप्त हो सकती है, मूर्खतासे अविचारकी गहरी खाईमें डुबोकर कुटिल कालकी दी हुई ढकोसलेबाजीकी जादूकी तलवारको ही धर्मशास्त्र समझते हैं। जब उसका उपयोग किया जाता है तब परिणाम सदैव दुःखदायक ही होता है। एकताका नाश हो जाता है। स्वाधीनताका मार्ग जटिल हो जाता है। विद्वेषकी आग बुरी तरह सब जातियोंको जलाने लगती है। कहाँतक कहें, भारतकी सबसे ज़बरदस्त अनर्थकारी वस्तुओंमेंसे एक वस्तु धर्म भी हो गया है।

इस धर्मने साधारण समाज ही पर अपना हाथ साफ़ नहीं किया; प्रत्युत पढ़े-लिखे समाजको भी अपना दास बना रक्खा है। इस नकली क़िलेमें बैठकर हम अपने असली क़िलोंको भूल ही गये। यदि निरक्षर दशामें धर्म, खानपान और रहन-सहनमें बुराईके बीज बो रहा है, तो कुछ पढ़ी हुई दशामें वह हमें निरा विवादी और पाखण्डी बताकर हमारे समय एवं शक्तिका भक्षक बन रहा है। तिसपर भी यदि कुछ और विद्वत्ता आ गयी तो हमें इतने गहरे अन्धकारमें ले जाता है कि हमें मारकाट मचानेवाले और कट्टर खण्डनकर्ता बनाकर ही छोड़ता है। उस

समय हमारे धर्मके विचारोंका समूह दूसरे धर्मवालोंसे वैरका बदला चुका लेनेके हेतु हमें उत्तेजित करता है।

वह समय प्रायः दूर गया, जब धर्मके उपदेशक शिक्षाएँ देकर धार्मिक बनाये हुए थे। आज उन उपदेशकोंका नाम ही बाक़ी रह गया है। उनके उपदेशके द्वार भी "जे आचरहिं ते नर न घनेरे" वाली उक्तिको अपने-पर चरितार्थ करनेवाले, मनुष्योंने बन्द कर दिये हैं। आज संसारपर उपदेशकी पवित्र किरणें पहुँचानेके हेतु साधुओंको कोई सुसाध्य मार्ग नहीं। कर्तव्याकर्तव्य तथा शिक्षाका आवश्यक ज्ञान करानेवाले स्वाधीनचेता तथा आत्म-बलिदान करनेवाले उन महात्माओंका दिखाई देना अब कठिन हो गया है, जिन्हें पक्षपात, जातीय द्वेष, निन्दा आदि दुर्गुणोंसे घृणा थी और जिनका सिद्धान्त विश्वको कर्तव्य-मार्गमें दृढ़ बनाना था।

आज उपदेशका हिस्सा जो थोड़ा बहुत बचा है, उसका कुछ भाग सम्पादकोंके हिस्सेमें भी है। वे प्रजाके प्रतिनिधि एवं राजाके मन्त्री बने हैं। वे प्रजाको हितकारी सन्देश देते रहते हैं। उनका ध्यान विश्वकी उन्नतिपर अटल भावसे लगा रहता है। उन्होंने विश्व-सेवाका भार उठाने-का निश्चय किया है। वे जातिकी जीवन-नौकाके सँभालनेवाले मल्लाह हैं। वे प्रजाके संशोधक बनकर उसके अंग-प्रत्यंगके दुःखोंको निकालनेका विचार करते रहते हैं। उनका इसलिए जन्म ही हुआ है कि संसारकी आपत्तियोंको हटानेमें प्राण समर्पण कर दें। उन्हें उनकी भव्य और न्याय-पूर्ण दृष्टिसे सब ही ईश्वरकी सत्ताके द्योतक तथा ईश्वरीय आज्ञाओंके पालनकर्ता दीखते हैं। उनका सिद्धान्त रहता है—आत्मबलिदान। परन्तु, क्या हमारा देश, समाज, जाति और राष्ट्र सम्पादकोंमें इतनी कर्तव्यता देख रहा है? क्या उसे यह निश्चय है कि हमारे समाजके सम्पादक न्यायमें पूर्ण कुशल हैं। क्या वह सोच चुका है कि हमारे वर्तमान सम्पादकोंसे ही हमारा उद्धार हो जायगा? इस नोटके लेखकको

इस बातमें सन्देह है। वह तो यह सोच चुका है, कि सम्पादक धार्मिक झगड़ोंके पक्षपाती बन जाते हैं। वे उपदेशक हों : परन्तु पवित्र उपदेश-दाता उपदेशक नहीं। यह आत्म-निन्दाके विचारसे नहीं कहा जा रहा है। दूसरे देशोंके सम्पादकोंपर भी ये ही दोष मढ़े जा सकते हैं; परन्तु आज भारतवर्षके विशेषकर हिन्दी भाषाके पत्र सम्पादकों पर ही विचार करना, इस अल्पज्ञ लेखकने सोचा है। वर्तमान सम्पादकीय जीवन बहुत संकीर्ण है। यदि ऐसा न होता, तो समाजकी दशामें विशेषतासे परिवर्तन देखनेको मिलता।

जहाँ अनेक विषयोंमें हमारे साहित्यके सम्पादकोंका यह हाल है, वहाँ धार्मिक विभिन्नता नामक दोषसे भी वे बचे नहीं है। वे धर्मोंके न्यायाधीश बनते समय बुरी तरह धर्मकी मीमांसा किया करते हैं। सम्पादकोंकी भव्य दृष्टिसे समानताके तत्त्वका नाश कभी नहीं होना चाहिए, परन्तु उनमें समानता बड़ी कठिनाईसे देखने पर, कभी-कभी, मिलती है। यह दुःखकी बात है। उनके जीमें जो आता है वे बकने लगते हैं। सब बातोंकी यहाँ चर्चा नहीं की जाती; केवल धर्म-विषयपर ही कहना है। सम्पादकोंकी धार्मिक विभिन्नताका दिग्दर्शन जहाँ चाहे वहाँ देखनेको मिल सकता है। शोकके साथ कहना पड़ता है, कि सम्पादक महाशय एकतरफ़ा फ़ैसला करनेमें कुशलता दिखाकर धर्मके झगड़ोंका विषहरा प्रवाह बहानेमें योग देते हैं। वे अपनी मानसिक दुर्बलताको आलोचना कहा करते हैं, और धर्मका अवसर पाकर बुरी तरह उसका प्रयोग करते हैं। "हाँ, यह कहा जा सकता है, कि सम्पादक अनुकूल धर्मको मानें। परन्तु यह कहाँका न्याय है, कि यदि दूसरे धर्मका व्यक्ति उससे कुछ पूँछताछ करता है, सम्मति लेता है या न्याय चाहता है, तो वह अपने धर्म को उस धर्मकी तुलनामें रखकर विना विचारे उलटी-सीधी कहने लगें या उन धार्मिक सिद्धान्तोंके सोचनेमें उच्छृङ्खलता दिखलावें। संसार एक बहुत बड़ी वस्तु है। जब उसकी किसी वस्तुको ईश्वर एक-सी नहीं रहने

देता, तब यह कब सम्भव हो सकता है कि हर एक धर्म एक-सा हो। जिन विचारोंको एक मनुष्य-समूह अच्छा मानता है, उन्हींको दूसरा मनुष्य-समुदाय बुरा। जब इसके निर्णयमें तुम्हें एकांगीयतासे काम लेना ही पड़ता है, तो तुम उसके निर्णयकी जवाबदारी ही अपने पर न लो। यह कहाँकी सभ्यता और उत्तमता है, कि तुम उसपर विना सोचे टूट पड़ो।

धर्मके मैदानमें प्रेमके बीज बोना सम्पादक-समूहके हाथमें है। भारतवर्षमें इस कार्यके करनेकी बहुत आवश्यकता है। समाजके सब अंग धार्मिक विचार विभिन्नतासे अस्त-व्यस्त हो रहे हैं। क्या हमारे साहित्यका सम्पादक-समूह कम-से-कम धार्मिक विचार-विभिन्नताके उद्गारोंको बार-बार प्रकाशित न कर, समाजको आपत्तियोंसे बचानेका प्रयत्न करनेकी दया करेगा ?

स्फुट प्रसंग *

२. भारतवर्षकी वर्तमान उच्च शिक्षा

देशकी शिक्षाका क्षेत्र, बहुत ही संकीर्ण रक्खा गया है, अनुकूल शिक्षापर अभी विचार ही नहीं किया जाता। वे भाव, जो उच्च शिक्षा से पैदा होना चाहिए प्रायः भारतवासियोंके हृदयमें पूर्ण रूपसे पैदा करनेका भरपूर अवसर ही नहीं मिलता। जिनके मस्तक देशकी शिक्षाकी वर्तमान अवस्थाको सरलतासे समझ सकते हैं उनसे यह बात छिपी नहीं है कि वर्तमान शिक्षा-प्रणाली क्या कर रही है और उसे यथार्थमें क्या करना चाहिए। हाँ, सम्भव है, एकांगीयताके कार्य करनेसे भलाई सोची गई हो, परन्तु प्रथम तो ऐसा करना नैतिक दृष्टिसे अनुचित है।

* भाग १, माघ शुक्ल १, १९७०; २७ जनवरी, १९१४; संख्या ११।

इसके सिवाय उस समय, जब देशके कार्यकारी युवकोंको अपनी आवश्यकता सोचते-सोचते, शिक्षाकी प्रतिकूलताका ज्ञान हो गया हो, शिक्षा विभागको चाहिए कि यदि वह पूर्ण रूपसे देशके अनुकूल शिक्षा देनेमें संकीर्णता दिखाना ही चाहता है तो कम-से-कम, शिक्षा-विभागके गूढ़ स्वार्थकी साधारण रक्षा कर, शिक्षा स्वातन्त्र्यके विचार, जो जीवित जातियों की दृष्टिमें कार्यकारी समझे जाते हैं, भारतवासियोंमें भी पहुँचा दे। और आत्म-सम्मान, सरल सहायता तथा नैतिक हानिके विचारसे एतद्देशीय भाषाओं द्वारा उच्च शिक्षा देना स्वीकार करे। साथ ही नैतिक विचारोंकी शिक्षाको उस कक्षामें पहुँचा दे, कि जिससे भारतीय ग्रेजुएटोंका चरित्र-संगठन ठीक रीति पर हो। आज कलकी उच्च शिक्षामें चरित्र-गठन कोई आवश्यक विषय नहीं है। नैतिक शिक्षा कोई आवश्यकीय शिक्षा नहीं है। और ऊँचे उद्देश्यों वाले होना ग्रेजुएटोंका कोई आवश्यक लक्षण नहीं माना गया है। भारतीय ग्रेजुएटोंकी बुद्धिपर जो बोझा लादा गया है उसको वे कई रीतिपर ढोनेकी चेष्टा तो करते हैं, परन्तु वह उनके उपयोगका बहुत कम रहता है। नैतिक शिक्षाका अभाव उन्हें योग्य ग्रेजुएट नहीं बनने देता। यही कारण है, जो आजकलके ग्रेजुएटोंसे, देश, जाति और साहित्यकी भलाईकी आशा करना तो दूरकी बात है, स्वयम् ग्रेजुएट भी विमल चरित्र हैं या नहीं, यह भी विचारणीय है।

अभी हालकी ताज़ी घटना है। पूनेमें एक वकील हैं। आप उच्च शिक्षा प्राप्त हैं। बी० ए० एल० एल० बी० हैं। अभी, आपको सेंध मारने और विश्वासघात करनेके कारण डेढ़ वर्षके लिए जेल जाना पड़ा है। साथ ही ५०० रुपया जुर्माना भी हुआ है।

सहयोगी 'सद्धर्म प्रचारक' कहता है कि "शिक्षित (उच्च शिक्षित) मनुष्यको ऐसे निन्दनीय अपराधमें सजा मिलना सचमुच बड़ी लज्जाकी बात है। इसीसे हम बार-बार कहते हैं कि धार्मिक शिक्षामें फेरफार करने-

की आवश्यकता है। विना नैतिक और धार्मिक शिक्षणका योग हुए ये खराबियाँ कभी नहीं निकल सकतीं।

इसमें सन्देह नहीं। धार्मिक शिक्षणपर तो हमें विशेष कहना नहीं है, पर नैतिक शिक्षण शिक्षाका एक भारी और आवश्यक अंग है। जिन्होंने अध्यवसायकर अपनेको देशके अनुकूल और उपयोगी बनाया है, उन्हींमें से कुछ ग्रेजुएट कार्यकारी हो सकते हैं, अन्य नहीं। हम कई साधारण पढ़े-लिखे मनुष्योंको ग्रेजुएटोंसे अधिक उच्च विचारशील पाते हैं। हमारे विचारसे तो वर्तमान शिक्षा-प्रणालीमें बहुत परिवर्तन करनेकी आवश्यकता है।

विश्वकी गति*

भारतीयोंका नेता

देशमें, जिस उदासीका हम अनुभव कर रहे हैं, वह बड़ी विकट दीखती है। भारतीयोंका समूह, करोड़ों आँखोंसे आँसू बहा रहा है, और यह देख रहा है कि इन रोनेवालोंका साथ संसारके वे हृदय भी दे रहे हैं, जिन्होंने भारतीयोंके इस नेताका लोहा माना है। भारतमें उगनेवाला उस दिनका मूल्य, जिस दिन इस ऋषिने मातृ-भक्तिकी वेदीपर अपने आपको एक साधारण अवस्थामें निर्भय और निश्छल होकर चढ़ा दिया था, आज समझमें आ गया है। और उस मूल्यमें मिलनेवाले देशके रक्तको ढूँढ़नेके लिए, तरसनेपर भी, विश्वास नहीं होगा कि भारतीय आकाशमें सूर्य भगवान्‌की वे सुनहरी किरणें फिरसे उठकर भारत माताके गर्भमें छुपकर बैठी रहनेवाली उस बालमूर्तिकी आँखोंको चकाचौंध करेंगी, जिसके हृदयपर प्रकाश डालनेसे लिखा मिलेगा—'माताके लिए बलि!'

---

* भाग २, चैत्र शुक्ल संवत् १९७२, मार्च, १९१५, संख्या १।

हमें महाभारतका कुछ हिस्सा याद है, जिसमें अर्जुनका स्वागत करनेके लिए द्रोणाचार्य प्रथम पैदा किये गये, ऐसा लिखा है। उसी भारतमें हम यह भी पढ़ते हैं कि आचार्य होकर भी द्रोण दुष्ट दुर्योधनकी राजमदसे अन्धी वेदीके गुलाम बनते रहते हैं। द्रोण वीर थे। इसीलिए उनकी शिक्षा पाकर अर्जुन विश्वके अकेले वीर कहलाये। बस, एक तरफ़ द्रोण थे, और दूसरी तरफ़ अर्जुन। अन्तमें ईश्वरीय न्यायका दिन आया। लोगोंने सोचा था कि इस बार अर्जुनको परलोकमें प्रथम पहुँचकर अपने गुरु-देवका स्वागत करना पड़ेगा। परन्तु बात वैसी नहीं हुई। आचार्य ही फिर भी अपने वीर शिष्यके स्वागतके लिए आगे बढ़े। और हमें विश्वास होता है कि उन्होंने उसकी अपेक्षा कुछ अधिक आदरसे स्वर्गमें अपने शिष्यका स्वागत किया होगा, जितने आदरसे उन्होंने शिक्षाके क्षेत्रमें, और रणके क्षेत्रमें अपने वीर शिष्यका स्वागत किया था।

यही घटना घट बढ़कर श्री गोखलेका भी साथ देती है। और हमारा विश्वास है कि श्री रानाडेने, विजयके जयमालधारी, अपने वीर शिष्यके स्वागतमें द्रोणाचार्यसे कुछ अधिक तत्परता दिखायी होगी।

यह सब कुछ हो गया। जिस तरह देशमें दुःखका स्रोत बह रहा है, देखते-देखते उसी प्रकार भारतीय धीरज भी धर लेंगे। परन्तु, हम ऐसे उपकरणोंको कमज़ोर देखते हैं, जिनसे भारतमाताको धीरज होगा। वह व्याकुलहृदया पुकारकर पूछ रही है, "बताओ तुममेंसे कौन मेरे आँसू पोंछनेके लिए मेरे भविष्यकी वेदीपर चढ़ेगा? तुममेंसे कौन मेरा हाथ थामेगा? और कौन होगा तुममेंसे वह, जो मेरी बगलमें अपनेको 'बलि' कर खड़ा होगा?

हम नहीं सोच सकते कि इस समय नवयुवकोंसे हम क्या पूछें? क्या यह पूछें कि बताओ, वे मंगल मूर्तियाँ कहाँ हैं, जो माताकी आज्ञापर सब कुछ देनेके लिए आगे आ रही हैं?

मध्यप्रदेश सबसे पीछे क्यों है ?

विश्वकी अनेक जातियोंको अवनतिमें पड़ा देख, यह अनुमान सहज ही हो सकता है कि मानव समाजमें अभी उन्नतिकी कितनी आवश्यकता है। एक शहरका यदि एक मोहल्ला भी मैला-कुचैला रहे तो शहरमें एक भयानक संक्रामक रोग फैल जाता है, जिससे हज़ारों प्राणी मर जाते हैं और जिसका दुष्फल शहर भरको भोगना पड़ता है। जापानमें एक भारतीय छोकड़ा कोई पुस्तक चुरा लाया। फल यह हुआ कि उस विद्यालयमें भारतके विद्यार्थियोंको पुस्तक न देखनेका नियम बन गया और इस प्रकार एक व्यक्तिकी मूर्खताका फल समूचे देशको भोगना पड़ा। एक परिवारमें एक बच्चा रोगी हुआ। उसके मरनेसे पिताका जीवन चिन्तामय हो गया और घरभरमें उदासी छा गयी। बस, ठीक इसी तरह देशकी औसत उन्नतिका हिसाब प्रत्येक प्रदेश ही को नहीं, प्रत्युत प्रत्येक नगर और गाँवको देखकर लगाना पड़ेगा। और जबतक एक भी गाँव किसी वज़नदार नीचताका दास रहेगा, तबतक हम नहीं कह सकते कि देशकी स्थायी उन्नति हो रही है।

हमारे देशकी उन्नतिका विचार करते समय, वे लोग जो प्रत्येक प्रदेशकी कार्य-प्रणालीको आलोचक दृष्टिसे देख रहे हैं, कह सकेंगे कि भारतकी वास्तविक उन्नति होनेमें अनुन्नत कितने भारी अंशोंमें कारणभूत हुए हैं। अकेले बंगालके उन्नत होनेसे देश उन्नत नहीं कहा जा सकता। चाहे उसकी गोदीमें देवेन्द्र जैसे ऋषि, रामकृष्ण जैसे महात्मा, विवेकानन्द जैसे साधु, सुरेन्द्र जैसे वक्ता, जगदीशचन्द्र जैसे वैज्ञानिक, रमेशचन्द्र जैसे राजनीतिक और रवीन्द्र जैसे कवि ही क्यों न खेल चुके, या खेल रहे हों। अकेले महाराष्ट्र प्रान्तके बढ़ जानेसे भी भारत बढ़ा हुआ नहीं कहा जा सकता। फिर चाहे उसने रामदास जैसे समर्थ, शिवाजी जैसे वीर, रानाडे जैसे महामति, तिलक और गोखले जैसे नेता, चन्द्रावरकर और भण्डारकर

जैसे न्यायमूर्ति, और रवि वर्मा और म्हातेरे जैसे कलाकुशल ही क्यों न पैदा कर लिये हों ? इसी प्रकार अकेले गुजरात, पंजाब, मद्रास और मध्य-भारत आदिके बढ़ जाने मात्रसे ही भारतवर्षको उन्नत नहीं कहा जा सकता। भारतकी उन्नति होनेके लिए उसकी औसत उन्नति होनेकी बहुत बड़ी ज़रूरत है। केवल हिन्दू, मुसलमान और क्रिस्तानोंकी उन्नति ही उन्नति न कही जायगी। भारतको उन्नत कहनेके लिए गोंड़, भील और कोलोंको भी उन्नत करना पड़ेगा। ऊँचे धर्मोंके माननेवाले होनेके कारण ही कोई तबतक भारतकी उन्नतिका दम नहीं भर सकता जबतक देशके कोनोंमें चोरी, जुआखोरी, अत्याचार, पाप और पशुता करनेवालोंका दल देशमें अपना व्यवसाय आनन्दित चला रहा है।

ठीक इन्हीं आँखोंको कोई देशके प्रदेशोंको देखनेके लिए ले जाय तो वह देखेगा कि भारतके सब प्रान्तोंसे मध्यप्रदेशका आसन कितना नीचा है, कि जिसे देखकर यहाँके रहनेवालोंको वर्तमान भारतकी सन्तान कहने-वाला अपनी जीभको दबाकर रह जाता है। राजनीतिक क्षेत्रमें इस प्रदेश-का कोई भी नेता ऐसा नहीं है जिसे कौंसिलमें देखकर हमारा हृदय कुछ धीरज धरे। दुःखकी बात है कि उन ऊँचे पुरुषोंमेंसे, जिन्हें देखकर भारत अपनेमें जीवन समझता रहा है और अब भी अपनेमें जीवन समझता है, एक भी मध्यप्रदेशका पैदा किया हुआ रत्न नहीं है। क्या मध्य-प्रदेशीय छातीपर हाथ रखकर कह सकते हैं, कि उनके यहाँ वर्तमान युगपर काम करनेवाला एक भी ऐसा मनुष्य है जिसकी भारतकी जाती-यतासे वैसा ही सम्बन्ध है, जैसा तिलक, गोखले, गाँधी, सुरेन्द्र, लाजपत राय, मदनमोहन मालवीय आदिका ? क्या भारतकी धार्मिकतापर काम करनेके लिए मध्यप्रदेशने देवेन्द्रनाथ, राममोहन राय, रामतीर्थ, रामदास, विवेकानन्द और गुरु गोविन्द सिंह जैसा एक आध सपूत पैदा किया है ? भारतके साहित्य क्षेत्रमें अंगुलियोंपर गिने जानेके लिए क्या

मध्यप्रदेशने तुलसीदास, सूरदास, रानाडे, इच्छाराम, सूर्यराम देसाई, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, चिपलूणकर, रवीन्द्रनाथ और रमेशचन्द्र जैसा वीर पैदा करनेका यश प्राप्त किया है ?

हम नहीं सोच सकते कि मध्यप्रदेशका जलवायु इतना हतवीर्य क्यों है ? पीछे रहकर मध्यप्रदेश अपने लिए ही हानि नहीं कर रहा है, प्रत्युत भारतवर्षको सदासे एक गहरे गड्ढेकी ओर खींचे हुए है। उसका अपराध प्रान्तीय नहीं, प्रत्युत सर्वदेशीय अपराध है। जिस देशकी वायुमें महात्मा, वीर और विज्ञानी पैदा करनेकी ताक़त है, हम नहीं जानते कि उस देशका कोई हिस्सा ऐसी विभूतियोंके पैदा करनेमें क्यों मुर्दा पड़ा है ?

हमारी प्रार्थना है कि आज इतने ही से सन्तोष मानकर देशवासी इस प्रश्नपर अपने विचार निश्चित करें। यह प्रश्न प्रान्तीयता पैदा करनेके लिए नहीं, प्रत्युत राष्ट्रीयताके एक आवश्यक अंशपर प्रकाश पहुँचानेकी इच्छासे देशके सम्मुख रक्खा जाता है।

विश्वकी गति*

भाषाकी दुर्दशा नहीं, देशकी दुर्दशा

भाषा देशकी आवाज़ है, परदेशकी नहीं। पंजाबके किसी नगरमें आग लगी कि "दौड़ो, बचाओ, पानी लाओ"की आवाज़, बंगालीमें नहीं, और उड़ियामें नहीं, पंजाबीमें सुनाई देने लगी। दक्षिणके इगतपुरी या पूना नगरमें रोगी बीमार हुआ, अशक्तता बढ़ी, व्याकुल हो गया और उसने "अरे राम रे" कहकर कराहना शुरू किया; पर वह मराठीमें, फ्रेंच या जर्मनमें नहीं। गुजरातमें अकाल पड़ गया, वहाँके लोग मारे-मारे फिरने लगे, और अपनी दशाके चित्र गुजराती गीतोंमें गा-गा कर सुनाने लगे। मध्य भारतके किसी कोनेमें ओले गिरे, कृषिका नाश

---

* भाग २, वैशाख शुक्ल संवत् १९७२, अप्रैल १९१५, संख्या २।

हो गया, सब किसान अपना रोना अपने राजाके सम्मुख रोने गये, और उन्होंने, अपनी भाषामें अपनी राम कहानी अपने राजासे कह सुनाई। बस, इस तरह, देशके जिस कोनेसे सच्ची आवाज़ आई, वह उसी कोने-की बोलीसे आई, और जिस नर दानव समूहने उस आवाज़के सुनने और समझनेमें उपेक्षा दिखाई, हम सच कहते हैं, उसने, देशके व्याकुल हृदयोंसे निकली हुई सच्ची आवाज़ न सुन पाई।

सुनने हीके लिए क्यों, कहनेके लिए, देशके अंगोंसे कुछ कहनेके लिए भी, देशके उसी अंगकी आवाज़की ज़रूरत है। यदि तुम चाहते हो कि तुम्हारी बातें, गुलामीके उम्मीदवारोंका कुछ समूह नहीं, पर उसे देश समझे, तो लिख लो, "संसारमें ऐसा देश नहीं जो अपनी भाषामें आये हुए सन्देशको समझनेमें विलम्ब करे, और दूसरी आवाज़में आये हुए सन्देशको भरपूर समझ सके।"

पर, भारतके लिए बरसोंसे इसके प्रतिकूल हो रहा है। जिसे लोग ऊँची शिक्षा कहते हैं, उसे हमारे देशके बच्चोंको, दूसरी भाषा, राज भाषा, अंगरेजीमें पानी पड़ती है। बेटा पढ़ता है, पर बाप पढ़ा-लिखा चतुर और विचारशील होनेपर भी नहीं जानता कि हमारा सपूत क्या पढ़ता है? अरे भाई, वह उस जबलपुरकी प्रसिद्धता घोख रहा है, जिसे तुमने और तुम्हारे बेटेने बीसों बार देखा है। वह इस सबक़को परसोंसे याद कर रहा है, पर दुःख है, "एक्चुएलवर्ड्स" याद नहीं रहते। बस, इसी तरह सब विषयोंका हाल है। विज्ञान पढ़ो तो अंगरेज़ीमें, गणित पढ़ो तो अंगरेज़ीमें, इतिहास पढ़ो तो अंगरेज़ीमें। फिर अंगरेज़ी भी कैसी? वैसी ही, जैसी खानसामोंके मुँहसे निकला करती है। कुँवर साहब अंगरेज़ीकी मैट्रिक क्लासमें पढ़ते हैं, एक, दो नहीं पूरे सात वर्ष अंग-रेज़ी पढ़नेमें बीते हैं। पर, "सोशियालिज्म" "मनोपली" और एन्थो-जियोस्टिकके हिन्दी माने तथा, सज्जनता, उथल-पथल और मातृत्वके

अंगरेज़ी माने याद नहीं। बस, गिने-गिनाये थोड़ेसे शब्द रट रखे हैं। यह बाहरकी बात नहीं, घरकी है, आँखों देखी है और याद भी कैसे हो? साइन्स पढ़ना है। पढ़ना प्रारम्भ किया। आज दो पेजके माने छाँट डाले। कल उन्हें याद किये। परसों अर्थ जमाया ही था कि बस, दूसरे, सबक़का दिन आ गया। शब्द चूल्हेमें गये, अर्थ भट्टीमें गया रटना हाथ रहा, सिरमें थोड़ा बहुत ख़ून रहा तो रट लिया, नहीं तो "जय जगदीशकी।" न अंगरेज़ी सुधरी, और न विषय ही याद रहा। क्लासमें बैल जैसे जाकर खड़े रहे और "मास्टर साहब" जो जीमें आया बक चले। बीचमें कहीं एकाध बार पूछा समझे? तो क्लासकी क्लासने उत्तर दे डाला "यस सर", मानो सब बृहस्पतिके नाना पढ़ने आये हैं। जहाँ कोई पूछ बैठा कि औरंगजेबका शासन वर्णन करो, तो बस, बकचले शक्करका शासन। दुनिया जिसे रात कहे, आप उसीको दिन कह चले। समझे तो कुछ थे नहीं, रट डाला था। जो याद था, उगल दिया। फिर चाहे वह स्याह हो, चाहे सुफ़ेद। यह है भारतकी उच्चशिक्षाकी दशा। किसका कलेजा पत्थरका है जिसे इस हालतपर तरस न आवे? सरकार रुपया ख़र्च करती है, प्रोफेसर और मास्टर सारा ज्ञान औंधा डालते हैं, लड़के रटते-रटते जनाने और दीवाने हो जाते हैं पर हाथमें कुछ भी नहीं रहता।

सारा संसार पुकारता कि किसी भी देशको शिक्षा दो तो उसी देशकी भाषामें दो। देशके ऊँचे मस्तिष्कोंकी यही सम्मति है। अन्य लोगोंकी भी यही सम्मति है। भला ऐसा कौन मूर्ख होगा, जिसकी यह सम्मति न हो। कुछ दिन हुए तब भारतके वाइसराय श्रीमान् लार्ड हार्डिंग्जसे म० मुंशी रामजी मिले थे। आपने बातों बातोंमें पूछा कि भारतकी शिक्षा किस भाषाके द्वारा होनी चाहिए? आपने कहा कि वाइसरायकी हैसियत से नहीं, एक साधारण मनुष्यकी किसी हैसियतसे तो मेरी सम्मति है कि किसी भी देशकी शिक्षा वहींकी भाषाओंके द्वारा दी जानी चाहिए। इसे पढ़ें

वे सठियाई हुई मतिके बकवादी बूढ़े, जिन्हें तुर्किस्तानमें जापानी पढ़ाने-का फतवा देते संकोच नहीं होता।

अभी कुछ दिन हुए भारतकी "कौंसिल"में भी यह बात पहुँची थी। मद्रासके राय निंकर महाशयने सरकारसे स्वीकार कराना चाहा था कि भारतकी शिक्षा देशी भाषाओंके द्वारा हो। रहस्य तो हमें ज्ञात नहीं। पर, सरकारकी ओरसे कोई विरोध नहीं हुआ। सरकारके शिक्षा सदस्य सर हार कोर्ट बटलरने इस सिद्धान्तकी उपयोगिता स्वीकार की थी। पर भारतमें औंधी अकलके "लीडर" कहलाने वालोंका अभाव नहीं है। हर कोईने जोर-शोरका विरोध किया। बंगालके "हमारे विजय घोषक वक्ता" सुरेन्द्रने विरोध किया और नागपुरके मि० दादाभाईने भी, जिन्हें कौंसिलमें पहुँचानेके लिए मध्यप्रदेशके लोगोंने श्रद्धासे वोट लिये थे, इस प्रस्तावका विरोध किया। और भी कितने ही कठपुतलोंने विरोध किया। प्रजाकी भलाईका और सरकारके यश तथा सौभाग्यका दिन कुछ कम सोचने वाले सलाहकारोंकी कृपासे न उग सका।

अब देशके करोड़ों बालकोंको अपने नेताओंको शुभाशीर्वाद देना चाहिए। और फिर सब विषयोंको अंगरेजी होमें घोंटना चाहिए चाहे फिर वे याद हों, चाहे नहीं, चाहे एक बरसके काममें पाँच बरस तक मिट्टी-पलीद हों।

भारतके सपूत कौंसिलरोंने, देशके बालकोंका गला घोंटकर जो अप-राध किया है, उसका प्रायश्चित क्या होना चाहिए, सो कहना कठिन है। पर देशके विधाताओंको इसे एक उपयोगी प्रस्ताव समझना चाहिए। कहते हैं, प्रान्तीय सरकारें इस विषयपर कुछ सोचेंगी। आँखें उस ओर लगी हैं। देखें, क्या होता है। यदि वहाँ भी देशके बालकोंपर योंही वज्र-पात हुआ तो बस 'हरि इच्छा।'

'सरस्वती' कहती है: "धनवान् चाहें तो एक हाई स्कूल खोलकर सारी शिक्षा अपनी ही भाषामें देनेका प्रबन्ध कर सकते हैं। उनका

दिखाया हुआ इस तरहका नमूना विपक्षियोंकी दलीलोंका प्रभावशाली उत्तर होगा। "पर उसे इस बातका विश्वास नहीं। धनवानोंका समूह भारतमें विचारवान् नहीं। इसीलिए उसने अन्तमें धनवानोंसे निराश होकर कह दिया है कि "न नौ मन तेल होगा, न राधा नाचेंगी"। देखते हैं कि देशमें कोई जीवित धनवान् है क्या, जो इस निराशाको आशामें परिणत करे। पर आशामें परिणत होने पर भी जब हाथीके पाँव, चारकी जगह दो ही कहे जायेंगे तब विरोधियोंका सामना करनेके लिए क्या किया जायगा ? क्या देशमें ऐसी घटनाएँ नहीं घटीं।

इस प्रस्तावका विरोध करने वालोंने देशकी भाषाओंकी ही दुर्दशा नहीं की है, प्रत्युत देशके कई करोड़ बालकोंके जीवनपर वज्र गिराकर, देशकी दुर्दशा की है। यह बात देशके प्रत्येक व्यक्तिको अपने हृदयपर लिख लेना चाहिए। "मार्डन रिव्यू"की दलीलें इस विषयमें ध्यान देने लायक हैं पर यदि कोई भला आदमी कृपा करके, उन्हें देखना पसन्द करे।

खुलकर लिखो

इसमें सन्देह नहीं कि हिन्दी भाषाका मासिक साहित्य एक बेढंगे और गये-बीते ज़मानेकी चाल चल रहा है। उस लेखकका कहना बहुत सच है जो लिखता है कि यहाँ बरसाती कीड़ोंके समान पत्र पैदा होते हैं। फिर, यह सन्देह क्यों कि वे शीघ्र ही क्यों मर जाते हैं ? यूरपमें हर एक पत्र अपनी एक निश्चित नीति रखता है। हिन्दीवालोंको इस मार्गमें नीति-की गन्ध भी नहीं लगी। यहाँवाले जीमें आते ही, हमारे समाज पत्र निकाल बैठनेवाले हुआ करते हैं। उनका न कोई आदर्श और उद्देश्य होता है, और न ये अपना कोई दायित्व सोचते हैं। यहाँके कई मासिक पत्र अपनेको समयका दुश्मन बनाये रहते हैं, और कोई अपनेको साहित्य-संसारका विधाता मानकर न जाने क्या-क्या किया करते हैं ? इसी कारणसे

उसके बनाये मार्गको उनके पीछे आनेवाले ढूँढ़ा ही करते हैं। परन्तु, जब वे कोई मार्ग बनावें तब तो मिले, नहीं तो मिले कहाँसे? जिसे साहित्य संसारकी नाकमें अपनी नकेल पहिनानेकी मनहूसी सूझती है, बस, वही, सम्पादक और प्रकाशक बनकर अपनी हविस पूरी किया, और साहित्य संसारको, अपने 'पवित्र चरणोंका नम्र सेवक' बनवा लिया चाहता है। कुछ लोगोंको, इस रास्तेमें नादिरशाही सूझ जाती है, और वे अपनेको शाही घरानेके शाह समझकर, जो जीमें आता है, करने लगते हैं। ऐसे लोग अनुभव नहीं करते कि सर्वसाधारण इनके इस पवित्र प्रकाशसे काला हुआ जाता है। एक लेखकने, एक पत्रमें, डरते-डरते 'हमारे मासिक पत्र और उनके सम्पादक' महाशयोंसे कुछ कहा है। परन्तु हम कहेंगे, लेखकसे कहते नहीं बना। किसी लेखक और सम्पादकके मूल्यमें तबतक कोई अन्तर नहीं, जबतक समयकी छातीपर किसी सम्पादकने अपनी कार्यप्रणालीको पत्थरकी लकीर न बना दिया हो। और इसलिए हम उन लेखकोंको, जो हिन्दी मासिक साहित्यकी तीखी आलोचना होनेके पक्षमें हों, और जिनका हृदय किसी दुमदार सितारे या साहित्याचार्यसे डर जानेवाला न हो। यह सूचना दिया चाहते हैं कि अपने समाजके मानसिक पेटमें यदि कूड़ा-करकट नहीं भरना चाहते हैं, कि अपने तो इन समाजके शत्रुओंकी तीखी आलोचना करनेसे कभी न चूको। हाँ, इस बातका ध्यान रक्खो, कि कहीं वह आलोचना ही कूड़ा-करकटका रूप न हो जाय, जैसी बहुधा आजकल हो जाया करती है। लोकमतका काम है कि वह प्रतिवादके डण्डोंसे उचित मार्गमें अपने नेता, सुधारक और सम्पादकोंके सिर झुकवा ले। जो स्वतन्त्रता और स्वत्वरक्षाकी ऐसी घटनाओंको नहीं सोचना चाहते, कि या उनपर कुछ कार्य नहीं किया चाहते, उन्हें हमारे विचारसे, राजनैतिक स्वाधीनताका सपना देखना भी पाप है। हमारा अनुरोध है, कि तुम अन्यायों, अत्याचारों और भूलोंके सम्बन्धमें जो कुछ लिखना हो, वह दबकर नहीं, खुलकर लिखो। तुम्हारे पत्रोंके

सम्पादकोंका विद्वत्ताका ज्वर तभी शायद उतरेगा। क्या वे अपनी मूर्खता की औषधि, उसी दिन प्रारम्भ करेंगे?

कुलियोंका भेजा जाना *

गर्मीके दिनोंमें, भारतके कई प्रान्तोंमें मई और जून महीनेकी छुट्टियाँ रहती हैं। ये छुट्टियाँ स्कूलों और कालेजोंको रहती हैं, और दीवानी कचहरियोंको भी। अन्य प्रदेशों या नगरोंके लोगोंके समान, पूनेके निवासी इस छुट्टीके समयको व्यर्थ नहीं जाने देते। उन्होंने कुछ वर्षोंसे, इन छुट्टियोंके दिनोंमें व्याख्यानोंका प्रबन्ध कर लिया है। कई विद्वान् वक्ता, अपने-अपने विषयोंपर, वहाँ आकर व्याख्यान दिया करते हैं। और नगरके लोग उन्हें सुनकर अपना ज्ञान बढ़ाया करते हैं। इन व्याख्यानोंके क्रमका नाम है, वसन्त व्याख्यानमाला। व्याख्यान नैतिक, राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक आदि सभी विषयोंपर होते हैं।

इसी वसन्त व्याख्यानमालामें तारीख़ १५ मईको, आसामकी ग़ुलामी-पर धूलियाके वकील श्रीयुत् जावड़ेकर महाशयका भाषण हुआ। आपका कथन है कि 'आसामको मध्यप्रदेशसे बहुत मज़दूर जाते हैं। जिस रिपोर्ट-मेंसे मैं यह संख्या दे रहा हूँ, उसमें यह नहीं बताया गया कि इन गये हुए मज़दूरोंमेंसे कितने वापस आते हैं।' इसके बाद आपने आसाम जानेवाले मज़दूरोंको क्या-क्या कष्ट होते हैं, यह दिखलाया। आपका भाषण समाप्त होनेपर एक महाशयने, 'फीजी द्वीपमें मेरे २१ वर्ष' नामक हिन्दी पुस्तक-का एक भाग पढ़कर सुनाया।

हम यह लिखकर मध्यप्रदेशकी दशापर उसके सपूतोंका ध्यान खींचते हैं। क्यों कि अधिकतर 'कुली' मध्यप्रदेश हीसे भेजे जाते हैं? अन्य प्रान्तोंमें तो इन कुलियोंकी रक्षा करनेके लिए लोगोंकी ओरसे कुछ प्रयत्न

---

* भाग २, संख्या ३, ज्येष्ठ संवत् १९७२।

भी हो रहा है, परन्तु मध्यप्रदेशमें कुछ नहीं। इसके सिवाय भारतमें इस मार्गमें कार्य करनेवालोंको यह एक नया पता मिल गया। उन्हें भी इस ओर मुँह फेरना चाहिए।

देशकी रक्षाके लिए दौड़नेवालोंसे हम पूछते हैं कि प्रथम यह तो बताओ कि आपत्तियोंकी झपटसे देशको नहीं, केवल अपने समाजको बचानेके लिए यहाँ क्या यत्न किया जा रहा है? एक धनवान या विद्वान्, अपनी आरामकुरसीपर पड़े-पड़े एक बार यह विचार अपने चित्तमें लावे कि 'यदि मैं कुली बनाकर बेचा गया होता तो'? इस प्रश्नका उत्तर उनके हृदयपर कुली प्रथाके परिणामोंका चित्र खींच सकेगा, और वे इस कुली प्रथाका अनुभव कर सकेंगे।

विश्वकी गति*

यह क्या कर रहे हो?

किसी भी देश या समाजकी दशाका वर्तमान इतिहास जानना हो, तो वहाँके किसी सामयिक पत्रको उठाकर पढ़ लीजिए, वह आपसे स्पष्ट कह देगा। राष्ट्रके संगठनके कार्यमें, पत्र जो कार्य करते हैं, वह किसी उपकरणसे होना कठिन है; यही कारण है कि इंगलैण्डमें डब्ल्यू० टी० स्टेड और जर्मनीमें आगस्टशर्ल पूजे जाते हैं। उन्होंने इंगलैण्ड और जर्मनीको जीवन दिया है। और अपनी आत्मामें आये हुए जगदीश्वरके पवित्र सन्देशको अपनी जातिकी आत्मामें भर दिया है। साहित्यकी उन्नति, समाजका सुधार, तत्त्वोंकी चर्चा, विज्ञान और आविष्कारोंकी बढ़ती, नैतिक दाँवपेच और कर्तव्य और अधिकारोंकी गहरी छानबीन, जो पत्रों द्वारा होती है, वह किसी दूसरे उपकरणसे होना कठिन है। पत्र प्रजाके प्रतिनिधि हैं और राजाके मन्त्री। वे धनवानोंके सलाहकार हैं और ग़रीबोंके

---

* भाग २, आषाढ़ संवत् १९७२, संख्या ४।

मददगार। वे सुखियोंको सावधानता देनेवाले हैं, और दुखियोंको बल। वे बलवानोंको विद्या देनेवाले हैं, और विद्वानोंको बल। पत्र लोकमतकी आत्मा हैं, और गवर्नमेण्टके कार्य पथका नक़शा। वे विद्वान् बनकर उपदेश देनेवाले हैं, न्यायाधीश बनकर न्याय करनेवाले हैं, साधु बनकर धर्मपर बढ़नेवाले हैं, वकील बनकर लड़नेवाले हैं, दूत बनकर सन्देशा पहुँचानेवाले हैं और सेवक बनकर सेवा करनेवाले हैं। ऐसी दशामें कहना पड़ेगा कि पत्र ही, फिर चाहे वे दैनिक हों, साप्ताहिक हों या मासिक, देशकी ज़ोरदार आवाज़ हैं। और उसे न सुनना, उस आवाज़को रोकना, या उस आवाज़की उपेक्षा करना, देशके मुँहपर पत्थर रखना है, और उन्नतिके पैरोंमें बेड़ियाँ पहिनाना है।

भारतवर्षमें पत्रोंकी संख्या कम नहीं है। बंगालसे पत्रोंकी खासी संख्या प्रकाशित हो रही है, और वहाँ पत्रोंने क्या किया है, इसे देखनेके लिए, बंगला साहित्यकी उत्तमतापर एक बार सरसरी दृष्टि डाल देनेकी ज़रूरत है। मराठी साहित्य-संसार भी अपने क़दम अच्छी गतिसे आगे बढ़ा रहा है, और गुजराती जगत् भी। अंग्रेज़ीके पत्रोंका समूह भी खासी उन्नति कर रहा है। उर्दूके पत्रोंको अपने सहायकोंसे जो सहायता मिलती है, वह किसे ज्ञात नहीं? पर हिन्दी संसारकी ऐसी दशा नहीं है। हिन्दी संसारमें जितने बड़ी-बड़ी बातें मारनेवाले हैं, और अपनेको महत्ताका अवतार समझनेवाले हैं, उतने काम करनेवाले नहीं। यही कारण है कि हिन्दी संसार एक रोगीके समान हो रहा है। लोग कहते हैं कि हिन्दीके बोलनेवाले बारह करोड़ हैं, और उसके समझनेवाले साढ़े इक्कीस करोड़। पर इस गिनतीके गिना देने मात्रसे क्या होगा? यह गिनती गिनाना तो वैसा ही है जैसा यह कहना कि किसी महलमें कई करोड़ पत्थर हैं। हिन्दी जगत्में कार्य करनेवालोंका टोटा है। यही कारण है कि आज हम कई काम करनेवाले पत्रोंके बन्द होनेका दुःखमय संवाद सुनाते हैं।

'सद्धर्म प्रचारक' बन्द हो गया, 'प्रभात' बन्द हो गया, 'उषा' बन्द हो गयी, दैनिक 'अभ्युदय' बन्द हो गया। (और भी कितने ही पत्र बन्द हो गये) और इन सबकी हत्याका पाप उस हिन्दी संसारकी गोदकी शोभा बढ़ा रहा है, जिसकी संख्या, भारतकी पूरी संख्याका तीसरा भाग है। जिसकी भाषा भारतकी राष्ट्रभाषा है। जिसकी गोद सूर, तुलसी और हरिश्चन्द्रसे सुशोभित हो चुकी है।

पर, इस दोषके दोषी वे लोग ही नहीं हैं जो पत्र खरीदकर नहीं पढ़ते, अधिक अंशोंमें वे लोग भी हैं जो पत्र सम्पादित करते हैं, और प्रकाशित करते हैं। उनमें अपने लोकमतकी आत्मामें पहुँचनेकी सामर्थ्य नहीं। वे अपनी परिस्थितिको इतनी गन्दी और निकम्मी बनाये रहते हैं जिससे उनके आदर करनेवालोंका समूह नहीं बढ़ता।

साहित्यका महँगापन, हमारे साहित्यका पहला दोष है। बंगला भाषामें 'प्रवासी' तीन रुपये छः आनेको मिलता है। जिसमें हमारे यहाँके बड़े-बड़े मासिक पत्रोंसे ड्योढ़े दूने या इससे भी अधिक पन्ने होते हैं। साथ ही, चित्रोंकी संख्या, अनुकूलता और सामयिकताको साथ लिये हुए बहुत होती है। एक दो रंगीन चित्र भी रहते हैं। यदि कोई कहे कि अन्य भाषाओंके पत्रोंको उतनी सुविधा है, पर हमें नहीं, तो यह बेहूदा दलील है। क्यों नहीं उतनी ही सुविधाएँ प्राप्त करनेके लिए यत्न किया जाता। मराठीमें अभी-अभी एक 'सन्देश' नामका दैनिक पत्र प्रकाशित हुआ। बस, बातकी बातमें उसके ग्राहकोंकी संख्या हज़ारों पहुँच गयी। क्यों? क्योंकि उसमें हिन्दीके दैनिकोंसे, बिलकुल छोटे टाइपमें छपनेके कारण दूना और किसी-किसीसे तिगुना तथा चौगुना सामान पढ़नेके लिए पहुँचता है, तिसपर भी उसका वार्षिक मूल्य ६ रुपये है। साथ ही उसमें जो कुछ लिखा जाता है, वह ऊँचे मस्तिष्कसे निकला हुआ रहता है, और हृदयकी आवश्यकताओंको पूरा करनेवाला रहता है। यही हाल सब पत्रोंका है।

दूसरा दुर्गुण हमारे यहाँ मनमाना बकनेका है। हमारे यहाँके पत्रोंका न कोई आदर्श है, न कोई उद्देश्य। जिनका कुछ आदर्श और उद्देश्य है भी, उनकी संख्या गिनाई जानेके योग्य नहीं। यहाँ फागुनमें कजलियाँ गाना और सावनमें फाग उड़ाना एक साधारण बात है। पत्र निकाल बैठनेवाले ही यहाँ दीमककी तरह बढ़ रहे हैं, पर अपने दायित्वको समझने और पूरा करनेवाले नहीं। हमारे यहाँके पत्र लेखकी उत्तमताके विचारसे लेख प्रकाशित नहीं करते, वे लेखककी उत्तमताको देखा करते हैं। वे सामयिक बातोंकी परवाह नहीं करते, नामधारी लेखकोंकी प्रतीक्षा किया करते हैं। और उन्होंने जो कुछ सफ़ेदपर स्याह किया उसीको छाप देते हैं। विषयकी उपयोगितापर वे विचार ही नहीं करते। यह सब जानते हैं कि व्यापार, कृषि और शिक्षापर आज आन्दोलनकी ज़रूरत है। पर हमारे पत्र इस ज़रूरतको कुछ नहीं समझते। उन्हें न जाने क्या-क्या सूझता है। यहाँ नकलका बाज़ार बड़ा गर्म है। एक पत्र यदि ऊँचे दर्जेके साहित्यिक लेख प्रकाशित कर रहा है तो लगे सब उसी चालसे चलने। मानो भारतका जन-समूह, व्यास और वाल्मीकि आदिसे भरा है। साधारण विषयोंसे उन्हें घृणा-सी है। क्योंकि ऐसा करनेसे उनके पत्रकी इज्ज़त घटती है। पर इन समयके शत्रुओंको यह ज्ञात नहीं कि विषय वही अच्छा है, जिससे देशके पैरोंमें बल पहुँचे, और पाठकोंके हृदयमें कर्तव्यकी स्फूर्ति आवे। फिर चाहे वह कितना ही साधारण क्यों न हो, ऊँचे विषयोंका ढेर लगानेकी ज़रूरत नहीं है, जितनी समयके अनुकूल विषयोंके लिखनेकी। इसके सिवाय प्रत्येक विषय ऊँचा हो सकता है। केवल मस्तिष्क चाहिए। दूसरोंके ऊँचे विषय चुरा लेने या नकल कर लेनेकी ज़रूरत नहीं। यही कारण है कि लोगोंकी समझमें इनका बेढंगा राग नहीं आता, और इनका सब प्रयत्न मिट्टी हो जाता है। ऐसी और कई बातें हैं, जिनपर फिर कभी लिखना ठीक होगा।

पर इतने हीसे यह समझना ठीक नहीं है कि सब दोष पत्रोंका ही

है। हम पत्रोंका महत्त्व ऊपर कह चुके हैं। जिन पढ़े-लिखे लोगोंने, अपनी भाषाके पत्रोंको न खरीदनेका दोष है, वे देशकी दशाके बिगाड़नेके अपराधी हैं। विचारनेकी बात है कि प्रत्येक गृहस्थका बहुत-सा धन फ़िजूलखर्चीमें चला जाता है। नशा और अनाचारमें भारतवर्ष करोड़ों फूँक देता है। वस्त्रोंकी चटक-मटक और शौक़ीनीमें बहुत-सा धन व्यय होता है। जिस देशमें ७ रु० का जूता पहिनने वाले और चार या छै रु० पाखानोंका टैक्स देने वाले रहते हैं, वहींके लोगोंमें दो-चार रुपया खर्च करके जीवनको सुधारनेका और अपना, अपनी सन्ततिका, अपनी स्त्रियोंका, अपनी खेतीका, अपने व्यापारका, अपनी भाषाका, अपने देशका, भला करनेवाले पत्रोंको खरीदकर, पढ़नेवाले नहीं रहते। हमारे विचारसे तो प्रत्येक ग़रीबसे ग़रीब आदमीको अपना पेट काटकर कमसे कम, एक साप्ताहिक या मासिक पत्र मँगाकर पढ़ना चाहिए। कुछ दिनों बाद वह देखेगा कि पत्रके उपदेशोंने उसे कितना पापोंसे बचाया, कर्ज़ न करने दिया, बुद्धि बढ़ाई, हिकमतें बतलाईं, दुःख हटाया। और कई ज़रूरी बातें समय-समयपर समझाईं और जो पढ़े न हों, उन्हें पढ़ना सीखना या पढ़वाकर सुनना चाहिए। दो चार पत्रोंका पढ़ना किसी साधारण गृहस्थके लिए कठिन नहीं है। यह सत्य मानिए कि यदि हिन्दीके जीवित पत्रोंकी आप इसी प्रकार एक-एक करके हत्या होने देंगे, और अपने उद्धारके मार्गमें आगे न बढ़ेंगे, तो आप थोड़े दिनोंके बाद समयकी गतिके शून्य, बेचे जाने योग्य ग़ुलाम रह जायँगे, और फिर अपनी दशापर फूट-फूटकर पछतायेंगे।

यदि हमारी इन कड़वी बातोंसे आप कार्य करनेके लिए तैयार हों तो आज ही एक कार्ड, उस दैनिक, साप्ताहिक या मासिक पत्रको खरीदनेके लिए लिखिए जिसे आप कार्य करनेवाला समझकर हृदयसे चाहते हों! और एक-एक पत्र बन्द होनेवाले पत्रोंको लिखकर, फिरसे प्रकाशित

होनेके लिए उत्साह दीजिए। देशकी भलाईकी आशासे कई आत्माएँ पत्रोंके चलानेमें जीवन लड़ा रहीं हैं।

विश्वकी गति : प्रान्तीय परिषद् *

कई वर्षोंके पश्चात्, इस बार मध्यप्रदेशके नागपुरके नगरमें प्रान्तीय परिषद्की चौथी बैठक हुई। परिषद्के सभापति थे, मध्यप्रदेशकी कौंसिल-के मेम्बर, रायबहादुर माननीय श्री पण्डित विष्णुदत्तजी शुक्ल बी० ए०, स्वागत समितिके सभापति थे, माननीय सर जी० एम० चिटनवीस के० सी० आई० ई० तथा व्यवस्थापक कमेटीके सभापति और स्वागतकारिणी समितिके मन्त्री थे, श्रीयुत डाक्टर गौर, एम० ए०, डी० सी० एल०, एल० एल० डी०, बार० एट ला। व्यवस्थापक कमेटीके मन्त्री थे, श्रीयुत डाक्टर मुंजे एल० एम० एस०।

परिषद्के उद्देश्य, उसके भगीरथोंने यह लिख भेजे थे।

"भारतकी जनता वैसी गवर्नमेंट प्राप्त करे जैसी कि अंग्रेज़ी राज्यके स्वयंशासित देशों (कनाडा, आस्ट्रेलिया राज्य आदि) को प्राप्त हैं। और अधिकारियों तथा जवाबदारियोंमें भी वही स्थान प्राप्त करे"।

और इन उद्देश्योंकी पूर्तिके लिए कहा गया था।

"ये उद्देश्य देशकी संयुक्त शक्तियों द्वारा, शासनमें क्रमशः सुधार द्वारा, राष्ट्रीय एकताकी उन्नति द्वारा, सार्वजनिक जोशके संगठन द्वारा और देशकी मानसिक, नैतिक और औद्योगिक उद्गमोंकी व्यवस्था और वृद्धिके द्वारा पूरे किये जाने चाहिए।"

लोगोंमें भरपूर उत्साह और कार्य करनेकी इच्छा थी। परिषद्के प्रतिनिधियोंकी ठीक संख्या थी कदाचित् ११४७। सभापतिका भाषण, मार्केका हुआ। उन्नतिकी विविध बाजुओंपर उसमें विचार किया गया था।

---

* भाग २, अगहन व पौष संवत् १९७२, संख्या ९ व १०।

विशेषकर, नागपुर यूनिवर्सिटीपर, अनिवार्य शिक्षा, स्थानीय स्वराज्य, ग्राम-पंचायत आदिपर बहुत अच्छा कहा गया था, और फिर राजर्षि दादा-भाई नौरोजीके शब्दोंमें अपना भाषण समात किया था।

परिषद्‌में २७ प्रस्ताव पेश हुए थे। प्रस्ताव सब ठीक थे। परिषद्‌की इस बैठकमें भारतवर्षके प्रत्येक समूहके निर्णयके अनुसार दो बड़ी विशेषताएँ थीं। एक तो यह कि परिषद् किसी पक्ष विशेषकी न होकर संयुक्त थी और दूसरे इसके प्रत्येक प्रस्तावपर देशी भाषामें भाषण हुए थे। ये दोनों ही बातें अन्य प्रान्तोंके लिए अनुकरणीय थीं। और ये ही दो बातें, इस परिषद्‌की सफलताका कारण कही जा सकती हैं।

हमें, इस परिषद्‌पर कुछ भी नहीं कहना है। हिन्दी जानने वालोंकी उदासीनतापर, उनकी परिषद्‌में कमी देखकर हमें आन्तरिक खेद हुआ। परिषद्‌की तिथियाँ थीं, १६, १७, व १८ नवम्बर।

विश्वकी गति *

इम्पीरियल कौंसिलमें

इस वर्ष मध्य प्रदेशके नेता, माननीय रायबहादुर विष्णुदत्तजी बी० ए० मध्य प्रदेशके मालगुजारोंकी ओरसे, वाइसरायकी कौंसिलके लिए, उम्मेदवार हुए हैं। मध्यप्रदेशमें, ऐसे पढ़े-लिखे न होंगे, जो शुक्लजीको न पहचानते हों। शुक्लजी मध्यप्रदेशके नेता हैं, और देशकी सेवाके लिए, हृदयकी अन्तरंगतासे प्रयत्न करने वाले व्यक्तियोंमेंसे हैं। आप मध्यप्रदेशकी लेजिस्लेटिव कौंसिलके तो मेम्बर हैं ही, साथ ही आप प्रान्तके प्रत्येक बड़े कार्यमें भाग लेने वाले हैं। गत चतुर्थ प्रान्तीय परिषद्‌के, जिसमें मध्यप्रदेशने दक्षिण प्रान्तका विरोध छोड़कर, मिलकर कार्य करनेका उपदेश किया शुक्लजी सभापति थे। इस वर्षकी

---

* भाग २, फाल्गुन संवत् १९७२, संख्या १२।

भारतीय हिन्दी सरयूपारीण महासभाके शुक्लजी सभापति हुए थे। अखिल भारतवर्षीय हिन्दी साहित्य सम्मेलनके शुक्लजी उपसभापति हैं, और अभी मण्डलामें जो सनातन धर्मकी प्रान्तीय सभा हुई थी सुनते हैं, उसके आप सभापति रह चुके हैं, कौंसिलमें शुक्लजीकी बहस ध्यान देने लायक हुआ करती है। शुक्लजी, एकान्तमें देशकी शान्त सेवा करनेके पक्षपाती रहे हैं, किन्तु, अब उन्हें सेवाके प्रकट क्षेत्रोंमें, प्रान्त खींच लाया है। कार्य भी शुक्लजीका, देशके एक वीर सेवककी तरह प्रारम्भ हो चुका है। आप मध्यप्रदेशमें धार्मिक, एक आदरणीय अगुआ हैं। देशभक्त खापर्डे महोदयने, चतुर्थ प्रान्तीय परिषद्‌के सभापति चुनते हुए शुक्लजीके सम्बन्धमें विनोदपूर्ण भाषामें क्या ही अच्छा कहा था "यह कलिकाल है, इससे हमपर कृपा करनेके लिए, साक्षात् विष्णु नहीं आ सकते, किन्तु यह हमारा सौभाग्य है, कि विष्णुके अभावमें साक्षात् विष्णुदत्त हमारे नेतृत्वके लिए हमारे आगे हैं।

हमें आशा है, शुक्लजी इम्पीरियल कौंसिलमें पहुँचेंगे। हमारे प्रान्तके मालगुजार शुक्लजीके कौंसिलमें पहुँचनेपर देखेंगे कि वे अपनी जवाबदारीमें योग्य सिद्ध हुए। यही समय है, जब सम्मति देने वालोंको सावधानीसे कार्य लेना चाहिए और अपना योग्य प्रतिनिधि ढूँढ़ निकालना चाहिए।

विदेशोंमें क्या सीखना चाहिए* (लेख-स्वतन्त्र)

हमारे अनेक भाई विद्या लाभके लिए विदेश जाते हैं, वे जो कुछ सीखना चाहते हैं, सीखें, पर अवकाशानुसार दूसरे विषयोंपर भी लक्ष्य रखना उनका कर्तव्य है। केवल हमारे विद्यार्थी भाई ही नहीं, पर जो भ्रमणादि अन्य कामोंके लिए जाते हैं उन्हें भी ऐसी बातोंके जाननेकी पूरी चेष्टा करनी चाहिए।

---

* भाग २, संख्या ३।

हमारे चिन्ताशील विद्यार्थी भाई व अन्य सज्जन भी दूसरे देशोंमें जाकर उन देशोंके उन्नत व महत् होनेका कारण सोचा करते हैं। यह प्रश्न भी उनके मनमें उठता है कि ये क्यों वहीं जाते हैं और वहाँ वाले क्यों नहीं हमारे देशमें कुछ सीखनेके लिए आते।

भारतमें हमारे भाइयोंकी अकाल मृत्यु, प्रधानतः दुर्भिक्ष, महामारी व अन्य संक्रामक रोगोंसे हुआ करती है। इसलिए हमारे भाई चाहे जहाँ कहीं हों, यह अनुसन्धान करना उनका कर्तव्य है, कि वहाँ इस समय दुर्भिक्ष, प्लेग, मलेरिया आदि रोग हैं वा नहीं या पहिले थे या नहीं। यदि पहले थे और अभी नहीं हैं, तो यह जानना चाहिए कि उस देशकी अवस्था कैसे पलटी। पाश्चात्य अनेक देशोंमें पर्याप्त अन्न उत्पन्न नहीं होते और न हर साल वर्षा ही ठीक होती है, पर तब भी वहाँ ही दुर्भिक्ष अपना रूप दिखाता है। यूरोपके दूसरे देशोंकी बात अलग रहे, केवल इंगलैण्डका इतिहास देखनेसे पता चलता है कि वहाँ भी प्लेगका ख़ूब प्रादुर्भाव हुआ करता था, पर वहाँ अब उसका नामोनिशान तक नहीं। ऐसी ही हालत इटलीकी भी थी। इस समय ये देश बहुत कुछ इन रोगोंसे मुक्त हैं। इसका कारण वहाँ वालोंके भोजन वस्त्र आदिकी स्वच्छता, देशमें वैज्ञानिक उपायोंसे पयःप्रणाली आदिका विस्तार और शिक्षाका प्रचार है। पर केवल इतना ही जाननेसे काम नहीं चलेगा। किन-किन उपायोंको काममें लानेसे लोगोंकी उन्नति हुई, गवर्नमेण्टने क्या किया और साधारण प्रजाने भी अपने लिए क्या किया, इन बातोंको अच्छी तरह जाननेकी आवश्यकता है।

सभ्य व विद्वान् कहलाने वाले लोगोंके शासनाधीन होते हुए भी भारत जैसा निरक्षर देश इस समय दूसरा नहीं। पर दूसरे देश भी निरक्षर थे इसलिए यह जानना चाहिए कि वहाँ किस तरह शिक्षाका प्रचार हुआ, क्या-क्या उपाय किये गये। गवर्नमेण्टने क्या किया वा क्या करती है, जन-साधारणने क्या किया वा क्या करते हैं, सर्वसाधारणमें शिक्षा व

स्त्री शिक्षाके विरुद्ध जो आपत्तियाँ आ खड़ी होती हैं वे किस तरह दूर की जाती हैं, इत्यादि बातें तनिक-तनिक जाननी चाहिए। प्रत्येक सभ्य देशकी गवर्नमेण्ट हर मनुष्यकी शिक्षाके लिए कितना व्यय करती है, राजस्वका कौना-सा अंश इस काममें लगाया जाता है, आदि बातें जानने योग्य हैं बच्चोंको शिक्षा देनेके लिए नये-नये उपायोंका आविष्कार, दस्तकारीकी आवश्यकता, उपकारिता आदि विषय ऐसे हैं जिन्हें विस्तारपूर्वक जानना चाहिए।

हमारे देशमें साश्रम विश्वविद्यालयकी प्रथाको काममें लानेसे उच्च शिक्षाका प्रचार अधिक नहीं हो सकता, इसलिए हमारे प्रवासी भाइयोंको यह देखना चाहिए कि वहाँ इस प्रथाकी चलन है या नहीं। इस प्रणाली और इसके विपरीत प्रणालीकी सुविधा असुविधापर भी ध्यान रखना चाहिए। जिन देशोंमें साश्रम विश्वविद्यालयकी प्रथा है वहाँके लोगोंकी आर्थिक दशा, राष्ट्रीय अधिकार, कैसे हैं, यह भी जानना हमारे प्रवासी भाइयोंका कर्तव्य है।

हमारे देशमें साश्रम प्रथाके विरुद्ध प्रधानतः दो आपत्तियाँ हैं :

१. अधिक व्ययसाध्य होना।

२. इसके अधीन लड़कोंको, किस प्रकार रखना होगा, उनपर शासनके क्या नियम होंगे, उनकी स्वाधीनताकी सीमा किस ओर व कहाँ तक होगी, आदि विषय हैं जिनमें लोगोंका कोई हाथ नहीं। स्त्री शिक्षाके विस्तारके साथ ही साथ विवाह, जन्म, मृत्यु आदि विषयोंका भी पूरा अनुसन्धान करना चाहिए।

ज़मीनका बन्दोबस्त, मालगुजारीकी रीति, चिरस्थायी बन्दोबस्त है या मालगुज़ारी बढ़ती भी है, कृषक ही ज़मीनके मालिक हैं या हमारे यहाँके ज़मीदारोंकी तरह वहाँ भी लोग हैं, कृषिकी उन्नतिके लिए गवर्नमेण्ट क्या करती है, शिक्षाके प्रचारके साथ कृषिकी उन्नतिके सम्बन्ध आदि विषयोंका ज्ञानका लाभ करना भी परमावश्यक है।

अन्य जानने योग्य बातोंपर भी जिनकी तालिका नीचे दी जाती है, ध्यान रखना चाहिए।

गाँव व शहरकी सड़कोंकी सफ़ाई और मरम्मतकी रीति, म्युनिसिपैलिटीके अधिकारोंकी सीमा, उसके निर्वाचित सभ्य निर्वाचन-कर्ताओंकी अवस्था, इसके पदाधिकारियोंके लिए विद्वान् होना आवश्यक है वा नहीं, उसकी जाँच, राष्ट्रीय प्रतिनिधि सभाके सभ्योंकी योग्यता व क्षमता, उनके निर्वाचन-कर्ताओंकी योग्यता व क्षमता; पुलिस और प्रजाका सम्बन्ध, पुलिसके व्यवहारकी जाँच, पुलिसके अधिकार, राजस्वका कौनसा अंश पुलिसके लिए व्यय किया जाता है इसकी जाँच; विचार विभाग और शासन विभागका सम्बन्ध, विचारकोंके कार्योंपर परोक्ष वा प्रत्यक्षसे हस्तक्षेप होता है वा नहीं इसकी ज़ाँच; लड़के लड़कियोंके धर्म व अधिकार शिक्षाकी व्यवस्था; समाचार पत्रों व प्रेसोंकी स्वाधीनता सीमाबद्ध है वा नहीं; देशी शिल्प वाणिज्यके संरक्षणके निमित्त विदेशी वस्तुओंपर टैक्स है वा नहीं; गवर्नमेण्ट रेल, जहाज़ वग़ैरहका भाड़ा कमकर देशी शिल्प वाणिज्यकी सहायता करती है या नहीं; भिन्न-भिन्न जाति धर्म सम्प्रदायोंमें सदसद्भाव, हिंसा, द्वेष, विरोध इत्यादि है वा नहीं; विद्या बुद्धिके अनुसार आदर हुआ करता है वा सरकारी नौकर होनेके कारण जाँचने योग्य हैं।

इस लम्बी तालिकाको देखकर हमारे भाइयोंको ऊब जाना उचित नहीं। जिनको जिस विषयके अनुसंधान करनेमें सुविधा हो वे उसे ही करें। समाचारपत्रोंको पढ़नेसे उन्हें इन बातोंकी जाँचमें पूरी मदद मिल सकती है। इसलिए उन्हें समाचार-पत्र भी देखते रहना चाहिए और साथ ही एक अलग कापी बनाकर उन्हें ऐसे विषयोंको समाचार-पत्रोंसे नोट कर लेना चाहिए वा उसको कटिंग काटकर रख लेनी चाहिए। कापी वर्णानुसार अलग-अलग रखी जानी ही अच्छा है।

हमारे जिन भाइयोंकी अवस्था अच्छी हो उन्हें विद्यालाभ और युनिवर्सिटी डिग्री प्राप्त कर लेनेपर कुछ अधिक दिनों तक वहाँ ठहरना

चाहिए; और इन बातोंकी अच्छी जाँच करनी चाहिए। ऐसा करनेसे वे देशकी अच्छी सेवा कर सकेंगे, और वे, जो स्वयं प्रवासी नहीं हैं अपने प्रवासी मित्रोंसे ऐसी बातें जाननेकी कोशिश करें।

—'एक विद्यार्थी'

देशोन्नतिके उपाय *

केवल मात्र एक उपायके अवलम्बनसे देशोन्नति नहीं हो सकती जिनकी ऐसी बुद्धि या जिनकी जैसी प्रवृत्ति है, वे वैसे ही उपायोंको एक मात्र या सर्वश्रेष्ठ उपाय समझते हैं। कोई-कोई कहते हैं कि यदि हमारा स्वास्थ्य ठीक न रहे या हम भोजनाभावसे अधमरे हों तो भाषा शिक्षा लाभ कैसे कर सकते हैं, कैसे राष्ट्रीय अधिकार-प्राप्तिकी चेष्टा कर सकते हैं, क्यों कर सामाजिक कुप्रथाओंका नाश कर सकते हैं, या कैसे कल कारखाने, वाणिज्य, व्यापारका विस्तार इत्यादि देशोन्नतिके कार्य कर सकते हैं? इसके उत्तरमें कोई-कोई यह भी कह सकते हैं कि समयोपयोगी ज्ञानलाभके द्वारा कृषि, शिल्प इत्यादिकी उन्नति किये विना, भला, अच्छा भोजन कहाँसे मिले? इटली प्रभृति देशोंकी तरह वैज्ञानिक उपायों द्वारा मलेरिया, प्लेग इत्यादि रोगोंको दूर किये विना स्वास्थ्यकी उन्नति कैसे हो? बाल या वृद्ध विवाहकी कुप्रथा उठाये विना ज़िन्दे मनुष्य कैसे पैदा हों। शिक्षा द्वारा ज्ञान लाभके विना सामाजिक व्यवस्थाकी बुराई-भलाई कैसे कैसे समझी जा सकती है और विना इसके किस तरहसे भलेकी रक्षा और बुरेका नाश किया जा सकता है? राष्ट्रीय अधिकारकी प्राप्तिके विना टैक्ससे प्राप्त धनको कैसे देशके स्वास्थ्य-सुधारमें लगाया जाय? धार्मिक और सामाजिक संकीर्णता और कुसंस्कारोंको दूर करते हुए लोगोंके हृदयमें उदारता और भाईपनेका विचार पैदा किये विना राष्ट्रीय अधिकारों के लिए दलबद्ध चेष्टा कैसे की जा सकती है? विना राष्ट्रीय अधिकारकी

* भाग २, कार्तिक संवत् १९७२, संख्या ८।

प्राप्तिके टैक्ससे प्राप्त धनको शिक्षार्थ व्यय करनेके लिए गवर्नमेण्टको कौन दबायेगा ? इत्यादि, ऐसी बातें हैं, कि यदि कोई एक उपाय ग्रहण किया जाय तो दूसरे योंही रह जाते हैं।

लेकिन, उपाय अवलम्बन करनेके पहले यह ज़रूरी है कि लोगोंको इसकी आवश्यकता अच्छी तरह समझा दी जाय। ऐसी धारणा करा देना भी बहुत ज़रूरी है कि हमारी अवस्था बुरी है और हम स्वयं ही इसे दूर कर सकते हैं; या एक शब्दमें यह कहा जा सकता है कि सारी जातिको जाग्रत और सचेत करना ही हर प्रकारकी उन्नतिका मूल है। पर क्या ऐसा कभी शिक्षाके विना हो सकता है ? सुननेसे भी शिक्षा मिल सकती है, पर जो कुछ सीखा जाता है वह हमेशा याद तो रहता नहीं, उसके लिख रखनेसे भूलनेपर फिर याद कर लिया जा सकता है। इसके सिवाय सुननेकी सुविधाओंसे पढ़नेकी सुविधाएँ बहुत अधिक हैं। हम अब शिक्षा लाभ वा शिक्षा-दानके उपायोंकी तनिक भी अवहेलना करना नहीं चाहते। पढ़ना-लिखना ही सबोंसे उत्तम उपाय है, इसमें तो लेशमात्र भी सन्देह नहीं। यदि कोई शिक्षाके उच्चतम लक्ष्यको पीछे रखकर लोगों-को खेती-बारी, शिल्प, वाणिज्य, स्वास्थ्य रक्षाके नियम इत्यादि सिखलाना चाहे तब भी यह देखनेमें आयेगा कि पठन-पाठनके विना ऐसी शिक्षा नहीं दी जा सकती। इसका प्रमाण यही है कि जिन-जिन देशोंमें शिक्षाका प्रचार अधिक है, वहाँ खेती-बारी, शिल्प, वाणिज्य खूब उन्नत अवस्थामें हैं, और उन्नत ही होते जाते हैं।

शिक्षाके अभावमें हर प्रकारकी उन्नति नहीं हो सकती, इसका प्रमाण अफ़गानिस्तान संसारमें वर्तमान है। उनका स्वास्थ्य निस्सन्देह अच्छा है, उनको भोजन अच्छा और भरपूर मिलता है, वे बलिष्ट दीखते हैं, यह तो साफ़ ही मालूम होता है। वे तिजारतमें भी पक्के हैं। पर ता भी वे राष्ट्रकार्यों के निर्वाह, साहित्य, विज्ञान, दर्शन, अन्तर्वाणिज्य, बहिर्वाणिज्य,

चाहिए; और इन बातोंकी अच्छी जाँच करनी चाहिए। ऐसा करनेसे वे देशकी अच्छी सेवा कर सकेंगे, और वे, जो स्वयं प्रवासी नहीं हैं अपने प्रवासी मित्रोंसे ऐसी बातें जाननेकी कोशिश करें।

—'एक विद्यार्थी'

देशोन्नतिके उपाय *

केवल मात्र एक उपायके अवलम्बनसे देशोन्नति नहीं हो सकती जिनकी ऐसी बुद्धि या जिनकी जैसी प्रवृत्ति है, वे वैसे ही उपायोंको एक मात्र या सर्वश्रेष्ठ उपाय समझते हैं। कोई-कोई कहते हैं कि यदि हमारा स्वास्थ्य ठीक न रहे या हम भोजनाभावसे अधमरे हों तो भाषा शिक्षा लाभ कैसे कर सकते हैं, कैसे राष्ट्रीय अधिकार-प्राप्तिकी चेष्टा कर सकते हैं, क्यों कर सामाजिक कुप्रथाओंका नाश कर सकते हैं, या कैसे कल कारखाने, वाणिज्य, व्यापारका विस्तार इत्यादि देशोन्नतिके कार्य कर सकते हैं? इसके उत्तरमें कोई-कोई यह भी कह सकते हैं कि समयोपयोगी ज्ञानलाभके द्वारा कृषि, शिल्प इत्यादिकी उन्नति किये विना, भला, अच्छा भोजन कहाँसे मिले? इटली प्रभृति देशोंकी तरह वैज्ञानिक उपायों द्वारा मलेरिया, प्लेग इत्यादि रोगोंको दूर किये विना स्वास्थ्यकी उन्नति कैसे हो! बाल या वृद्ध विवाहकी कुप्रथा उठाये विना ज़िन्दे मनुष्य कैसे पैदा हों। शिक्षा द्वारा ज्ञान लाभके विना सामाजिक व्यवस्थाकी बुराई-भलाई कैसे कैसे समझी जा सकती है और विना इसके किस तरहसे भलेकी रक्षा और बुरेका नाश किया जा सकता है? राष्ट्रीय अधिकारकी प्राप्तिके विना टैक्ससे प्राप्त धनको कैसे देशके स्वास्थ्य-सुधारमें लगाया जाय? धार्मिक और सामाजिक संकीर्णता और कुसंस्कारोंको दूर करते हुए लोगोंके हृदयमें उदारता और भाईपनेका विचार पैदा किये विना राष्ट्रीय अधिकारों के लिए दलबद्ध चेष्टा कैसे की जा सकती है? विना राष्ट्रीय अधिकारकी

* भाग २, कार्तिक संवत् १९७२, संख्या ८।

प्रान्तके टैक्ससे प्राप्त धनको शिक्षार्थ व्यय करनेके लिए गवर्नमेण्टको कौन दबायेगा ? इत्यादि, ऐसी बातें हैं, कि यदि कोई एक उपाय ग्रहण किया जाय तो दूसरे योंही रह जाते हैं।

लेकिन, उपाय अवलम्बन करनेके पहले यह ज़रूरी है कि लोगोंको इसकी आवश्यकता अच्छी तरह समझा दी जाय। ऐसी धारणा करा देना भी बहुत ज़रूरी है कि हमारी अवस्था बुरी है और हम स्वयं ही इसे दूर कर सकते हैं; या एक शब्दमें यह कहा जा सकता है कि सारी जातिको जाग्रत और सचेत करना ही हर प्रकारकी उन्नतिका मूल है। पर क्या ऐसा कभी शिक्षाके विना हो सकता है ? सुननेसे भी शिक्षा मिल सकती है, पर जो कुछ सीखा जाता है वह हमेशा याद तो रहता नहीं, उसके लिख रखनेसे भूलनेपर फिर याद कर लिया जा सकता है। इसके सिवाय सुननेकी सुविधाओंसे पढ़नेकी सुविधाएँ बहुत अधिक हैं। हम अब शिक्षा लाभ वा शिक्षा-दानके उपायोंकी तनिक भी अवहेलना करना नहीं चाहते। पढ़ना-लिखना ही सबोंसे उत्तम उपाय है, इसमें तो लेशमात्र भी सन्देह नहीं। यदि कोई शिक्षाके उच्चतम लक्ष्यको पीछे रखकर लोगों-को खेती-बारी, शिल्प, वाणिज्य, स्वास्थ्य रक्षाके नियम इत्यादि सिखलाना चाहे तब भी यह देखनेमें आयेगा कि पठन-पाठनके विना ऐसी शिक्षा नहीं दी जा सकती। इसका प्रमाण यही है कि जिन-जिन देशोंमें शिक्षाका प्रचार अधिक है, वहाँ खेती-बारी, शिल्प, वाणिज्य खूब उन्नत अवस्थामें हैं, और उन्नत ही होते जाते हैं।

शिक्षाके अभावमें हर प्रकारकी उन्नति नहीं हो सकती, इसका प्रमाण अफ़गानिस्तान संसारमें वर्तमान है। उनका स्वास्थ्य निस्सन्देह अच्छा है, उनको भोजन अच्छा और भरपूर मिलता है, वे बलिष्ट दीखते हैं, यह तो साफ़ ही मालूम होता है। वे तिजारतमें भी पक्के हैं। पर तो भी वे राष्ट्रकार्यों के निर्वाह, साहित्य, विज्ञान, दर्शन, अन्तर्वाणिज्य, बहिर्वाणिज्य,

शिल्प, कृषि इत्यादि विषयोंमें संसारकी किसी भी ज़िन्दा जागती ज़बर्दस्त क़ौमके टक्करदार नहीं। सारे देशमें ज्ञानका प्रकाश डालना होगा और इसके लिए लोगोंको लिखना-पढ़ना अवश्य सिखलाना होगा।

मराठी सत्ताके नाशके कारण * (लेख)

इंग्लैण्ड देशकी सभ्यताकी मीमांसा करते हुए बकल साहब अन्य देशोंकी ओर भी दृष्टि देते हैं। हमारा हिन्दुस्तान भी आपकी झपटसे नहीं बचा। हिन्दुस्तानके विषयमें लिखते समय ही आप यह ऊपर लिखा तीखा वाक्य लिख जाते हैं। आपने तमाम इतिहासके तत्त्व थोड़ी इनी-गिनी बातोंमें रूपान्तरित कर डाले हैं। भोजन, आबहवा, देशप्रकृति, भूमि इत्यादि। हम चावल खानेवाले हैं, और गर्म देशमें रहते हैं, इस कारण हम कभी स्वतन्त्रता पा नहीं सकते हैं यही आपका मथितार्थ है। हमें यहाँपर आपको उत्तर देना है नहीं, सिर्फ़ इतना ही कहना है कि साहब! महाराष्ट्रका इतिहास मालूम न रहा नहीं तो शायद इतने तीखे वाक्य लिख न जाते। जो कुछ हो, वह महाराष्ट्र भी नहीं रहा उसकी भी सत्ताका नाश हो गया है। बकल साहबके मतको छोड़कर इस नाशके क्या और कुछ कारण भी हो सकते हैं? इसी बातपर विचार करना इस लेखमें हमने विचारा है।

१—शिवाजीकी राज्य-घटना इस प्रकारकी थी। आठ मन्त्रियोंकी अष्ट प्रधान नामकी कार्यकारिणी एक सभा थी और सबके ऊपर राजा थे। पेशवा मुख्य मन्त्री था, और फ़ौजी और मुल्की राज्य-प्रबन्धके लिए वह ज़िम्मेदार था। सेनापति फ़ौजी प्रबन्धका मुखिया था। पन्त अमात्य मुल्की वसूली और हिसाबके लिए ज़िम्मेदार था। पन्त सचिव राज्यका तमाम दफ़्तर सम्भालता था। पर राज्यका व्यवहार सुमन्तके हाथमें था।

---

* भाग २, अगहन व पौष संवत् १९७२, संख्या ९, १०।

मन्त्री राजाका खानगीकार भार देखता था। न्यायाधीश न्याय-विभागका मुखिया था और.पण्डित राव धर्मविभागका। इस प्रकार राज्यका काम बँटा हुआ था। इस कारण सब काम बराबर चलता था। सब अधिकार एक हाथमें रहनेसे राज्य-प्रबन्ध ठीक चल नहीं सकता और सत्ताका शीघ्र ही लय हो जाता है, यह बात स्पष्ट है, और यह एक ऐतिहासिक सिद्धान्त भी है। अपने [illegible] लिए एक-एक ज़िम्मेदार होकर सब एक राजाके अधीन होनेसे काम अच्छा चलता था। एक सभाके लोग परस्पर-में दबे रहते हैं और इस कारण कोई अनुचित बात नहीं कर सकते, न ऐसी सभामें किसी तरहके परस्परके विनाशके व्यूह रचे जा सकते हैं। राजा भी ऐसी सभासे दबा रहता है, और कोई अनियन्त्रित बात नहीं कर सकता। यह ठीक है, कि इस प्रधान-मण्डलको राजाकी कोई कार्रवाई मंसुख करनेका अधिकार नहीं था, पर राजा इस अष्टप्रधान मण्डलके सामने ऐसा दब जाता था कि उन मन्त्रियोंकी सलाह बिना कोई काम करना उसे खुद ही योग्य नहीं मालूम होता था। यही बात दूसरे देशोंके इतिहासोंसे सिद्ध है। पर यह अष्टप्रधान सभा शिवाजीके बाद नहीं रही। राजा अनियन्त्रित होते गये और ऐसी दशामें बुद्धिमान और बली लोगोंकी बन गई। शिवाजीकी मृत्युके बाद इन अष्टप्रधानोंमेंसे दो चार प्रधानोंको सम्भाजीने मरवा डाला, तब ही यह सभा कमज़ोर पड़ गई। फिर शाहूके समयमें तो इसका अस्तित्व ही नहीं रहा। शाहू विलासी और चैनी था। राज्य-कारभार देखनेकी तकलीफ़ उसे भाती न थी। इस कारण तमाम अधिकार पेशवाके हाथमें आ गिरे थे। बालाजी विश्वनाथ ऐसा योग्य पुरुष था कि वह तमाम काम स्वतः कर सकता था। इस कारण उसने सब अधिकार अपने हाथमें ले लिये और अपने प्रतिनिधियों द्वारा काम देखने लगा। दो चार प्रधान बचे थे उन्हें उसने कमज़ोर कर डाला। इस प्रकार आप स्वतः राज्यमें मुख्य बन बैठा। उसका पुत्र बाजीराव—यह भी योग्य पुरुष निकला। इसने तो इतने अधिकार ले लिये कि महाराष्ट्रके

इतिहासमें राजाकी कोई कार्यवाई पढ़नेमें आती ही नहीं। सिर्फ़ पेशवा ही जहाँ-तहाँ चमकते दीखता है। बाजीरावको सब अधिकार अपने हाथमें लेनेकी इतनी महत्त्वाकांक्षा थी कि उसे राजा कहना अयोग्य न होगा। बाजीरावसे सब पेशवे ही राजाके समान बर्तते थे। यहाँ तक कि बाक़ायदा राजासे ही बालाजीने युद्ध किया। फिर क्या था। राज्य किसका। राजाका या पेशवाका। और क्या पेशवापर कोई नियन्त्रण शक्ति थी। नहीं, फिर ऐसा राज्य कितने दिन चल सकता है। शिवाजीकी राज्य-व्यवस्था तोड़ डालनेसे क्या-क्या परिणाम न हुए।

२. इस कारणके साथ-साथ एक और कारण है। महाराष्ट्रकी सत्ता प्रस्थापित हुई, उस समयकी परिस्थिति कुछ ऐसी थी कि प्रत्येक प्रधानके हाथमें फ़ौजी अधिकार भी थे। प्रत्येक सेनाका कुछ अधिकारी था। उस समय प्रत्येकको लड़ना पड़ा था क्योंकि नितान्त शान्ति प्रस्थापित नहीं हुई थी। फ़ौजी अधिकारके कारण इस राज्यका बड़ा नुक़सान हुआ। ऊपर लिखा जा चुका है कि सब अधिकार पेशवाने अपने हाथमें ले लिये थे और उसे जोड़ी मिला फ़ौजकी सहायता की। फिर क्या था। पेशवे मनमाना करने लगे और उन्हें कोई रोकनेवाला न रहा। राज्यका कौन व्यक्ति उनके विरुद्ध खड़ा हो सकता था। यह ऐतिहासिक सिद्धान्त है कि जब फ़ौजी और मुल्की दोनों अधिकार एक ही मन्त्रीके हाथमें होते हैं तब राज्य अल्पजीवी हो जाता है, क्योंकि वह पुरुष अनियन्त्रित हो जाता है। यहाँतक कि राजाको पूर्ण अधिकार न रहने चाहिए। पर पेशवे सब कुछ हो गये। मुल्की और फ़ौजी व्यवस्थाके मुख्य तो थे ही, फ़ौजी सेनापति भी बन गये। फिर मुल्की व्यवस्थाकी ओर कौन देखता है? सब जगह अप्रबन्ध हो गया और गड़बड़ होने लगी। उस समय ठीक प्रबन्ध तो दूर रहा, फ़ौजका सहारा पाकर और बढ़े। फिर उथल-पुथल होनेमें क्या देर थी। राजाके अधिकार पेशवेको मिले और वे मनमाना करने लगे।

जब पेशवे भी अयोग्य निकले तब दूसरोंके हाथमें हो गये। वे भी मन-माना करने लगे। इस प्रकार राज्य-प्रबन्धका ठिकाना न रहा। जिसके हाथमें अधिकार रहता वह अपने अधिकारकी ही परवाह करता था।

३. पर इन दोनों दोषोंसे एक तीसरा दोष बड़ा भारी उत्पन्न हुआ और वह यह था कि अधिकार वंशपरम्पराके अनुसार चलने लगे। पहिले ही पेशवे राज्यमें मुख्य थे। फ़ौज उनके हाथमें थी, और उसपर पेशवाई ख़ानदानी मिलकियत हो गयी। फिर क्या था। राजा बननेमें और क्या बाक़ी था। शिवाजीके समयमें कोई अधिकार वंशपरम्परासे नहीं चलते थे। वह अपने सब नौकरोंको बतलाता रहा, जिससे कि कोई उभड़नेके योग्य न होने पावे। यह व्यवस्था नहीं रही, इस कारण उसके कड़वे फल महाराष्ट्रको चखने पड़े। बालाजी विश्वनाथके बाद बाजीराव और बालाजी बाजीराव योग्य पुरुष हुए, इसमें शंका नहीं। पर जल्द ही अयोग्य पुरुष भी निकलने लगे। यह प्रसिद्ध बात है कि किसी भी रीतिके प्रस्थापनकर्ता योग्य पुरुष होते हैं, पर उसके वंशज द्रव्य और अधिकारके कारण विलासी, चैनी और अयोग्य निकलते हैं। कारख़ाना प्रस्थापन करनेवाला योग्य होता है पर उनके पुत्र और पौत्र अयोग्य हो जाते हैं। शिवाजीके बाद सम्भाजी, शाहूजी इत्यादि कैसे निकले यह इतिहास-प्रसिद्ध है ही। फिर पेशवे आये। वे भी उसी प्रकार शीघ्र ही निकले। फिर क्या था। जिसके हाथमें ये पुरुष पड़े, उनकी बन गयी। आपसके टूटे, चापलूसोंकी ख़ुशामद, राज्यका अप्रबन्ध इत्यादि कारणोंसे यह राज्य नष्ट न होता तो कौन होता। पेशवाई ही वंशपरम्परा चलती रही, ऐसी बात नहीं, वरन् अन्य नौकरियाँ भी वंशपरम्परासे चलीं। इसका एक बड़ा भारी यह कारण रहा कि हिन्दुस्तानमें यह रीति बड़ी पुरानी है और नौकरीके विषयमें भी मिलकियतकी कल्पना लगी हुई है। जिस प्रकार स्थावर और जंगम जायदाद पुत्रों, पौत्रों, प्रपौत्रोंको मिलती है, उसी प्रकार हिन्दुस्तानियोंकी पुरानी समझ थी कि नौकरियाँ भी वंश-परम्परासे चलनी चाहिए। अगर

थोड़े आदमी ही मुख्य सत्ताको धोखा देते थे और बाक़ी रुपया अपने खीसे में भरते जाते थे। इस प्रकार फ़ौज कमज़ोर पड़ती गई। दफ़्तरोंमें तो दर्ज नाम पाँच हज़ार, तो रहेंगे सिर्फ़ पाँच सौ। मनच ही पड़ गया तो इधर-उधरके रंगरूट दस-पाँच दिनके लिए भरती कर लिये। काम हुआ, कि फिर उन्हें छुट्टी दे दी। हार हुई तो उनका कुछ नुक़सान हुआ ही नहीं। पहले ही दीखे थे गरम। मुल्की विभागमें भी वही बात हुई। जिसे जितना पैसा लेते बनता, वह लिये बिना छोड़ता न था और जो नाना प्रान्तोंमें शासनके अधिकारी थे, उनका तो कुछ पूछना ही नहीं। वे ही स्वतन्त्र राजा बन बैठे। वंशपरम्पराकी कल्पनाके कारण शासित प्रान्त अपनी सन्ततिको भी मिलें, इसकी योजना तो वे करते ही थे फिर शासित प्रान्तके फ़ौजी और मुल्की दोनों अधिकार उन्हें रहनेके कारण और सेनाके सेनापति भी होनेके कारण उनसे मूल सत्ता ही कमज़ोर पड़ जाती थी। ज़मीन ऐसी वस्तु है, जो सदा उत्पत्तिदायक है और वह न किसी प्रकार नष्ट होती है, न उसे कोई चुरा ले जा सकता है। ऐसी वस्तु वंश-परम्परा चले और उसके सब अधिकार प्राप्त हों, यह प्रत्येककी इच्छा रहती है। फिर जिन लोगोंके हाथोंमें फ़ौजी, मुल्की अधिकार हों और सेना भी हो, वे भला सत्तासे किस प्रकार न बढ़ जाँय। उनके शासित भी यही बात समझने लगते हैं कि सच्चे राजा यही हैं क्योंकि इन्हींके हाथमें उनका सर्व जीवन है। ऐसी अवस्थामें अगर प्रान्ताधिकारी और मूल सत्ताके बीच झगड़ा खड़ा हो जाय, तो प्रान्तके लोग अपने अधिकारीको ही सहायता देंगे, न कि मूल राजाको। इस प्रकार एक तो मूल सत्ता बँट जाती है, दूसरे ये दो भाग आपसमें ही लड़कर नष्ट हो जाते थे। मराठोंने अंगरेज़ोंसे जितनी लड़ाइयाँ लड़ी हैं, वे इस बातके ज्वलंत उदाहरण हैं। पेशवा होगा अकेला, और गायकवाड़, शिन्दे, होलकर भोंसले ऐसे अनेक प्रान्तीय अधिकारी हुए बलवान यह जो तमाम सत्ता उनके शत्रुओंके हरानेमें लगती, सो आपसमें

वंशजोंकी मूर्खतासे स्थावर-जंगम जायदाद नष्ट हुई तो एक घरानेका नुक़सान होता है, पर नौकरी वंश-परम्परा चली हो तो राज्यके तमाम लोगोंका नुक़सान होता है। अब यह भी कल्पना नितान्त नष्ट नहीं हुई है, और एक बातमें तो वह कायदेका स्वरूप पा चुकी है और यह केवल हमारी समझके कारण हुआ है। पुरोहितीकी बात किसे मालूम नहीं। पिताने दस घरकी पुरोहिती की, पिताके दो पुत्रोंने उसे आपसमें बाँट लिया और इस प्रकार विभाजित होती चली गयी। आगे ही ये धंधे अनुत्पादक हैं, और ये धन्धेदार निकम्मे होते हैं और इस कल्पनाके कारण उसके वंशज भी अनुत्पादक होते हैं और निकम्मे पड़े रहते हैं। इतना ही नहीं, वरन् अदालतोंमें झगड़ा लाकर उनका भी पेट भरते हैं। यही बात महाराष्ट्रकी नौकरियोंके विषयमें हुई। अगर यह कल्पना न रहती तो राघोबाने अपने भाई-बन्दोंसे झगड़ा न किया होता और नारायणरावका ख़ून न होता, यह कल्पना न होती तो सवाई माधव रावके समान चार महीनेके बच्चे राजके नामधारी सूत्रधार न होते, महाराष्ट्रकी सच्ची सत्ता दूसरोंके हाथमें न जाती, नाना फड़नवीस और सखाराम बापूको आपसमें झगड़नेका मौक़ा न आता, महाराष्ट्रकी बुद्धि आपसके झगड़ोंमें नष्ट न होती और इस सत्ताका नाश न होता।

४. एक बड़ा भारी कारण और भी हुआ। शिवाजीके समयमें सबको वेतन नक़द दिया जाता था। पेशवे लोगोंने यह रीति उलट ली और पुरानी रीति ला रक्खी। वे नौकरीके बदले जागीर देने लगे। इसके कितने बुरे परिणाम हुए, इसका कुछ ठिकाना नहीं। भोंसले, शिंदे, होलकर, गायकवाड़ ये पहले जागीरदार ही थे। इन लोगोंने फ़ौजी नौकरी की थी और उसके बदले इन्हें पेशवोंने जागीर दे दी। यह साधारण नियम है कि ज़मीन प्राप्त होनेपर उस विषयके तमाम हक़ भी प्राप्त करनेकी मनुष्यकी इच्छा होती है। मुग़ल बादशाहोंके समयमें यही परिणाम हुए। जितने सिपाही रखने चाहिए, उतने ये रखनेके नहीं। सिर्फ़ किसी प्रकार

थोड़े आदमी ही मुख्य सत्ताको धोखा देते थे और बाक़ी रुपया अपने खीसे में भरते जाते थे। इस प्रकार फ़ौज कमज़ोर पड़ती गई। दफ्तरोंमें तो दर्ज नाम पाँच हज़ार, तो रहेंगे सिर्फ़ पाँच सौ। समय ही पड़ गया तो इधर-उधरके रंगरूट दस-पाँच दिनके लिए भरती कर लिये। काम हुआ, कि फिर उन्हें छुट्टी दे दी। हार हुई तो उसका कुछ नुक़सान हुआ ही नहीं। पहले ही दीखे थे गरम। मुल्की विभागमें भी वही बात हुई। जिसे जितना पैसा लेते बनता, वह लिये विना छोड़ता न था और जो नाना प्रान्तोंमें शासनके अधिकारी थे, उनका तो कुछ पूछना ही नहीं। वे ही स्वतन्त्र राजा बन बैठे। वंशपरम्पराकी कल्पनाके कारण शासित प्रान्त अपनी सन्ततिको भी मिलें, इसकी योजना तो वे करते ही थे फिर शासित प्रान्तके फ़ौजी और मुल्की दोनों अधिकार उन्हें रहनेके कारण और सेनाके सेनापति भी होनेके कारण उनसे मूल सत्ता ही कमज़ोर पड़ जाती थी। ज़मीन ऐसी वस्तु है, जो सदा उत्पत्तिदायक है और वह न किसी प्रकार नष्ट होती है, न उसे कोई चुरा ले जा सकता है। ऐसी वस्तु वंश-परम्परा चले और उसके सब अधिकार प्राप्त हों, यह प्रत्येककी इच्छा रहती है। फिर जिन लोगोंके हाथोंमें फ़ौजी, मुल्की अधिकार हों और सेना भी हो, वे भला सत्तासे किस प्रकार न बढ़ जाँय। उनके शासित भी यही बात समझने लगते हैं कि सच्चे राजा यही हैं क्योंकि इन्हींके हाथमें उनका सर्व जीवन है। ऐसी अवस्थामें अगर प्रान्ताधिकारी और मूल सत्ताके बीच झगड़ा खड़ा हो जाय, तो प्रान्तके लोग अपने अधिकारीको ही सहायता देंगे, न कि मूल राजाको। इस प्रकार एक तो मूल सत्ता बँट जाती है, दूसरे ये दो भाग आपसमें ही लड़कर नष्ट हो जाते थे। मराठोंने अंगरेज़ोंसे जितनी लड़ाइयाँ लड़ी हैं, वे इस बातके ज्वलंत उदाहरण हैं। पेशवा होगा अकेला, और गायकवाड़, शिन्दे, होलकर भोंसले ऐसे अनेक प्रान्तीय अधिकारी हुए बलवान यह जो तमाम सत्ता उनके शत्रुओंके हरानेमें लगती, सो आपसमें

कट मरी, फिर बतलाइये, किस प्रकार यह सत्ता नष्ट न होती। यूरोपकी मध्यकालीन अवस्थामें बहुत कुछ यही स्थिति थी, पर वहाँ जो अमीर उमराव सरदार ज़मींदार थे, उन्हें राजाओंने और लोगोंने धीरे-धीरे कमज़ोर कर डाला, जहाँ कहीं ये ज़मींदार बने भी रहे वहाँ उन्हें ज़मीनकी मालकियतके सिवाय अन्य कोई अधिकार न थे। इस कारण वे मूलसत्ताको कमज़ोर न कर सके। जहाँ कहीं ज़मींदारोंको विशेष अधिकार थे, वे भी धीरे-धीरे उन्हें छोड़ देने पड़े। फ्रान्सकी प्रसिद्ध राज्य-क्रान्तिका यही अर्थ है। ज़मींदारोंको अपनी बड़ी-बड़ी ज़मींदारियाँ भी छोड़ देनी पड़ीं। पर हिन्दुस्तान और महाराष्ट्रमें बात इसके विरुद्ध होती है।

५. इतने ही महत्त्वका एक और कारण है। शिवाजीके समयमें 'स्वराज्य' का ध्येय केवल महाराष्ट्रकी सीमासे परिमित था। शिवाजीको केवल महाराष्ट्र एकत्रितकर स्वराज्य रचना था। तमाम हिन्दुस्तान मुसलमानोंसे स्वतन्त्र करनेका उसका विचार नहीं दीखता। निदान इतना तो अवश्य कह सकते हैं कि शिवाजीका स्वराज्य सिर्फ़ महाराष्ट्रके लिए ही था चाहे उसकी यह भी इच्छा रही हो कि और-और प्रान्तके हिन्दू भी इसी प्रकार अपना-अपना स्वराज्य वहाँ-वहाँ स्थापित कर लें। यह प्रश्न बड़े महत्त्वका है। शिवाजीके पूर्व और समकालमें जो महाराष्ट्र धर्म फैल रहा था, वह महाराष्ट्र ही में था, उस समय जो स्वराज्यकी, राष्ट्रीयताकी, स्वतन्त्रताकी कल्पनाएँ फैल रही थीं, वे सिर्फ़ महाराष्ट्र भरके लिए थीं, तमाम हिन्दुस्तानके लिए नहीं थीं। आत्मीयता सिर्फ़ महाराष्ट्रमें ही थी, स्वदेशाभिमान महाराष्ट्रकी सीमासे संकुचित था। पर पेशवोंने शिवाजीका ध्येय पलट दिया और महाराष्ट्रकी सीमा छोड़ उत्तर और पूर्वकी ओर बढ़ने लगे। हमारा यह कहना नहीं है कि बाक़ी हिन्दुस्तानको स्वराज्य और स्वतन्त्रता न मिलनी चाहिए थी। नहीं, अगर अलग नाना हिन्दू स्वराज्य स्थापित हो जाते तो अति उत्तम होता। पर महाराष्ट्रकी सत्ता महाराष्ट्रके बाहर जानेसे महाराष्ट्रका भारी नुक़सान हुआ। जिस समय

शाहू राजा हुआ, उस समय महाराष्ट्रका स्वदेशाभिमान, आत्मीयताका भाव, और स्वतन्त्रताकी कल्पना कुछ शिथिल हो चुकी थीं, ऐसे समयमें महाराष्ट्रका मध्यप्रदेश वराड मालवा गुजरात उड़ीसा इत्यादि प्रान्तोंमें राज्य करना ठीक न था। इन प्रान्तोंमें महाराष्ट्रीय लोग न थे, और वहाँके लोगोंका महाराष्ट्रियोंसे आत्मीयताका प्रेम मालूम होना शक्य न था। वहाँ आत्मीयता न होनेसे इनका राज्य ज़ुल्मी होने लगा और ज़ुल्मी राज्यका बहुत दिन तक टिकना शक्य न था। ख़ास महाराष्ट्रका राज्य बढ़ जानेसे महाराष्ट्रियोंके प्रयत्न इस देशकी भलाईके लिए कम और शिथिल होने लगे, लोग महाराष्ट्रको छोड़कर इतर प्रान्तोंमें जा बसे, इस कारण अधिकारी भी अनियंत्रित हो गये। अधिकारी अनियन्त्रित होते ही राज्य-शासन ढीला पड़ गया और आख़िरको महाराष्ट्रकी सत्ता नष्ट हो गई। इस तत्वके अनेक दृष्टान्त हैं। रोमकी सत्ता नष्ट होनेका कारण उसका अधिक फैलाव ही हुआ। जहाँ आत्मीयताका सम्बन्ध है उन्हीं लोगोंका एक राज्य रहना योग्य है। पर, इनकी सत्ता तमाम यूरोपमें फैल गयी। ख़ास रोममें तो लोकसत्ता रही पर अन्यत्र इसका ज़ुल्मी शासन ढीला पड़ गया और आख़िर इसका नाश हुआ। मुग़ल बादशाही भी इसीका ज्वलंत उदाहरण है। पहले ही मुग़ल विदेशीय माने जाते थे। फिर ये तमाम हिन्दुस्तानमें सेनाके ज़ोरसे राज्य बढ़ाने लगे। सेनाके ज़ोरपर राज्य बहुत दिनों नहीं चलता। मुग़लोंके शासनमें आत्मीयताके भाव भी नहीं थे। इस कारण लोग इनके विरुद्ध हमेशा उठा ही करते थे। फिर दूर-दूर के सूबेदार मुख्य स्थानसे बहुत दूर रहनेके कारण सब बातोंमें स्वतन्त्र बन बैठते, और मौक़ा आता तो मुख्य सत्तासे ही लड़नेको खड़े हो जाते। इस प्रकार मुग़लशाही नष्ट हुई। ठीक यही हाल मराठाशाहीका हुआ। पेशवे पूनासे सब प्रबन्ध देख नहीं सकते थे, इस कारण गायकवाड़, शिन्दे, होलकर, भोंसले इन्हें नियत करने पड़े। थोड़े ही कालमें ये स्वतन्त्र बन बैठे, और मुख्य सत्ता पेशवेसे ही लड़ने अगर ये महाराष्ट्रके बाहर न आये होते तो वृथा अनेक

लड़ाइयाँ न लड़नी पड़ी होतीं, महाराष्ट्रका चित्त बाहरी बातोंमें न लगता और आपसमें कट मरनेका कोई कारण उपस्थित न होता। सत्ता बढ़ानेकी अपेक्षा सत्ता दृढ़ीभूत करना स्वराज्यको अधिक लाभदायक होता है, पर पेशवोंने यह बड़ी भूल की। सच बात यह थी कि राजाके हाथसे और अष्ट प्रधानके हाथसे तमाम सत्ता निकालकर उन्हें अपने हाथमें रखनेकी महत्त्वाकांक्षा उत्पन्न हुई। जब सब सत्ता उन्होंने अपने हाथमें कर ली, तब उसे सुरक्षित रखनी चाहिए। लोग चिल्लाने न पावें इसलिए उन्होंने बाहरी प्रान्तोंमें विजय-सम्पादन करना शुरू किया और लोगोंकी आँखोंमें धूल डाल दी। लोग उनके विजयसे उनकी वाहवा करने लगे और उनके दोष भूल गये। पहले बाजीरावने जो अनेक युद्ध किये, उनका यही रहस्य है और चालाक लोग इसी प्रकार करते हैं। पहले और तीसरे नैपोलियनोंने इसी प्रकार फ्रान्सकी सर्व सत्ता अपने हाथमें कर ली थी और दोनों प्रजा नियत शासक पदसे चढ़ते-चढ़ते खुल्लमखुल्ला वहाँके बादशाह बन बैठे और यूरोपके देशोंसे अनेक लड़ाइयाँ लड़ और विजय सम्पादन कर लोगोंकी आँखोंमें धूल डालने लगे। रोमके सीज़रने यही प्रयत्न किया था और उसे मारकर ब्रूट्सने ऐसी सत्ता उत्पन्न होने देनेका प्रतीकार करनेका प्रयत्न किया था। इतिहास से ज्ञात है कि सत्ताका केन्द्रीकरण और फिर उसका नाश इसी प्रकार व्यक्तिविषयक महत्त्वाकांक्षाके कारण हुआ करता है।

पेशवोंके इस प्रयत्नसे आपसकी फूट पैदा हुई, लोगोंका स्वदेशाभिमान जाता रहा, और जिस समय उच्च-स्वदेशाभिमानसे प्रेरित हो एक दिलसे लड़नेवाले [illegible] की आवश्यकता थी, उस समय एक भी न रहा। फिर यह सत्ता नाश न होती तो क्या होती। अस्तु, ये महाराष्ट्रके बाहर न निकलते तो शिंदेशाही, गायकवाड़ी, होलकरी और भोंसलेशाही पैदा न होती, फिर आपसकी ऐसी फूट पैदा न होती, लोगोंकी दृष्टि राज्य-शासनपर लगी रहती इस कारण स्वदेशाभिमान बना रहता और महाराष्ट्रकी सत्ता मज़बूत बनी रहती।

६. जो एक बड़ा भारी दोष पीछेसे उत्पन्न हुआ था वह लूटका था। शिवाजीको स्वराज्य-स्थापनके लिए इसके सिवाय द्रव्यसाधनका कोई दूसरा उपाय था नहीं। पर शिवाजीकी लूटका सच्चा अर्थ समझ लेना उचित है। उसके मार्गके जो विरुद्ध थे, वे लोग ही लूटे जाते थे। शिवाजी लूटने आता तो पहले शहरके मुख्य-मुख्य लोगोंसे द्रव्य माँगता, जब न देते तब शहरके भीतर जाकर धनी लोगोंका द्रव्य लूट लेता और चुपचाप लौट जाता। उसका सख्त हुकुम था कि किसी सिपाहीसे किसी स्त्री, बालक, वृद्ध और निर्बल लोगोंको कभी तकलीफ़ न हो। किसानोंको कभी नहीं लूटता था। जो लोग धनी थे और अपना पैसा ऐश-आराममें ख़र्च करते थे उन्हींपर उसका मोर्चा फिरता था। फिर सब लूट सरकारमें जमा होती थी। मोग़ल प्रान्तमें जो सरदेशमुखी और चौथ ली जाती थी, उसमेंसे भी एक तिनका किसीके हाथ न लगता था, सब सरकारमें जमा होता था। यह वेतन नगद देता रहा, इस कारण कोई कठिन प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता था। पर पेशवोंके समय ये सब बातें बदल गईं। मन-मानी लूट होने लगी, ग़रीब धनी सबको तकलीफ़ होने लगी, जो माल जिसके हाथ पड़ता वही उसका मालिक बन जाता था। शिवाजीके समय "स्वराज्य"में लूट न होती, जो प्रान्त उसके आधीन न रहते वहीं उसकी लूट होती थी, और वह भी ऊपर बतलाये नियमके अनुसार। उसके बाद बेबन्दशाही शुरू हो गई और अपने मनके अनुसार प्रत्येक करने लगा। इससे मुख्य सत्ता कमज़ोर और ढीली पड़ गई।

७. अब एक बात ऐसी कहनी है जो मर्मभेदक है, परन्तु सत्य किसीसे डरता नहीं, इसीलिए हम भी निर्भय होकर कहते हैं। शिवाजीके समय सब जातिके लोग नौकरी पाते थे, केवल मराठे ही नहीं, वरन् मराठे, ब्राह्मण, प्रभु इत्यादि सर्व जातिके लोग शिवाजीकी नौकरीमें थे। पर पेशवोंके समय ये बातें उलट गईं। ब्राह्मणोंकी संख्या बढ़ने लगी। नौकरीमें भरती करनेका तत्त्व योग्यता न रहा, बल्कि प्रभाव, नाता, धन, मान

इत्यादि। जहाँ योग्यताका तत्त्व दूर कर दिया जाता है और धनी-मानी, अधिकारियोंके रिश्तेदार नौकरी पाने लगते हैं, वहाँका राज्य-प्रबन्ध किस प्रकार ठीक चल सकता है, यह लिखनेकी आवश्यकता नहीं, यह स्वयं ही स्पष्ट है। अनेक कार्य करना कार्य करनेकी योग्यतापर निर्भर है न कि धन, मान इत्यादिपर। यह तत्त्व पेशवोंने नहीं पाला, इस कारण तीखे फल चखने पड़े।

८. शिवाजीके समय ज़मीन-लगान ज़मींदारोंके द्वारा वसूल न होता, सरकारी नौकर वसूल किया करते थे। यह जानी हुई बात है कि ज़मींदार किस प्रकार रैय्यतोंपर ज़ुल्म करते थे। लगानसे ज्यादा वसूल करना और लगानसे कम देना इस प्रकार आधा हिस्सा बीचमें ही मार लेना यह बहुधा ज़मींदारोंका काम है। इस कारण लोगोंको ये निर्धन बनाते हैं, और राज्य-प्रबन्धको पैसेकी कमी बनाये रहते हैं। इस पैसेके ज़ोरपर ये बलवान होते जाते हैं, क़िले बाँधने लगते हैं, फ़ौज रखने लगते हैं और प्रजा और राजा दोनोंको सताकर दोनोंको कमज़ोर बनाये रहते हैं। इस कारण जहाँ कहीं ज़मींदारोंके द्वारा लगान वसूल होता था, वहाँ राजा और प्रजा दोनों कमज़ोर पड़ जाते थे। मुग़ल बादशाहीका राज्य-प्रबन्ध इसका बड़ा भारी उदाहरण है। शिवाजीके समयमें यह कुछ न था। पर आख़ीरी समयमें पेशवोंने यह भी दोष उत्पन्न कर दिया। जहाँ कमावीसदार, महालकरी, सूबेदार लगान वसूल करते थे, वहाँ ज़मींदार वसूल करने लगे। फिर ऊपर लिखे तमाम दोष उत्पन्न हुए। आगे ही अनेक कारणोंसे महाराष्ट्रकी सत्ता कमज़ोर पड़ गई थी, इस कारणसे वह और भी कमज़ोर पड़ गई। यही कारण है कि अंग्रेज़ सरकारको अपनी प्रजाकी रक्षाके लिए टेनन्सी ऐक्टके समान अनेक ज़मीन सम्बन्धी ऐक्ट बनाने पड़े।

९. अब एक-दो आक्षेपोंका निवारण करना है। कोई कहते हैं,

मराठोंने अपनी लड़नेकी पद्धति छोड़ विदेशीय पद्धति स्वीकार की, इस कारण उनकी अंग्रेज़ोंसे हार हुई।

हम ऊपर जितने कारण बतला चुके हैं उनसे स्पष्ट है कि अंग्रेज़ोंकी भेंट होनेके पहिले ही मराठी सत्ताका शरीर रोगग्रस्त हो चुका था। उसके जीवनकी मुख्य शक्तियाँ पहिले ही निकल चुकी थीं। अंग्रेज़ोंसे मुलाकात होनेपर रोगग्रस्त शरीर गिरकर टूट पड़ा। युद्ध पद्धतिके बदलनेसे मराठी सत्ताका नाश हुआ, ऐसा जो कहते हैं, वे संकुचितदृष्टि हैं, ऐसा मालूम होता है। सामनेकी लड़ाई न लड़कर शत्रुपर समय-समयपर आक्रमण कर जर्जर करना यह शिवाजीकी पद्धति थी। इसके बारेमें यह ख्याल रखना चाहिए कि यह पद्धति पहाड़ी देशमें ही चलती है, समभूमिके देशमें यह योग्य नहीं, यह ऐतिहासिक बात है। जहाँ-जहाँ पहाड़ी मुल्क है, वहीं-वहीं यह पद्धति स्वीकार की गई है, यह देखनेमें आता है। क्योंकि बिना जाने शत्रुपर आक्रमण करना लूट-मार करके भग जाना यह पहाड़ी देशोंमें ही शक्य होता है। और यह बात महाराष्ट्रके ही इतिहाससे सबूत है। जब मराठे समभूमिपर आये तो उन्हें अपनी पद्धति बदलनी पड़ी। क्योंकि भगकर आश्रय कहाँ लें इस कारण आमने-सामनेकी लड़ाइयाँ लड़नी पड़ी, इन लड़ाइयोंके लिए तोपें रखनी पड़ीं और फ़ौजको नवीन पद्धतिकी शिक्षा देनी पड़ी और ऊपर-ऊपर देखनेसे मालूम होता है कि शिन्दे, भोंसले इत्यादिने जान-बूझकर यह पद्धति स्वीकारी। पर बात यह है कि ये समभूमिमें रहते थे। यहाँ लड़ाईके लिए खड़े होनेके सिवाय कोई उपाय न था। सर आल्फ्रेड लायल साहब अपने मतकी पुष्टिमें कहते हैं कि होलकरने यह पद्धति नहीं स्वीकारी थी। पर क्या होल्करको भी खड़ी लड़ाइयाँ नहीं लड़नी पड़ीं और क्या उसकी सेनाकी उनमें जीत हुई। एक बार कभी चालाकीसे छोटी-सी अंग्रेज़ी सेनापर जीत मिल गई, इससे यह बात सबूत नहीं हो सकती। इनके हारनेके कारण अन्यत्र ही हैं। हाँ, हमें यह

क़बूल है कि बनते तक खड़ी लड़ाई लड़नी चाहिए। बनते तक अचानक घावोंसे ही शत्रुको जर्जर कर डालना ठीक है, पर शिन्देने यूरोपीय पद्धति स्वीकारनेमें बड़ी ग़लती की, ऐसा हम माननेको नहीं तैयार हैं। आप कहते हैं, यूरोपीय पद्धतिसे यूरोपियनोंसे लड़कर हिन्दुस्तानी कभी जीत नहीं पा सकते थे। कुछ अंशमें यह भी कबूल, पर सर्वथा नहीं। हमारा इतना ही इस विषयमें कहना है कि लायल साहबने इस बातको जितना महत्त्व दिया है, उतना हम नहीं दे सकते। हमारी समझमें दोनों पद्धतियोंका मिश्रण ठीक रहा होता जैसा कि हम ऊपर दिखला चुके हैं।

१०. कोई कहते हैं, पानीपतकी हारके कारण मराठेशाही नष्ट हो गयी। यह भी कई अंग्रेज़ी ग्रन्थकारोंका मत है। उन्हें भी हम संकुचित दृष्टिके वर्गमें ही रक्खेंगे। हमारा पुनः-पुनः कहना है कि मराठी सत्ता पहले ही जीर्ण हो चुकी थी। ऐसे समयमें किसीसे भी भेंट हुई होती तो उन्हें हार होनी ही चाहिए थी। यदि जीत भी हुई होती तो क्या मराठी सत्ता बनी रहती? हारनेके कारण पहले ही मौजूद थे, कितनी भी सेना ले जाते तो क्या होता? युद्धमें स्त्रियों सहित जाना नहीं। क्या नगरका नगर उठा ले जाना नाना सरदारोंके नाना मत, आपसमें झगड़ा कर शक्ति नष्ट करना, स्वार्थ-पूजा, सदाशिवराव भाऊकी आत्मा-प्रौढ़ी, ऐसे लाखों कारणोंके मौजूद रहते करोड़ों मराठे भी पानीपतपर जाते, तो क्या जीत पा सकते थे? और जीत भी जाते तो मराठी सत्ता क्या दृढ़ हो जाती? हमारी समझमें और भी जीर्ण हो जाती, क्योंकि राज्यके फैलावके साथ राज्य-प्रबन्ध ढीला पड़ जाता। हाँ, एक बात और अंग्रेज़ोंसे जो १७७५में पहली मुलाक़ात हुई वह शायद १७६१ के बाद जल्द ही हो जाती और शायद मराठी सत्ताका नाश हुआ उससे आगे ही हो जाता। हम इस पानीपतके युद्धको कोई विशेष महत्त्व नहीं देना चाहते। मराठी सत्ताके कमज़ोरीके कारण पहले ही मौजूद थे। पानीपतपर जीतनेसे बहुत होता तो

क़बूल है कि बनते तक खड़ी लड़ाई लड़नी चाहिए। बनते तक अचानक घावोंसे ही शत्रुको जर्जर कर डालना ठीक है, पर शिन्देने यूरोपीय पद्धति स्वीकारनेमें बड़ी ग़लती की, ऐसा हम माननेको नहीं तैयार हैं। आप कहते हैं, यूरोपीय पद्धतिसे यूरोपियनोंसे लड़कर हिन्दुस्तानी कभी जीत नहीं पा सकते थे। कुछ अंशमें यह भी कबूल, पर सर्वथा नहीं। हमारा इतना ही इस विषयमें कहना है कि लायल साहबने इस बातको जितना महत्त्व दिया है, उतना हम नहीं दे सकते। हमारी समझमें दोनों पद्धतियोंका मिश्रण ठीक रहा होता जैसा कि हम ऊपर दिखला चुके हैं।

१०. कोई कहते हैं, पानीपतकी हारके कारण मराठेशाही नष्ट हो गयी। यह भी कई अंग्रेज़ी ग्रन्थकारोंका मत है। उन्हें भी हम संकुचित दृष्टिके वर्गमें ही रक्खेंगे। हमारा पुनः-पुनः कहना है कि मराठी सत्ता पहले ही जीर्ण हो चुकी थी। ऐसे समयमें किसीसे भी भेंट हुई होती तो उन्हें हार होनी ही चाहिए थी। यदि जीत भी हुई होती तो क्या मराठी सत्ता बनी रहती? हारनेके कारण पहले ही मौजूद थे, कितनी भी सेना ले जाते तो क्या होता? युद्धमें स्त्रियों सहित जाना नहीं। क्या नगरका नगर उठा ले जाना नाना सरदारोंके नाना मत, आपसमें झगड़ा कर शक्ति नष्ट करना, स्वार्थ-पूजा, सदाशिवराव भाऊकी आत्मा-प्रौढ़ी, ऐसे लाखों कारणोंके मौजूद रहते करोड़ों मराठे भी पानीपतपर जाते, तो क्या जीत पा सकते थे? और जीत भी जाते तो मराठी सत्ता क्या दृढ़ हो जाती? हमारी समझमें और भी जीर्ण हो जाती, क्योंकि राज्यके फैलावके साथ राज्य-प्रबन्ध ढीला पड़ जाता। हाँ, एक बात और अंग्रेज़ोंसे जो १७७५में पहली मुलाक़ात हुई वह शायद १७६१ के बाद जल्द ही हो जाती और शायद मराठी सत्ताका नाश हुआ उससे आगे ही हो जाता। हम इस पानीपतके युद्धको कोई विशेष महत्त्व नहीं देना चाहते। मराठी सत्ताके कमज़ोरीके कारण पहले ही मौजूद थे। पानीपतपर जीतनेसे बहुत होता तो

मराठेशाही दस-पाँच साल और जीती रहती। इससे कोई अधिक परिणाम न होता।

उपसंहार ११. अब हम उपसंहार कर यह लेख समाप्त करते हैं। हम ऊपर अनेक कारण दिखला चुके हैं। मीमांसाकी दृष्टिसे हमारा ऐसा देखना भी योग्य है। पर इतना बतला देना आवश्यक होगा कि परिस्थितिके कारण न जानते इनमेंसे कई कारण घुस आये। सब ही काम मनुष्य निज बुद्धिसे नहीं करता। कई काम उसे अनिच्छापूर्वक भी करने पड़ते हैं। जब हम ऐसी मीमांसा करते हैं, तब योग्य है कि इस दृष्टिका ख़याल रखा जाय। पर आख़िर यह कहना ठीक है कि पेशवोंने जानबूझकर कई कारण बो दिये। अगर शाहू विलासी चैनी निकला तो बालाजी विश्वनाथ किंवा बाजीरावको यह योग्य नहीं था कि अष्ट प्रधानका अस्तित्व न रखते और स्वतः राजा बन बैठते। फिर पेशवाई किंवा इधर अधिकांश वंश-परम्परा चलानेका कौन-सा कारण था। निजकी महत्त्वाकांक्षा तृप्त करनेके लिए और लोगोंकी आँखोंमें धूल डालनेके लिए महाराष्ट्रका द्रव्य और बल लड़ाइयोंमें ख़र्च करनेका कौन-सा कारण था? क्या आवश्यकता थी कि नौकरीके नक़द वेतन न देते, और वंश-परम्पराकी जागीर देकर अपने शत्रु खड़े कर लेते? पेशवोंने जिस प्रकार अपना फ़ायदा देखा, उसी प्रकार और लोगोंने भी अपना-अपना लाभ देखा। इस कारण शिवाजीके समयकी कल्पना, ध्येय, विचार और उच्च स्वदेशाभिमान इनमेंसे कुछ न रहा। इस कारण नीतिमत्ता बिगड़ गयी और आख़िर नाश हुआ। जहाँ नीतिमत्ता बिगड़ जाती है, वहाँ नाश होनेमें बहुत देर नहीं लगती। आख़िरी बात ख़याल करने लायक़ यह है कि पेशवोंने ब्राह्मणोंका साम्राज्य कर दिया, योग्य पुरुषोंकी क़ीमत न हुई। इस कारण फूट और उच्छृङ्खलता फैल गयी और उसमें आख़िर इस सत्ताका नाश हुआ।

—'तरुण भारत'

भारतकी शिक्षाका प्रश्न (लेख)*

उन लोगोंसे, जिन्होंने पुस्तकें पढ़-लिखकर अपनेको पढ़ा-लिखा बना लिया है, यह छिपा नहीं है कि भारतमें ऐसे लोगोंकी संख्या जो खींच-तान कर कुछ थोड़ा-सा पढ़ लेते हैं, और साथ ही वे लोग जो भारतकी वर्तमान शिक्षा पाये हुए हैं, सब मिलाकर १००० में ५९ अर्थात् प्रति सैकड़ा ५$\frac{९}{१०}$ है। हमपर विलायती गद्दीकी सत्ता कितने ही दिनोंसे है। ग़दरका साल अभी भी बहुतोंको भूला न होगा। उसके पहलेसे ही अंग्रेज़ लोग भारतीयोंको पढ़ानेके प्रयत्नमें लगे हैं। और यह जो प्रति सैकड़ा ठोंक-पीटकर ६ का हिसाब बैठता है, सो उन्हीं लगभग १०० वर्षोंके पूरे प्रयत्नका फल है। और हमारे 'इस पढ़े-लिखे' हो जानेके लिए हमें शिक्षादाता, गवर्नमेण्टको धन्यवाद देना चाहिए। परन्तु इस शिक्षापर हमें कुछ कहना है। हम पूछते हैं कि यह कैसी शिक्षा है, जो हमें दरिद्र होनेसे नहीं बचा सकती? यह कैसी शिक्षा है जो हमारे बच्चोंकी शक्ति रेखागणित (Geometry) और बीजगणित (Algebra) के पढ़नेमें खर्च करती है। किन्तु उन्हें बनाती है, यह सब पढ़ चुकनेपर २० रु० महीनेपर बिकनेवाला नकलनवीस। यह कैसी शिक्षा है जो हमारे वर्षों खराब कर देती है, किन्तु हमें जीवन-युद्धके किसी भी कामका नहीं रहने देती। हम किसानोंकी सन्तान हैं, हम व्यापारियोंकी सन्तान हैं और हम ऋषियोंकी सन्तान हैं। किन्तु न हमें कृषक बननेको शिक्षा दी जाती है, न हमें व्यापारी बननेकी शिक्षा दी है और न ऐसे ही कोई ऋषि हैं जो ऋषि जीवनके अनुकूल शिक्षा दें। देशके कोने-कोनेसे दरिद्रताकी आवाज़ आ रही है और वह दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है। व्यापार और कृषिकी जो दुर्दशा हो रही है तथा कला-कौशलकी जो दुर्दशा हो चुकी है, उसका वर्णन करना मानो अपनेको उदासीनताकी आपत्तिमें डालना है। पढ़े-लिखे इने-गिने लोगोंमें भी

---

* भाग २, फाल्गुन मासिक पत्रिका, संख्या १२।

पुस्तकोंका रोग बेतरह बढ़ गया है। शिक्षालयोंके वे दरवाज़े भी, जो हमें पढ़े-लिखे बना दिया करते थे, अब बन्द हो रहे हैं। परीक्षाएँ बुरी ली जाती हैं। शिक्षा देनेमें उचित प्रणालीसे कार्य नहीं लिया जाता। तिसपर शिक्षा इतनी व्ययसाध्य बना दी गयी है कि उसे पानेवाला ग़रीब हो, यह कभी सम्भव नहीं। हज़ारों विद्यार्थी रोज़ ठोकरें खाते, मारे-मारे फिर रहे हैं। किसको इनकी परवाह है। शिक्षालयोंके दरवाज़े बन्द होनेका हमें उतना खेद नहीं जितना हमें हिन्दू जातिकी अकर्मण्यतासे। किसान अपनी किसानी छोड़ रहा है, व्यापारी अपना व्यापार। और जो कला-कौशलके बलपर जीते हैं, उनका तो भारतसे अस्तित्व ही मिट गया-सा दीखता है। संसारमें रहनेवाली किसी जातिका इतना बेहोश हो जाना उचित नहीं। और इसीलिए हमें इस बातकी चिन्ता है। हमारे देशवासियोंको शिक्षाके उचित पथ ढूँढ़ने चाहिए। पढ़े-लिखे मतिहीनोंके बहकानेमें नहीं आना चाहिए। जो दर्ज़ी हो, उसे चाहिए कि वह अपने बच्चेको थोड़ा-सा पढ़ा-लिखाकर प्रारम्भिक और कुछ माध्यमिक शिक्षा देकर अच्छा और सस्ता सीनेवाला बनावे। जो धोबीका लड़का हो, वह उपयोगी और कार्यकारी कपड़े धोनेवाला बने। उनकी मति मारी गयी जो पुस्तकोंके ही दरवाज़े अपनी समूची जातिका बलिदान कर दिया चाहते हैं। किसानों-के बालकोंको किसान बनना चाहिए।

अनाज पैदा करना, खाद तैयार करना, ज़मीन बनाना, सिंचाई करना, रोगोंसे फसलको बचाना, पशु पालना, दूध घीका प्रबन्ध करना आदि सैकड़ों ही कार्य एक बुद्धिमान् कृषकके करनेके हैं, परन्तु ये सारे कार्य आज ग़रीब, आपत्तियोंसे कसे हुए और निरक्षर कृषक कहलाने वालोंके हाथमें सौंप दिया गया है। और अब पढ़े-लिखे मनहूस नौकरीपर उतर उठे हैं। क्या यही शिक्षाका उद्देश्य है? हमें तो ऐसी संस्थाकी ज़रूरत है, जो हमारे घरकी शिक्षा दे। हमें ग़ुलामीकी या उपदेशकोंकी टकसालमें ढालनेकी शिक्षाकी ज़रूरत नहीं। हमें रोटियोंकी शिक्षाकी ज़रूरत है।

भारतकी शिक्षाका प्रश्न (लेख)*

उन लोगोंसे, जिन्होंने पुस्तकें पढ़-लिखकर अपनेको पढ़ा-लिखा बना लिया है, यह छिपा नहीं है कि भारतमें ऐसे लोगोंकी संख्या जो खींच-तान कर कुछ थोड़ा-सा पढ़ लेते हैं, और साथ ही वे लोग जो भारतकी वर्तमान शिक्षा पाये हुए हैं, सब मिलाकर १००० में ५९ अर्थात् प्रति सैकड़ा ५$\frac{९}{१०}$ है। हमपर विलायती गद्दीकी सत्ता कितने ही दिनोंसे है। ग़दरका साल अभी भी बहुतोंको भूला न होगा। उसके पहलेसे ही अंग्रेज़ लोग भारतीयों को पढ़ानेके प्रयत्नमें लगे हैं। और यह जो प्रति सैकड़ा ठोंक-पीटकर ६ का हिसाब बैठता है, सो उन्हीं लगभग १०० वर्षोंके पूरे प्रयत्नका फल है। और हमारे 'इस पढ़े-लिखे' हो जानेके लिए हमें शिक्षादाता, गवर्नमेण्टको धन्यवाद देना चाहिए। परन्तु इस शिक्षापर हमें कुछ कहना है। हम पूछते हैं कि यह कैसी शिक्षा है, जो हमें दरिद्र होनेसे नहीं बचा सकती? यह कैसी शिक्षा है जो हमारे बच्चोंकी शक्ति रेखागणित (Geometry) और बीजगणित (Algebra) के पढ़नेमें खर्च करती है। किन्तु उन्हें बनाती है, यह सब पढ़ चुकनेपर २० रु० महीनेपर बिकनेवाला नकलनवीस। यह कैसी शिक्षा है जो हमारे वर्षों ख़राब कर देती है, किन्तु हमें जीवन-युद्धके किसी भी कामका नहीं रहने देती। हम किसानोंकी सन्तान हैं, हम व्यापारियोंकी सन्तान हैं और हम ऋषियोंकी सन्तान हैं। किन्तु न हमें कृषक बननेकी शिक्षा दी जाती है, न हमें व्यापारी बननेकी शिक्षा दी है और न ऐसे ही कोई ऋषि हैं जो ऋषि जीवनके अनुकूल शिक्षा दें। देशके कोने-कोनेसे दरिद्रताकी आवाज़ आ रही है और वह दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है। व्यापार और कृषिकी जो दुर्दशा हो रही है तथा कला-कौशलकी जो दुर्दशा हो चुकी है, उसका वर्णन करना मानो अपने को उदासीनताकी आपत्तिमें डालना है। पढ़े-लिखे इने-गिने लोगोंमें भी

---

* भाग २, फाल्गुन मासिक पत्रिका, संख्या १२।

पुस्तकोंका रोग बेतरह बढ़ गया है। शिक्षालयोंके वे दरवाज़े भी, जो हमें पढ़े-लिखे बना दिया करते थे, अब बन्द हो रहे हैं। परीक्षाएँ बुरी ली जाती हैं। शिक्षा देनेमें उचित प्रणालीसे कार्य नहीं लिया जाता। तिसपर शिक्षा इतनी व्ययसाध्य बना दी गयी है कि उसे पानेवाला ग़रीब हो, यह कभी सम्भव नहीं। हज़ारों विद्यार्थी रोज़ ठोकरें खाते, मारे-मारे फिर रहे हैं। किसको इनकी परवाह है। शिक्षालयोंके दरवाज़े बन्द होनेका हमें उतना खेद नहीं जितना हमें हिन्दू जातिकी अकर्मण्यतासे। किसान अपनी किसानी छोड़ रहा है, व्यापारी अपना व्यापार। और जो कला-कौशलके बलपर जीते हैं, उनका तो भारतसे अस्तित्व ही मिट गया-सा दीखता है। संसारमें रहनेवाली किसी जातिका इतना बेहोश हो जाना उचित नहीं। और इसीलिए हमें इस बातकी चिन्ता है। हमारे देशवासियोंको शिक्षाके उचित पथ ढूँढ़ने चाहिए। पढ़े-लिखे मतिहीनोंके बहकानेमें नहीं आना चाहिए। जो दर्जी हो, उसे चाहिए कि वह अपने बच्चेको थोड़ा-सा पढ़ा-लिखाकर प्रारम्भिक और कुछ माध्यमिक शिक्षा देकर अच्छा और सस्ता सीनेवाला बनावे। जो धोबीका लड़का हो, वह उपयोगी और कार्यकारी कपड़े धोनेवाला बने। उनकी मति मारी गयी जो पुस्तकोंके ही दरवाज़े अपनी समूची जातिका बलिदान कर दिया चाहते हैं। किसानोंके बालकोंको किसान बनना चाहिए।

अनाज पैदा करना, खाद तैयार करना, ज़मीन बनाना, सिंचाई करना, रोगोंसे फसलको बचाना, पशु पालना, दूध घीका प्रबन्ध करना आदि सैकड़ों ही कार्य एक बुद्धिमान् कृषकके करनेके हैं, परन्तु ये सारे कार्य आज ग़रीब, आपत्तियोंसे कसे हुए और निरक्षर कृषक कहलाने वालोंके हाथमें सौंप दिया गया है। और अब पढ़े-लिखे मनहूस नौकरीपर उतर उठे हैं। क्या यही शिक्षाका उद्देश्य है? हमें तो ऐसी संस्थाकी ज़रूरत है, जो हमारे घरकी शिक्षा दे। हमें ग़ुलामीकी या उपदेशकोंकी टकसालमें ढालनेकी शिक्षाकी ज़रूरत नहीं। हमें रोटियोंकी शिक्षाकी ज़रूरत है।

और जो देशकी रोटियोंकी शिक्षाका प्रबन्ध करेगा संसार देखेगा कि वह भारतमें देवताओंके समान पूजा जायगा। पर वर्त्तमान सरकारी और ग़ैरसरकारी संस्थाओंमें ऐसा प्रबन्ध नहीं दीखता। जो लोग भारतका भला चाहते हैं, उनका काम है कि वे भारतमें कृषि, व्यापार और उद्योगकी शिक्षा दें। इधर-उधरकी शिक्षामें हमारा जीवन ख़राब न होना चाहिए और हज़ारोंका ख़र्च कर बड़ी-बड़ी इमारतें हमारे लिए न बनना चाहिए।

—'एक उच्च शिक्षित'

❀ लार्ड हार्डिंग्जकी ओर एक सावधान दृष्टि (लेख)

हमारे परम माननीय सम्राट्के प्रतिनिधि रहकर, भारतके भूतपूर्व वाइसराय श्रीमान् लार्ड हार्डिंग्ज आव पेंशर्स्ट महोदय, अप्रैलकी प्रारम्भीय तिथियोंको अपने स्वदेशको रवाना हो गये। कुछ लोग ज़ोर लगाया करते हैं कि राजा और प्रजाके बीच भिन्नताकी सीमा बिलकुल न रहे, और इस बातके लिए प्रजाको दोष देने ही में वे अपनी सम्पूर्ण शक्ति ख़र्च कर दिया करते हैं। किन्तु वे उन तराजूमें तुलनेवालोंकी ओर नहीं देखते, जो दूसरे पल्लेके नीचे वज़नदार होनेपर भी "उसीपर और वज़न चढ़ाओ" की पुकार मचाया करते हैं। वह हृदय, सम्राट्का वह सबसे बड़ा और सबसे अच्छा प्रतिनिधि और हमारा सबसे अच्छा शासक। शासक? हाँ, शासक। हमें कुछ दृढ़तासे कहने दो, कि ऐसा नहीं था। उसका हृदय ऊँचा था, उसका कार्य क्षेत्र विस्तृत था, उसकी कार्यप्रणाली भारतका हित करनेकी भावना रखती थी। इंग्लैण्डके इस बड़े हृदयके लिए, सम्राट्के इस उदार प्रतिनिधिके लिए महामन्त्री आस्कुथके इस द्वितीय संस्करणके लिए भारतीय और विदेशीय सब पत्रोंने बहुत कुछ लिख

❀ भाग २ : अंक १२।

डाला है। और आज तक भी वह प्रवाह बह रहा है। हम चाहते हैं हम भी एक दृष्टि डालकर अपने इस लार्डपर विचार करें। किसी भी वस्तुका मूल्य यदि उसी वस्तुकी श्रेणीके अनुसार किया जाय तो, उस वस्तुकी उत्तमताके अनुकरणमें जनताको कठिनाई नहीं पड़ती। अवश्य ही यह कहा जाता है, और वह ठीक है कि लार्ड हार्डिंग्जने भारतीयोंके लाभके लिए भारी-भारी कष्ट उठाये और उनका भारी हित किया। किन्तु जिस दक्षिण अफ्रीकाके महासंग्रामका निपटारा लार्ड हार्डिंग्जके शासनकालमें हुआ है, उसका महत्त्व तब मालूम होता है, जब हम लार्ड हार्डिंग्जके इन वाक्योंपर ध्यान देते हैं : 'जो आपके भाई वहाँ (दक्षिण अफ्रीकामें) आईन और क़ानून नहीं, किन्तु ज़ुल्म और अत्याचार तोड़ रहे हैं और इस कार्यमें मेरे जैसे परकीयकी भी, जो भारतीय नहीं, गहरी सहानुभूति है।" निःसन्देह ये वाक्य किसी बेहृदयको ही शोभनेवाले हैं। इसी प्रकार हमारे इस लार्डके समयमें, सम्राट् भारतमें आये, शिक्षा-के लिए ५० लाख अधिक मिला, बङ्गके दो टुकड़े जोड़े गये, राजधानी पलटी, दक्षिण अफ्रीकामें भारतीय जीते, और सबसे बड़े काम जो हुए, वे हैं ये तीन : हिन्दू जातिका हिन्दू विश्वविद्यालय स्थापित हुआ, बीसवीं सदीकी निन्द्य और नीच प्रथा ग़ुलामीका प्रस्ताव इम्पीरियल कौंसिलमें पास हुआ, और जो भारतीय व्यापारका बाधक हो रहा था, जो भारतीय व्यापारका नाश कर रहा था, उस विदेशी मालपर कर लगाया गया। कुछ लोग कहते हैं, यह कार्य तो समयको सिर झुकाते हुए हर एकको करने पड़ते। हम अधिक अंशोंमें ऐसा नहीं सोचते, और ऐसा सोचने-वालोंको यह ताना देते हैं कि देखें भविष्यत्की वेदीपर चढ़कर, कार्यकी दिशाओंको अपने अनुकूल फेरनेमें आप विश्वको कहाँ तक लाचार करते हैं, जब कि लार्ड हार्डिंग्ज भारतमें नहीं हैं।

लार्ड हार्डिंग्जका जो चित्र हमारी आँखोंके सामने है खिंचता व चिताता है, स्मरण रखो; मैं भारतीय नहीं था, कठिनाइयोंमें भारतकी

हित-चिन्तना करनेवाला था। किन्तु इंग्लैण्डका, उस इंग्लैण्डका, जिसने मुझे जन्म दिया है, जो मेरी जातिकी इज्ज़तका केन्द्र है, जिसके लिए मैं सब कुछ कर सकता हूँ और जिसकी जवाबदारियोंके बोझेका पवित्र भार-वाहक बनकर मैं यहाँ आया था, एक आज्ञाकारी सेवक हूँ। सोते, उठते, बैठते, खाते, पीते मुझे इंग्लैण्डकी मधुर ध्वनि मेरे कानोंमें गूँजती थी और उसीका यह प्रमाण था कि राजधानी पलटी गई, मैंने हज़ारों गालियाँ खाईं; चुप रहा। किसी या कुछ अभागोंने षड्यन्त्र रचा, और राजधानी प्रवेशके शुभोत्सवपर, मेरी हत्या करना चाहा। ओह! वह मृत्युसे युद्ध, किन्तु तब भी चुप रहा, और कुछ न डगमगाया, सोचा यदि क्रोध करता हूँ तो उस क्रोधसे सम्राट्की सम्पूर्ण निरपराध प्रजाको, जिसकी सहानुभूतिके तारों और पत्रोंसे मेरा दीवानखाना भर रहा था दुःख पहुँचेगा, और सबसे ज़बरदस्त बात जो होगी वह यह कि मेरा क्रोध, मुझे एक योग्य शासक सिद्ध न करेगा, अयोग्य सिद्ध करेगा। मैं इंग्लैण्ड-की जवाबदारीकी पात्रतामें अयोग्य सिद्ध होऊँगा, और मेरा, मेरा देश कहेगा एक प्राणोंका मोह करनेवाले डरपोक व्यक्तिको, विश्व-विजयी इंग्लैण्डकी ३० करोड़ प्रजाका जवाबदार बनाकर नाहक भेजा। दूसरा समय जिसे भारतसे प्यार था, उन श्रीमती लेडी हार्डिंग्ज महोदयाके स्वास्थ्यने विदाई ली, वे रुग्ण रहने लगीं, मैं यहाँ रहा, वे औषध कराने मेरी पवित्र मातृभूमिमें गईं। किन्तु दुष्ट दुर्दैवकी लीला, वे मुझसे सदा के लिए विदा हो गईं। मैंने अपनी जीवन-संगिनी खो दी, विश्वमें मैं निरा अकेला हो गया। किन्तु एक ठण्डी गहरी साँस लेकर फिर भी चुप रहा क्यों? यद्यपि वह मेरी प्राणेश्वरी थी, उसने प्राणोंको आपत्तियों-में डालकर मेरा साथ दिया था, उससे बढ़कर प्यारी चीज़ संसारमें अधिक नहीं, किन्तु, एक बात मेरे सम्मुख थी। मातृभूमि इंग्लैण्डसे अधिक मूल्यवान मेरे लिए विश्वमें कुछ नहीं, और मैं कहता हूँ, जो सच्चा अंग्रेज़ होगा, उसके लिए, मातृभूमिसे अधिक मूल्यकी चीज़ कोई नहीं

हो सकती। तीसरी घटना एक दानवीय प्रवृत्तिने संसारको युद्ध करनेके लिए लाचार किया। लड़ाईकी घोषणा हुई। बस, जी भर आया, और सोचा, अब मातृभूमिको मेरी आवश्यकता है। और इसकी सच्चाईमें सन्देह ही क्या था। किन्तु फिर चुप रहा। मेरी मातृभूमि दुश्मनसे लोहा ले रही है, और मेरे भाई, अपने प्राणोंकी आहुति दे रहे हैं यह सुन-सुनकर जी व्याकुल रहता था, खाना और सोना भूल रहा था, किन्तु फिर भी स्तब्ध था क्यों? मातृभूमिने जिस जवाबदारीके लिए मुझे यहाँ भेजा उसकी आज्ञाके विना, उससे हिलने-डुलनेका मुझे कोई अधिकार नहीं। उसके गौरवकी रक्षाका भार मुझे उसने विश्वाससे सौंपा था, और उस भारसे हिलडुल जाना, एक बड़े विश्वासघातीसे किसी प्रकार कम न था। धीरे-धीरे युद्ध भयानक हो चला, धन-जन अधिक राशिमें स्वाहा होने लगा, ठीक उसी समय, सम्राट्की आज्ञा और भक्तिसे, तथा मेरे अनुरोधसे, साम्राज्यके गौरव भारतने, भारी साथ दिया। मैंने अपनेको कृत्य-कृत्य माना। एक दिन सुना कि मेरा प्यारा पुत्र लेफ्टिनेण्ट हार्डिग्ज, युद्धक्षेत्रमें मातृपूजाके लिए बलि हो गया, यह खबर कैसी थी। पर मैं अंग्रेज़ था, चुप रहा: भगवान्को धन्यवाद दिया, और अपनी मातृभूमिके नक्शेको एक बार भरी हुई आँखोंसे देखा। खड़ा रहा और विचार किया। मुँहसे एक दम शब्द निकल पड़े प्यारी माता, तेरे लिए सब कुछ तैयार है। जी अकुलाया, पुत्र प्रेम भी कोई वस्तु है किन्तु यथार्थ ही, मेरे लिए, एक ब्रिटिशके लिए "मातृभूमि" पुत्र शब्दकी अपेक्षा कहीं अधिक मूल्यवान् है। मैंने भारतके लिए जो कुछ किया है वह अपनी मातृभूमिका हित सोचकर किया है। मैं सदा इंग्लैण्डका रहा हूँ और सदा इंग्लैण्डका रहूँगा, वही मनुष्य है, दुनियामें उसीको जीनेका अधिकार है, जो अपनी मातृभूमिका रहे। भारत पिछड़ा हुआ है, वह मुझे प्यारा है, उसके हितका मुझे स्मरण है, और वह इसलिए कि मैं ईमानदार इंग्लैण्डका पुत्र हूँ जिसके समयमें, संसारकी बेड़ियाँ टूटी हैं।"

हमारे लार्डका यह प्रत्यक्ष दर्शन जब हम करते हैं तब हमारे मुँहसे निकल पड़ता है, ऐ इंग्लैण्डके बड़े और विश्वसनीय दृढ़ हृदय! तुझे धन्य है। तेरा दर्शन हमें अनुकूल दिशाका दर्शन कराता है। हमें ज्ञात नहीं, हमारी मातृभूमि भारतमें, हार्डिंगजसे पुत्र किस दिन पैदा होंगे।

—'एक भारतवासी'

'प्रभा'में प्रकाशित माखनलालजीकी कविताएँ

नीति-निवेदन *

बुधवर-प्रबोधाश्रम, अनोखे कुल-कमल-वन-भानु,
सद्हृदय-पंकज-अलि, निराशा-विपिन-दहन-कृशानु।
श्रीभारतीके द्वारके गुण-शील चौकीदार,
निज पूर्वजोंकी कीर्ति, आशा, शान्तिके आधार॥
कुविचार-अरि-नाशन-प्रयत्नक श्रेष्ठ भावी भीम,
उत्साह-सागरके प्रबल पैराक शोभा-सीम।
हे श्रेष्ठता-सोपान-गामी छात्र-वृन्द उदार,
क्या सुन सकोगे अल्प मेरे सामयिक उद्गार॥
'जो देश जब जब हैं हुए जगमें प्रशंसा-पात्र,
तब तब वहाँ पैदा हुए हैं योग्य अद्भुत छात्र।'
यों सोच कर, अब है तुम्हारी ओर सबका ध्यान,
देखो; सम्हलकर कार्य करना, हो सजग सज्ञान॥

---

* प्रभा, संख्या १, भाग १

बनकर अविद्या-समरके गुण-शौर्य-शाली वीर,
बनकर कला-कौशल्य-कोष-कुबेर, अति मतिधीर।

बनकर स्व-गो-पति ब्रह्मचारी भीष्म-सम निःस्वार्थ,
विस्मित करो संसारको कर नाम निज चरितार्थ।

श्रीभारती-पद हंसके हो विमल-मानस ताल,
इस दीन भारतमें बनो तुम 'भारतीय' विशाल।

बन भरत-कुल-भूषण-मुकुट-मणि, देशके आदर्श,
सत्कवि, सुलेखक, विज्ञ, विज्ञानी बनो सहर्ष॥

'उत्साह, ऐक्य, उदारता, अनुभव, पवित्र विचार,
सन्तोष, शील, सदाचरण, श्रम, विनय-मय व्यवहार।

वात्सल्यता, सौजन्यता, सुस्नेह, करुणा, भक्ति,
ध्रुव धीरता, गम्भीरता, वर वीरता, वाग्-शक्ति॥

मन-सरलता, प्रण-अटलता, सद्भाव, शुचिता, नीति,
करुणाधिपति विश्वेशके पद-पद्ममें दृढ़ प्रीति'।

हों इन गुणोंसे पूर्ण जो देवोपमान यथेष्ट,
मानो उन्हें, प्रिय! पूज्य, अनुकरणीय, मानव श्रेष्ठ॥

सुविनम्रता, निष्कपटता, गुण-ग्राह्यता, विश्वास,
अति पूज्य बुद्धि सुशीलता, वर विज्ञताकी आश।

अनुमति-प्रपालन-हर्ष, श्रद्धा, भक्ति, सत्य, विवेक,
उत्साह, मृदु भाषण, नियामकता, गुणोंकी टेक।

इन शुभ गुणोंसे पूर्ण हो जिस छात्रका हृद्धाम,
संसारके विद्वद्वरोंका है वही विश्राम।

होता रहेगा वह सुधी-उपदेशसे परितृप्त,
होने न पावेगा कभी वह तापसे परितृप्त ॥

प्रिय ! गर्वके कोई कभी मत फटकना तू पास,
होता रहा है विज्ञताका सदा इससे नाश ।

फिर, भूलकर भी हो न जाना तुच्छ यशके दास,
देता रहेगा सर्वदा यह एक अवगुण त्रास ॥

शुभ समय, पात्रापात्र, देश-विचारके अनुसार,
अति अगम, दुर्गम सरल-गम थलमें करो निस्तार ।

आडम्बरीय विचार तजकर बन दृढ़व्रत धीर,
'विद्या विनयसे सोहती है,' यह न भूलो वीर ।

भारत-पयोनिधि-सौख्य-वीचि-प्रचारके हित आज,
उद्योगके आकाश-मंडलके बनो द्विजराज ।

सत्कीर्ति-कुमुद प्रफुल्लकर, अपयश-कमलकर बन्द,
आशा-सदौषधि-गुण-सुधा-वर्षा करो सानन्द ॥

यह रत्न-गर्भा भूमि देखो हो रही है रंक,
प्रिय सोच लो, तुम द्रुत मिटा दो यह महान् कलंक ।

निज प्रभा दिखला जगत्को कहो 'हम हैं रत्न'
यों धैर्य दो इस आर्यमाताको, करो फिर यत्न ।

है शोचनीया मातृ-भाषाकी दशा अत्यन्त,
वह उच्चभावैश्वर्य-हीना कर रही—'हा हन्त' ।

क्या श्रेष्ठ-पदवी-प्राप्त मेरे छात्र सुत भी आज,
मुझ गुण-विहीनाकी रखेंगे, माँ समझकर, लाज ।

निज देश-सर-नेता कमल-आशा-कली है बन्द,
जिससे महा-दुख-पूर्ण हैं उन्नति-विचार-मलिन्द।

विद्वान् छात्र-समूह-रवि यदि हो उदय इसका,
तो खिल उठे पंकज अभी, फिर हो मनोहरता।

विनीत,—'नवनीत'

* प्रेम !

[लेखक—श्रीयुत विश्वव्याप्त]

है कौन सा वह तत्त्व, जो सारे भुवनमें व्याप्त है,
ब्रह्माण्ड पूरा भी नहीं जिसके लिए पर्याप्त है?
है कौन सी वह शक्ति, क्यों जी! कौन सा वह भेद है?
बस, ध्यान ही जिसका मिटाता आपका सब शोक है,
वह प्रेम है, वह प्रेम है, वह प्रेम है, वह प्रेम है।
है अचल जिसकी मूर्ति, हाँ हाँ, अटल जिसका नेम है॥
बिछुड़े हुओंका हृदय कैसे एक रहता है, अहो!
वे कौनसे आधारके बल कष्ट सहते हैं, कहो?
क्या क्लेश? कैसा दुःख? सबको धैर्यसे वे सह रहे,
है डूबनेका भय न कुछ, आनन्दमें वे बह रहे। वह प्रेम...
क्या हेतु, जो मकरन्द पर हैं भ्रमर मोहित हो रहे?
क्यों भूल अपनेको रहे, क्यों सभी सुधि-बुधि खो रहे?

---

* प्रभा, भाग १, संख्या ६।

किस ज्योतिपर निश्शंक हृदय पतंग लालायित हुए ?
जाते शिखाकी ओर, यों निज नाश हित प्रस्तुत हुए ? वह प्रेम…

आकाशमें, जलमें, हवामें, विपिनमें, क्या बाग़में,
घरमें, हृदयमें, गाँवमें, तरुमें तथैव तड़ागमें,
है कौन सी वह शक्ति, जो है एक सी रहती सदा,
जो है जुदा करके मिलाती, मिलाकर करती जुदा ? वह प्रेम…

चेतन्यको जड़ कर दिया, जड़को किया चैतन्य है,
बस, प्रेमकी अद्भुत, अलौकिक उस प्रभाको धन्य है,
क्यों, कौन सा है वह नियम, जिससे कि चालित है मही ?
वह तो वही है, जो सदा ही दीखता है सब कहीं। वह प्रेम है…

यह देखिए, घनघोर कैसा शोर आज मचा रहा।
सब प्राणियोंके मत्त-मनोमयूर अहा ! नचा रहा॥
ये बूँद हैं, या क्या ! कि जो यह है यहाँ बरषा रहा ?
सारी महीको क्यों भला इस भाँति है हरषा रहा ? वह प्रेम है…

यह वायु चलती वेगसे, ये देखिए तरुवर झुके,
हैं आप अपनी पत्तियोंमें हर्षसे जाते लुके।
क्यों शोर करती है नदी, हो भीत पारावार से !
वह जा रही उस ओर क्यों ? एकान्त सारी धारसे। वह प्रेम है…

यह देखिए, अरविन्दसे शिशुवृन्द कैसे सो रहे,
हैं नेत्र माताके इन्हें लख तृप्त कैसे हो रहे।
क्यों खेलना, सोना, रुदन करना, विहँसना आदि सब,
देता अपरिमित हर्ष उसको, देखती वह इन्हें जब ? यह प्रेम है…

है वायुसे यह बेल हिलती, बेलसे फल हिल रहे,
हैं इन फलोंके साथ हिलते, फूल कैसे खिल रहे।
सब एक होकर नाचते हैं पक्षियोंके गानपर।
कैसा प्रमोद मना रहे संसार सुखमय मानकर॥ यह प्रेम है...

उस दूरवर्ती खेतमें वे गाय कैसी चर रहीं,
ये बछड़ियाँ हैं कूद-कूद कलोल कैसी कर रहीं।
इस नीमके नीचे पड़ा, यह ग्वालिया है गा रहा,
कैसा यहाँ अपनी अनोखी मधुर तान सुना रहा॥

गाते हुए हल जोतते, संतोष-सुख से जो सने,
वे खेतिहर हैं, आप अपने खेतके राजा बने।
हैं दीन, तो भी क्या हुआ, सौजन्य श्री सम्पन्न हैं।
भूखे रहें ख़ुद आप, पर देते सबोंको अन्न हैं!
रण-भूमिको तो देखिए, ये वीर कैसे डट रहे,
कर आत्म-त्याग, स्वदेशके हित, खेत बनकर कट रहे।
इनका पराक्रम, शौर्य अनुकरणीय होगा लोकमें,
आल्हादकारी हर्षमें, हाँ, धैर्यदायी शोकमें।
इस प्रेमके ही हाथसे गरदन हजारों कट गईं,
हाँ, छातियाँ आघातके ही बिन, हजारों फट गईं।
है कौन पा सकता भला, इस प्रेम-नदका पार है?
है कौन वह जो रत्न खोजे, विकट इसकी धार है?
यह व्याप्त है सब में, अजी यह सभीका आधार है।
पाठक महोदय! अधिक क्या, यह स्वर्ग-सुखका द्वार है,
जगदीशमय है प्रेम निश्चय, प्रेम मयसंसार है॥

इस दीन भारतमें कहीं जो प्रेमका संचार हो,
तो फिर भला क्या पूछना, सब भाँति बेड़ा पार हो।
है मोह-रात्रि यहाँ कहीं जो प्रेमका दीपक जले,
तो कृष्णजीकी दिव्य छवि वह देखनेको फिर मिले॥
अज्ञान-कंस विनष्ट हो जब ज्ञान-रूप रमेशसे,
तब प्रेमसे बँध जाय हम पीछा छुटे इस क्लेशसे।
है पूर्वमें यह दीखती टुक देखना कैसी प्रभा?
हाँ हाँ प्रभा ही है विनिद्रित जग उठी दिनकर-सभा॥

विजयदशमी और प्रवासी भारतीय वीरवृन्द *

ऐ धीरो वीरवर्यो, शुभ रण मदसे मत्त हो केसरी-सा,
दौड़ो-दौड़ो अगाड़ी, झपट झट चढ़ो शत्रुओंके गढ़ों पै।
तोड़ो-तोड़ो अभी जा, दपटकर सभी गर्व पापी खलोंके,
डंका स्वातन्त्र्यका हो, रणित अवनिकी दूर हो भीति शंका····१····

लंका-जेता हमारे, रघुकुल रविके वंशजो शूरवीरो
आशंका हारकी ला, हृदयपर नहीं धारना भीरुताको।
मायाधारी, विधर्म्मी, असुर अधमरे शान्तिके शत्रु सारे,
अन्यायी हिंसकोंको, कब विजय मिली विश्वमें सोच देखो····२····

न्यायीका धर्म्म रूपी कवच, अमरता वीरको है दिलाता।
निन्दा, लज्जा, व्यथाएँ, भय, अवनति है, पाप, अन्याय पाते।
जीतेंगे युद्ध बाधा दल हम अपना पक्ष सद्धर्म्मका है।
पूरा-पूरा यशस्वी, जगतपति हमें युद्ध भूमें करेंगे···३···

* भाग २, आश्विन संवत् १९७२, संख्या ७।

आर्योंकी धर्म्मनिष्ठा, शुचि रण-पटुता, पूर्वजोंकी प्रतिष्ठा।
रक्खो, प्यारे हमारे, समर कुशल ऐ क्षत्रियो स्वाभिमानी।
हिन्दू हिन्दी हिला दें इस भव रिपुके मानका खम्भ ऊँचा,
गूँजे आकाश वीरो समुद विजयके गानसे हिन्दुओंके...४...

बोलो, बोलो, बहाके अमृत हृदयमें दर्पसे वीरतासे:
"आर्योंमें हैं अनोखे रण निपुण बली बाँकुरे शत्रु हन्ता...
"आर्योंके शौर्य द्वारा, निज रिपुगणसे इन्द्रने मुक्ति पायी।
"शान्ति स्वाधीनताके हित रुधिर सदा आर्य भू है बहाती"...५...

"आई प्यारी, हमारी, सुविजय दशमी हर्षका हेतु न्यारा।
लौटेंगे आज जाके, रिपु रण गण पै जीतका पीट डंका...
देखो पाश्चात्य देशो, भरत बसुमती शक्ति स्वातन्त्र्य पूजा।
गाओ आनन्द पाओ, विमल विजयका केतु ऊँचा उड़ाओ...६...

—'एक भारतीय प्रजा'

हिन्दुओंका रणगीत, मंजु माधवी वृत्त*

१. आकाश गूँजे रण वाद्य नादसे, सोत्साह वीरत्व प्रवाह हो पड़े...
उड़ें ध्वजा अंकित आर्य नीतिसे, 'सद्धर्म स्वातन्त्र्य, स्वदेश सेवा'...

२. हलै मही, दिग्गजवृन्द डोलें, ससैन्य हिन्दू हम युद्धको चलें...
उड़ै ध्वजा आर्य सुनीति अंकिताः 'सद्धर्म, स्वातन्त्र्य, स्वदेश सेवा'...

---

* भाग २, कार्तिक संवत् १९७२, संख्या ८।

३. स्वाधीनता भारतकी अखण्ड हो हिन्दुत्वका गौरव विश्वव्याप्त हो···
सगर्व धारैं हम युद्ध मन्त्र ये, 'सद्धर्म, स्वातन्त्र्य, स्वदेश सेवा'···

४. घमण्ड पापी रिपुवृन्दका दलें, छली बलीका हम गर्व तोड़ दें···
सुना उन्हें दें शुभ शान्ति शिक्षा, 'सद्धर्म, स्वातन्त्र्य, स्वदेश सेवा'···

५. अन्याय हिंसा व्यभिचार पापको, हिन्दे कभी देख नहीं सकेंगे···
स्वप्राण देंगे कह बन्धु त्राणमें, 'सद्धर्म, स्वातन्त्र्य, स्वदेश सेवा'···

६. वीरत्व, बन्धुत्व, गुरुत्व तत्त्वके, महत्त्वके सत्व प्रभुत्व उच्चता···
हमें करेंगे विजयी त्रिलोकमें, 'सद्धर्म, स्वातन्त्र्य, स्वदेश सेवा'···

७. कभी हमारी इस जन्मभूमिको, भूलें न भाई हम स्वप्नमें भी···
हो आर्य्य भू गौरवकी शिरोमणि, 'सद्धर्म, स्वातन्त्र्य, स्वदेश सेवा'···

८. स्वबन्धुओंको, निज जन्मभूमिको, आँखें दिखावै, वह कौन नीच है···
जाते, उसे, यों हम रौंद डालें, 'सद्धर्म, स्वातन्त्र्य, स्वदेश सेवा'···

९. स्वभूपकी या निज रूप वेशकी, कहीं ज़रा भी अवमानना हो···
तो हिन्दुओ, दौड़ पड़ो पुकारते : 'सद्धर्म, स्वातन्त्र्य, स्वदेश सेवा'···

१०. स्वजातिको या निज मित्र देशका, पीड़ा कहीं दे यदि शत्रु पातकी···
हुंकार आर्य्यो, कर खड्ग खींच लो, 'सद्धर्म, स्वातन्त्र्य, स्वदेश सेवा'···

११. त्रैलोक्यमें कीट पतंग पुंज भी, न कष्ट पावै पड़ क्रूर हाथमें···
वीरो, सुना दो शुभ आर्य गान यों : 'सद्धर्म, स्वातन्त्र्य, स्वदेश सेवा···

१२. संसारमें हो न अनीति लेश भी, स्वतन्त्र सारे नर नारि हों सुखी···
गावें मिला कंठ, सुआर्य गान यों, 'सद्धर्म, स्वातन्त्र्य, स्वदेश सेवा'···

१३. मनुष्य सारे सम हैं, न भेद है, न दुर्बलोंको हम दास-सा लखें…
मनुष्यता दे उनको सिखा दें : 'सद्धर्म, स्वातन्त्र्य, स्वदेश सेवा'…

१४. विगर्हणा हो न मनुष्य जातिकी, प्राणी न कोई भय कष्टमें पड़े…
गाओ अनोखा रण गान हिन्दुओ : 'सद्धर्म, स्वातन्त्र्य, स्वदेश सेवा'…

१५. जै राम जै कृष्ण प्रताप वीरता, जै न्यायकी, जै शुभ सत्यकी सदा…
जै गान गावें हम शान्ति शक्तिकी 'सद्धर्म, स्वातन्त्र्य, स्वदेश सेवा'…

—'एक भारतीय प्रजा'